श्रीविष्णु महापुराण

(मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

डॉ श्रद्धा शुक्ला



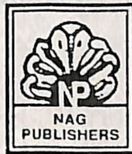
नाग प्रकाशक

श्रीविष्णु महापुराण

(मूल, हिन्दी अनुवाद सहित)

(भाग एक)

डॉ॰ श्रद्धा शुक्ला
संस्कृत विभाग, मिरांडा हाऊस
दिल्ली



नाग प्रकाशक
११-ए॰ यू॰ ए॰ जवाहर नगर दिल्ली-११०००७

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित

नाग प्रकाशक

(१) ११ए/यू. ए. जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

(२) संस्कृत भवन, १२,१५ फ्लेट, संस्कृत नगर, प्लाट नं० ३, सेक्टर-१४, रोहिणी, नई दिल्ली-११००८५

(३) जलालपुर माफी (चुनार-मिर्जापुर) उ० प्र०

ISBN - 7081-81-415-4 (Set)

ISBN - 7081-81-416-2 (Vol. I)

ISBN - 7081-81-417-0 (Vol. II)

प्रथम संस्करण : १९९८

२२५.०० (2 Vols Set)

श्री सुरेन्द्र प्रताप द्वारा नाग प्रकाशक, ११ए, यू. ए., जवाहर नगर, दिल्ली ११०००७, द्वारा प्रकाशित, अक्षरयोजक : यूनीक प्रिंट मिडिया, दिल्ली-९ तथा जी. प्रिंट प्रासेस, ३०८/२, शहजादा बाग, दयाबस्ती, दिल्ली ११००३५ द्वारा मुद्रित ।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति के स्वरुप की जानकारी के लिये पुराणों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुराणों में भारतीय संस्कृति अपने मूलरुप तथा लोकप्रिय रूप में सुरक्षित है। धार्मिक दृष्टि से पुराणों का मुख्य उद्देश्य वेदो के तत्त्वों को जनसाधारण तक पहुंचाना है। वेदो में जिन आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, व्यावहारिक, नैतिक, सांस्कृतिक तत्त्वों का सूक्ष्म रूप में वर्णन किया गया है, उनको सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से पुराणों में वर्णित किया गया है। अत: वैदिक धर्म को लोक प्रिय बनाने का श्रेय पुराणों को प्राप्त है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहा है कि पुराण रूपी चन्द्रमा से वेदों की ज्योत्स्ना प्रकाशित होती है।

नारद पुराण के अनुसार सभी वेदों का समावेश पुराणों में निहित है। छान्दोग्य उपनिषद् पुराणों को पञ्चम वेद के रूप मे स्वीकार करता है। मत्स्य पुराण के अनुसार ब्रह्मा जी ने वेदों का ज्ञान प्राप्त करके सबसे पहले पुराणों को स्मरण किया था।

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।

पुराणों का राजनीति की दृष्टि से भी महत्व है। विन्टरनिट्ज के अनुसार वंशानुचरित के कारण राजनैतिक इतिहास के स्रोत के रूप में पुराण साहित्य इतिहासकारों एवं पुराविदों के लिये मूल्यवान् धरोहर है। धार्मिक इतिहास की दृष्टि से तो पुराण अपरिमित महत्त्व के ग्रन्थ हैं। हिन्दु धर्म को सभी पक्षों एवं अन्तर्दृष्टि के लिये पुराणों से अत्यधिक सहायता मिलती है। पुराणों में प्राचीनराजवंशों के उत्थान, पतन और राज्य प्रशासन की नीतियों का दिग्दर्शन होता है पुराणों में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, मानव-प्रेम, यज्ञ, दान, तप, वर्णाश्रम धर्म, सदाचार आदि विविध कल्याणकारी मानवमूल्यों एवं विषयों का सुन्दर सरल भाषा में वर्णन प्राप्त होता है।

पुराणों का भौगोलिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्व है । इनमें भारत के सरोवर, परिपूत जल, नदियां, वन, पर्वत, मरुस्थल एवं सस्यश्यामल भूभाग का वर्णन प्राप्त होता है । तीनों के विवेचन के माध्यम से पूरे भूभाग का भौगोलिक विवरण उपलब्ध होता है । सामाजिक इतिहास की दृष्टि से भी पुराणों का बहुत महत्त्व है । पुराणों के अतीत गौरव से मानव को वर्तमान में सुख, शान्ति प्राप्त होते है तथा भक्ति के सुगम उपाय द्वारा मुक्ति का द्वार खुलता है ।

पुराणों का मूल उद्देश्य उच्चकोटि के साहित्य का परिचय देने के साथ-साथ भारतीय धर्म एवं दर्शन को सुगम एवं सुग्राह्य बनाना था विदेशी विद्वान् पाजीर्टर ने पुराणों के महत्त्व के विषय में लिखा है कि धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, एवं सामाजिक कोष के रूप में पुराण साहित्य उपलब्ध है । वायुपुराण में लिखा है कि जो व्यक्ति वेद, वेदांग और उपनिषदों आदि का ज्ञाता होते हुये भी पुराणों का विद्वान् नहीं है वह बुद्धिमान् नहीं हो सकता । अत एव वेदों की प्रतिष्ठा पुराणों से ही है । यदि पुराण न होते तो वेदों का जटिल अर्थ सर्वसाधारण की समझ में नहीं आ सकता था, कहा गया है:—

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृँहयेत् ।

बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ।।

'पुराणं पंचलक्षणम्' इस व्यापक परिभाषा के अनुसार जिन ग्रन्थों में यह सभी पांचविषय वर्णित हैं उन्हें प्राचीनतर माना गया है । इनमें विष्णुपुराण, वायुपराण, मत्स्यपुराण एवं ब्रह्माण्ड पुराण प्राचीनतर पुराण माने गये हैं ।

वैष्णव पुराणों में विष्णुपुराण सबसे प्राचीनतम पुराण है । विष्णु पुराण ही एक ऐसा पुराण है जिसमें पञ्चलक्षण परिभाषा घटित होती हे । सृष्टि निर्माण, प्रलय, ऋषि, और मुनियों के वंश का इतिहास, राजाओं और पौराणिक व्यक्तियों के उपाख्यान और धर्म के विविध अंगों का निरूपण इस पुराण में किया गया है । प्रसंगवश स्वर्ग, नरक, भूलोक, भुवर्लोक, चतुर्दशविद्याएें विभिन्न प्रकार के उपदेश आदि इस महापुराण में प्रतिपादित हैं । अत: धर्म, दर्शन, समाज और संस्कृति की दृष्टि से इस पुराण का महत्व सर्वाधिक है ।

विष्णुपुराण का कर्तृत्व

विष्णुपुराण के कर्तृत्व के सम्बन्ध में विभिन्न मत हैं । परन्तु उनमें मुख्यत ही दो मत हैं ।

प्रथम मत के अनुसार पराशर ऋषि मैत्रेय ऋषि से स्वयं कहते हैं कि यह ज्ञान दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा के किनारे पर पुरुकुत्स को सुनाया एवं पुरुकुत्स ने सारस्वत को सुनाया। सारस्वत से मुझे प्राप्त हुआ और मैं अब तुमको सुना रहा हूँ। दूसरे मत के अनुसार पारम्परिक दृष्टि से पुराणों के कर्त्ता वेदव्यास माने जाते हैं। इस दृष्टि से विष्णुपुराण भी महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित माना गया है। परन्तु इतिहासविदों का कहना है कि पुराणों की रचना विभिन्न कालों में होती रही है। तथा विभिन्न व्यक्तियों द्वारा रचना की जाती रही। यह भी माना जाता है कि विष्णुपुराण में वायुपुराण और मत्स्यपुराण की अपेक्षा अधिक मौलिक एवं महत्वपूर्ण सामग्री संकलित है।

वेदव्यास के पिता का नाम पराशर था। ऋकसंहिता के शताधिक मंत्रों में विष्णु का निर्देश प्राप्त होता है। सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद में भी विष्णु के माहात्म्य का वर्णन है। ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् काल में ब्रह्म का महत्व विकसित हुआ था पर पुराणकाल में त्रिदेव अर्थात ब्रह्मा, विष्णु, एवं महेश का महत्व ब्रह्म से भी अधिक व्यापक रूप में जनता के समक्ष आया।

विष्णुपुराण का काल

विष्णुपुराण का काल निर्धारण अत्यंत कठिन कार्य है। इस विषय में विद्वानों में पर्याप्त मत भेद हैं। पाश्चात्य विद्वान् पार्जीटर द्वारा तीन बातों को ध्यान में रखकर काल निर्धारण किया गया है—

१. विष्णु पुराण में वर्ण्य विषय एंव रचना शैली में समरूपता है। अन्य पुराणों में इस प्रकार की समरूपता नहीं दिखाई देती।

२. विष्णुपुराण में अन्य पुराणों की तरह स्थल प्रक्षेप के प्रमाण नहीं मिलते। जिससे पुराण की प्राचीनता सिद्ध होती है।

३. विष्णु पुराण में जैन एवं बौद्ध धर्म के उल्लेख से विष्णुपुराण की रचना पाँचवीं शताब्दी ई० पूर्व के बाद हुई होगी।

फर्क्यूहर के अनुसार इस पुराण का रचना काल ४०० ई० माना गया है।

डॉ० हाजरा जड़भरत, भक्त ध्रुव आदि की कथाओं के आधार पर विष्णु पुराण की रचना ईसा की सातवीं शताब्दी की मानते हैं।

वराहमिहिर ने नक्षत्र गणना के आधार पर विष्णुपुराण का समय चतुर्थ शताब्दी माना है ।

डॉ० राय ने विष्णुपुराण का रचना काल चतुर्थशताब्दी के आस पास स्वीकार किया है ।

डॉ० बलदेव उपाध्याय के मतानुसार इस का रचना काल ईसा की द्वितीय शताब्दी है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर विष्णुपुराण की रचना चतुर्थ शताब्दी ई० के लगभग हो चुकी थी ।

मत्स्यपुराण के आधार पर पराशर ने वराह कल्प के वृतान्त का वर्णन किया तथा सम्पूर्ण धर्मों एवं ग्रन्थों का प्रकाशन किया । जिसमें विष्णुपुराण भी है । इसकी श्लोक संख्या २३००० स्वीकार की गई है ।

आजकल विष्णुपुराण में ६००० श्लोक मिलतें हैं । सम्भवत: अन्य श्लोक लुप्त हो गए होंगे । नारदपुराण के अनुसार छठे अंग के पश्चात् इस पुराण का उत्तरभाग भी उपलब्ध होता है, जिसको विष्णु-धर्मोत्तर कहते हैं । श्रीकृष्णमाणि त्रिपाठी के मतानुसार यह पुराण अपूर्ण है क्योंकि ज्योतिर्विद ब्रह्मगुप्त ने विष्णुपुराण के जिस ज्योतिष तत्त्व के आधार पर ब्रह्म सिद्धांत की रचना की वह अंश आज उपलब्ध नहीं होता एवं कृष्ण जन्माष्टमी भरताख्यान आदि का समावेश करने वाला अंश भी अनुपलब्ध है ।

टीकाएं

श्रीधरस्वामी की स्वप्रकाश टीका प्रकाशित है । रत्नगर्भ की वैष्णवाकृत चान्द्रिका, विष्णुचित्ति की व्याख्या आदि टीकाएं प्रकाशित हैं । सूर्यकर मित्र रचित व्याख्या, नृसिंह भट्ट कृत व्याख्या, चित्सुखमुनि की टीका, जगन्नाथ पाठक की स्वभावार्थ दीपिका आदि प्रकाशित है ।

विष्णुपुराण का वर्ण्य विषय

वर्तमान विष्णु पुराण छ: अंशों में विभक्त है । प्रथम अंश में इक्कीस (२१) अध्याय हैं । जिसमें पराशर द्वारा विष्णु को ही सृष्टी कर्ता स्वीकार किया गया है । इसमें ब्रह्मा को विष्णु से उत्पन्न स्वीकार किया है । वराह द्वारा पृथ्वी का उद्धार, ब्रह्म

रुप धारण कर सृष्टि रचना का वर्णन प्राप्त होता है । इसके अनन्तर तमोगुणी सृष्टि का वर्णन है ।

इसके बाद वर्ण व्यवस्था, लक्ष्मी विष्णु प्रसंग, देवासुर संग्राम, समुद्रमंथन, ध्रुवद्वारातपस्या, राजा वैन से पृथु की उत्पत्ति का वर्णन है । प्रचेताओं का मरिषा नाम की कन्या से विवाह, दक्षकन्याओं का विवाह, प्रहलाद् की कथा, नृसिंह अवतार, विष्णु विभूति तथा धर्म व्यवस्था का वर्णन है ।

द्वितीय अंश में सोलह (१६) अध्याय हैं । इसमें भरतवर्णन, भूलोक वर्णन, भारतवर्ष वर्णन में भारत को कर्म भूमि बताया है । इसके बाद द्विप, पाताल वर्णन, सूर्य लक्षण, रात्रि, काल चक्र, लोकपाल, गंगा की उत्पत्ति, जड़ भरत का वर्णन है ।

तृतीय अंश में अठारह (१८) अध्याय हैं । इसमें सात मन्वन्तर, मनु की उत्पत्ति, व्यासों के नाम, चार वेद, १८ पुराण, चौदह विद्या, तथा यमगीता का वर्णन है । चार आश्रम संस्कार तथा श्राद्ध वर्णन है । वेदत्रयी को छोड़ने वाले को नग्न कहा गया है । उसके बाद देवासुर युद्ध का वर्णन है ।

चतुर्थ अंश में चौबीस (२४) अध्याय हैं । यह अंश ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । राजाओं के वंशों का वर्णन है, मनु द्वारा मित्र वरुण देवता के यज्ञ का वर्णन है ।

इक्ष्वाकुवंश का वर्णन, सोभरिचरित, सगर उत्पत्ति, निमिचरित्र, निमिवंश, जनक सीरध्वज राजाओं का वर्णन, राजा नहुष के छः पुत्रों का वर्णन है । इसके अनन्तर यदुवंश, कुरुवंश आदि का वर्णन है । इसके बाद भविष्य में होने वाले राजाओं का वर्णन, परिक्षित के पुत्रों का वर्णन जनमेजय के पुत्रों द्वारा निर्वाण प्राप्ति का वर्णन हैं । इसके बाद भविष्य में होने वाले राजाओं का वर्णन, परिक्षित के पुत्रों का वर्णन जनमेजय के पुत्रों द्वारा निर्वाण प्राप्ति का वर्णन है । भविष्य में होने वाले इक्ष्वाकुवंश के राजाओं का वर्णन, मगधवंश के आगे होने वाले राजाओं का वर्णन है । कलियुग में बृहद्रथ वंश में प्रद्योत वंशीय राजा १३८ वर्ष तक राज्य करेंगें । अनेक राजाओं के अनन्तर कलियुग में चन्द्रगुप्त शासन का अधिकारी होगा ।

पंचम अंश में अड़तीस (३८) अध्याय हैं । यह अंश आख्यानों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है । इसमें वासुदेव देवकी विवाह, श्रीकृष्ण वृतान्त, कालियानाग, धेनुकासुर आदि लीलाओं का वर्णन है । मेध्य पशुओं की बलि, गोवर्धनपूजा का

विधान है । इसमें गोवर्धन धारण, रुक्मणी हरण, बाणासुर, ऊषाचरित, साम्ब विवाह, ऋषिओं द्वारा श्राप का वर्णन है ।

छटे अंश में आठ (८) अध्याय हैं । इसमें कलिधर्म के साथ-साथ समाज में शूद्र तथा स्त्री का महत्व, निमेष आदि कालमान; नैमित्तिक प्रलय आदि का वर्णन किया गया है । योग स्वाध्याय वर्णन में परमात्मा का ज्ञान आदि विषय वर्णित है । अन्त में ब्रह्म योग वर्णन के साथ विद्या के नित्य सनातन परमात्मा के प्रकृति पुरुषमय रूपों का वर्णन है ।

पुराण लक्षण एवं विष्णुपुराण

पंच लक्षण ही पुराण रचना का आधार स्तम्भ है । वर्ण्य विषयों में सर्ग, प्रतिसर्ग,-मन्वन्तर, वंश और वंशानुचरित आदि है । विष्णुपुराण में पंचलक्षण पूर्णत: प्रमाणित होते हैं । सर्ग : विष्णुपुराण के प्रथमअंश में सृष्टि वर्णन है जो कि 'सर्ग' है ।

प्रतिसर्ग : प्रतिसर्ग अर्थात प्रलय वर्णन विष्णुपुराण में प्रतिसंचर रुप में मिलता है । यह इस पुराण के छठे अंश में बताया है । नैमित्तिक प्रलय प्राकृतिक प्रलय, नित्य, आत्यन्तिक इन चार रूपों की प्रलय वर्णन प्राप्त होता है ।

वंश एवं वशांनुचरित:

ब्रह्मा की संतानपरम्परा का नाम है 'वंश' राजाओं की परम्परा के साथ महर्षियों का वर्णन वंशानुचरित है । यह विषय पुराण के चतुर्थ अंश में वर्णित है ।

मन्वन्तर : विष्णुपुराण के द्वितीय अंश में चौदह मन्वन्तरों का वर्णन है ।

डॉ. विल्सन के अनुसार विष्णुपुराण का पंचलक्षण की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र (१-५) की व्याख्या जयमंगला के किसी प्राचीन ग्रन्थ के श्लोक के अनुसार सृष्टि, प्रवृत्ति, धर्म मोक्ष पुराण पंच लक्षण बतलाये गये हैं ।

विष्णुपुराण का धार्मिक दृष्टिकोण

इस पुराण में धर्म-अधर्म तमोगुण-रजोगुण के संघर्ष का वर्णन है । आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार इसकी तुलना भागवत पुराण से की जा सकती है । धर्म की विजय के प्रसंग में विष्णु के नृसिंह अवतार द्वारा हरिण्यकशिपु के मारे

जाने पर स्वयं प्रह्लाद दैत्यों का राजा हुआ एवं धर्म के अनुकूल ही राज कार्य करते हुए उसने परम निर्वाण पद प्राप्त किया ।

विष्णुपुराण में राजधर्म के वर्णन प्रसंग में राजा का प्रथम कर्तव्य प्रजा रक्षा तथा राज्य का व्यवस्थित करना बताया है । वर्ण धर्म से विचलित व्यक्ति को 'नग्न' की संज्ञा दी है । उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि पौराणिक ग्रन्थों में आश्रम व्यवस्था तथा नैमित्तिक कर्तव्य आदि का महत्वपूर्ण स्थान था । धर्म स्थापना के लिए विष्णु के अंशावतार श्री कृष्ण ने जन्म ग्रहण किया, और अधर्मियों का वध किया । उपरोक्त वर्णन के अनुसार धार्मिक दृष्टि से विष्णुपुराण का महत्त्व पूर्ण स्थान है ।

भगवत्तत्व

विष्णुपुराण में सृष्टि के सृजन, पालन एवं पोषणकर्त्ता के रूप में भगवान् विष्णु का चित्रण है । इस पुराण में विष्णु को परम तेजस्वी, अजर, अचिंत्य, व्यापक, नित्य, कारणहीन एवं सम्पूर्ण विश्व में व्यापक बताया है । परमात्मा का स्वरुप भगवत् शब्द वाच्य है और भगक्त् शब्द ही उस आद्य एवं अक्षय स्वरूप का वाचक है । विष्णु को ऐश्वर्य, धर्म, यक्ष, श्री, ज्ञान, वैराग्य गुणों के युक्त होने के कारण भगवान् कहा जाता है ।

विष्णुपुराण में भगवान् शब्द का निर्वचन प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि जो समस्त प्राणियों की उत्पत्ति और नाश, आना और जाना, विद्या और अविद्या को जानता है, वही भगवान् है ।

विष्णु सबके आत्मरूप में एवं सकल भूतों में विद्यमान है इसलिए उन्हें वासुदेव कहा जाता है । जो भूताधिपति पहले हुए हैं और जो आगे होंगे वे सभी सर्वभूत विष्णु के अंश है । विष्णु के प्रधान चार अंश हैं । एक अंश से वे अव्यक्त रूप ब्रह्मा होते हैं । दूसरे अंश से मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, तीसरा अंश काल है और चौथा अंश सम्पूर्ण प्राणी । इस तरह चार तरह से वे सृष्टि में स्थित हैं । शक्ति के तथा सृष्टि के इन चारों आदि कारणों के प्रतीक भगवान् विष्णु चार भुजा वाले हैं । माणि माणिक्य विभूषित वैजयन्तीमाला से युक्त ऊपरी बाँये हाथ में शंख, ऊपरी दायें हाथ में चक्र, नीचे के बांयें हाथ में कमल नीचे के दायें हाथ में गदा धारण किये हैं । विष्णुपुराण में बताया गया है कि इस जगत की निर्लेप तथा निर्गुण और निर्मल आत्मा को श्री हरि कौस्तुभ मणि रूप में धारण करते हैं । अनन्त

शाक्ति को वत्स के रुप में, श्री को गदा रुप में, भूतों के कारन राजस अहंकार को शंख के रुप में, सात्विक अहंकार को वैजयन्ती माला के रूप में और ज्ञान एवं कर्मेन्द्रियों को बाणों के रुप में विष्णु धारण करते हैं। इस प्रकार विष्णुपुराण में वर्णित विष्णु सर्वशक्तिमान्, मंगलमय शरणागतत्राता, अतिहर्त्ता और भक्तों के रक्षक हैं।

आख्यान एवं मूल्य

विष्णुपुराण में ध्रुव, प्रह्लाद, भगीरथ, जह्नु, नहुष, ययाति, विश्वामित्र, वासुदेव, कंसवध, शम्बरवध, कोशिध्वजोपाख्यान, जरासन्ध—पराभव, पारिजात हरण, आदि इस प्रकार के कथानक हैं, जिनमें तत्कालीन समाज का इतिवृत्त निहित है। यद्यपि कथानकों का रूप अतिशयोक्ति पूर्ण है। और प्रत्येक आख्यान को श्रद्धागम्य बनाने के लिए दैवी चमत्कारों की भी योजना की गई है पर वास्तव में काव्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इन आख्यानों का मूल्य अत्यधिक है।

विष्णु पुराण के प्रथम अंश में प्रह्लाद के आख्यान का वर्णन है। यह दैत्यराज हिरण्यकशिपु का पुत्र था। हिरण्यकशिपु देव और पराशक्ति के विरोध में था। प्रह्लाद आरम्भ से ही भगवत् भक्त थे। जब हिरण्यकशिपु को प्रह्लाद की भक्ति का ज्ञान हुआ तो वह उसका अत्यंत विरोध करने लगा। शुक्राचार्य के यहाँ विद्याध्ययन का भी उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। तदनन्तर राक्षस पुरोहितों द्वारा शिक्षा दिलाई गई, परन्तु प्रह्लाद पर उस का भी कोई प्रभाव न पड़ा तो पुरोहितों ने दण्डनीती द्वारा उसे तथाकथित सुमार्ग पर लाने की चेष्टा की पर सब व्यर्थ रही।

इन उपर्युक्त आख्यान के विश्लेषणों से निम्नलिखित तथ्य उपस्थित होते हैं—

१. कुतूहल तत्त्व

घटना प्रधान होने के कारण औत्सुक्य एवं आश्चर्य आख्यान में आद्योपान्त व्याप्त हैं। साहित्य दर्पण में कुतूहल की गणना स्वभावज अलंकार से की है। आचार्य विश्वनाथ ने बताया है कि सुन्दर वस्तु के अवलोकन से मन में जो चञ्चलता उत्पन्न होती है वही कुतूहल है। जब किसी विराट या महनीय का चित्रण प्रस्तुत किया जाता है तो कुतुहल तत्त्व स्वयं ही प्रकट होता है।

अत: साहित्यदर्पणकार ने स्वभावज अंलकार के विश्लेषण में कुतूहल को एक आवश्यक अंग कहा है। प्रह्लादोपख्यान में विष्णुपुराण के रचियता ने आख्यान के अंगीभूत कुतूहल की योजना महच्चरित्र के उद्‌घाटन हेतु की है। विष्णुपुराण में जितने आख्यान हैं, उनमें कौतूहल तत्त्व अवश्य पाया जाता है।

२. जिज्ञासा-शान्ति

पौराणिक आख्यानों में काव्य चमत्कार उत्पन्न करने के लिए चञ्चलता और उत्सुकता की वृद्धि किसी एक सीमा तक होती है। जहाँ आख्यान क्लाइमेक्स की स्थिति को प्राप्त होता है, वहाँ नीरस वस्तु भी पाठक को चमत्कृत कर देती है। चमत्कार का यह तत्त्व जिज्ञासा की शान्ति में परिणत हो जाता है। अत: विष्णुपुराण में उल्लिखित यह उपाख्यान ऊब या नैराश्य उत्पन्न नहीं करता है। प्रह्लाद की आराधना आसुरी वृत्ति पर दैवी वृत्ति की विजय प्रदर्शित करती है।

द्वन्द्व और संघर्षो के बीच आख्यान का पल्लवन

विष्णुपुराण के सात्त्विक भावों की अभिव्यंजना के लिए प्रतीक रुप दैवी और आसुरी वृत्तियों के संघर्ष उपस्थित किये गए हैं। संघर्षों के रेखा बिन्दुओं में ही आख्यान गतिशील लक्षित होते हैं। अत: हिरण्यकशिपु और प्रह्लाद का संघर्ष दो संस्कृतियों का संघर्ष है। एक संस्कृति यज्ञादि रूप हिंसा प्रधान है, तो दूसरी जगत् को त्राण देने वाली अहिंसा-प्रधान है। हिरण्यकशिपु उन सात्विक भावों का विरोधी है, जिससे मानवता की प्रतिष्ठा होती है। मनुष्य स्वात्मालोचन द्वारा अपने आत्मिक विकास और विषय व्यापारों को नियंत्रित करता है। वह सत्य और आलोक प्राप्ति के लिए भगवत् स्मरण करता है। अपने को क्रोध, मान, मद, मायादि विकारी प्रवृत्तियों से पृथक कर भगवान् के सामीप्य की प्राप्ति करता है। प्रह्लाद विष्णुपुराण का सच्चा प्रतिनिधित्त्व कर रहा है। वह जगत की शान्ति के लिए आसुरी प्रवृत्तियों का दमन आवश्यक समझता है। पर विशेषता यह है कि प्रह्लाद हिंसा के दमन के लिए हिंसा का प्रयोग नहीं करता। वह अपनी आत्म शक्ति का विकास कर अहिंसक प्रवृति से हिंसा को रोकता है। त्याग और संयम जीवन के ऐसे दो स्तम्भ हैं जिन पर विष्णुपुराण की आधार शिला स्थित है।

व्रतविधान और महत्व

विष्णुपुराण में आत्मशोधन, लौकिक अभ्युदय की उपलब्धि एवं जीवन में प्रगति और प्रेरणा करने के हेतु व्रत और पर्वों की साधना आवश्यक मानी गई है। कृष्णाष्टमी, चातुर्मास्य, विजय द्वादशी, गोविन्द द्वादशी, अजितैकादशी, विष्णुव्रत, आखण्ड द्वादशी, मनोरथ द्वादशी, अशोक पौर्णमासी; नरक द्वादशी, अनन्त, नक्षत्र पुरुष, तिलक द्वादशी आदि लगभग अस्सी व्रतों का विधान विष्णु पुराण में वर्णित है। योगशास्त्र में चित्त वृत्तियों के निरोध के लिए जिन योगांगों का निरूपण किया गया है, उनका अवलम्बन करना साधारण व्यक्ति के लिए साध्य नहीं है। आलस्यादि विविध तमोमयी वृत्तियाँ आत्मोत्थान के लिए व्यक्ति को अग्रसर नहीं होने देता। अत: पुराणकारों ने विविधव्रतों के प्रसंग में विषय सेवन से चित्तवृत्ति को हटाने का निर्देश किया है। वास्तव में पुराणों की यह बहुत बड़ी देन है, कि व्रतों की साधना से वे आत्मा और परमात्मा को अवगत करने के लिए प्रेरित करते हैं। विष्णुपुराण में प्रतिपादित व्रत विधियाँ मानव को सुख व शान्ति प्रदान करती हैं। व्यक्ति व्रत उपवास तथा विषय त्याग द्वारा लोकरक्षक और लोकरंजक भगवान् के स्वरूप से परिचित होता है। अत: स्वयं को समझने, कर्तव्य अवधारणा करने एवं लोक परलोक की आस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए व्रत साधना की महती आवश्यकता है। उपवास केवल शारीरिक शुद्धि का ही साधन नहीं अपितु आत्म शुद्धि का भी साधन है। आत्मशोधन तथा स्वपरीक्षण का अवसर व्रतानुष्ठानों से ही प्राप्त होता है। संस्कृति का व्यावहारिक रूप व्रत साधना में निहित है, अत: विष्णुपुराण का व्रत विधान कई दृष्टि से महत्व पूर्ण है।

पुराण का वैशिष्ट्य

विष्णुपुराण का महत्व कई दृष्टियों से है। इस पुराण के षष्ठांश में कलियुग का बहुत ही जीवन्त स्वरूप वर्णित किया है। प्रायश्चित-विधान और योगमार्ग का निरूपण अत्यंत हृदय ग्राही रुप में वर्णित है। इस पुराण के पञ्चमांश में वैधी और रागानुगा भक्ति का भी सुन्दरतम वर्णन है। वैधी भक्ति में बाह्यविधियों, आचारों और प्रतिमापूजन का विधान है। इस भक्ति मार्ग के द्वारा साधक का मन स्वाभाविक रूप से भगवन के उन्मुख हो जाता है वैधी भक्ति की तीन प्रणालियाँ हैं। विष्णुपुराण में इन तीनों प्रणालियों का वर्णन पाया जाता है। रागानुगा भक्ति में प्रेममूलक भक्ति का वर्णन विस्तार के साथ आया है। प्रह्लाद, ध्रुव इसी भक्ति के अधिकारी हैं।

भगवान के प्रति ममत्व प्राप्त कर लेना भक्ति का सर्वोच्च सोपान है । (१) प्रणाम (२) स्तुति (३) सर्वकर्मार्पण (४) उपासना (५) ध्यान एवं (६) कथा श्रवण ये छ: वैधी भक्ति के अंग हैं पर इनका निरूपण रागानुभक्ति में पाया जाता है । (१) श्रवण (२) कीर्तन (३) स्मरण (४) पादसेवन (५) अर्चन (६) वन्दन (७) दास्य (८) सख्य और (९) आत्म-निवेदन रूप नवधा भक्ति का विस्तृत वर्णन इस ग्रन्थ में आया है । अत: विष्णु भगवान के स्वरुप का परिज्ञान एवं भक्ति के विविध अंग प्रत्यंग इस ग्रन्थ में विस्तार से वर्णित हैं । स्वयं पुराणकार ने बताया है कि जो व्यक्ति विष्णु का स्मरण करता है, उसकी समस्त पापराशि भस्म हो जाती है और वह मोक्षपद प्राप्त कर लेता है ।

नाम कीर्तन, भगवन्त नाम स्मरण, भगवत्-स्तवन, भगवत् गुण वर्णन, कथा श्रवण, भगवत्प्रतिमा को साष्टांग प्रणाम आदि के द्वारा मनुष्य अपना हित साधन कर लेता है । यद्यपि भगवद् भक्ति की प्राप्ति भी भगवत्कृपा के बिना सम्भव नहीं तो भी व्यक्ति रागानुगा भक्ति द्वारा भगवान का सामीप्य लाभ कर सकता है । वास्तव में मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए भगवान की शरण को प्राप्त करना, उसका गुणगान करना, गुण श्रवण करना एवं आत्म शोधन करना आवश्यक है ।

भक्ति मार्ग की महत्ता के अतिरिक्त इस पुराण में सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय का भी महत्वपूर्ण चित्रण है । इस पुराण की मान्यतानुसार विष्णु से ही सारा संसार उत्पन्न हुआ है, उन्हीं में स्थित है, वे ही इसकी स्थिति और लय के कर्ता हैं । तथा यह जगत भी उन्हीं का स्वरूप हैं ।

विष्णु पुराण में प्रलय का बहुत ही स्पष्ट चित्रांकन किया है । बताया गया है कि प्रलय तीन प्रकार का होता है— नैमित्तिक आत्यन्तिक, और प्राकृतिक । कल्पान्त में जो ब्राह्म प्रलय होता है उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । यह नैमित्तिक प्रलय अत्यंत भयानक होता है । चतुर्युगी सहस्त्र के अनन्तर महीतल क्षीण हो जाता है और सौ वर्षों तक सृष्टि नहीं होती जिससे अधिकांश जीव जन्तु नष्ट हो जाते हैं । इसके पश्चात् भगवान विष्णु रुद्र रूप में समस्त प्रजा को अपने में विलीन कर लेते हैं और सूर्य की रश्मियों द्वारा समस्त जल का शोषण कर लेते हैं । जलांश के नष्ट होने से भास्कर की किरणें समस्त जगत को दग्ध कर डालती हैं । फलत: वृक्ष वनस्पति आदि सभी सूखकर नष्ट हो जाते हैं और पृथ्वी कूर्मपृष्ठ के समान दिखलाई पड़ती है । प्रखर कालानल के तेज से दग्ध यह त्रिभुवन कटाह के समान दिखलाई

पड़ता है। इस समय दोनों लोकों के जीव जन्तु अनल ताप से पीड़ित हो महर्लोक में प्रश्रय प्राप्त करते हैं। अनन्तर विष्णु के नि:श्वास से मेघों की सृष्टि होती है और सौ वर्षों तक अनवरत मूसलाधार वर्षा होती रहती है। जिसके फलस्वरुप समस्त प्राणी जल लीन हो जाते हैं। अनन्तर भगवान् विष्णु उस समय समुद्र में अनन्त शेष शय्या पर शयन करते हैं और सनकादि ऋषि उनकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार विष्णुपुराण में नैमित्तिक प्रलय का विस्तार से विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

जब पूर्वोक्त क्रम से अनावृष्टि और अनल के सम्पर्क से पाताल आदि सभी लोक नि:शेष हो जाते हैं। तब महत्तत्वादि पृथ्वीपर्यन्त प्रकृति के विकार को नष्ट करने के लिए प्रलयकाल उपस्थित होता है। प्राकृतिक प्रलय में सर्वप्रथम जल पृथ्वी के गन्ध गुण में ग्रसित करता है। जब पृथ्वी से समस्त गन्ध, जल द्वारा नष्ट हो जाती है तो यह पृथ्वी लय को प्राप्त होती है, और जल के साथ मिल जाती है। इस से जल की उत्पत्ति हुई। इस कारण जल भी रसात्मक है। इस समय जल प्लावन होता है और सारा संसार जल-मग्न हो जाता है। पश्चात् अग्नि द्वारा जल का शोषण होता है। जिससे रसतन्मात्र रूप में विलीन हो जाता है। जब अग्नि से सारे भुवन दग्ध हो जाते हैं तो वायु समस्त तेज को ग्रसित कर लेती है। अब रुपतन्मात्र भी स्पर्श से समाविष्ट हो जाते हैं। पश्चात अहंकार तत्व और भौतिक इन्द्रियां भी नष्ट हो जाती है।

आत्यन्तिक प्रलय जीव का मोक्षरूप है। मनीषी आध्यात्मिक ताप-त्रय को अवगत कर ज्ञान और वैराग्य द्वारा आत्यन्तिक प्रलय प्राप्त करते हैं। मोक्ष प्राप्त हो जाने पर आत्यन्तिक लय की स्थिति आती है। संसार में वायु-पित्त और श्लेषजन्य शारीरिक ताप होता है, तथा क्रोध आदि षड्रिपुओं द्वारा मानसिक पशुपक्षी या पिशाच प्रभृति के द्वारा जो दुख प्राप्त होता है उसे आधिभौतिक एवं शीत, उष्ण, वर्षा आतप आदि से जो दुख प्राप्त होता है उसे आधिदैविक कहते हैं। आत्यन्तिक प्रलय होने पर सभी प्रकार के ताप नष्ट हो जाते हैं। जीव का शाश्वत ब्रह्म रूप में लय हो जाता है। विष्णुपुराण में प्रतिपादित प्राकृतिक प्रलय ही महाप्रलय होती है।

विष्णुपुराण का दार्शनिक दृष्टिकोण

विष्णुपुराण में सामान्य रूप से वैदिक, अवैदिक तथा आस्तिक, नास्तिक समस्त दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण हुआ है। मुख्य रूप से जगत् के सृष्टि प्रलय

संबंधी तत्वों के सम्यक् प्रतिपादन होने के कारण सांख्यदर्शन के साथ साथ इसका पूर्ण सामंजस्य है । इस पुराण में वेदान्त दर्शन के अद्वैत ब्रह्म (आत्म-परमात्म-तत्त्व) का विवरण है और पतञ्जलि के अष्टांग योग का सम्यक् विवेचन हुआ है । इसी प्रकार दार्शनिक दृष्टि से ज्ञानमीमांसा, तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा का वर्णन प्राप्त होता है ।

दार्शनिक समीक्षण में प्रमा, प्रमाता, प्रमेय और प्रमाण इन चार प्रमाणों का अथर्विबोध कराया गया है । पौराणिक दर्शन के प्रसङ्ग में तत्वज्ञान के लिए आठ प्रमाणों की उपयोगिता सिद्ध की गई है । इस पुराण में हमें अव्यक्त तत्व का अभिव्यक्त रूप में दर्शन मिलता है । इस पुराण में निमेष आदि कालमान का विवेचन क्रमिक और वैज्ञानिक पद्धति पर सम्पन्न हुआ है । विष्णुपुराण में भक्ति, ज्ञान और कर्म समस्त अध्यात्म विषयों का विवेचन हुआ है । सभी मार्गों के पथिकों को इसमें यथेष्ट सम्बल सामग्रियों की उपलब्धि बताई गई है । ज्ञान और कर्म के समान भक्तियोग का भी विशेष रूप से महत्व प्रदर्शित किया गया है ।

विष्णु पुराण में नवधा भक्ति के उदाहरण दृष्टि गोचर होते हैं । नवधा भक्ति की साधना से मानव प्राणी ऐहलौकिक तथा पारलौकिक दोनों सम्पत्तियों को प्राप्त कर सकता है । भक्ति की प्रतिष्ठा हो जाने पर भक्त और भगवान में कोई भेद नहीं रह जाता है । कहीं-कहीं तो भगवान ने भक्त को अपने से बड़ा निर्देशित किया है ।

आदरणीय प्रो० पुष्पेन्द्र कुमार के प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ, जिनके सुचारू निर्देशन एवं वैदुष्यपूर्ण परामर्श से ही इस कार्य को करने में समर्थ हो सकी हूँ ।

सभी पारिवारिक जनों के प्रति विशेष श्रद्धा अभिव्यक्त करती हूँ, जिन्होंने पारिवारिक चिन्ताओं से मुक्त रखकर इस सारस्वत साधना में सहयोग दिया ।

उन सभी विद्वानों एवं गुरुओं के प्रति विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थों एवं सहयोग से ही यह कार्य सम्पन्न हो पाया है । राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान के निदेशक डा० कमलाकान्त मिश्र के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने संस्थान से आर्थिक सहयोग दिलाकर ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग दिया ।

विभिन्न पुस्तकालयों के अधिकारियों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने समय पर पुस्तकालयों की सामग्री का प्रयोग करने में सुविधा प्रदान करके विशेष सहयोग दिया ।

श्री सुरेन्द्र प्रताप, नरेन्द्र प्रताप, प्रबन्धक नाग प्रकाशक के अमूल्य सहयोग के लिए मैं कृतज्ञ हूँ। जाने अन्जाने हुई त्रुटियों के लिए विज्ञ-जनों से क्षमा प्रार्थी हूँ एवं उनसे प्रोत्साहन की अपेक्षा करती हूँ।

मकर संक्रान्ति दिवस
१४-१-९८

विनीत
श्रद्धा शुक्ला
संस्कृत विभाग-मिराण्डा हाउस

विषयानुक्रमणी

(प्रथम-भाग)

(प्रथम भाग समाप्त)



विषयानुक्रमणी

(द्वितीय भाग)

छठा अंश

श्रीविष्णु महापुराण

प्रथम अंश - पहला अध्याय

(पराशर के प्रति मैत्रेय का प्रश्न तथा पराशर का उत्तर)

(मङ्गलाचरणम्, पराशरं प्रति मैत्रेयस्य प्रश्नः, पराशरस्योत्तरदानञ्च)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ १ ॥

हे पुण्डरीकाक्ष ! आपकी जय हो, हे विश्व के उत्पादक ! आपको नमस्कार है हे ऋषिकेश ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज ! आपको नमस्कार है ॥ १ ॥

सदक्षरब्रह्म य ईश्वरः पुमान् गुणोम्भिसृष्टि-स्थिति-काल-संलयः।
प्रधान-बुद्धयादि-जगत्-प्रपञ्चसूः स नोऽस्तु विष्णुर्मति-भुति-मुक्तिदः ॥ २ ॥

जो (वेदान्तियों के विचार से) सत् अक्षर एवं ब्रह्म है, (पातञ्जलयोगवेत्ताओं के विचारसे) ईश्वर एवं (सांख्ययोगियों के विचार से) पुरुष है, (सत्त्व, रज, तम) इन तीनों गुणों के क्षोभ से जनित सृष्टिके उत्पन्न, पालन तथा संहार के जो स्थान है। प्रधान एवं बुद्धि आदि जगत्प्रपञ्च के जो उत्पादक हैं, वे श्रीविष्णु भगवान् हम लोगों को मति, भोग और मुक्ति प्रदान करें ॥ २ ॥

प्रणम्य विष्णुं विश्वेशं ब्रह्मादीन् प्रणिपत्य च।
गुरुं प्रणम्य वक्ष्यामि पुराणं वेदसम्मितम् ॥ ३ ॥

विश्वेश श्री विष्णु ब्रह्मा आदि देव एवं गुरु को प्रणाम करके वेदतुल्य पुराण (विष्णुपुराण) कहता हूँ ॥ ३ ॥

इतिहासपुराणज्ञं वेदवेदाङ्गपारगम् ।
धर्मशास्त्रादितत्त्वज्ञं वशिष्ठतनयात्मजम् ॥ ४ ॥

पराशरं मुनिवरं कृतपूर्वाह्णिकक्रियम् ।
मैत्रेयः परिपप्रच्छ प्रणिपत्याभिवाद्य च ॥ ५ ॥

मैत्रेयजी ने इतिहास एवं पुराणों के ज्ञाता, वेद और वेदाङ्गमें पारङ्गत, धर्मशास्त्र आदि के तत्वज्ञ, तथा प्रातः कालीन नित्यकर्मों से निवृत्त वशिष्ठ के पौत्र मुनिश्रेष्ठ पराशर जी को प्रणाम एवं अभिवादन करके उनसे पूछा ॥ ४-५ ॥

त्वत्तो हि वेदाध्ययनमधीतमखिलं गुरो ।
धर्मशास्त्राणि सर्व्वाणि वेदाङ्गानि यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मामन्ये नाकृतश्रमम् ।
वक्ष्यन्ते सर्वशास्त्रेषु प्रायशो येऽपि विद्विषः ॥ ७ ॥

सोऽहमिंच्छामि धर्म्मज्ञ श्रोतुं त्वत्तो यथा जगत् ।
बभूव भूयश्च यथा महाभाग भविष्यति ॥ ८ ॥

यन्मयञ्च जगद् ब्रह्मन् यतश्चैतच्चराचरम् ।
लीनमासीद् यथा यत्र लयमेष्यति यत्र च ॥ ९ ॥

यत्प्रमाणानि भूतानि देवादीनाञ्च सम्भवम् ।
समुद्र-पर्वतानां च संस्थानञ्च तथा भुवः ॥ १० ॥

सूर्य्यादीनाञ्च संस्थानं प्रमाणं मुनिसत्तम ।
देवादीनां तथा वंशान् मनून् मन्वन्तराणि च ॥ ११ ॥

कल्पान् कल्पविकल्पांश्च चतुर्युगविकल्पितान् ।
कल्पान्तस्य स्वरूपञ्च युगधर्मांश्च कृत्स्नशः ॥ १२ ॥

देवर्षिपार्थिवानाञ्च चरितं यन्महामुने ।
वेदशाखाप्रणयनं यथावद् व्यासकर्त्तृकम् ॥ १३ ॥

धर्म्मांश्च ब्राह्मणादीनां तथा चाश्रमवासिनाम् ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं सर्व्वं त्वत्तो वाशिष्ठनन्दन ॥ १४ ॥

ब्रह्मन् प्रसादप्रवणं कुरुष्व मयि मानसम् ।
येनाहमेतज्जानीयां त्वत्प्रसादान्महामुने ॥ १५ ॥

गुरुदेव ! मैने आपसे समस्त वेद, वेदाङ्ग एवं सकल धर्मशास्त्रों का यथाक्रम अध्ययन किया है । हे मुनिश्रेष्ठ ! आपकी कृपा से दूसरे लोग यहां तक कि मेरे विरोधी भी मेरे विषय में प्राय: ऐसा नहीं कह सकेंगे कि मैंने समस्त शास्त्रों के अध्ययन में परिश्रम नहीं किया ।हे धर्मज्ञ ! हे महाभाग ! वही (सभी शास्त्रों में कृतपरिश्रम) मैं अब आपसे यह सुनना चाहता हूँ कि यह संसार कैसे उत्पन्न हुआ और आगे (दूसरे कल्प में) कैसे होगा । तथा हे ब्रह्मन् ! इस संसार का उपादान कारण क्या है ? यह समस्त चराचर—"ज़िससे उत्पन्न हुआ है, पूर्वकाल में जिसमें लीन था एवं आगे जिसमें लीन होगा । इसके अतिरिक्त आकाशादि भूतों का परिमाण, देवता आदि की उत्पत्ति, समुद्र, पर्वत एवं पृथ्वी की स्थिति आदि आपसे सुनना चाहता हूं । मुनि श्रेष्ठ ! सूर्यादिग्रहों की स्थिति और उनके परिमाण, देवता आदि के वंश, मनु, मन्वन्तर, चारों युगों में विभक्त कल्प और कल्पों के विभाग, प्रलयका स्वरूप, पृथक् पृथक् चारों युगों का धर्म, देवर्षि एवं राजर्षियों के चरित्र, व्यास जी के द्वारा यथावत् वैदिक शाखाओं की रचना तथा ब्राह्मणादि चारों वर्णों का एवं ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमों का धर्म, ये सारी बातें हे शक्तिनन्दन ! मैं आपसे सुनना चाहता हूं । हे ब्रह्मन् ! आप मेरे ऊपर अपने मनको प्रसादोन्मुख कीजिये जिससे हे महामुने ! मैं आपकी कृपा से ये सारी बातें जान सकूं । ।६-१५ ॥

साधु मैत्रेय धर्मज्ञ स्मारितोऽस्मि पुरातनम् ।
पितु: पिता मे भगवान् वशिष्ठो यदुवाच ह ॥ १६ ॥

विश्वामित्रप्रयुक्तेन रक्षसा भक्षितो मया ।
श्रुतस्तातस्तत: क्रोधो मैत्रेयासीन्ममातुल: ॥ १७ ॥

ततोऽहं रक्षसां सत्रं विनाशाय समारभम् ।
भस्मीकृताश्च शतशस्तंस्मिन् सत्रे निशाचरा: ॥ १८ ॥

ततः संक्षीयमाणेषु तेषु रक्षः स्वशेषतः ।
मामुवाच महाभागो वशिष्ठो मत्पितामहः ॥ १९ ॥

अलमत्यन्तकोपेन तात मन्युमिमं जहि ।
राक्षसा नापराध्यन्ते पितुस्ते विहितं तया ॥ २० ॥

श्रीपराशर जी बोले—हे धर्मज्ञ मैत्रेय ! मेरे पिताजी के पिता श्रीवशिष्ठजी ने जिसे कहा था, उस प्राचीन विषय को तुमने अच्छा स्मरण कराया । हे मैत्रेय ! जब मैंने सुना कि विश्वामित्र द्वारा प्रेरित राक्षस ने मेरे पिताजी को भक्षण कर लिया, तब मुझे असीम क्रोध हुआ । तब मैने राक्षसों के विनाश के लिए यज्ञ करना आरम्भ किया । उस यज्ञ में सैकड़ों राक्षस जलकर राख हो गये । तदनन्तर उन राक्षसों को सर्वथा नष्ट होते हुए देखकर मेरे पितामह महाभाग वशिष्ठ जी ने मुझे कहा । हे तात ! अत्यन्त क्रोध करना व्यर्थ है, अब तुम अपने क्रोध को त्याग दो । तुम्हारे पिता के लिये ऐसा ही होना था इसलिए राक्षसों का कोई अपराध नहीं है ॥१६-२० ॥

मूढानामेष भवति क्रोधो ज्ञानवतां कुतः ।
हन्यते तात कः केन यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ २१ ॥

संचितस्यापि महतो वत्स क्लेशेन मानवैः ।
यशसस्तपसश्चैव क्रोधो नाशकरः परः । २२ ॥

स्वर्गापवर्गव्यासेधकारणं परमर्षयः ।
वर्जयन्ति सदा क्रोधं तात मा तद्वशो भव ॥ २३ ॥

अलं निशाचरैर्दग्धैर्दीनैरनपकारिभिः ।
सत्रं ते विरमत्वेतत् क्षमासारा हि साधवः ॥ २४ ॥

क्रोध तो मूर्खों को ही होता है, ज्ञानियों को कभी भी क्रोध नहीं होता । तात कौन किसको मारता है, क्योंकि पुरुष अपने ही किये हुए कर्मको भोगता है । हे वत्स ! क्रोध मनुष्यों की अत्यन्त क्लेश से संचित तपस्या एवं यश का भी प्रबल नाशक है । हे तात ! स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों को विनाश करने वाले क्रोध को महर्षि लोग सदा त्याग करते हैं, इसलिए तुम भी इस क्रोध के वशीभूत मत होओ ।

निरपराध दु:खी इन राक्षसों को जलाना व्यर्थ है, अत एव तुम्हारा यह यज्ञ अब बन्द हो क्योंकि साधुओं का बल केवल क्षमा है ॥२१-२४ ॥

एवं तातेन (ज) तेनाहमनुनीतो महात्मना ।
उपसंहृतवान् सत्रं सद्यस्तद्वाक्यगौरवात् ॥ २५ ॥

ततः प्रीतः स भगवान् वशिष्ठो मुनिसत्तमः ।
संप्राप्तश्च तदा तत्र पुलस्त्यो ब्रह्मणः सुतः ॥ २६ ॥

पितामहेन दत्तार्घ्यः कृतासनपरिग्रहः ।
मामुवाच महाभागो मैत्रेय पुलहाग्रजः ॥ २७ ॥

वैरे महति यद्वाक्याद् गुरोरस्याश्रिता क्षमा ।
त्वया तस्मात् समस्तानि भवान शास्त्राणि वेत्स्यति ॥ २८ ॥

सन्ततेर्न ममोच्छेदः क्रुद्धेनापि यतः कृतः ।
त्वया तस्मान्महाभाग ददाम्यन्यं महावरम् ॥ २९ ॥

पुराणसंहिताकर्त्ता भवान् वत्स भविष्यति ।
देवतापारमार्थ्यञ्च यथावद् वेत्स्यते भवान् ॥ ३० ॥

इस प्रकार अपने महात्मा पितामह द्वारा समझाये जाने पर मैंने उनकी बातों के गौरव का विचार कर वह यज्ञ समाप्त कर दिया । इससे मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी बहुत प्रसन्न हुए । ठीक उसी समय ब्रह्माजी के पुत्र पुलस्त्यजी वहां आ गये । हे मैत्रेय ! पितामह वशिष्ठजी ने उन्हें अर्घ्यप्रदान किया, तदनन्तर पुलह के ज्येष्ठ भ्राता महाभाग पुलस्त्यजी आसन पर विराजमान हो मुझसे बोले । महान् वैरभावको रहते हुए भी श्रेष्ठ वशिष्ठजी के वाक्य से तुमने जो क्षमाभाव का आश्रय ग्रहण किया, इसलिए तुम समस्त शास्त्रों के ज्ञाता बनोगे । हे महाभाग ! अत्यन्त क्रुद्ध होने पर भी तुमने मेरी सन्तान को सर्वथा समाप्त नहीं किया, अतएव मैं एक और श्रेष्ठ वर तुझे प्रदान करता हूँ । हे वत्स ! तुम पुराणसंहिता के रचयिता होंगे एवं देवताओं के वास्तविक रहस्य स्वरूप को यथावत् जानोगे ॥२५-३० ॥

प्रवृत्ते च निवृत्ते च (झ) कर्मण्यस्तमला मतिः ।
मत्प्रसादादसन्दिग्धा तव वत्स भविष्यति ॥ ३१ ॥

ततश्च भगवान् प्राह वशिष्ठो मत्पितामहः ।

पुलस्त्येन यदुक्तं ते सर्व्वमेतद् भविष्यति ॥ ३२ ॥

हे तात ! तुम्हारी निर्मल बुद्धि प्रवृत्ति (कर्मयोग) निवृत्ति (सांख्ययोग) सम्बन्धी कर्मों में निःसन्देह प्रवृत्त हो जायगी । इसके बाद मेरे पितामह भगवान् वशिष्ठजी बोले हे वत्स ! तेरे विषय में पुलस्त्यजी ने जो कुछ भी कहा है, वह सब सत्य होगा ॥३१-३२ ॥

इति पूर्वं वशिष्ठेन पुलस्त्येन च धीमता ।

यदुक्तं तत् स्मृतिं यातं त्वत्प्रश्नाखिलं मम ॥ ३३ ॥

हे मैत्रेय ! इस प्रकार पूर्वकाल में बुद्धिमान् वशिष्ठजी और पुलस्त्यजी द्वारा जो कुछ भी कहा गयाथा, वह सब तुम्हारे इस प्रश्न से स्मरण हो आया है ॥ ३३ ॥

सोऽहं वदाम्यशेषं ते मैत्रेय परिपृच्छते ।

पुराणसंहितां सम्यक् तां निबोध यथायथम् ॥ ३४ ॥

विष्णोः सकाशात् सम्भूतं जगत् तत्रैव संस्थितम् ।

स्थिति-संयमकर्त्ताऽसौ जगतोऽस्य जगच्च सः ॥ ३५ ॥

अत एव हे मैत्रेय ! तुम्हारेपूछने से मैं समस्त पुराण संहिताओं को कहता हूँ, और तुम भी अच्छी तरह सुनो ।यह जगत् श्रीविष्णुभगवान् से उत्पन्न हुआ है, और उन्हीं में स्थित है, तथा विष्णुभगवान् ही इसकी स्थिति एवं लय के कर्ता हैं, एवं यह जगत् विष्णुस्वरूप ही हैं ॥३४-३५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में प्रथम अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - दूसरा अध्याय

(विष्णुस्तुति तथा सृष्टिप्रक्रिया)

पराशर उवाच ।



अविकाराय शुद्धाय नित्याय परमात्मने ।
सदैकरूपरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥ १ ॥

नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्गस्थित्यन्तकारिणे ॥ २ ॥

एकानेकस्वरूपाय स्थूलसूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तभूताय विष्णवे मुक्तिहेतवे ॥ ३ ॥

सर्गस्थितिविनाशानां जगतोऽस्य जगन्मयः ।
मूलभूतो नमस्तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ ४ ॥

श्री पराशर जी बोले—

जो ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप से जगत् की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं तथा जो संसार से तारने वाले हैं, उस विकाररहित शुद्धस्वरूप, नित्य, परमात्मा, सदा एक रूप सर्वविजेता वासुदेव भगवान् श्रीविष्णु को नमस्कार है । जो एक होने पर भी अनेक स्वरूप वाले हैं, एवं स्थूलसूक्ष्म हैं, अव्यक्त (कारण) व्यक्त (कार्य) रूप हैं तथा जो मुक्ति के कारण है, उन श्रीविष्णु भगवान् को नमस्कार है । जो विश्वस्वरूप भगवान् जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश के मूलकारण हैं, उन परमात्मा श्री विष्णु को नमस्कार हैं ॥१-४ ॥

आधारभूतं विश्वस्याप्यणीयांसमणीयसाम् ।
प्रणम्य सर्व्वभूतस्थमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥ ५ ॥

ज्ञानस्वरूपमत्यन्तनिर्म्मलं परमार्थतः।
तमेवार्थस्वरूपेण भ्रान्तिदर्शनतः स्थितम्॥ ६॥

विष्णुं ग्रसिष्णुं विश्वस्य स्थितौ सर्गे तथा प्रभुम्।
प्रणम्य जगतामीशमजमक्षरमव्ययम्॥ ७॥

कथयामि यथा पूर्व्वं दक्षाद्यैर्मुनिसत्तमैः।
पृष्टः प्रोवाच भगवानब्जयोनिः पितामहः॥ ८॥

तैश्चोक्तं पुरुकुत्साय भूभुजे नर्मदातटे।
सारस्वताय तेनापि मह्यं सारस्वतेन च॥ ९॥

जो विश्व के आधारभूत हैं, अतिसूक्ष्म से सूक्ष्म हैं, सभी प्राणियों में स्थित अविनाशी पुरुषोत्तम हैं, जो वास्तव मे अत्यन्त निर्मल ज्ञानस्वरूप हैं, किन्तु अज्ञानवश नानापदार्थ रूप से प्रतीत होते हैं, तथा जो जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार में समर्थ हैं, इस जगदीश्वर, अजन्मा, अक्षय, अविनाशी श्रीविष्णुभगवान को नमस्कार करके दक्ष आदि मुनिश्रेष्ठों के पूछने पर पितामह ब्रह्माजी ने जो उनसे कहा था वही सारा प्रसंग क्रमशः तुम्हे सुनाता हूँ।इसके बाद उन दक्ष आदि मुनियों ने नर्मदा तटपर राजा पुरुकुत्स को वह प्रसंग सुनाया, राजा पुरुकुत्स ने भी सारस्वतको और सारस्वतने मुझे कहा था॥५-९॥

परः पराणां परमः परमात्मात्मसंस्थितः।
रूपवर्णादिनिर्देशविशेषणविवर्जितः॥ १०॥

अपक्षयविनाशाभ्यां परिणामर्द्धिजन्मभिः।
वर्जितः शक्यते वक्तुं यः सदास्तीति केवलम्॥ ११॥

सर्वत्रासौ समस्तञ्च वसत्यत्रेति वै यतः।
ततः स वासुदेवेति विद्वद्भिः परिपठयते॥ १२॥

तद्ब्रह्म परमं नित्यमजमक्षयमव्ययम्।
एकस्वरूपं च सदा हेयाभावाच्च निर्म्मलम्॥ १३॥

जो प्रकृति से भी परे, परमश्रेष्ठ अन्तरात्मा में स्थित परमात्मास्वरूप रूप, वर्ण, नाम एवं विशेषण आदि से वर्जित है, तथा जिस परमात्मामें, जन्म, वृद्धि, परिणाम, विनाश क्षय आदि कुछ भी नहीं है, जिसको सदा केवल है इतना ही कह सकते हैं, तथा वह सभी स्थानों में है, और उसमें समस्तलोक बसे हुए है, अतएव विद्वान् लोग उसे वासुदेव कहते हैं, वही नित्य, अजन्मा, अक्षय, अव्यय, सदा एक स्वरूप होने से और त्याज्य गुणों के अभाव से निर्मल परमब्रह्म है ॥ १०-१३ ॥

तदेतत् सर्व्वमेवासीद् व्यक्ताव्यक्तस्वरूपवत् ।
तथा पुरुषरूपेण कालरूपेण च स्थितम् ॥ १४ ॥

परस्य ब्रह्मणो रूपं पुरुषः प्रथमं द्विज ।
व्यक्ताव्यक्ते तथैवान्ये रूपे कालस्तथा परम् ॥ १५ ॥

प्रधानपुरुषव्यक्तकालानां परमं हि यत् ।
पश्यन्ति सूरयः शुद्धं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १६ ॥

प्रधानपुरुषव्यक्तकालास्तु प्रविभागशः ।
रूपाणि स्थितिसर्गान्तव्यक्तिसद्भावहेतवः ॥ १७ ॥

व्यक्तं विष्णुस्तथाव्यक्तं पुरुषः काल एव च ।
क्रीड़तो बालकस्येव चेष्टां तस्य निशामय ॥ १८ ॥

वही इन सब व्यक्त (कार्य) और अव्यक्त (कारण) रूप से तथा पुरुष एवं काल के रूप से भी स्थित है ।हे ब्राह्मण ! परमब्रह्म का प्रथम स्वरूप पुरुष है, अव्यक्त (प्रकृति) और व्यक्त (महदादि) उसके दूसरे रूप है, तथा काल उसका परम (प्रधान) रूप है । इस प्रकार जो प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल इन चारों से परे हैं और जिसे विद्वान् लोग ही देख पाते हैं वही भगवान् श्रीविष्णुका परमपद है । भगवान् श्रीविष्णुके, प्रधान, पुरुष, व्यक्त और काल ये रूप पृथक् पृथक् भाव से संसार की उत्पत्ति, पालन एवं संहार के प्रकाश तथा उत्पादन में कारण हैं । श्रीविष्णु भगवान् व्यक्त, अव्यक्त, पुरुष तथा कालस्वरूप भी हैं । इस प्रकार बालक के समान क्रीड़ा करने वाले उन श्रीविष्णु भगवान् की लीला सुनो ॥ १४-१८ ॥

अव्यक्तं कारणं यत् तत् प्रधानमृषिसत्तमैः ।
प्रोच्यते प्रकृतिः सूक्ष्मा नित्यं सदसदात्मकम् ॥ १९ ॥

अव्यक्त कारण जो सत्, असत् और नित्य है, श्रेष्ठ मुनिजन उसे ही प्रधान एवं सूक्ष्म प्रकृति कहते हैं ॥ १९ ॥

अक्षय्यं नान्यदाधारममेयमजरं ध्रुवमं ।
शब्दस्पर्शविहीनं तद् रूपादिभिरसंहितम् ॥ २० ॥

त्रिगुणं तज्जगद्योनिरनादिप्रभवाप्ययम् ।
तेनाग्रे सर्व्वमेवासीद् व्याप्तं वै प्रलयादनु ॥ २१ ॥

वह अविनाशी आधाररहित अप्रमेय, अजर, निश्चल, शब्द, स्पर्श आदि से शून्य और रूप आदि से भी रहित है। वह त्रिगुणयुक्त (सत्व-रजतम से युक्त) एवं जगत् का कारण है और स्वयं अनादि होते हुए उत्पत्ति एवं विनाश से रहित है, प्रलय से लेकर सृष्टि के आरम्भ तक यह सारा विश्व प्रपञ्च उसी से व्याप्त था ॥२०-२१ ॥

वेदवादविदो विद्वन्नियता ब्रह्मवादिनः ।
पठन्ति वै तमेवार्थं प्रधानप्रतिपादकम् ॥ २२ ॥

वेद के मर्मज्ञ ब्रह्मवादी विद्वान् लोग इसी विषय को लक्ष्य कर प्रधान को कहने वाले नीचे लिखे श्लोक को कहते हैं ॥ २२ ॥

नाहो न रात्रिर्न नभो न भूमि-
र्नासीत्तमो ज्योतिरभून्न चान्यत् ।
श्रोत्रादिबुद्ध्यानुपलभ्यमेकं
प्राधानिकं ब्रह्म पुमांस्तदासीत् ॥ २३ ॥

उस समय (प्रलयकाल में) न दिन था, न रात, थी, न आकाश था, न पृथ्वी थी, न अन्धकार था, न प्रकाश था, और कुछ भी नहीं था, केवल श्रवण आदि इन्द्रियों से एवं बुद्धि आदि से भी अप्राप्य एक परम ब्रह्मस्वरूप पुरुष ही था ॥ २३ ॥

विष्णोः स्वरूपात् परतो हि तेऽन्ये
रूपे प्रधानं पुरुषश्च विप्र ।
तस्यैव तेऽन्येन धृते वियुक्ते
रूपान्तरं यत् तद् द्विज कालसंज्ञम् ॥ २४ ॥

प्रकृतौ संस्थितं व्यक्तमतीतप्रलये तु यत्।
तस्मात् प्राकृतसंज्ञोऽयमुच्यते प्रतिसंचरः ॥ २५ ॥

अनादिर्भगवान् कालो नान्तोऽस्य द्विज विद्यते।
अव्युच्छिन्नास्ततस्त्वेते सर्गस्थित्यन्तसंयमाः ॥ २६ ॥

गुणसाम्ये ततस्तस्मिन् पृथक् पुंसि व्यवस्थिते।
कालस्वरूपरूपं तद् विष्णोर्मैत्रेय वर्त्तते
कालस्वरूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय परिवर्त्तते ॥ २७ ॥

हे विप्र ! श्रीविष्णु के उपाधिरहित स्वरूप से प्रधान और पुरुष ये दो रूप हुए। उसी भगवान् श्रीविष्णु के अन्यरूप के द्वारा वे दोनों प्रधान और पुरुष सृष्टि एवं प्रलयकाल में संयुक्त और वियुक्त होते हैं, उसी रूपान्तर का नाम 'काल है। बीते हुए प्रलयकाल में यह व्यक्त प्रपञ्च प्रकृति में स्थित था, इसलिए प्रपञ्च के इस प्रलय को प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। हे विप्र ! कालस्वरूप भगवान् अनादि हैं, और इनका अन्त भी नहीं होता। अतएव संसार की उत्पत्ति, पालन और अन्त (प्रलय) ये भी नहीं रुकते, किन्तु प्रवाह रूप से सदा होते ही रहते हैं। हे मैत्रेय ! प्रलयकाल में प्रधान (प्रकृति) को गुण की साम्यावस्था में स्थित हो जाने पर तथा पुरुष के प्रकृति से अलग स्थित होने पर श्रीविष्णुभगवान का कालस्वरूप प्रवृत्त होता है ॥२४-७ ॥

ततस्तत् परमं ब्रह्म परमात्मा जगन्मयः।
सर्व्वगः सर्व्वभूतेशः सर्वात्मा परमेश्वरः ॥ २८ ॥

प्रधानं पुरुषञ्चापि प्रविश्यात्मेच्छया हरिः।
क्षोभयामास सम्प्राप्ते सर्गकाले व्ययाव्ययौ ॥ २९ ॥

उसके बाद सृष्टि के आरम्भकाल में उस परमब्रह्म परमात्मा विश्वरूप सर्वव्यापी सर्वजीवेश्वर सर्वात्मस्वरूप परमेश्वर हरि ने (श्रीविष्णु) अपनी इच्छा से विकारी प्रधान और अविकारी पुरुष इन दोनों में प्रवेश कर उनको संक्षोभित किया ॥२८-२९ ॥

यथा सन्निधिमात्रेण गन्धः क्षोभाय जायते।
मनसो नोपकर्तृत्वात् तथासौ परमेश्वरः ॥ ३० ॥

स एव क्षोभको ब्रह्मन् क्षोभश्च पुरुषोत्तमः ।

स संकोचविकाशाभ्यां प्रधानत्वेऽपि च स्थितः ॥ ३१ ॥

विकाराणुस्वरूपैश्च ब्रह्मरूपादिभिस्तथा ।

व्यक्तस्वरूपश्च तथा विष्णुः सर्व्वेश्वरेश्वरः ॥ ३२ ॥

जैसे गन्ध अपने सामीप्य मात्र से ही मनको क्षुभित करता है वैसे ही परमेश्वर भी अपने सामीप्यमात्र से ही प्रधान और पुरुष को प्रेरिंत करते हैं । हे ब्रह्मन् ! वही पुरुषोत्तम क्षोभित करने वाले हैं और वे ही क्षुब्ध भी होते हैं, अथ च संकोच (साम्य) एवं विकाश (क्षोभ) युक्त प्रधान रूप से भी वे स्थित हैं । समस्त ब्रह्मादि ईश्वरों के भी ईश्वर श्रीविष्णुभगवान् ही विकास (समष्टि) अणु (व्यष्टि) स्वरूप ब्रह्मा आदि जीवरूप और व्यक्त रूप महत्तत्वरूप से स्थित हैं ॥३०-३२ ॥

गुणसाम्यात् ततस्तस्मात् क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ।

गुणव्यञ्जनसम्भूतिः सर्गकाले द्विजोत्तम ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मणप्रवर ! सृष्टि के प्रारम्भकाल होने पर साम्यावस्थास्वरूप प्रधान जब श्रीविष्णु के क्षेत्रज्ञरूप से अधिष्ठित हुआ तब उससे महत्तत्व की उत्पत्ति हुई ॥३३ ॥

प्राधानतत्त्वमुद्भूतं महान्तं तत् समावृणोत् ।

सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च त्रिधा महान् ।

प्रधानतत्त्वेन समं त्वचा बीजमिवावृतम् ॥ ३४ ॥

वैकारिकस्तैसजश्च भूतादिश्चैव तामसः ।

त्रिविधोऽयमहंकारो महत्तत्त्वादजायत ॥ ३५ ॥

भूतेन्द्रियाणां हेतुः स त्रिगुणत्वान्महामुने ।

यथा प्रधानेन महान् महता स तथावृतः ॥ ३६ ॥

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दतन्मात्रिकं ततः ।

ससर्ज्ज शब्दतन्मात्रादाकाशं शब्दलक्षणम् ।

शब्दमात्रं तथाकाशं भूतादिः स समावृणोत् ॥ ३७ ॥

आकाशस्तु विकुर्व्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज्ज ह ।
बलवानभवद् वायुस्तस्य स्पर्शो गुणो मतः ॥ ३८ ॥

उत्पन्न हुए महान् को प्रधानतत्त्वने आवृत्त कर लिया । सात्विक, राजस और तामसभेद से महत्तत्व तीन प्रकार के हैं. जैसे त्वचा (छिलके) से समानभाव द्वारा बीज ढंका रहता है वैसे ही यह त्रिविध महत्तत्व भी प्रधान तत्व से ढका है । तथापि महत्तत्व से ही वैकारिक (सात्त्विक) तेजस (राजस) और भूतादिस्वरूप तामस ये तीन प्रकार के अहङ्कार उत्पन्न हुए । हे महामुने वह त्रिगुणात्मक होने के कारण भूत और इन्द्रिय आदि का कारण है । जिस प्रकार प्रधान से महत्तत्व ढका हुआ है ठीक उसी प्रकार महत्तत्व से वह (अहङ्कार) ढका है । भूतादि नामक तामस अहङ्कार ने विकृत होकर शब्द तन्मात्रा और उससे शब्द गुणवाले आकाश की रचना की । पुनः शब्दतन्मात्ररूप आकाश ने विकृत होकर स्पर्श-तन्मात्र की रचना की एवं उससे स्पर्शतन्मात्रसे बलवान् वायु उत्पन्न हुआ वायु का गुण स्पर्श है ॥३४-३८ ॥

आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ।
ततो वायुर्व्विकुर्व्वाणो रूपमात्रं ससर्ज्ज ह ॥ ३९ ॥

ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते (घ) ।
स्पर्शमात्रन्तु वै वायू रूपमात्रं समावृणोत् ॥ ४० ॥

ज्योतिश्चापि विकुर्व्वाणं रसमात्रं ससर्ज्ज ह ।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च ॥ ४१ ॥

पुनः शब्दतन्मात्ररूप आकाश ने स्पर्शतन्मात्रवाले वायु को आवृत किया अथ च वायु ने विकृत होकर रूपतन्मात्र की रचना की । वायु से तेज उत्पन्न हुआ उसका गुण रूप है । पुनः स्पर्शतन्मात्रारूप वायु ने रूपतन्मात्र वाले तेज को आवृत्त किया । पुनः तेजने भी विकृत होकर रसमात्र की रचना की । उससे (रसतन्मात्रसे) रसगुणवाला जल उत्पन्न हुआ ॥३९-४१ ॥

रसमात्राणि चाम्भांसि रूपमात्रं समावृणोत् ।
विकुर्व्वाणानि चाम्भांसि गन्धमात्रं ससर्ज्जिरे ॥ ४२ ॥

संघातो जायते तस्मात् तस्य गन्धो गुणो मतः ।
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ॥ ४३ ॥

तन्मात्राण्यविशेषाणि अविशेषास्ततो हि ते ।
न शान्ता नापि घोरास्ते न मूढाश्चाविशेषणाः ॥ ४४ ॥

भूततन्मात्रसर्गोऽयमहकारात् तु तामसात् ।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवा वैकारिका दश ॥ ४५ ॥

एकादशं मनश्चात्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ।
त्वक् चक्षुर्नासिका जिह्वा श्रोत्रमत्र च पञ्चमम् ॥ ४६ ॥

शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वै द्विज ।
पायूपस्थौ करौ पादौ वाक् च मैत्रेय पञ्चमी । ४७ ॥

विसर्गशिल्पगत्युक्तिः कर्म्म तेषाञ्च कथ्यते ।
आकाशवायुतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा ॥ ४८ ॥

रसतन्मात्रावाले जल को रूपतन्मात्रामय तेज ने आवृत किया । रसतन्मात्रारूप जल ने विकारको प्राप्त होकर गन्धतन्मात्र की सृष्टि की । गन्ध से पृथ्वी उत्पन्न हुई जिसका गुण गन्ध माना जाता है । उन आकाशादि भूतों में तन्मात्रा है अर्थात् उनके गुण शब्दादि ही हैं । अतएव वे तन्मात्रा ही गुणरूप कहे गये हैं । तन्मात्राओं में विशेष भाव नही है इसलिए वे अविशेष कहे गये हैं, अथ च वे अविशेष तन्मात्राओंमें शान्त घोर या मूढ भी नहीं है । इस प्रकार तामस अहङ्कार से यह भूततन्मात्ररूप सृष्टि हुई । इन्द्रियां तैजस (राजस अहङ्कार) से और उनके अधिष्ठाता दश देवता वैकारिक (सात्त्विक) अहङ्कारसे उत्पन्न हुए । हे विप्र ! त्वक् (त्वचा) नेत्र, नासिका, जिह्वा और कर्ण में पांचों बुद्धि की सहायता से शब्दादि विषयों को प्राप्त करने के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियां होती हैं ।इस प्रकार इन्द्रियों के अधिष्ठाता दश देवता और ग्यारहवां मन ये वैकारिक (सात्त्विक) है । हे विप्र ! त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा, कर्ण ये पांचों बुद्धि युक्त होकर शब्दादि विषयों को ग्रहण करने वाली पाँच ज्ञानेन्द्रियां हैं । हे मैत्रेय गुदा, उपस्थ (लिङ्ग), हाथ, पांव और वाक् (वचन) ये पांच कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं ॥ ४२-४८ ॥

शब्दादिभिर्गुणैर्ब्रह्मन् ! संयुक्तान्युत्तरोत्तरैः ।
शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः ॥ ४९ ॥

नानावीर्य्याः पृथग्भूतास्ततस्ते संहतिं विना ।

नाशक्नुवन् प्रजाः स्त्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ ५० ॥

इन पांच कर्मेन्द्रियोंके कर्म मलमूत्र का त्याग, शिल्प, गति और वचन कहे गये हैं । आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी ये पांचों महाभूत उत्तरोत्तर शब्द स्पर्श आदि गुणों से युक्त हैं तथा ये शान्त घोर और विमूढ भी हैं । अतएव विशेष कहे गये हैं (अर्थात् सुख दु:ख एवं मोहयुक्त हैं ॥ ४९-५० ॥

समेत्यान्योऽन्यसंयोगं परस्परसमाश्रयाः ।

एकसंघातलक्ष्याश्च सम्प्राप्यैक्यमशेषतः ॥ ५१ ॥

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च प्रधानानुग्रहेण च ।

महदाद्या विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ ५२ ॥

तत्क्रमेण विवृद्धन्तु जलवुद्वदवत्समम् ।

भूतेभ्योऽण्डं महाबुद्धे ! बृहत् तदुदकेशयम्

प्राकृतं ब्रह्मरूपस्य विष्णोः संस्थानमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

उपरोक्त भूतों में पृथक् पृथक् अनेक शक्तियां हैं किन्तु परस्पर में मिले बिना संसार की रचना नहीं कर सके ।अतएव एक दूसरे के आश्रय में रहने वाले एक ही संघात (समूह) के उत्पादन के लक्ष्यवाले एक दूसरे के संयोग को प्राप्त कर महत्तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त सभी प्रकृति के विकारों ने पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण और प्रधानतत्त्व के अनुग्रहसे अण्डा उत्पादन किया । हे महाबुद्धे ! जल के बुलबुले के समान क्रम से भूतों द्वारा बढ़ा हुआ वह गोलाकार और जल पर स्थित अण्ड ब्रह्म (हिरण्यगर्भ) श्रीविष्णुभगवान् का उत्तम स्थान हुआ ॥५१-५३ ॥

तत्राव्यक्तस्वरूपोऽसौ व्यक्तरूपी जगत्पतिः ।

विष्णुर्ब्रह्मस्वरूपेण स्वयमेव व्यवस्थितः ॥ ५४ ॥

मेरुरुन्नमभूत् तस्य जरायुश्च महीधराः ।

गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन् सुमहात्मनः ॥ ५५ ॥

साद्रिद्वीपसमुद्रास्तु सज्योतिर्लोकसंग्रहः ।

तस्मिन्नण्डेऽभवद् विप्र ! सदेवासुरमानुषः ॥ ५६ ॥

वारिवह्न्यनिलाकाशैस्ततो भूतादिना बहिः ।
वृतं दशगुणैरण्डँ भूतादिर्महता तथा (ठ) ॥ ५७ ॥

अव्यक्तेनावृतो ब्रह्मंस्तैः सर्व्वैः सहितो महान् ।
एभिरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ।
नारिकेलफलस्यान्तर्बीजं बाह्यदलैरिव ॥ ५८ ॥

वहां पर अव्यक्तस्वरूप वे जगत्पति महाविष्णु व्यक्त हिरण्यगर्भरूप से स्वयं विराजित हुए । उन हिरण्यगर्भ भगवान् के सुमेरुपर्वत उल्व (गर्भ को ढँकने वाली झिल्ली) दूसरे पर्वत गर्भाशय और समुद्र गर्भाशय में स्थित जल था । हे विप्र ! उस अण्ड में पर्वत, द्वीप, समुद्र, ग्रहों के साथ सम्पूर्ण लोक और देव, असुर, मानव आदि अनेक प्राणी प्रगट हुए । वह अण्ड पूर्व पूर्वकी अपेक्षा दश-दश गुणें अधिक जल, अग्नि, वायु , आकाश भूतादि से (तामस अहङ्कार से) बाहर से घिरा था और भूतादि महत्तत्व से घिरा था । और इन सबके सहित वह महत्तत्व भी अव्यक्त प्रधान से घिरा था । इस प्रकार जैसे नारियल फल का भीतरी बीज बाहर के छिलकों से ढका रहता है ठीक उसी प्रकार अण्ड भी बाहर के सात आवरणों से घिरा था ॥५४-५८ ॥

जुषन् रजोगुणं तत्र स्वयं विश्वेश्वरो हरिः ।
ब्रह्मा भूत्वास्य जगतो विसृष्टौ सम्प्रवर्त्तते ॥ ५९ ॥

उस अण्ड में स्थित स्वयं विश्वेश्वर भगवान् श्रीविष्णु नेजोगुणयुक्त ब्रह्मा होकर इस जगत् की रचना की ॥ ५९ ॥

सृष्टञ्च पात्यनुयुगं यावत् कल्पविकल्पना ।
सत्त्वभुग् भगवान् विष्णुरप्रमेयपराक्रमः ॥ ६० ॥

तमोद्रेकी च कल्पान्ते रुद्ररूपी जनार्दनः ।
मैत्रेयाखिलभूतानि भक्षयत्यतिभीषणः (ड) ॥ ६१ ॥

स भक्षयित्वा भूतानि जगत्येकार्णवीकृते ।
नागपर्य्यङ्कशयने शेते च परमेश्वरः ॥ ६२ ॥

प्रबुद्धश्च पुनः सृष्टिं करोति ब्रह्मरूपधृक् ॥ ६३ ॥

सृष्टि की रचना हो जाने पर सत्वगुण युक्त अतुल पराक्रमी भगवान् श्रीविष्णु कल्पके अन्त तक प्रत्येक युग में सृष्टि का पालन करते हैं। हे मैत्रेय ! पुनः कल्पान्त में अत्यन्त दारुण तमोगुण युक्त रुद्ररूप होकर भगवान् जनार्दन श्रीविष्णु ही समस्त भूतों का भक्षण अर्थात् संहार करते हैं। समस्त भूतों को भक्षण करके संसार को जलमयकर परमेश्वर श्रीविष्णु शेषशय्या पर शयन करते हैं। वही भगवान् श्री विष्णु जागने पर पुनः ब्रह्मारूप धारण कर संसार की रचना करते हैं। वही एक जनार्दन भगवान् श्रीविष्णु ब्रह्मा, विष्णु और शिव (रुद्र) रूप धारण कर संसार को उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं ॥ ६०-६३ ॥

सृष्टिस्थित्यन्तकरणाद् ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः ॥ ६४ ॥

स्रष्टा सृजति चात्मानं विष्णुः पाल्यञ्च पाति च।
उपसंह्रियते चान्ते संहर्त्ता च स्वयं प्रभुः ॥ ६५ ॥

वही प्रभु श्रीविष्णुभगवान् स्रष्टा (ब्रह्मा) रूप से अपनी ही सृष्टि करते हैं। विष्णु रूप से संसार का पालन करते हैं और अन्त में संहारक (रुद्र) रूप होकर संसार को समाप्त करते हैं ॥ ६५ ॥

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
सर्व्वेन्द्रियान्तःकरणं पुरुषाख्यं हि यज्जगत् ॥ ६६ ॥

स एव सर्व्वभूतेशो विश्वरूपो यतोऽव्ययः।
सर्गादिकं ततोऽस्यैव भूतस्थमुपकारकम् ॥ ६७ ॥

स एव सृज्यः स च सर्गकर्त्ता
स एव पात्यत्ति च पाल्यते च।
ब्रह्माद्यवस्थाभिरशेषमूर्त्ति-
र्विष्णुर्वरिष्ठो वरदो वरेण्यः ॥ ६८ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश समस्त इन्द्रियाँ और अन्तःकरण आदि यावन्मात्र जगत् हैं वे सब पुरुष (श्रीविष्णु) स्वरूप ही हैं। क्योंकि अविनाशी एवं विश्वरूप श्रीविष्णु भगवान् ही अन्तरात्मा हैं। अतएव भूतों में (ब्रह्मादिप्राणियों में)

स्थित सर्गादि भी उन्हीं के उपकारक हैं। सर्वस्वरूप श्रेष्ठ वर देने वाले प्रार्थना के योग्य वही भगवान् श्रीविष्णु ब्रह्मा आदि अवस्थाओं से रचने वाले हैं, वे ही रचे जाते हैं, वही पालते हैं, वही पालित होते हैं, और संसार को संहार करते हैं। एवं स्वयं ही संहृत होते हैं ॥६६-६८॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में दूसरा अध्याय समाप्त।

प्रथम अंश - तीसरा अध्याय

(ब्रह्मा की सृष्टि उत्पन्न करने वाली शक्ति का वर्णन और उनकी आयु का निरूपण)

मैत्रेय उवाच।

निर्गुणस्याप्रमेयस्य शुद्धस्याप्यमलात्मनः।
कथं सर्गादिकर्त्तृत्वं ब्रह्मणोऽभ्युपगम्यते ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले—जो ब्रह्म गुणरहित, अप्रमेय, (अज्ञेय) शुद्ध और निर्मल आत्मावाला है उसका सृष्टि आदि का निर्माता होना कैसे माना जाय ॥ १ ॥

पराशर उवाच।

शक्तयः सर्व्वभावानामचिन्त्यज्ञानगोचराः।
यतोऽतो ब्रह्मणस्तास्तु सर्गाद्या भावशक्तयः ॥ २ ॥

भवन्ति तपतां श्रेष्ठ ! पावकस्य यथोष्णता।
तन्निबोध यथा सर्गे भगवान् सम्प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥

नारायणाख्यो भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
उत्पन्नः प्रोच्यते विद्वन् नित्य एवोपचारतः ॥ ४ ॥

पराशरजी बोले—हे तपस्विश्रेष्ठ मैत्रेयजी ! सभी भावों (पदार्थों) की शक्तियाँ अचिन्त्यज्ञान के विषय हैं, अतएव अग्नि की उष्णता के समान ही ब्रह्म की सृष्टि रचना की शक्ति भी अचिन्त्य है। जैसे भगवान् सृष्टि की रचना में प्रवृत्त होते हैं वह सुनो। हे विद्वन् ! नारायण नामक संसार के पितामह ब्रह्मा जी हमेशा उपचार से ही उत्पन्न कहलाते हैं ॥२-४ ॥

निजेन तस्य मानेन ह्यायुर्व्वर्षशतं स्मृतम्।
तत्पराख्यं तदर्द्धञ्च परार्द्धमभिधीयते ॥ ५ ॥

कालस्वरूपं विष्णोश्च यन्मयोक्तं तवानघ।
तेन तस्य निबोध त्वं परिमाणोपपादनम्॥ ६ ॥

अन्येषाञ्चैव जन्तूनां चराणामचराश्च ये।
भू-भूभृत्सागरादीनामशेषाणाञ्च सत्तम॥ ७ ॥

ब्रह्माजी के अपने परिमाण से सौ वर्ष की आयु कही गई है। उस सौ वर्ष की आयु का नाम पर है, और उसका आधा परार्ध कहा जाता है। हे निष्पाप! मैंने तुमसे जो श्रीविष्णु भगवान् का कालस्वरूप कहा था उसी से ब्रह्मा की तथा और भी पृथ्वी, पर्वत, समुद्र आदि चर एवं अचर सभी जन्तुओं की आयु का मान समझो ॥५-७॥

काष्ठा पंचदशख्याता निमेषा मुनिसत्तम।
काष्ठास्त्रिंशत्कला तास्तु त्रिंशन्मौहूर्त्तिको विधिः॥ ८ ॥

तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम्।
अहोरात्राणि तावन्ति मांसः पक्षद्वयात्मकः॥ ९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है, और तीस काष्ठा की एक कला होती है, तथा तीस कला का एक मुहूर्त्त होता है। तीस मुहूर्त्त मनुष्य का एक दिन-रात कहा जाता है और तीस दिनका दो पक्ष एवं दो पक्ष का एक मास होता है ॥८-९॥

तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे।
अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्॥ १० ॥

दिव्यैर्व्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्।
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोध मे॥ ११ ॥

चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।
दिव्याब्दानां सहस्राणि युगेष्वाहुः पुराविदः॥ १२ ॥

तत्प्रमाणैः शतैः सन्ध्या पूर्व्वा तत्राभिधीयते।
सन्ध्यांशकश्च तत्तुल्यो युगस्यानन्तरो हि सः॥ १३ ॥

सन्ध्यासन्ध्यांशयोरन्तर्यः कालो मुनिसत्तम ।
युगाख्यः स तु विज्ञेयः कृतत्रेतादिसंज्ञितः ॥ १४ ॥

कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुर्युगम् ।
प्रोच्यते तत्सहस्रञ्च ब्रह्मणो दिवसं मुने ॥ १५ ॥

छः मासों का एक अयन और दक्षिणायन और उत्तरायण दोनों मिलाकर एक वर्ष होता है । देवताओं के लिए दक्षिणायन रात्री और उत्तरायण दिन कहे जाते हैं । देवताओं के बारह हजार वर्षों के सत्ययुगं, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चारयुग होते हैं । इस चतुर्युगी का अलग अलग विभाग सुनो । पुरातत्ववेत्तालोग सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग का परिमाण क्रमशः चार तीन दो और एक हजार दिव्य वर्ष कहे हैं । और प्रत्येक युगों के पहले उतने ही सौ वर्षों की सन्ध्या और प्रत्येक युगों के पीछे उतने ही सौ वर्षों के सन्ध्यांश होते हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! इन सन्ध्या और सन्ध्यांश के मध्य का जितना काल होता है, उसे ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग नाम के युग समझना चाहिये । सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलि ये चतुर्युग है, इस प्रकार एक हजार चतुर्युग का ब्रह्मा जी का एक दिन होता है ॥११-१५ ॥

ब्रह्मणो दिवसे ब्रह्मन् ! मनवश्च चतुर्द्दश ।
भवन्ति परिमाणञ्च तेषां कालकृतं शृणु ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा जी के एक दिन में चौदह मनु होते हैं । उनके समय का परिमाण सुनो ॥ १६ ॥

सप्तर्षयः सुराः शक्रो मनुस्तत्सूनवो नृपाः ।
एककाले हि सृज्यन्ते संह्रियन्ते च पूर्व्ववत् ॥ १७ ॥

चतुर्युगानां संख्याता साधिका ह्येकसप्ततिः ।
मन्वन्तरं मनोः कालः सुरादीनाञ्च सत्तम ॥ १८ ॥

अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया संख्यया गतिः ।
द्वापञ्चाशत् तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि च ॥ १९ ॥

त्रिंशत्कोट्यस्तु सम्पूर्णाः संख्याताः संख्यया द्विज ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतानि महामुने ॥ २० ॥

विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयमधिकं विना ।
मन्वन्तरस्य संख्येयं मानुषैर्व्वत्सरैर्द्विज ॥ २१ ॥

सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, मनु और मनुके पुत्र राजालोग एक काल में ही उत्पन्न होते हैं और उनका संहार भी एक काल में ही होता है । हे सत्तम ! इकहत्तर चतुर्युग से कुछ अधिक काल का एक मन्वन्तर होता है । यही मनु और देवता आदि का काल है । एक मन्वन्तर में दिव्यवर्ष की संख्या से आठ लाख बावन हजार वर्ष होते हैं । हे महामुने ! मानव वर्ष की गणना के हिसाब से मन्वन्तर की यह संख्या तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्ष होते हैं इससे ज्यादा नहीं ॥ १७-२१ ॥

चतुर्दशगुणो ह्येष कालो ब्राह्ममहः स्मृतम् ।
ब्राह्मो नैमित्तिको नाम तस्यान्ते प्रतिसञ्चरः ॥ २२ ॥

तदा हि दह्यते सर्व्वं त्रैलोक्यं भूर्भुवादिकम् ।
जनं प्रयान्ति तापार्त्ता महर्लोकनिवासिनः ॥ २३ ॥

एकार्णवे तु त्रैलोक्ये ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
भोगिशय्यागतः शेते त्रैलोक्यग्रासबृंहितः ॥ २४ ॥

जनस्थैर्योगिभिर्देवश्चिन्त्यमानोऽब्जसम्भवः ।
तत्प्रमाणां हि तां रात्रिं तदन्ते सृज्यते पुनः ॥ २५ ॥

एवन्तु ब्रह्मणो वर्षमेवं वर्षशतं च यत् ।
शतं हि तस्य वर्षाणां परमायुर्महात्मनः ॥ २६ ॥

इस काल का चौदह गुना ब्रह्मा का दिन कहा गया है, इसके बाद नैमित्तिक नाम का ब्रह्मा प्रलय होता है । उस समय भूर्लोक, भुवर्लोक स्वर्लोक ये तीनों जलने लगते हैं, और उस समय महर्लोक के निवासी सन्तप्त होकर जनलोक में चले जाते हैं । एवं इस प्रकार से तीनों लोकों के जलमय हो जाने पर नारायणस्वरूप ब्रह्माजी तीनों लोक के ग्रास से तृप्त होकर शेषशय्या पर शयन करते हैं । दिन के बराबर ही परिमाणवाली रात्री को व्यतीत करने के बाद जनलोक निवासी योगीयों द्वारा

ध्यान किये जाते हुए कमलयोनी ब्रह्मा जी पुन: संसार की रचना करते हैं । इस प्रकार वर्ष और पुन: सौ वर्ष होते हैं, तथा सौ वर्ष महात्मा ब्रह्माजी की आयु कही गई है ॥२२-२६ ॥

एकमस्य व्यतीतन्तु परार्द्धं ब्रह्मणोऽनघ ।
तस्यान्तेऽभून्महाकल्प: पाद्म इत्यभिधीयते ॥ २७ ॥

द्वितीयस्य परार्द्धस्य वर्त्तमानस्य वै द्विज ।
वाराह इति कल्पोऽयं प्रथम: परिकीर्त्तित: ॥ २८ ॥

हे निष्पाप ! ब्रह्माजी का एक परार्ध व्यतीत हो चुका है और उसके अन्त में पाद्मनामका प्रसिद्ध महाकल्प हुआ था । हे ब्राह्मण ! वर्त्तमान इस दूसरे परार्ध का यह वाराह नामका पहला कल्प कहा गया है ॥२७-२८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में तीसरा अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - चौथा अध्याय

(कल्पान्त में सृष्टि का वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ कल्पादौ भगवान् यथा ।
ससर्ज सर्व्वभूतानि तदाचक्ष्व महामुने ॥ १ ॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे महामुने ! कल्प के आरम्भ में नारायण नामक भगवान् ब्रह्मा जी ने जैसे समस्त भूतों की रचना की वह आप वह कहिये ॥ १ । ।

पराशर उवाच ।

प्रजाः ससर्ज्ज भगवान् ब्रह्मा नारायणात्मकः ।
प्रजापतिपतिर्देवो यथा तन्मे निशामय ॥ २ ॥

श्री पराशरजी बोले—प्रजापतियों के स्वामी नारायण नामक भगवान् श्री ब्रह्माजीने जिस प्रकार प्रजाओं की रचना की वह मुझसे सुनो । २ ॥

अतीतकल्पावसाने निशासुप्तोत्थितः प्रभुः ।
सत्त्वोद्रिक्तस्तथा ब्रह्मा शून्यं लोकमवैक्षत ॥ ३ ॥

नारायणः परोऽचिन्त्यः परेषामपि स प्रभुः ।
ब्रह्मस्वरूपी भगवाननादिः सर्व्वसम्भवः ॥ ४ ॥

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥ ५ ॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
अयनं तस्य ताः पूर्व्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ६ ॥

पहले कल्प की समाप्ति होने पर रात्रि में शयन कर जागने के बाद सत्वगुण की वृद्धि से युक्त प्रभु श्रीब्रह्माजी ने समस्त लोकों को शून्य ही देखा । वह भगवान् नारायण पर हैं, अचिन्त्य हैं, ब्रह्मा शिव आदि ईश्वरों के भी ईश्वर ब्रह्मस्वरूप हैं, और अनादि हैं तथा सभी के उत्पत्ति स्थान हैं । जो इस जगत् की उत्पत्ति और संहार के स्थान हैं उन ब्रह्मस्वरूपी भगवान् नारायण के प्रति यह श्लोक कहते हैं ।नर (पुरुष-भगवान् पुरुषोत्तम) से उत्पन्न होने के कारण जल को 'नार' कहते हैं । वह नार (जल) ही उनका प्रथम स्थान है इसलिये भगवान् को 'नारायण' कहते हैं ॥३-६ ॥

तोयान्तः स महीं ज्ञात्वा जगत्येकार्णवे प्रभुः ।
अनुमानात् तदुद्धारं कर्त्तुकामः प्रजापतिः ॥ ७ ॥

अकरोत् स तनूमन्यां कल्पादिषु यथा पुरा ।
मत्स्यकूर्म्मादिकां तद्वद् वाराहं वपुरास्थितः ॥ ८ ॥

वेदयज्ञमयं रूपमशेषजगतः स्थितौ
स्थितः स्थिरात्मा सर्व्वात्मा परमात्मा प्रजापतिः ॥ ९ ॥

जनलोकगतैः सिद्धैः सनकाद्यैरभिष्टुतः ।
प्रविवेश तदा तोयमात्माधारो धराधरः ॥ १० ॥

निरीक्ष्य तं तदा देवी पातालतलमागतम् ।
तुष्टाव प्रणता भूत्वा भक्तिनम्रा वसुन्धरा ॥ ११ ॥

समस्त जगत् के जलमय हो जाने पर प्रजापति ब्रह्मा जी ने अनुमान से जल के भीतर स्थित पृथ्वी को जानकर उसे जल के भीतर से निकालने की इच्छा से एक दूसरा शरीर धारण किया । जैसे पहले के कल्पों के आदि में मत्स्य कूर्म आदि के शरीर धारण किये थे वैसे ही वाराह शरीर इस वाराह कल्प में धारण किया, समस्त जगत् की स्थिति में तत्पर प्रजापति ब्रह्मा जी ने जनलोक में गये हुए सनकादि सिद्धों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर जल में प्रवेश किये ।पृथ्वी को धारण करने वाले एवं अपने आश्रय से स्थित भगवती वसुन्धरा वाराह भगवान् को पाताल में आये देख भक्ति से नम्र होकर प्रार्थना करने लगी ॥७-११ ॥

पृथिव्युवाच ।

नमस्ते सर्व्वभूताय तुभ्यं शङ्खगदाधर ।
मामुद्धरास्मादद्य त्वं त्वत्तोऽहं पूर्व्वमुत्थिता ॥ १२ ॥

पृथ्वी बोली—हे शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाले कमलनेत्र भगवान् आपको नमस्कार है । आज आप मेरा इससे उद्धार कीजिये । पूर्वकाल में आप ही से मैं उत्पन्न हुई थी ॥ १२ ॥

त्वत्तोऽहमुद्धृता पूर्व्वं त्वन्मायाहं जनार्दन ।
तथान्यानि च भूतानि गगनादीन्यशेषतः ॥ १३ ॥



नमस्ते परमात्मात्मन् पुरुषात्मन् नमोऽस्तु ते ।
प्रधानव्यक्तभूताय कालभूताय ते नमः ॥ १४ ॥

त्व कर्त्ता सर्व्वभूतानां त्वं पाता त्वं विनाशकृत् ।
सर्गादिषु प्रभो ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मरूपधृक् ॥ १५ ॥

सम्भक्षयित्वा सकलं जगत्येकार्णवीकृते ।
शेषे त्वमेव गोविन्द चिन्त्यमानो मनीषिभिः ॥ १६ ॥

भवतो यत् परं तत्त्वं तन्न जानाति कश्चन ।
अवतारेषु यद्रूपं तदर्च्चन्ति दिवौकसः ॥ १७ ॥

त्वामाराध्य परं ब्रह्म याता मुक्ति मुमुक्षवः ।
वासुदेवमनाराध्य को मोक्षं समवाप्स्यति ॥ १८ ॥

यत् किंचिन्मनसा ग्राह्यं यदग्राहं चक्षुरादिभिः ।
बुद्ध्या च यत् परिच्छेद्यं तद्रूपमखिलं तव ॥ १९ ॥

हे जनार्दन ! पूर्वकाल में भी आपने ही मेरा उद्धार किया था । तथा आपही मेरे तथा आकाशादि अन्य भूतों के भी कारण हैं । हे पुरुषात्मन् ! परमात्मात्मस्वरूप ! आपको नमस्कार है । प्रधान (कारण) व्यक्त (कार्य) स्वरूप को नमस्कार है एवं कालस्वरूप को नमस्कार है । सृष्टि के आदि में हे प्रभो ! आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रस्वरूप धारण कर सभी भूतों की उत्पत्ति, पालन और संहार करते हैं । हे

गोविन्द ! जगत् के जलमग्न हो जाने पर सबका भक्षण करके विद्वज्जनों द्वारा चिन्तित होते हुए आप ही जल में शयन करते हैं । आपका जो परमतत्व है उसे कोई नहीं जानता, किन्तु आपका जो रूप अवतारों में प्रगट होता है उसे ही देवता गण पूजा करते हैं । मुक्ति की इच्छावाले लोग आप परमब्रह्म की ही आराधना करके मुक्ति को प्राप्ति करते हैं, श्रीवासुदेवकी आराधना बिना कौन मोक्ष प्राप्त कर सकता है । मनसे जो कुछ ग्रहण किया जाता है, नेत्र आदि इन्द्रियों द्वारा जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है और बुद्धि द्वारा जो कुछ भी विचारणीय है वह सभी विषय आप ही का है ॥१३-१९ ॥

त्वन्मयाऽहं त्वदाधारा त्वत्सृष्टा त्वामुपाश्रिता ।
माधवीमिति लोकोऽयमभिधत्ते ततो हि माम् ॥ २० ॥

जयाखिलज्ञानमय जय स्थूलमयाव्यय ।
जयानन्त जयाव्यक्त जय व्यक्तमय प्रभो ॥ २१ ॥

परापरात्मन् विश्वात्मन् जय यज्ञपतेऽनघ ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारस्त्वमग्नयः ॥ २२ ॥



त्वं वेदास्त्वं तदङ्गानि त्वं यज्ञपुरुषो हरे ।
सूर्य्यादयो ग्रहास्तारा नक्षत्राण्यखिलं जगत् ॥ २३ ॥

मूर्त्रामूर्त्तमदृश्यञ्च कठिनं पुरुषोत्तम ।
यच्चोक्तं यच्च नैवोक्तं मयात्रं परमेश्वर ।
तत्सर्व्वं त्वं नमस्तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥ २४ ॥



हे नाथ ! मैं आप ही का रूप हूँ, आप ही के आधारवाली हूँ, आप ही के द्वारा उत्पन्न की गई हूँ, और आप ही के शरण में हूँ, अतएव यह लोग मुझे 'माधवी' कहते हैं । हे प्रभो ! हे समस्तज्ञानमय ! हे स्थूलमय ! हे अनन्त ! हे अव्यक्त ! हे व्यक्तमय ! आपकी जय हो । हे परापर-स्वरूप ! हे विश्वात्मन् ! हे यज्ञपते ! हे निष्पाप ! आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषटकार हैं, आप ही ओंकार एवं अग्नियां हैं । हे भगवन् ! आप ही वेद, वेदाङ्ग और यज्ञपुरुष हैं, तथा सूर्यादि ग्रह, तारे, नक्षत्र और समस्त जगत् भी आप ही हैं । हे परमेश्वर ! इस प्रार्थना में मैंने जो कुछ कहा है

अथवा जो कुछ नहीं कहा है, वह सब आप ही हैं । अतएव आपको बारंबार नमस्कार है ॥२०-२४ ॥

पराशर उवाच ।

एवं संस्तूयमानस्तु पृथिव्या पृथिवीधरः ।
सामस्वरध्वनिः श्रीमान् जगर्ज्ज परिघर्घरम् ॥ २५ ॥

पराशर जी बोले—पृथ्वी द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर सामस्वर ही जिनकी ध्वनि है उन वाराह भगवान् ने घर्घर स्वर से गर्जना की ॥ २५ ॥

ततः समुत्क्षिप्य धरां स्वदंष्ट्रया महावराहः स्फुटपद्मलोचनः ।
रसातलादुत्पलपत्रसन्निभः समुत्थितो नील इवाचलो महान् ॥ २६ ॥
उत्तिष्ठता तेन मुखानिलाहतं तत्सम्भवाम्भो जनलोकसंश्रयान ।
प्रक्षालयामास हि तान् महाद्यु तीन् सनन्दनादीनपकल्मषान् मुनीन् ॥२७ ॥
प्रयान्ति तोयानि क्षुराग्रविक्षते रसातलेऽधः कृतशब्दसन्तति ।
श्वासानिलास्ताः परतः प्रयान्ति सिद्धा जने ये नियतं वसन्ति ॥ २८ ॥
उतिष्ठतस्तस्य जलार्द्रकुक्षे महावराहस्य महीं विधार्य्य ।
विधुन्वतो वेदमय शरीरं रोमान्तरस्था मुनयो जुषन्ति ॥ २९ ॥
तं तुष्टुवुस्तापपरीतचेतसो लोके जने ये निवसन्ति योगिनः ।
सनन्दनाद्या नतिनम्रकन्धरा धराधरं धीरतरोद्धतेक्षणम् ॥ ३० ॥

विकसित कमल के समान नेत्रों वाले महावाराह भगवान् ने अपने दांतों से पृथ्वीको उठा लिया । कमलपत्र के समान स्यामवर्ण और नीलपर्वत के सदृश विशाल शरीरवाले भगवान् वराह पाताल से बाहर आ गये । रसातल से निकलते हुए उस महावाराह भगवान् के मुख के श्वास से आहत हुए जलने जनलोक में रहने वाले महातेजस्वी एवं निष्पाप सनन्दन आदि मुनीश्वरों को प्रक्षालित कर दिया । बहुत बड़ा शब्द करता हुआ जल उनके खुरों के अग्रभागों से विदीर्ण हुए पाताल में नीचे की ओर जाने लगा और जनलोक में रहने वाले सिद्धलोग उनके श्वासवायु से आहत होकर इधर उधर भागने लगे । जल से भीगी हुई कुक्षि वाले तथा अपने वेदमय शरीर को कम्पन करते हुए पृथ्वी को लेकर बाहर निकलने वाले उस महावाराह के रोम में स्थित मुनिजन उनकी स्तुति करने लगे । सन्तुष्ट चित्तवाले

जनलोक में निवास करने वाले सनन्दन आदि योगियों ने अत्यन्त नम्र शिर होकर, नि:शंक और उन्नत नेत्रवाले एवं पृथ्वी को धारण करने वाले उन वाराह भगवान् की निम्नलिखित प्रार्थना की ॥ २६-३० ॥

जयेश्वराणां परमेश केशव प्रभो गदाशंखधरासि चक्रधृक् ।
प्रसूति नाशस्थिहेतुरीश्वर स्त्वमेव नान्यत् परमञ्च यत् परम् ॥ ३१ ॥
पादेषु वेदास्तव यूपदंष्ट्र दन्तेषु यज्ञाश्चितयश्च वक्त्रे
हुताशज़िह्वोऽसि तनूरुहाणि दर्भाः प्रभो यज्ञपुमांस्त्वमेव ॥ ३२ ॥
विलोचने ऌत्र्यहनी महात्मन् सर्व्वाश्रयं ब्रह्मपदं शिरस्ते ।
सूक्तान्यशेषाणि सटाकलापो घ्राणं समस्तानि हवींषि देव ॥ ३३ ॥
स्रुक्तुण्ड सामस्वरधीरनाद प्राग्वंशकायाखिलसत्रसन्धे ।
पूर्तेष्टधर्म्मश्रवणोऽसि देव सनातनात्मन भगवन् प्रसीद ॥ ३४ ॥
पदक्रमक्रान्तभुवं भवन्त-मादिस्थितिञ्चाक्षर विश्वमूर्त्ते ।
विश्वस्य विद्मः परमेश्वरोऽसि प्रसीद नाथोऽसि चराचरस्य ॥ ३५ ॥

हे ईश्वरों के परम ईश्वर ! हे केशव ! हे शंखगदाधारी हे प्रभो खड्ग-चक्रधारी ! आपकी जय हो । आप ही संसार की उत्पत्ति, नाश और पालन के कारण हैं, आप ही ईश्वर हैं और जिसे परमपद कहते हैं वह आपसे अतिरिक्त और कुछ नहीं है । हे यूपरूपी दन्तवाले प्रभो ! आपके चरणों में चारों वेद हैं, दांतों में यज्ञ हैं, मुख में चित्तियाँ हैं, अग्नि आपकी जिह्वा है, आपके रोम ही कुशाएं हैं इस प्रकार आप ही यज्ञपुरुष हैं । हे महात्मन् ! रात और दिन आपके नेत्र हैं सबका आधारभूत परमब्रह्म आपके शिर हैं । हे देव ! विष्णुसूक्त आपके स्कन्ध के रोमगुच्छ हैं और समस्त हवि आपके प्राण हैं । हे प्रभो ! स्रुक् आपका तुण्ड (थुथनी) है, सामस्वर ही धीर गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमान गृह) शरीर है, और सत्र शरीर की संधियाँ हैं । हे देव ! इष्ट (श्रौत और पूर्त स्मार्त) धर्म आपके श्रवण हैं, हे नित्यस्वरूप भगवन् ! आप प्रसन्न होइये । हे अविनाशी ! हे विश्वमूर्त्ते ! अपने पाद-प्रहार से भूमण्डल को व्याप्त करने वाले, आपको हमलोग विश्वके आदि कारण मानते हैं । आप समस्त जगत् के परमेश्वर एवं नाथ हैं, आप प्रसन्न होइये ॥३१-३५ ॥

दंष्ट्राग्रविन्यस्तमशेषमेतद्—
भूमण्डलं नाथ विभाव्यते ते ।

विगाहतः पद्मवनं विलग्नं
सरोजिनीपत्रमिवोढपङ्कम् ॥ ३६ ॥

द्यावापृथिव्योरतुलप्रभावे
यदन्तरं तद् वपुषा तवैव ।
व्याप्तं जगद्व्याप्तिसमर्थदीप्ते
हिताय विश्वस्य विभो भव त्वम् ॥ ३७ ॥

परमार्थस्त्वमेवैको नान्योऽस्ति जगतः पते ।
तवैष महिमा येन व्याप्तमेतच्चराचरम् ॥ ३८ ॥

यदेतद् दृश्यते मूर्त्तमेतज्ज्ञानात्मनस्तव ।
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगद्रूपमयोगिनः ॥ ३९ ॥

ज्ञानस्वरूपमखिलं जगदेतदबुद्धयः ।
अर्थस्वरूपं पश्यन्तो भ्राम्यन्ते मोहसंप्लवे ॥ ४० ॥

ये तु ज्ञानविदः शुद्धचेतसस्तेऽखिलं जगत् ।
ज्ञानात्मकं प्रपश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर ॥ ४१ ॥

हे नाथ ! आपके दांतों पर रखा हुआ यह समस्त भूमण्डल कमलवन को रौंदते हुए गजराज के दांतों में सटे हुए कीचड़युक्त कमल पत्र के समान सुशोभित होता है। हे अतुलप्रभावशाली प्रभो ! पृथिवी और आकाश के बीच में जितना अन्तर है वह आपके शरीर से ही व्याप्त है, विश्व को व्याप्त करने में समर्थ तेजस्वी प्रभो ! आप विश्वका कल्याण करें। हे जगत्पते ! सत्यस्वरूप तो एक मात्र आप ही हैं, यह आपका ही महात्म्य है, जिससे यह समस्त चराचर विश्व व्याप्त है। यह मूर्तिमान् जगत् ज्ञानस्वरूप आप ही का रूप है, किन्तु भ्रान्तज्ञान से अयोगी लोग इसे जगत्स्वरूप देखते हैं। अज्ञानी लोग इस ज्ञानस्वरूप सम्पूर्ण जगत् को अर्थस्वरूप देखा करते हैं, अतएव मोह (अन्धकार) के समुद्र में भ्रमण करते हैं ॥३६-० ॥

प्रसीद सर्व्वसर्व्वात्मन् भवाय जगतामिमाम् ।
उद्धरोर्व्वीममेयात्मन् शंन्नो देह्यब्जलोचन ॥ ४२ ॥

सत्त्वोद्रिक्तोऽसि भगवन् गोविन्द पृथिवीमिमाम्।
समुद्धर भवायेश शं नो देह्यब्ज लोचन ॥ ४३ ॥

सर्गप्रवृत्तिर्भवतो जगतामुपकारिणी।
भवत्वेषा नमस्तेऽस्तु शं नो तेह्यब्जलोचन ॥ ४४ ॥

हे परमेश्वर ! जो शुद्ध चित्त ज्ञानिजन हैं वे समस्त संसार को ज्ञानमय तथा आपका ही रूप देखते हैं। हे सर्व ! हे सर्वात्मन् ! प्रसन्न होइये, हे अप्रेमात्मन् ! हे कमलनयन ! जगत् के निवास के लिये पृथिवी का उद्धार कर हम लोगों को शान्ति प्रदान कीजिये। हे भगवन् ! हे गोविन्द ! आप सत्त्वप्रधान हैं, हे ईश ! जगत् की उत्पत्ति के लिए आप इस पृथिवी का उद्धार कीजिये और हे कमलनयन ! हम लोगों को शान्तिप्रदान कीजिये। आपकी यह सर्गप्रवृत्ति संसार का उपकार करने वाली हो। हे कमलनयन ! आपको नमस्कार है लोगों को शान्ति प्रदान कीजिये ॥४१-४४ ॥

पराशर उवाच।

एवं संस्तूयमानोऽथ परमात्मा महीधरः।
उज्जहार क्षितिं क्षिप्त न्यस्तवांश्च महार्णवे ॥ ४५ ॥

तस्योपरि समुद्रस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम् ॥ ४६ ॥

ततः क्षितिं समां कृत्वा पृथिव्यां सोऽपि नोद्गिरीन्।
यथा विभागं भगवाननादिः परमेश्वरः ॥ ४७ ॥

प्राक् सर्गदग्धानखिलान् पर्व्वतान् पृथिवीतले।
अमोघेन प्रभावेण ससर्जामोघवांछितः ॥ ४८ ॥

भूविभागं ततः कृत्वा सप्तद्वीपं यथातथम्।
भुवाद्यांश्चतुरो लोकान् पूर्व्ववत् समकल्पयत् ॥ ४९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार की स्तुति किये जाने पर पृथिवी को धारण करने वाले परमात्मा वाराह भगवान् ने शीघ्र ही पृथिवी को उठा लिया और अपार जल में स्थापित कर दिया। उस जलसमूह के ऊपर पृथिवी बड़ी नौका के समान

स्थिर है और आकारकी विशालता के कारण वह जल में डूबती नहीं है। इसके बाद अनादि भगवान परमेश्वर ने पृथिवी को बराबर करके उस पर जहाँ तहाँ पर्वतों को विभागपूर्वक स्थापित कर दिया। सत्यसंकल्प भगवान् ने अमोघ प्रभाव से पूर्व कल्प के अन्त में जले हुए समस्त पर्वतों को पृथिवी पर स्थापित कर दिया। तदनन्तर उन्होंने सात द्वीपों के क्रम से यथावत् पृथिवी का विभाग करके भूर्लोकादि चारों लोकों की रचना की ॥४५-४९ ॥

ब्रह्मरूपधरो देवस्ततोऽसौ रजसा वृतः ।
चकार सृष्टिं भगवांश्चतुर्व्वक्त्रधरो हरिः ॥ ५० ॥

निमित्तमात्रमेवासीत् सृज्यनां सर्गकर्म्मणि ।
प्रधानकारणीभूता यतो वै सृज्यशक्तयः ॥ ५१ ॥

निमित्रमात्रं मुक्तवकंनान्यत् किंचिदवेक्षते ।
नीयते तपता श्रेष्ठ स्वशक्त्या वस्तुवस्तुताम् ॥ ५२ ॥

पुनः रजोगुण से युक्त चारमुखवाले ब्रह्मा के रूप को धारण करके उन्हीं भगवान् हरि ने सृष्टि की रचना की। संसार की रचना में भगवान् केवल निमित्तमात्र ही हैं, क्योंकि उसका प्रधान कारण तो उसकी सृज्य शक्तियाँ ही हैं। हे तपस्वियों में श्रेष्ठ मैत्रेय ! वस्तुओं की रचना में निमित्तमात्र को छोड़कर और किसीवस्तुओं की अपेक्षा भी नहीं होती है, क्योंकि वस्तु अपनी ही शक्ति से वस्तुता को प्राप्त करती है।अर्थात् परिणामशक्ति से स्थूलरूपता को प्राप्त होती है ॥५०-५२ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में चौथा अध्याय समाप्त।

प्रथम अंश - पाँचवाँ अध्याय

(अविद्यादि विविध सर्गों का वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

यथा ससर्ज्ज देवोऽसौ देवर्षिपितृदानवान् ।
मनुष्यतिर्य्यग्वृक्षादीन् भूव्योमसलिलौकसः ॥ १ ॥

यद्गुणं यत्स्वरूपञ्च यत्स्वभावं जगद्द्विज ।
सर्गादौ सृष्टवान् ब्रह्मा तन्ममाचक्ष्व तत्त्वतः ॥ २ ॥

मैत्रेय जी बोले—हे द्विज ! सृष्टि के आरम्भ में भगवान् श्री ब्रह्मा जी नें पृथिवी, आकाश और जल आदि में निवास करने वाले, मानव, तिर्यक, वृक्ष आदि एवं देवता, ऋषि, पितृगण, और दानवों की जिस प्रकार रचना की अथच जिस प्रकार के गुण, स्वभाव और रूपवाले जगत् की रचना की वह सभी आप मुझसे कहिये ॥१-२ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय कथयाम्येष शृणुष्व सुसमाहितः ।
यथा ससर्ज्ज देवोऽसौ देवादीनखिलान् प्रभुः ॥ ३ ॥
सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा ।
अबुद्धिपूर्व्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ ४ ॥

पराशर जी बोले—हे मैत्रेय ! सर्वव्यापक भगवान् ने जैसे समस्त देवता आदि की रचना की यह सब मैं तुमसे कहता हूँ सावधान होकर सुनो । कल्प के आरम्भ में पूर्व कल्प की तरह ब्रह्मा जी के सृष्टि का विचार करने पर बुद्धि से रहित तमोगुणी सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ ॥३-४ ॥

तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रो ह्यन्धसंज्ञितः ।
अविद्या पंचपर्व्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ ५ ॥

पंचधावस्थितः सर्गो ध्यायतो प्रतिबोधवान् ।
बहिरन्तोऽप्रकाशश्च संवृतात्मा नगात्मकः ॥ ६ ॥

मुख्या नगा यतश्चोक्ता मुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ।
तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरं पुनः ॥ ७ ॥

तस्याभिध्यायतः सर्गस्तिर्य्यक्स्त्रोताभ्यवर्त्तत ।
यस्मात् तिर्य्यक् प्रवृत्तः स तिर्य्यक्स्त्रोतास्ततः स्मृतः ॥ ८ ॥

पश्वादयस्ते विख्यातास्तमः प्राया ह्यवेदिनः ।
उत्पथग्राहिणश्चैव तेऽज्ञाने ज्ञानमानिनः ॥ ९ ॥

अहङ्कृता अहम्माना अष्टाविंशद्वधात्मकाः ।
अन्तःप्रकाशास्ते सर्व्वे आवृताश्च परस्परम् ॥ १० ॥

उस महात्मा ब्रह्माजी से तम (अज्ञान), मोह, महामोह (भोग की इच्छा), तामिस्त्र (क्रोध), अन्धतामिस्त्र (अभिनिवेश) ये पाँच प्रकार की अविद्याएँ उत्पन्न हुई । उनके ध्यान करने पर ज्ञानरहित बाहर और भीतर से अज्ञानयुक्त एवं जड़रूप नगादि (वृक्ष गुल्म-लता विरुत्-तृण) स्वरूप पाँच प्रकार की सृष्टि हुई । (श्रीवाराहजी द्वारा सर्वप्रथम स्थापित होने के कारण) नगादि को मुख्य कहा गया है, अत एव यह सृष्टि मुख्य हुई । उस सृष्टि को पुरुषार्थ की असाधिका मानकर दूसरी सृष्टि के लिए ध्यान करने पर तिर्यक् स्त्रोत सृष्टि हुई । तिरछा चलने के कारण ही यह सर्ग तिर्यक्स्त्रोत कहलाता है । ये सब पशु आदि के नाम से प्रसिद्ध हैं—और प्रायः तमोगुणी हैं, अज्ञानी हैं, अनुचित मार्ग का अवलम्बन करने वाले हैं, और अज्ञान में ही ज्ञान को माननेवाले हैं । ये सब अहङ्कारी, अभिमानी और अथ च आन्तरिक ज्ञानवाले, ये सभी एक दूसरे की प्रवृत्ति को नहीं जानने वाले हैं ॥ ६-१० ॥

तमप्यसाधकं मत्वा ध्यायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।
ऊर्द्ध्वस्त्रोतास्तृतीयस्तु सात्त्विकोर्ध्वमवर्त्तत ॥ ११ ॥

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥ १२ ॥

तुष्टात्मनस्तृतीयस्तु देवसर्गस्तु स स्मृतः ।
तस्मिन् सर्गेऽभवत् प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ॥ १३ ॥

उस सृष्टि को भी असाधक मानकर तदनन्तर ध्यान करते हुए श्रीब्रह्मा जी से ऊर्ध्वस्रोतनामक सात्त्विक तीसरा सर्ग उत्पन्न हुआ जिसका ऊर्ध्वलोक में निवास हुआ। ऊर्ध्वस्रोतनामक सृष्टि में उत्पन्न हुये वे प्राणी विषय सुख के प्रेमी, बाह्य एवं आन्तरिक दृष्टिवाले और बाहर एवं भीतर के ज्ञान से सम्पन्न उत्पन्न हुए। इस तीसरी सृष्टि के उत्पन्न होने पर सन्तुष्ट चित्तवाले श्री ब्रह्माजी को बहुत प्रसन्नता हुई और यह सृष्टि देवसृष्टि कहलायी ॥११-१३ ॥

ततोऽन्य स तदा दध्यौ साधकं सर्गमुत्तमम् ।
असाधकांस्तु तान् ज्ञात्वा मुख्यसर्गादिसम्भवान् ॥ १४ ॥

तथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्बभूव चाव्यक्तादर्वाक् स्रोतस्तु साधकम् ॥ १५ ॥

यस्मादर्वाक् प्रवर्त्तन्ते ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तु ते ।
ते च प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः ॥ १६ ॥

तस्मात् ते दुःखबहुला भूयोभूयश्च कारिणः ।
प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥ १७ ॥

इसके बाद मुख्य सर्ग आदि तीनों प्रकार की सृष्टियों में उत्पन्न हुए प्राणियों को असाधक समझकर श्री ब्रह्माजी ने उत्तम साधक सर्ग का विचार किया। सत्यसंकल्पवाले उन ब्रह्माजी के ध्यान करने पर अव्यक्त से पुरुषार्थ का साधक अर्वाक् स्रोतनामका सर्ग प्रकट हुआ। इस सर्ग के प्राणी नीचे पृथिवीपर रहते हैं, इसलिए वे 'अर्वाकस्रोत' कहलाते हैं। उसमें सत्त्व, रज, और तम तीनों ही की अधिकता होती है। इसलिए ये प्राणी बहुत दुःखी बारंबार कार्य करने वाले बाहर और भीतर के ज्ञान से सम्पन्न एवं साधक हैं। और ये प्राणी मानव नाम से विख्यात हुए ॥१४-१७ ॥

इत्येते कथिताः सर्गाः षडत्र मुनिसत्तम।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः ॥ १८ ॥

तन्मात्राणां द्वितीयश्च भूतसर्गस्तु स स्मृतः।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः ॥ १९ ॥

इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्व्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ २० ॥

तिर्य्यक्स्त्रोतास्तु यः प्रोक्तस्तैर्य्यग्योन्यः स उच्यते।
ऊर्ध्वस्त्रोतास्ततः षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ २१ ॥

ततोऽर्व्वाक्स्त्रोतसः सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमोऽनुग्रहः सर्गः सात्त्विकस्तामसश्च सः ॥ २२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! इस क्रम से मैंने अबतक छः प्रकार की सृष्टि बतलायी ! उनमें महत्तत्त्व की सृष्टि ब्रह्मा जी की पहली जानना चाहिये। दूसरी तन्मात्राओं की सृष्टि है, उसे भूतसर्ग भी कहा जाता है। और वैकारिक नामवाली तीसरी सृष्टि इन्द्रियसम्बन्धी कही गई है। इस प्रकार बुद्धिपूर्वक उत्पन्न हुए इन तीनों का नाम प्राकृतसर्ग हुआ। चौथा मुख्य सर्ग है जिसके अन्तर्गत स्थावर पर्वत वृक्ष आदि कहे गये हैं। पाँचवाँ जो तिर्यक्स्त्रोत कहा गया वह तिर्यग्योनि भी कहा जाता है। और छठा ऊर्ध्वस्त्रोतों का है जो देवसर्ग कहलाता है। उसके बाद सातवाँ सर्ग अर्वाकस्त्रोतों की जो सृष्टि कही गई वह मानवी सृष्टि है। सात्त्विक और तामस गुण मिला हुआ आठवाँ अनुग्रह नाम का सर्ग है ॥१८-२२ ॥

पंचैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः।
प्राकृतो वैकृताश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥ २३ ॥

इत्येते वै समाख्याता नव सर्गाः प्रजापतेः
प्राकृता वैकृताश्चैव जगतो मूलहेतवः।
सृजतो जगदीशस्य किमन्यत् श्रोतुमिच्छसि ॥ २४ ॥

इनसे पाँच वैकृतसर्ग और तीन प्राकृतसर्ग कहे गये हैं, प्राकृत और वैकृत मिला हुआ नवाँ कौमार सर्ग है। इस प्रकार नौ प्रकार की सृष्टि कही गई हैं सृष्टि

की रचना में लगे हुए जगदीश्वर की प्राकृत और वैकृत दो प्रकार की सृष्टि हुई जो जगत् का मूलकारण है । और आप क्या सुनना चाहते हो ॥२३-४ ॥

मैत्रेय उवाच ।

संक्षेपात् कथितः सर्गो देवादीनां मुने त्वया ।
विस्तराच्छ्रोतुमिच्छामि त्वत्तो मुनिवरोत्तम ॥ २५ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुने ! आपने देवता आदि के सर्ग संक्षेप में कहे हें मुनिवर ! आपसे अब मैं उन सृष्टियों को विस्तारपूर्वक सुनने की इच्छा करता हूं ॥ २५ ॥

पराशर उवाच ।

कर्म्मभिर्भाविताः पूर्व्वैः कुशलाकुशलैस्तु ताः ।
ख्यात्या तया ह्यनिर्मुक्ताः संहारे ह्युपसंहताः ॥ २६ ॥

स्थावरान्ताः सुराद्यास्तु प्रजा ब्रह्मंश्चतुर्विधाः ।
ब्रह्मणः कुर्व्वतः सृष्टिं जज्ञिरे मानसास्तु ताः ॥ २७ ॥

श्रीपराशर जी बोले—हे मैत्रेयजी ! समस्त प्रजा अच्छे या बुरे अपने पूर्व कर्मों से युक्त हैं, अतएव प्रलयकाल के समाप्त होने पर वह उस ख्याति से (संस्कार से) मुक्त नहीं होती । हे ब्रह्मन् ! सृष्टिकार्य को करते हुए श्री ब्रह्मा जी ने देवसे आरम्भ कर स्थावरपर्यन्त चार प्रकार की प्रजा सृष्टि की । जो मानसी सृष्टि कही जाती है ॥२६-२७ ॥

ततो देवासुरपितृन् मानुषांश्च चतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ २८ ॥

युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताभूत् प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्ज्जघनात् पूर्व्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥ २९ ॥

उत्ससर्ज्ज ततस्तान्तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् ।
सा तु त्यक्ता ततस्तेन मैत्रेयाभूद् विभावरी ॥ ३० ॥

सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः ।

सत्त्वोदिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो द्विज ॥ ३१ ॥

त्यक्ता सा तु तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद् दिनम् ।

ततो हि बलिनो रात्रावसुरा देवता दिवा ॥ ३२ ॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम् ।

पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥ ३३ ॥

उत्ससर्ज्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि स प्रभुः ।

स चोत्सृष्टाऽभवत् सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थितिः ॥ ३४ ॥

इसके बाद देवता, असुर, पितृगण और मनुष्यों की तथा जलकी रचना करने की इच्छा से अपने शरीर का ही प्रयोग किया । सृष्टि करने की इच्छावाले अतएव युक्तचित्त सावधान चित्त वाले श्री ब्रह्माजी के तमोगुण की मात्रा बढ़ी, अत सर्वप्रथम उनकी जंघा से असुरलोग उत्पन्न हुए । हे मैत्रेय ! इसके बाद श्री ब्रह्मा जी ने उस तमोगुणी शरीर का परित्याग कर दिया । और उनके द्वारा परित्यक्त वह शरीर रात्रि हो गया । अनन्तर अन्य शरीर में स्थित सृष्टि की इच्छावाले श्रीब्रह्माजी प्रसन्न हुए । हे द्विज ! पुनः सत्त्वगुण प्रधान देवगण उनके मुख से उत्पन्न हुए । इसके बाद उन्होंने उस शरीर को भी त्याग दिया । तब वह त्यागा हुआ शरीर सत्त्वगुण सम्पन्न दिन हुआ । इसी कारण से रात्रि में असुर और दिन में देवगण बलवान् होते हैं । पुनः उन्होंने सत्त्वगुणप्रधान दूसरा शरीर धारण किया और अपने को पिता के समान मानते हुए श्रीब्रह्मा जी से पितृगण उत्पन्न हुए । पितरों की सृष्टि करने के बाद श्रीब्रह्मा जी ने उस शरीर का भी परित्याग किया और वह परित्यक्त शरीर ही दिन और रात्रि के मध्य में स्थित सन्ध्या हुई ॥२८-३४ ॥

रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहे स तनुं ततः ।

रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्या द्विजसत्तम ॥ ३५ ॥

तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः ।

ज्योत्स्ना समभवत् सापि प्राक्सन्ध्या याभिधीयते ॥ ३६ ॥

ज्योत्स्नायामेव बलिनो मनुष्याः पितरस्तथा।
मैत्रेय सन्ध्यासमये तस्मादेते भवन्ति वै ॥ ३७ ॥

ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्य्येतानि वै प्रभोः।
ब्रह्मणस्तु शरीराणि त्रिगुणोपाश्रयाणि तु ॥ ३८ ॥

पुनः उन्होंने रजोमय दूसरा शरीर ग्रहण किया। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! उससे रजोगुण प्रधान मनुष्य उत्पन्न हुए। अनन्तर प्रजापति ने (श्रीब्रह्माजी ने) शीघ्र ही उस शरीर का भी परित्याग कर दिया, और वही त्यागा हुआ शरीर ज्योत्स्ना हो गया जिसको प्राक् सन्ध्या कहते हैं। अत एव हे मैत्रेय ! प्रातः काल एवं सायंकालमें क्रमशः मानव और पितृगण बलवान होते हैं। रात्रि, दिन, प्रातः काल और सायंकाल ये चारों प्रभु ब्रह्माजी के तीनों गुणों के आश्रयभूत शरीर हैं ॥ ३५-३८ ॥

रजोमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्।
ततः क्षुद् ब्रह्मणो जाता जज्ञे कोपस्तया ततः ॥ ३९ ॥

क्षुत्क्षामानन्धकारेऽथ सोऽसृजद् भगवांस्ततः।
विरूपाः श्मश्रुला (छ) जातास्तेऽभ्यधावंस्ततः प्रभुम् ॥ ४० ॥

मैवं भो रक्ष्यतामेष यैरुक्तम् राक्षसास्तु ते।
ऊचुः खादाम इत्यन्ये ये ते यक्षास्तु जक्षणात् ॥ ४१ ॥

अप्रियानथ तान् दृष्ट्वा केशाः शीर्य्यन्त वेधसः।
हीनाश्च शिरसो भूयः समारोहन्त तच्छिरः ॥ ४२ ॥

सर्पणात् तेऽभवन् सर्पा हीनत्वादहयः स्मृताः।
ततः क्रुद्धो जगत्स्रष्टा क्रोधात्मनो विनिर्ममे ॥ ४३ ॥

वर्णेन कपिशेनोग्रा भूतास्ते पिशिताशनाः।
धयन्तो गां समुत्पन्ना गन्धर्व्वास्तस्य तत्क्षणात् ॥ ४४ ॥

पुनः श्रीब्रह्माजी ने रजोमात्रावाला दूसरा शरीर ग्रहण किया उससे उनको क्षुधा उत्पन्न हुई जिससे (क्षुधा से) काम की उत्पत्ति हुई। अनन्तर भगवान् प्रजापति ने अन्धकार में क्षुधामयी सृष्टि का निर्माण किया उस सृष्टि में कुरूप और दाढ़ी मूँछ

वाले व्यक्ति उत्पन्न हुए। तथा वे स्वयं ब्रह्माजी की ओर दौड़े। उनमें से जिन्होंने 'ऐसा मतकरो इनकी रक्षा करो' इस प्रकार कहा वे राक्षस हुए और जिन्होंने 'हम भक्षण करेंगे' ऐसा कहा वे भक्षण के भाव रहने से यक्ष कहलाये हुए। अप्रसन्नतासे उनके देखने पर ब्रह्माजी के केश शिर से गिर गये और पुनः उनके शिर पर चढ़ गयें। ऊपर चढ़ने से वे 'सर्प' और नीचे गिरने से 'अहि' कहलाये। पुनः जगत्कर्त्ता श्रीब्रह्माजी ने क्रोधयुक्त होकर क्रोधयुक्त प्राणियों का निर्माण किया। कपिश (कैल) वर्ण से युक्त वे प्राणी उत्पन्न क्रोधी एवं मांस भक्षक हुए, उसी क्षण गान करते हुए उनके शरीर से गन्धर्व उत्पन्न हो गये॥ ३९-४४॥

पिबन्तो जज्ञिरे वाचं गन्धर्व्वास्तेन ते द्विज्।
एतानि सृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा तच्छक्तिनोदितः॥ ४५॥

हे द्विज! वचन को पीते हुए (गान करते हुए) वे उत्पन्न हुए अत एव गन्धर्व कहलाये।

ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत्।
अवयो वक्षसश्चक्रे मुखतोऽजाः स सृष्टवान्॥ ४६॥

सृष्टवानुदराद् गाश्च पार्श्वाभ्यां च प्रजापतिः।
पद्भ्यामश्वान् समातंङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान्॥ ४७॥

उष्ट्रानश्वतरांश्चैव न्यङ्कूनन्यांश्च जातयः।
ओषध्यः फलमूलिन्यो रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥ ४८॥

इन सबकी रचना करके भगवान् श्रीब्रह्माजी ने उनकी शक्ति से अर्थात् उनके पूर्वकर्मों से प्रेरित होकर स्वच्छन्दतापूर्वक अपनी आयु से दूसरे पक्षीयों की रचना की। बाद में छाती से भेड़ और मुख से बकरीयों को उत्पन्न किया। पुनः प्रजापति श्रीब्रह्माजी ने पेट और दोनों पार्श्वभाग से गौओं की रचना की और उनके दोनों पांवों से घोड़े, हाथी, गधे, नीलगाय, हिरण, ऊँट, खच्चर और न्यङ्कु आदि पशु उत्पन्न हुए। तथा उनके रोम से फलमूलरूपी औषधियाँ उत्पन्न हुई॥ ४७-४८॥

त्रेतायुगमुखे ब्रह्मा कल्पस्यादौ द्विजोत्तम।
सृष्ट्वा पश्वोषधीः सम्यग् युयोज स तदाध्वरे॥ ४९॥

गौरजः पुरुषा मेषा अश्वा अश्वतराः खराः ।
एतान् ग्राम्यान् पशून प्राहुरारण्यांश्च निबोध मे ॥ ५० ॥

श्वापदो द्विखुरो हस्ती वानरः पक्षिपंचमः ।
औदकाः पशवः षष्ठाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥ ५१ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! कल्प के आदि में श्रीब्रह्माजी ने पशु और औषधि आदि के उत्पन्न करने के बाद त्रेतायुग के आरम्भ में उन्हें यज्ञ में प्रयोग किया । गौ, अजा (बकरी), पुरुष भेड़, घोड़े, खच्चर और गदहें ये ग्राम्य पशु कहे गये हैं । वन्य (जंगली) पशुओं का वर्णन भी मुझसे सुनो । श्वापद (व्याघ्र आदि), दो खुरवाले, हाथी, बन्दर, पाँचवें पक्षी, छठें जलजन्तु पशु, सातवें सरीसृप (सांप) आदि ये वन्य पशु हैं ॥४९-५१ ॥

गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्स्तोमं रथन्तरम् ।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्म्ममे प्रथमान् मुखात् । ५२ ॥

पुनः श्रीब्रह्माजी ने अपने पूर्व-मुखसे गायत्री, ऋक्, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर, अग्निष्टोम आदि यज्ञों को उत्पन्न किया ॥ ५२ ॥

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दस्तोमं सप्तदशं तथा ।
बृहत् साम तथोक्थं च दक्षिणादसृजन् मुखात् ॥ ५३ ॥

सामानि जगतीछन्दःस्तोमं सप्तदशं तथा ।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन् मुखात् ॥ ५४ ॥

एकविंशमथर्व्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च ।
अनुष्टुभं स वैराजम् उत्तरादसृजन्मुखात् ॥ ५५ ॥

अपने दक्षिण-मुख से उन्होंने यजुः, त्रिष्टुप्छन्द, पञ्चदशस्तोम, बृहत्साम और उक्थ की रचना की । पश्चिम मुख से साम, जगतीछन्द, सप्तदशस्तोम, वैरूप और अतिरात्रको उत्पन्न किया । एवं प्रकार उत्तरमुख से श्रीब्रह्माजी ने एकविंशतिस्तोम, अथर्ववेद, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुप्छन्द और वैराज उत्पन्न किये ॥५३-५५ ॥

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ।
देवासुरपितृन् सृष्ट्वा मनुष्यांश्च प्रजापतिः ॥ ५६ ॥

ततः पुनः ससर्ज्जादौ स कल्पस्य पितामहः ।
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्व्वांस्तथैवाप्सरसां गणान् ॥ ५७ ॥

नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ।
अव्ययं च व्ययं चैव यदिदं स्थाणुजंगमम् ॥ ५८ ॥

तत् ससर्ज्ज तदा ब्रह्मा भगवानादिकृद् विभुः ।
तेषां ये यानि कर्म्माणि प्राक् सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ॥ ५९ ॥

तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात् तत् तस्य रोचते ॥ ६० ॥

और उनके सर्वाङ्ग से ऊँच-नीच सभी प्रकार के प्राणी उत्पन्न हुए। उन आदिकर्ता भगवान् प्रजापतिने देव, असुर, पितृगण तथा मानवों की सृष्टि करने के बाद पुनः कल्प के आरम्भ होने पर यक्ष, पिशाच, गन्धर्व और अप्सरा, मनुष्य, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, मृग, सांप आदि तथा अविनाशी और विनाशी स्थावरजंगमयुक्त सृष्टि का निर्माण किया। उनमें से जिनके जैसे कर्म पूर्वकल्पों में थे, सृष्टि होने पर उनकी उसी में प्रवृत्ति होती हैं। उत्पन्न हुए प्राणियों में हिंसा-अहिंसा, कोमलता, और कठोरता, पुण्य-पाप, सच और झूठ ये सभी विषय पूर्वसंस्कार के अनुसार ही आते हैं, अतएव ये सभी उन्हें अच्छे लगते हैं ॥ ५६-६० ॥

इन्द्रियार्थेषु भूतेषु शरीरेषु च स प्रभुः ।
नानात्वं विनियोगञ्च धातैव व्यसृजत् स्वयम् ॥ ६१ ॥

नामरूपं च भूतानां कृत्यानां च प्रपञ्चनम ।
वेदशब्देभ्य एवादौ देवादीनां चकार सः ॥ ६२ ॥

ऋषीणां नामधेयानि यथा वेदश्रु तानि वै ।
यथा नियोगयोग्यानि सर्वेषामपि सोऽकरोत् ॥ ६३ ॥

यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु ॥ ६४ ॥

करोत्येवंविधां सृष्टिं कल्पादौ स पुनः पुनः ।
सिसृक्षाशक्तियुक्तोऽसौ सृज्यशक्तिप्रचोदितः ॥ ६५ ॥

इस प्रकार वह प्रभु श्रीब्रह्माजी ने इन्द्रियों के विषयभूतों में विभिन्न शरीरों में अनेकता (अनेक रूपता) और व्यवहार को भी उत्पन्न किया । उन्होंने सृष्टि के आरम्भ में वेद के शब्दानुसार प्राणियों के नाम, रूप और कार्यप्रपञ्च (कार्य विभाग) को भी निश्चित किया । और उन्होंने ही ऋषियों के तथा अन्य प्राणियों के भी वेदानुसार नाम और यथा-योग्य कर्मों को भी निश्चित किया । जैसे ऋतुओं के बार बार आने पर उनके चिन्ह एवं रूपनाम आदि पहले के समान वही वही दिखाई देते हैं ठीक उसी प्रकार युग के आदि में उनके पूर्व ही भाव देखे जाते हैं । सृष्टिनिर्माण की इच्छा रूपी शक्ति से युक्त और सृष्टि की प्रारब्धशक्ति से प्रेरित वे श्रीब्रह्माजी बार बार कल्प के आरम्भ में इसी प्रकार सृष्टि करते हैं ॥६१-६५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में पाँचवाँ अध्याय समाप्त

प्रथम अंश - छठा अध्याय

(चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था, पृथिवीविभाग और अन्नादि की उत्पत्ति का वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

अर्व्वाक्स्त्रोतस्तु कथितो भवता यस्तु मानुषः ।
ब्रह्मन् विस्तरतो ब्रूहि ब्रह्मा तमसृजद् यथा ॥ १ ॥

यथा च वर्णानसृजद् यद्गुणांश्च महामुने ।
यच्च तेषां स्मृतं कर्म्म विप्रादीनां तदुच्यताम् ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन् ! आपने जो अर्वाकस्त्रोत नामक मानवी सृष्टि के विषय में कहा ब्रह्माजी ने उनका जिस प्रकार निर्माण किया उसे विस्तारपूर्वक कहिये । और प्रजापति ब्रह्मा ने जिन जिन गुणों से युक्त ब्राह्मणादि वर्णों को उत्पन्न किया और उनके जो कर्म बतलाये वह सब कहिये ॥१-२ ॥

पराशर उवाच ।

सत्याभिध्यायिनः पूर्व्वं सिंसृक्षोर्ब्रह्मणो जगत् ।
अजायन्त द्विजश्रेष्ठ सत्त्वोद्रिक्ता मुखात् प्रजाः ॥ ३ ॥

वक्षसो रजसोद्रिक्तास्तथा वै ब्रह्मणोऽभवन् ।
रजसा तमसा चैव समुद्रिक्तास्तथोरुजाः ॥ ४ ॥

पद्भ्यामन्याः प्रजा ब्रह्मा ससर्ज्ज द्विजसत्तम ।
तमः प्रधानास्ताः सर्व्वाश्चातुर्व्वर्ण्यमिदं ततः ॥ ५ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम ।
पादोरुवक्षःस्थलतो मुखतश्च समुद्गताः ॥ ६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! सत्यका ध्यान करने वाले (सत्य-संकल्प) और संसार के निर्माण की इच्छा वाले श्रीब्रह्मा जी के मुख से सर्वप्रथम सत्त्वप्रधान प्रजा उत्पन्न हुई। और ब्रह्मा जी की छाती से रजोगुणप्रधान एवं जंघाओं से रजोगुण तमोगुण प्रधान प्रजा उत्पन्न हुई। हे द्विजसत्तम ! श्रीब्रह्माजी ने अपने चरणों से दूसरी प्रजा की सृष्टि की और वह प्रजा तमोगुण प्रधान हुई, इस प्रकार ये चारों वर्ण (जाति) उत्पन्न हुए। इस प्रकार श्रीब्रह्माजी के मुख, वक्षः स्थल (छाती), जंघा और चरणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण उत्पन्न हुए ॥३-६ ॥

यज्ञनिष्पत्तये सर्व्वमेतद् ब्रह्मा चकार वै।
चातुर्व्वर्ण्यं महाभाग यज्ञसाधनमुत्तमम् ॥ ७ ॥

यज्ञैराप्यायिता देवा वृष्ट्यु त्सर्गेण वै प्रजाः।
आप्याययन्ते धर्म्मज्ञ यज्ञाः कल्याणहेतवः ॥ ८ ॥

निष्पाद्यन्ते नरैस्तैस्तु स्वधर्म्माभिरतैस्ततः।
विशुद्धाचरणोपेतैः सद्भिः सन्मार्गगामिभिः ॥ ९ ॥

स्वर्गापवर्गौ मानुष्यात् प्राप्नुवन्ति नरा मुने।
यथाभिरुचितं स्थानं तद् यान्ति मनुजा द्विज ॥ १० ॥

प्रजास्ता ब्रह्मणा सृष्टाश्चातुर्वर्ण्यव्यवस्थितौ।
सम्यक्श्रद्धासमाचारप्रवणा मुनिसत्तम ॥ ११ ॥

ययेच्छावासनिरताः सर्व्वबाधाविवर्जिताः।
शुद्धान्तःकरणाः शुद्धाः सर्व्वानुष्ठाननिर्म्मलाः ॥ १२ ॥

हे महाभाग ! श्रीब्रह्माजी ने यज्ञकार्य के लिए उत्तम यज्ञसाधनभूत इस समस्त चातुर्वर्ण्य की सृष्टि की। हे धर्मज्ञ ! यज्ञ से सन्तुष्ट देवगण जल बरसाकर प्रजाओं को सन्तुष्ट करते हैं अत एव यज्ञ ही कल्याण का हेतु है। अपने-अपने धर्म में संलग्न विशुद्ध आचरण वाले सन्मार्गगामी सज्जन पुरुषों द्वारा यज्ञानुष्ठान किया जाता है। हे मुने ! मनुष्य इस शरीर द्वारा ही यज्ञ से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। तथा हे द्विज ! मनुष्य को जिस स्थान की इच्छा हो उसे यज्ञद्वारा ही प्राप्तकर

सकता है। हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्माजी द्वारा उत्पन्न वह प्रजा चारवर्णों में स्थित अच्छी श्रद्धा और अच्छे आचरण से युक्त अपनी इच्छानुसार निवास करने वाली एवं स्वयं भी शुद्ध शास्त्रविहित कर्मों के अनुष्ठान से परम पवित्र थी ॥७-१२ ॥

शुद्धे च तासां मनसि शुद्धेऽन्तःसंस्थिते हरौ।
शुद्धं ज्ञानं प्रपश्यन्ति विष्ण्वाख्यं येन तत्पदम् ॥ १३ ॥

ततः कालात्मको योऽसौ स चांशः कथितो हरेः।
स पातयत्यघं घोरमल्पमल्पाल्पसारवत् ॥ १४ ॥

अधर्म्मबीजसंभूतं तमोलोभसमुद्भवम्।
प्रजासु तासु मैत्रेय रागादिकमसाधकम् ॥ १५ ॥

ततः सा सहसा सिद्धिस्तेषां नातीव जायते।
रसोल्लासादयश्चान्याः सिद्धयोऽष्टौ भवन्ति याः ॥ १६ ॥

उनके शुद्ध मन में सदा शुद्धस्वरूप श्री हरि के निवास होने के कारण उनका ज्ञान भी शुद्ध होता था और वे 'विष्णु' नामक परमपद का दर्शन करते थे। फिर (त्रेतायुग के आरम्भ होने पर) भगवान् का काल-नामक जो अंश मैंने कहा वह प्रजाजनों को घोर अत्यन्त तुच्छ और अल्पसार (सुख) वाले पापकर्म में गिरा देता है। हे मैत्रेय ! अत एव उन प्रजाजनों में असाधक (पुरुषार्थ का विनाशक) अज्ञान और लोभ से उत्पन्न रागादि अधर्म का बीज उत्पन्न हो जाता है। उसके बाद (अधर्मबीज उत्पन्न होने पर) उन प्रजाजनों के वह विष्णुपद दर्शनरूप स्वाभाविक सिद्धि नहीं प्राप्त होती है। और रसोल्लास आदि आठ प्रकार की सिद्धियाँ भी नहीं होती ॥१३-१६ ॥

तासु क्षीणास्वशेषांसु वर्द्धमाने च पातके।
द्वन्द्वाभिभवदुःखार्त्तास्ता भवन्ति ततः प्रजाः ॥ १७ ॥

ततो दुर्गाणि ताश्चक्रु र्वार्क्षं पार्व्वतमौदकम्।
कुत्रिमं च तथा दुर्गं पुरं खर्व्वटकादिकम् ॥ १८ ॥

गृहाणि च यथान्यायं तेषु चक्रुः पुरादिषु।
शीतातपादिबाधानां प्रशमाय महामुने ॥ १९ ॥

प्रतीकारमिदं कृत्वा शीतादेस्ताः प्रजाः पुनः ।
वार्त्तोपायं ततश्चक्रुर्हस्तसिद्धिं च कर्मजाम् ॥ २० ॥

उन सभी सिद्धियों के क्षीण हो जाने पर और पापकी वृद्धि होने पर वह प्रजा द्वन्द्व, ह्रास और दुःख से पीड़ित हो गयी । इसके बाद उन प्रजाजनों ने मरुभूमि, पर्वत एवं जल आदि के स्वाभाविक एवं कृत्रिम दुर्ग और ग्राम तथा खर्वट (पहाड़ी नदी के तीर पर बसी हुए छोटी छोटी टोली) आदि की स्थापना की । और उन ग्रामादिकों में शीत और धूप आदि बाधाओं की शान्ति के लिए यथायोग्य गृहनिर्माण किये । इस प्रकार शीत आदि से रक्षा के उपाय करके उन प्रजाजनों ने जीविका के लिए कृषि एवं हस्तकला की रचना की ॥१३-२० ॥

व्रीहयश्च यवाश्चैव गोधूमा अणवस्तिलाः ।
प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कोरदूषाः सचीकणाः ॥ २१ ॥

माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलत्थकाः ।
आढक्यश्चनकाश्चैव शणाः सप्तदशः स्मृताः ॥ २२ ॥

इत्येताश्चौषधीनान्तु ग्राम्याणां जातयो मुने ।
ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ २३ ॥

हे मुनि ! धान, जौ गेहूं, छोटे धान्य, तिल, पियङ्गु (कंगनी) ज्वार, कोदो, छोटी मटर, उड़द, मूंग, मसूर, बड़ी मटर, कुलथी, अरहर, चना सन ये सत्रह ग्राम्य औषधियों की जातियाँ हैं । ग्राम्य और वन्य (वन में उत्पन्न) दोनों मिलाकर चौदह यज्ञ की औषधियाँ हैं ॥ २१-२३ ॥

व्रीहयः सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिलाः ।
प्रियङ्गुसप्तमा ह्येता अष्टमास्तु कुलत्थकाः ॥ २४ ॥

श्यामाकास्त्वथ नीवारा जर्त्तिलाः सगवेधुकाः ।
तथा वेणुयवाः प्रोक्तास्तद्वत् मर्कटका मुने ॥ २५ ॥

ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्द्दश ।
यज्ञनिष्पत्तये यज्ञस्तथासां हेतुरुत्तमः ॥ २६ ॥

उन औषधियों के नाम ये हैं—धान, जौ, उड़द, गेहूं, छोटे धान्य, तिल, काँगनी ये सात और आठवाँ कुलथी, सामांनीवार, वनतिल, गवेधु , वेणुयव, और मक्का । ये ग्राम्य और वन्य कुल मिलाकर चौदह प्रकार की औषधियों की उत्पत्ति यज्ञसाधना के निमित्त हुई ॥ २४-२६ ॥

एताश्च सह यज्ञेन प्रजानां कारणं परम् ।
परापरविदः प्राज्ञस्ततो यज्ञान् वितन्वते ॥ २७ ॥

अहन्यहन्यनुष्ठानं यज्ञानां मुनिसत्तम ।
उपकारकरं पुसां क्रियमाणस्य शान्तिदम् ॥ २८ ॥

येषान्तु कालरूपोऽसौ पापविन्दुर्महामते ।
चेतःसु ववृधे चक्रुस्ते न यज्ञेषु मानसम् ॥ २९ ॥

वेदवादांस्तथा वेदान् यज्ञनिष्पादकं च यत् ।
तत्सर्व्वं निन्दमानास्ते यज्ञव्यासेधकारिणः ॥ ३० ॥

प्रवृत्तिमार्गव्युच्छित्तिकारिणो वेदनिन्दकाः ।
दुरात्मानो दुराचारा बभूवुः कुटिलाशयाः ॥ ३१ ॥

यज्ञ के साथ ये औषधियाँ प्रजाजनों की अभिवृद्धि के प्रधान कारण हैं। अत एव इसलोक और परलोक के ज्ञाता पण्डितगण यज्ञानुष्ठान करते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रतिदिन यज्ञाचरण पुरुषों के लिए अत्यन्त उपकारक है तथा यज्ञ करने वाले पुरुषों के पाप को भी शान्त करने वाला है । हे महामुने ! जिनके चित्त में समय से उत्पन्न हुआ पापबिन्दु बढ़ता है उनका मन यज्ञ कर्म में नहीं लगता । उन यज्ञ के विरोधियों ने वैदिक मत, वेद, यज्ञानुष्ठान आदि की निन्दा की है। वे दुरात्मा, दुराचारी, वेदनिन्दक और कुटिलआशय वाले प्रवृत्तिमार्ग के उच्छेद करने वाले हुए ॥२७-३१ ॥

संसिद्धायान्तु वार्त्तायां प्रजाः सृष्ट्वा प्रजापतिः ।
मर्य्यादां स्थापयामास यथास्थानं यथागुणम् ॥ ३२ ॥

वर्णानामाश्रमाणाञ्च धर्म्मान् धर्म्मभृतां वर ।
लोकांश्च सर्व्ववर्णानां सम्यग् धर्म्मानुपालिनाम् ॥ ३३ ॥

हे धर्मसाधकों में श्रेष्ठ ! प्रजापति श्रीब्रह्मा जी ने प्रजाओं की सृष्टि करने के बाद और उनकी जीविका सम्पन्न हो जाने पर उनके स्थान और गुणों के अनुकूल मर्यादा स्थापित की तथा वर्ण और आश्रमों के धर्म सम्यक् प्रकार धर्म का पालन करने वाले सभी वर्णों के लोकों की भी स्थापना की ॥ ३२-३३ ॥

प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वनिवर्त्तिनाम् ॥ ३४ ॥

वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्म्मममनुवर्त्तिनाम् ।
गान्धर्व्वं शूद्रजातीनां परिचर्य्यानुवर्त्तिनाम् ॥ ३५ ॥

अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृतं तेषां मरुत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥ ३६ ॥

सप्तर्षीणान्तु यत् स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मसंज्ञितम् ॥ ३७ ॥

योगिनाममृतं स्थानं यद्विष्णोः परमं पदम् ।
एकान्तिनः सदा ब्रह्मध्यायिनो योगिनो हि ये ।
तेषां तत् परमं स्थानं यत् तु पश्यन्ति सूरयः ॥ ३८ ॥

क्रियाशील ब्राह्मणों का स्थान प्रजापत्यलोक (पितृलोक) है, युद्ध से कभी नहीं भागने वाले क्षत्रियों का स्थान इन्द्रलोक है । अपने धर्म का पालन करने वाले वैश्यों का वायुलोक, इसी प्रकार सेवाधर्मवाले शूद्रों का गन्धर्वलोक स्थान है । अट्ठासी हजार ऊर्ध्वरिता मुनियों का जो स्थान कहा गया है वहाँ गुरुकुल में निवास करने वाले ब्रह्मचारीयों का भी स्थान है । सप्तर्षियों का जो स्थान है वही वानप्रस्थियों का स्थान, और गृहस्थों का पितृलोक, संन्यासियों का ब्रह्मलोक, एवं आत्मसन्तोष (आत्मानुभव) से सन्तुष्ट योगियों का अमृत अर्थात् मोक्ष स्थान है । सदा एकान्तभाव से ब्रह्म का ध्यान करने वाले जो योगिजन हैं उनका जो परम स्थान हैं उसे विज्ञजन ही देखते हैं ॥३३-३८ ॥

गत्वा गत्वा निवर्त्तन्ते चन्दसूर्य्यादयो ग्रहाः ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥ ३९ ॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ।
असिपत्रवनं घोरं कालसूत्रमवीचिमत् ॥ ४० ॥

विनिन्दकानां वेदस्य यज्ञव्याघातकारिणाम् ।
स्थानमेतत् समाख्यातं स्वधर्म्मत्यागिनश्च ये ॥ ४१ ॥

चन्द्र, सूर्य, आदि ग्रह (अपने अपने लोकों में) जा कर लौट आते हैं किन्तु द्वादशाक्षर मन्त्र (ओं नमो भगवते वासुदेवाय) के जप करने वाले प्राणी आजतक (मोक्षपद से) नहीं लौटे । वेदनिन्दकों, यज्ञोच्छेदकों और स्वधर्मत्यागियों का तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, रौरव असिपत्रवन, घोर, कालसत्र और अवीचिनाम के नरक स्थान है ॥ ३९-४१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में छठा अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - सातवाँ अध्याय

(मरीचि आदि प्रजापतिगण, स्वायम्भुवमनु एवं उनकी सन्तान का वर्णन)

पराशर उवाच ।

ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीः प्रजाः ।
तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्य्यैस्तैः कारणैः सह ॥ १ ॥

क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्यस्तस्य धीमतः ।
ते सर्व्वे समवर्त्तन्त ये मया प्रागुदीरिताः ॥ २ ॥

देवाद्याः स्थावरान्ताश्च त्रैगुण्यविषये स्थिताः ।
एवम्भूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ॥ ३ ॥

यदास्य ताः प्रजाः सर्व्वा न व्यवर्द्धन्त धीमतः ।
अथान्यान् मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ ४ ॥

भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमङ्गिरसं तथ ।
मरीचिं दक्षमत्रिं च वशिष्ठं चैव मानसम् ॥ ५ ॥

नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ।
सनन्दनादयो ये च पूर्व्वं सृष्टातु वेधसा ॥ ६ ॥

श्रीपराशर जी बोले—पुनः ध्यान करते हुए श्रीप्रजापति के शरीररूपी भूतों से उत्पन्न शरीर और इन्द्रियों के साथ मानसी प्रजा उत्पन्न हुई । बुद्धिमान् श्रीब्रह्माजी के शरीर से क्षेत्रज्ञ (सचेतन) जीव उत्पन्न हुए । मैंने पहले जिनका वर्णन किया वे सभी देवताओं से लेकर स्थावरपर्यन्त सत्त्व, रज तम प्रधान चर और अचर सभी प्राणी इसी प्रकार उत्पन्न हुए । किन्तु जब उन बुद्धिमान् श्रीब्रह्माजी की प्रजा नहीं

बढ़ी तब उन्होंने अपने समान दूसरे पुत्रों की सृष्टि की । उनके नाम भृगु, पुलस्त्य, पुलहक्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं । पुराणों में इनका नाम नौ ब्रह्मा निश्चित हुआ है ।

न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते ।
सर्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥ ७ ॥

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टो महात्मनः ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्त्रैलोक्यदहनक्षमः ॥ ८ ॥

श्रीब्रह्माजी ने जिन सनन्दनादि कों पहले उत्पन्न किया था वे सभी संसार में आसक्त नहीं हुए । वे निरपेक्ष होने के कारण सन्तान में भी आसक्त नहीं हुए । क्योंकि वे सभी विरक्त मत्सरादि से रहित और ज्ञानसम्पन्न थे ॥१-७६ ॥

उन सनन्दनादि के संसार की रचना से निरपेक्ष हो जाने पर महात्मा श्रीब्रह्माजी को त्रैलोक्य को भस्म करने वाला महान् क्रोध हुआ ॥७-८ ॥

तस्य क्रोधात् समुद्भूतज्वालामालाविदीपितम् ।
ब्रह्मणोऽभूत् तदा सर्व्वं त्रैलोक्यमखिलं मुने ॥ ९ ॥

भृकुटीकुटिलात् तस्य ललाटात् क्रोधदीपितात् ।
समुत्पन्नस्तदा रुद्रो मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥ १० ॥

अर्द्धनारीनरवपुः प्रचण्डोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वा तं ब्रह्मान्तर्दधे ततः ॥ ११ ॥

हे मुनि ! उन श्रीब्रह्मा जी के क्रोध से उत्पन्न ज्वालाकी मालाओं से तीनोलोक प्रदीप्त हो गये । तब उनकी टेढ़ी भ्रुकुटि और क्रोध से प्रदीप्त ललाट से मध्याह्नकालीन सूर्य के समान कान्तिवाला रुद्र उत्पन्न हुआ । अत्यन्त प्रचण्डशरीरधारी वह आधा नर और आधा नारी शरीर धारण करने वाला था । अपने शरीर का विभाग करो ऐसा कहकर श्रीब्रह्माजी अन्तर्ध्यान हो गये ॥९-११ ॥

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रित्वं पुरुषत्वं तथाकरोत् ।
बिभेद पुरुषत्वं न दशधा चैकधा च सः ॥ १२ ॥

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ता शान्तैः स्त्रीत्वं च स प्रभुः ।
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः ॥ १३ ॥

ऐसा कहने पर उस रुद्रने अपने शरीरस्थ स्त्री और पुरुष दोनों भागों को अलग कर दिया । और पुरुषभाग को पुनः ग्यारह भागों में विभक्त किया । और वह प्रभु (रुद्र) वे स्त्रीभागको भी सौम्य, क्रूर, शान्त, अशान्त, श्याम और गौर आदि कई स्वरूपों में विभक्त किया ॥१२-१३ ॥

ततो ब्रह्मात्मसम्भूतं पूर्व्वं स्वायम्भुवं प्रभुः ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं द्विज ॥ १४ ॥

उसके बाद श्रीब्रह्माजी ने अपने से ही उत्पन्न अपने स्वरूप स्वायम्भुव को प्रजापालन के लिए सर्वप्रथम मनु बनाया ॥ १४ ॥

शतरूपां च तां नारी तपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे विभुः ॥ १५ ॥

स्वायम्भुव मनुने तपस्या से मण्डित शतरूपानाम की स्त्री को अपनी पत्नी रूप में ग्रहण किया । शतरूपानामको स्त्री भी स्वायम्भुव मनुके साथ ही ब्रह्माजी से उत्पन्न हुई थी ॥ १५ ॥

तस्माच्च पुरुषाद् देवी शतरूपा व्यजायत ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसंज्ञितम् ॥ १६ ॥

कन्याद्वयञ्च धर्मज्ञ रूपौदार्य्यगुणान्वितम् ।
ददौ प्रसूतीं दक्षाय तथा कूतिंरुचेः (ख) पुरा ॥ १७ ॥

उन स्वायम्भुव मनु ने शतरूपा से प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्र एवं रूप उदार एवं गुणों से युक्त प्रसूति और आकूति नाम की दो कन्याएँ उत्पन्न की । हे धर्मज्ञ । प्रसूति का दक्ष के साथ और अकूति का रुचि के साथ विवाह हुआ ॥ १६-१७ ॥

प्रजापतिः स जग्राह तयोर्यज्ञः सदक्षिणः ।
पुत्रो जज्ञे महाभाग दाम्पत्यं मिथुनं ततः ॥ १८ ॥

यज्ञस्य दक्षिणायान्तु पुत्रा द्वादश जज्ञिरे।
यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवे मनौ ॥ १९ ॥

हे महाभाग !रूचिनामक प्रजापति ने आकूति के साथ विवाह किया, बाद में उन रुचि और आकूति के सम्बन्ध से यज्ञ और दक्षिणा नामकी युगल (जुड़वाँ) सन्तान हुई। यज्ञ के दक्षिणा नाम की भार्या से बारह पुत्र उत्पन्न हुए। ये सभी स्वायम्भुव मन्वन्तर में यामदेवता के नाम से प्रसिद्ध हुए ॥ १८-१९ ॥

प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चतस्रो विंशतिस्तथा।
ससर्ज्ज कन्यास्तासान्तु सम्यङ् नामानि मे श्रृणु ॥ २० ॥

दक्षने प्रसूति नामक भार्या में चौबीस कन्याएँ उत्पन्न की। उन सभी का नाम सुनो ॥ २० ॥

श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्म्मेधा क्रिया तथा।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदश ॥ २१ ॥

पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणीः प्रभुः।
ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः ॥ २२ ॥

ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा।
सन्नितिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥ २३ ॥

भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः।
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा ॥ २४ ॥

अत्रिर्व्वशिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्।
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तम ॥ २५ ॥

श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, मेधा, पुष्टि, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, और तेरहवीं कीर्त्ति, इन दक्ष-कन्याओं के साथ धर्म ने विवाह किया। इन तेरहसे छोटी एवं सुन्दर नेत्रवाली शेष ग्यारह कन्याएँ ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्नति, अनसूया, ऊर्ज्जाव, स्वाहा, तथा स्वधा थी। हे मुनिश्रेष्ठ ! भृगु, भव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु , अत्रि, वशिष्ठ, अग्नि और पितर, इन सभी ने क्रमशः ख्याति आदि कन्याओं के साथ विवाह किये ॥ २१-२५ ॥

श्रद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् ।
सन्तोषञ्च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत ॥ २६ ॥

मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं नय विनयमेव च ।
बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ॥ २७ ॥

व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत ।
सुखं सिद्धिर्यशः कीर्त्तिरित्येते धर्म्मसूनवः ॥ २८ ॥

कामान् नन्दा सुतं हर्षं धर्म्मपौत्रमसूयत ।
हिंसा भार्या त्वधर्म्मस्य तस्यां जज्ञे तथानृतम् ।
कन्या च निकृतिस्ताभ्यां भयं नरकमेव च ॥ २९ ॥

श्रद्धा ने काम, लक्ष्मी ने अभिमान, धृति ने नियम, तुष्टि ने सन्तोष, तथा पुष्टि ने लोभ नामक पुत्र को उत्पन्न किया । तथा मेधाने श्रुत, क्रिया ने दण्ड, नय तथा विनय, बुद्धि ने बोध, लज्जा ने विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख, और कीर्ति ने यश को उत्पन्न किया, ये सभी धर्म के पुत्र हैं । रति ने काम से जो पुत्र उत्पन्न किया उसका नाम हर्ष था वह धर्म का पौत्र था । अधर्म की स्त्री का नाम हिंसा था उससे अनृतनामका पुत्र और निकृतिनामकी कन्या उत्पन्न हुई । इन दोनों से भय और नरक नाम के दो पुत्र हुए ॥ २६-२९ ॥

माया च वेदना चैव मिथुनन्त्विदमेतयोः ।
तयोर्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापरिहारिणम् ॥ ३० ॥

वेदना स्वसुतश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥

दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्व्वे चाधर्म्मलक्षणाः ।
नैषां भार्य्यास्ति पुत्रो वा ते सर्व्वे ह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ३२ ॥

रौद्राणि तानि रूपाणि विष्णुर्मुनिवरात्मज ।
नित्यप्रलयहेतुत्वं जगतोऽस्य प्रयान्ति वै ॥ ३३ ॥

दक्षो मरीचिरत्रिश्च भृग्वाद्याश्च प्रजेश्वराः ।
जगत्यत्र महाभाग नित्यसर्गस्य हेतवः ॥ ३४ ॥

मनवो मनुपुत्राश्च भूपा वीर्य्यधनाश्च ये ।
सन्मार्गाभिरताः शूरास्ते नित्यस्थितिकारिणः ॥ ३५ ॥

इन दोनों की पत्नियों का नाम माया और वेदना है । इनमें माया ने समस्त प्राणियों के संहार करने वाला मृत्यु नामक पुत्र उत्पन्न किया । वेदनाने रौरव से दुःखनामक पुत्र उत्पन्न किया और मृत्यु से जरा, व्याधि, शोक, तृष्णा और क्रोध की उत्पत्ति हुई । ये सब अधर्म के रूप हैं (इनसे परिणाम में दुःख होता है) । इसलिये वे 'दुःखोत्तर' नाम से प्रसिद्ध हैं । ये सभी ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) हैं इसलिए इनके स्त्री नहीं है और न पुत्र ही है । हे मुनिकुमार ! ये सभी भगवान् श्रीविष्णु के रौद्ररूप हैं और जगत् के नित्य प्रलय के कारण होते हैं । और इस जगत् के नित्यसर्ग के कारण दक्ष, मरीचि, अत्रि, और भृगु आदि प्रजापति हैं । मनु और मनु के पुत्र जो पराक्रमी वीर और सन्मार्गगामी राजागण हुए वे नित्य स्थिति के कारण हैं ॥३०-३५ ॥

मैत्रेय उवाच ।

येयं नित्या स्थितिर्ब्रह्मन् नित्यसर्गस्तथेरितः ।
नित्याभावाश्च तेषां वै स्वरूपं मम कथ्यताम् ॥ ३६ ॥

पराशर उवाच ।

सर्गस्थितिविनाशांश्च भगवान् मधुसूदनः ।
तैस्तैरूपैरचिन्त्यात्मा करोत्यव्याहतान् विभुः ॥ ३७ ॥

नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको द्विज ।
नित्यश्च सर्व्वभूतानां प्रलयोऽयं चतुर्व्विधः ॥ ३८ ॥

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तत्र यच्छेते जगतः पतिः ।
प्रयाति प्राकृते चैव ब्रह्माण्डं प्रकृतौ लयम् ॥ ३९ ॥

ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि ।
नित्यः सदैव जातानां यो विनाशो दिवानिशम् ॥ ४० ॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे ब्रह्मन् आपने जो यह नित्यस्थिति, नित्य-सृष्टि और नित्य-प्रलय कहा अब उनका स्वरूप कहिये । श्रीपराशर जी बोले—अचिन्त्यात्मा अव्याहतगति (जिनकी गति कही नहीं रुकती) सर्वव्यापक भगवान् श्रीमधुसूदन अनेक रूपों से (मनु आदि के रूपों से) संसार की उत्पत्ति, पालन और विनाश करते हैं । हे द्विज ! समस्त जीवों के लिए नैमित्तिक, प्राकृतिक, आत्यन्तिक और नित्य ये चार प्रकार का प्रलय है । नैमित्तिक प्रलय ही ब्राह्म-प्रलय है, जिसमें जगत्पति श्रीब्रह्माजी कल्पान्त में शयन करते हैं, और प्राकृतिक प्रलय में ब्रह्माण्ड प्रकृति में लीन हो जाता है । ज्ञानसे योगीयों का परब्रह्म में लीन हो जाना ही आत्यन्तिक प्रलय कहा गया है और दिन रात प्राणीयों का विनाश ही नित्य प्रलय कहा जाता है ॥३६-४० ॥

प्रसूतिः प्राकृतेर्या तु सा सृष्टिः प्राकृती स्मृता ।
दैनन्दिनी तथा प्रोक्ता यान्तरप्रलयादनू ॥ ४१ ॥

भूतान्यनुदिनं यत्र जायन्ते मुनिसत्तम ।
नित्यः सर्गः स तु प्रोक्तः पुराणार्थविचक्षणैः ॥ ४२ ॥

एवं सर्व्वशरीरेषु भगवान् भूतभावनः ।
संस्थितः कुरुते विष्णुरुत्पत्तिस्थितिसंयमान् ॥ ४३ ॥

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तयः सर्व्वदेहिषु ।
वैष्णव्यः परिवर्त्तन्ते मैत्रेयाऽहर्निशं सदा ॥ ४४ ॥

गुणत्रयमयं ह्येतद् ब्रह्मन् शक्तित्रयं महत् ।
योऽतियाति स चात्येव परं नावर्त्तते पुनः ॥ ४५ ॥

प्रकृतिसे महत्तत्त्वादि के द्वारा जो सृष्टि होती है वह प्राकृतिक सृष्टि कही गई है । तथा अवान्तर प्रलय के बाद जगत् की उत्पत्ति दैनन्दिन प्रलय कहा जाता है । हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसमें प्रतिदिन प्राणियों की उत्पत्ति होती है उसे पुराणार्थ तत्ववेत्ताओं ने नित्य सर्ग कहा है । इस प्रकार सभी के शरीरों में स्थित भूतभावन भगवान्

श्रीविष्णु उत्पन्न, पालन और संहार करते हैं। हे मैत्रेय ! सम्पूर्ण शरीरों में उत्पत्ति, पालन और विनाश की वैष्णवी शक्ति दिन रात वर्तमान रहती है। हे ब्रह्मन् ! यह महत् शक्तित्रय त्रिगुणात्मक है, और जो इन तीनों शक्तियों को पार कर जाता है वह परमपद को प्राप्त कर लेता है और लौटता नहीं अर्थात् जन्म-मरण के चक्र में नहीं पड़ता ॥४१-४५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में सातवाँ अध्याय समाप्त।

प्रथम अंश - आठवाँ अध्याय

(रौद्रसर्ग और भगवान् तथा लक्ष्मीजी की सर्वव्यापकता का निरूपण)

पराशर उवाच।

कथितस्तामसः सर्गो ब्रह्मणस्ते महामुने।
रुद्रसर्गं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृगु ॥ १ ॥

श्रीपराशर जी बोले—महामुनि ! मैंने यह ब्रह्मा जी का तामस सर्ग कहा ! अब मैं रुद्रसर्ग का वर्णन करता हूँ सुनो ॥ १ ॥

कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतस्ततः।
प्रादुरासीत् प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ॥ २ ॥

रुदन् वै सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विजसत्तम।
किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ॥ ३ ॥

नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिम्।
रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्य मावह ॥ ४ ॥

एवमुक्तः पुनः सोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद वै।
ततोऽन्यानि तदौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः।
स्थानानि चैषामष्टानां पत्नीः पुत्रांश्च वै प्रभुः ॥ ५ ॥

कल्प के आदि में अपने समान पुत्रको ध्यान करते हुए श्री ब्रह्माजी की गोद में नीललोहित (नीला और लाल) वर्णवाला एक कुमार प्रगट हुआ। हे द्विजश्रेष्ठ ! जन्म के बाद ही वह नीललोहित कुमार उच्च-स्वर से रोने लगा और दौड़ने भी लगा, तब ब्रह्माजी ने तुम क्यों रोदन करते हो इस प्रकार उस कुमार को कहा। इसके

बाद उसने ब्रह्मा जी से कहा कि मेरा नाम क्या है ? श्रीब्रह्माजी ने कहा कि तुम्हारा नाम रुद्र है, अब रोदन मत करो, धैर्य धारण करो । ऐसा कहने के बाद भी वह सातवार रोया तब भगवान् ब्रह्माजी ने उनके सात नाम और रखे । इस प्रकार इन आठों रुद्र के स्थान, पत्नियाँ और पुत्रों का भी निर्धारण किया गया ॥३-६ ॥

भवं सर्व्वं महेशानं तथा पशुपतिं द्विज ।
भीममुग्रं महादेवं उवाच स पितामहः ॥ ६ ॥

चक्रे नामान्यथैतानि स्थानान्येषां चकार सः ।
सूर्य्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च ।
दीक्षितो ब्राह्मणः सोम इत्येतास्तनवः क्रमात् ॥ ७ ॥

सुवर्चला तथैवोमा सुकेशी चापरा शिवा ।
स्वाहा दिशस्तथा दीक्षा रोहणी च यथाक्रमम् ॥ ८ ॥

सूर्य्यादीनां नरश्रेष्ठ रुद्राद्यैर्नामभिः सह ।
पत्न्यः स्मृता महाभाग तदपत्यानि मे श्रृणु ।
येषां सूतिप्रसूतैर्वा इदमापूरितं जगत् ॥ ९ ॥

उन सातों के नाम शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव हुए, और ब्रह्माजी ने उनके स्थान भी निश्चित किए सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, आकाश, यज्ञ में दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्रमा ये सभी उनके स्वरूप हैं । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! रुद्र आदि नामों के साथ उन सूर्य आदि मूर्त्तियों को क्रमशः सुवर्चला ऊषा, विकेशी, अपरा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा, रोहिणी नाम की पत्नियाँ कही गई हैं । हे महाभाग ! अब उनके, सन्तानों के विषय में सुनो इनके ही पुत्रपौत्रादिकों से यह जगत् परिपूर्ण हैं ॥६-९ ॥

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजवः ।
स्कन्दः खर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चानुक्रमात् सुताः ॥ १० ॥

एवम्प्रकारो रुद्रोऽसौ सतीं भार्य्यामविन्दत ।
दक्षकोपाच्च तत्याज सा सती स्वं कलेवरम् ॥ ११ ॥

शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान, और बुध ये क्रमशः उसके पुत्र हैं। इस प्रकार से उस रुद्र ने दक्षप्रजापति की पुत्री अनिन्दिता सती के साथ विवाह किया एवं उस सती ने दक्ष पर क्रोधित होकर अपने शरीर का त्याग किया॥ १०-११ ॥

हिमवद्दुहिता साभून्मेनायां द्विजसत्तम।
उपयेमे पुनश्चोमामनन्यां भगवान् भवः॥ १२॥

देवौ धातृविधातारौ भृगोः ख्यातिरसूयत।
श्रियञ्च देवदेवस्य पत्नी नारायणस्य या॥ १३॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! पुनः वही सती मेनाके गर्भ से हिमालय की पुत्री उमा हुई। भगवान् शिव ने उस अनन्यपरायणा उमा के साथ विवाह किया। भृगु की पत्नी ख्याति ने धाता और विधाता नामक देवताओं को और भगवान् श्रीनारायणविष्णु की पत्नी श्री लक्ष्मी जी को जन्म दिया॥१२-१३॥

मैत्रेय उवाच।

क्षीराब्धौ श्रीः समुत्पन्ना श्रूयतेऽमृतमन्थने।
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्नेत्येतदाह कथं भवान्॥ १४॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे भगवन्! सुनते हैं कि अमृतमन्थन के समय क्षीरसमुद्र से श्रीलक्ष्मीजी उत्पन्न हुई। पुनः भृगु की पत्नी ख्याति से लक्ष्मी उत्पन्न हुई यह आपने कैसे कहा? ॥१४॥

पराशर उवाच।

नित्यैव सा जगन्माता विष्णोः श्रीरनपायिनी।
यथा सर्वगतो विष्णुस्तथैवेयं द्विजोत्तम॥ १५॥

अर्थो विष्णुरियं वाणी नीतिरेषा नयो हरिः।
बोधो विष्णुरियं बुद्धिर्धम्मोऽसौ सत्क्रिया त्वियम्॥ १६॥

स्रष्टा विष्णुरियं सृष्टिः श्रीर्भूमिर्भूधरो हरिः।
सन्तोषो भगवान् लक्ष्मीस्तुष्टिर्मैत्रेय शाश्वती॥ १७॥

इच्छा श्रीर्भगवान् कामो यज्ञोऽसौ दक्षिणा तु सा ।
आज्याहुतिरसौ देवी पुरोडाशो जनार्द्दनः ॥ १८ ॥

पत्नीशाला मुने लक्ष्मीः प्राग्वंशो मधुसूदनः ।
चितिर्लक्ष्मीर्हरिर्यूप इध्मा श्रीर्भगवान् कुशः ॥ १९ ॥

सामस्वरूपी भगवानुद्गीतिः कमलालया ।
स्वाहा लक्ष्मीर्जगन्नाथो वासुदेवो हुताशनः ॥ २० ॥

शङ्करो भगवाञ्छौरिर्भूतिर्गौरी द्विजोत्तम ।
मैत्रेय केशवः सूर्य्यस्तत्प्रभा कमलालया ॥ २१ ॥

श्रीपराशर जी बोले—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! श्रीविष्णुभगवान् की यह लक्ष्मीजी जगत् की माता एवं नाशरहित नित्य हैं और जैसे श्रीविष्णु भगवान् सर्वव्यापक हैं वैसे ही श्रीलक्ष्मीजी भी सर्वव्यापिनी हैं । श्रीविष्णु भगवान् अर्थ हैं श्री लक्ष्मीजी वाणी हैं । हरि न्याय हैं श्री लक्ष्मीजी नीति हैं । श्रीविष्णु भगवान् बोध हैं, और ये बुद्धि हैं और वे धर्म हैं, और ये सत्क्रिया हैं । और हे मैत्रेय ! श्री विष्णु भगवान् जगत् के स्रष्टा हैं और श्रीलक्ष्मीजी सृष्टि हैं, भगवान् हरि भूधर हैं और ये भूमि हैं, भगवान् सन्तोषस्वरूप हैं और श्रीलक्ष्मीजी शाश्वत् तुष्टिस्वरूपा हैं । भगवान् काम हैं और श्रीलक्ष्मी जी इच्छा हैं । भगवान् यज्ञ हैं और श्रीलक्ष्मी जी दक्षिणा हैं । श्री जनार्दन पुरोडाश हैं और श्रीलक्ष्मी जी आज्य (घृत) की आहुति हैं । हे मुने ! भगवान् मधुसूदन प्राग्वंश (यजमानगृह) हैं और श्रीलक्ष्मी जी पत्नीशाला हैं । श्री हरि यूप और श्रीलक्ष्मीजी चिति हैं, श्रीभगवान् कुशा और श्रीलक्ष्मीजी इध्मा हैं । भगवान् सामस्वरूप हैं और लक्ष्मी जी उद्गीति हैं, जगत् स्वामी भगवान् वासुदेव अग्नि हैं, और श्रीलक्ष्मीजी स्वाहा हैं । भगवान् श्रीविष्णु शङ्कर स्वरूप हैं और श्रीलक्ष्मी जी पार्वती स्वरूपा हैं । हे मैत्रेय ! भगवान् श्रीकेशव सूर्य और कमल वासिनी श्रीलक्ष्मीजी उनकी कान्ति हैं ॥१५-२१ ॥

विष्णुः पितृगणः पद्मा स्वधा शाश्वततुष्टिदा ।
द्यौः श्रीः सर्व्वात्मको विष्णुरवकाशोऽतिविस्तरः ॥ २२ ॥

शशाङ्कः श्रीधरः कान्तिः श्रीस्तस्थैवानपायिनी ।
धृतिर्लक्ष्मीर्जगच्चेष्टा वायुः सर्व्वत्रगो हरिः ॥ २३ ॥

जलधिर्द्विज गोविन्दस्तद्वेला श्रीर्महामते ।
लक्ष्मीस्वरूपमिन्द्राणी देवेन्द्रो मधुसूदनः ॥ २४ ॥

यमश्चक्रधरः साक्षाद् धूमोर्णा कमलालया ।
ऋद्धिः श्रीः श्रीधरो देवः स्वयमेव धनेश्वरः ॥ २५ ॥

गौरी लक्ष्मीर्महाभागा केशवो वरुणः स्वयम् ।
श्रीर्देवसेना विप्रेन्द्र देवसेनापतिर्हरिः ॥ २६ ॥

अवष्टम्भो गदापाणिः शक्तिर्लक्ष्मीर्द्विजोत्तम ।
काष्ठा लक्ष्मीर्निमेषोऽसौ मुहूर्त्तोऽसौ कला तु सा ॥ २७ ॥

ज्योत्स्ना लक्ष्मीः प्रदीपोऽसौ सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ।
लताभूता जगन्माता श्रीविष्णुर्द्रुमसंस्थितः ॥ २८ ॥
विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः ।
वरप्रदो वरोविष्णुर्वधूः पद्मवनालया ॥ २९ ॥

श्री विष्णु पितृगण तथा श्री लक्ष्मी जी अक्षयपुष्टि देनेवाली स्वधा हैं । श्री विष्णु भगवान् अति विस्तृत सर्वात्मक अवकाश हैं और श्रीलक्ष्मीजी स्वर्गलोक हैं । भगवान् श्रीधर चन्द्रमा हैं श्रीलक्ष्मीजी अक्षय कान्ति हैं । हरि सर्वव्यापक वायु और श्रीलक्ष्मीजी जगत् की गति और धृति (आधार) हैं । हे महामुने ! श्रीगोविन्द समुद्र हैं और श्रीलक्ष्मी जी उसकी तीर हैं, भगवान मधुसूदन इन्द्र हैं और श्रीलक्ष्मीजी इन्द्राणी हैं । चक्रधारी भगवान् श्रीविष्णु यम हैं और श्रीलक्ष्मी जी उनकी पत्नी धूमोर्णा हैं । भगवान् श्रीविष्णु साक्षात् कुबेर और श्रीलक्ष्मी जी ऋद्धि हैं । श्रीकेशव भगवान् स्वयं वरुण हैं और महाभागा श्रीलक्ष्मीजी गौरी हैं । श्रीहरि देवताओं के सेनापति स्वामी कार्त्तिकेय हैं और श्रीलक्ष्मीजी देवसेना हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! गदापाणि भगवान् श्रीविष्णु अवष्टम्भ (आश्रय) हैं और श्रीलक्ष्मीजी शक्ति हैं । श्रीविष्णु भगवान् निमेष हैं और श्रीलक्ष्मीजी काष्ठा हैं, तथा भगवान् मुहूर्त हैं और श्रीलक्ष्मीजी कला हैं । सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि प्रदीप हैं और श्रीलक्ष्मीजी ज्योति हैं । श्रीविष्णु भगवान् वृक्षस्वरूप हैं और जगन्माता श्रीलक्ष्मी जी लतास्वरूपिणी हैं । चक्र एवं गदाधारण करने वाले देव श्रीविष्णु दिन हैं और श्रीलक्ष्मीजी रात्रि हैं । वरदाता श्रीविष्णु भगवान् वर हैं और श्रीलक्ष्मी जी वधू हैं ॥२२-२९ ॥

नदस्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदीरूपसंस्थितिः ।
ध्वजश्च पुण्डरीकाक्षः पताका कमलालया ॥ ३० ॥

तृष्णा लक्ष्मीर्जगत्स्वामी लोभो नारायणः परः ।
रति-रागौ च धर्मज्ञ लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ॥ ३१ ॥

किञ्चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते ।
देवतिर्य्यङ्मनुष्यादौ पुंनाम्नि भगवान् हरिः ।
स्त्रीनाम्नि लक्ष्मीर्मैत्रेय नानयोर्विद्यते परम् ॥ ३२ ॥

भगवान् श्रीविष्णु नदस्वरूप हैं श्रीलक्ष्मीजी नदीस्वरूपा हैं । कमलनयन भगवान् श्रीविष्णु ध्वज हैं और कमलवासिनी श्रीलक्ष्मी जी पताका हैं । जगन्नाथ परमात्मा श्री नारायण लोभ हैं और श्रीलक्ष्मीजी तृष्णा हैं । हे मैत्रेय ! रति और राग भी लक्ष्मी एवं गोविन्दस्वरूप ही हैं । अधिक कहना व्यर्थ है संक्षेप में इतना ही कहता हूं कि देवता, तिर्यक् और मनुष्य आदि में पुरुषनामक सब भगवान् हरि हैं और स्त्रीनामक सभी लक्ष्मी हैं इनके परे और कोई दूसरा नहीं हैं ॥३०-३२ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में आठवाँ अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - नवाँ अध्याय

(समुद्रमन्थन की कथा और इन्द्र द्वारा लक्ष्मीजी की स्तुति)

पराशर उवाच।

इदञ्च शृणु मैत्रेय यत् पृष्टोऽहमिह त्वया।
श्रीसम्बद्धं मया ह्येतच्छ्रुतमासीन्मरीचितः ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय जी ! तुमने अभी जो पूछा है वह श्रीलक्ष्मीजी सम्बन्धी इतिहास मैंने भी मरीचि मुनि से सुना था वह सुनो ॥ १ ॥

दुर्व्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार पृथिवीमिमाम्।
स ददर्श स्रजं दिव्यामृषिर्विद्याधरीकरे ॥ २ ॥

सन्तानकानामखिलं यस्या गन्धेन वासितम्।
अतिसेव्यमभूद् ब्रह्मन् तद्वनं वनचारिणाम् ॥ ३ ॥

उन्मत्तव्रतधृग् विप्रस्तां दृष्ट्वा शोभनां स्रजम्।
तां ययाचे वरारोहां विद्याधरवधूं ततः ॥ ४ ॥

याचिता तेन तन्वङ्गी मालां विद्याधराङ्गना।
ददौ तस्मै विशालाक्षी सादरं प्रणिपत्य च ॥ ५ ॥

तामादायात्मनो मूर्ध्नि स्रजमुन्मत्तरूपधृक्।
कृत्वा स विप्रो मैत्रय परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ ६ ॥

श्रीशङ्करजी के अंशावतार दुर्वासा ऋषि इस पृथिवीपर विचरण करते थे। उस समय उन्होंने एक विद्याधरी के हाथ में सन्तानकपुष्पों की एक दिव्य माला देखी। हे ब्राह्मण ! उस पुष्प की सुगन्ध से सुवासित समस्त वन वनवासियों के लिए बहुत सेवनीय था। उन्मत्तव्रतधारी उस ब्राह्मण ने उस सुन्दर माला को देखकर

विद्याधरी से उसकी याचना की । उनके माँगने पर बड़े बड़े आँखों वाली और कुशाङ्गी विद्याधर वधू ने मुनि को बडे आदर के साथ वह माला दे दी । हे मैत्रेय ! उन्मत्तवेषधारी ब्राह्मण दुर्वासा जी ने उस माला को लेकर अपने मस्तकपर रख लिया और पृथ्वी पर भ्रमण करने लगे ॥२-६ ॥

स ददर्श समायान्तमुन्मत्तैरावतस्थितम् ।
त्रैलोक्याधिपतिं देवं सह देवैः शचीपतिम् ॥ ७ ॥

तामात्मनः स शिरसः स्त्रजमुन्मत्तषट्पदाम् ।
आदायामरराजाय चिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः ॥ ८ ॥

गृहीत्वामरराजेन स्त्रगैरावतमूर्द्धनि ।
न्यस्ता रराज कैलासशिखरे जाह्नवी यथा ॥ ९ ॥

मदान्धकारिताक्षोऽसौ गन्धाकृष्टेन वारणः ।
करेणाघ्राय चिक्षेप तां स्त्रजं धरणीतले ॥ १० ॥

ततश्चुक्रोध भगवान् दुर्वासा मुनिसत्तमः ।
मैत्रेय देवराजं तं क्रुद्धश्चैतदुवाच ह ॥ ११ ॥

दुर्वासा उवाच ।

ऐश्वर्यमत्त दुष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसि वासव ।
श्रियो धाम स्त्रजं यस्त्वं मद्दत्तां नाभिनन्दसि ॥ १२ ॥

प्रसाद इति नोक्तं ते प्रणिपातपुरःसरम् ।
हर्षोत्फुल्लकपोलेन न चापि शिरसा धृता ॥ १३ ॥

मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे ।
त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति ॥ १४ ॥

ठीक इसी समय उन्होंने उन्मत्त ऐरावत हाथी पर स्थित होकर आते हुए त्रिलोकी के अधिपति इन्द्र को देखा । इसके बाद मुनि दुर्वासा ने गन्धाकृष्टभ्रमरयुक्त उस माला को अपने सिर से उतार कर उन्मत्त के समान इन्द्र के ऊपर फेंक दी । इन्द्र ने भी उस माला को लेकर ऐरावत हाथी के मस्तक पर रख दी, उस समय वह माला

ऐरावत के शिर पर कैलास पर्वत के शिखर पर श्रीगंगाजी के समान सुशोभित होने लगी । मदान्ध ऐरावत ने गन्ध से आकृष्ट होकर उस माला को अपनी सूंढ़ से खीचकर सूंघ लिया और उसे पृथ्वी पर फेंक दिया । हे मैत्रेय ! उसके बाद मुनिश्रेष्ठ भगवान् दुर्वासा क्रोधित हो गये । और क्रुद्ध होकर देवराज से बोले—ऐश्वर्यमत्त ! दुरात्मन् ! इन्द्र ! तुम अत्यन्त ढीठ है, जो कि श्रीलक्ष्मी जी के निवासभूत और मेरे द्वारा दी गयी इस माला का आदर नहीं करते हो । माला देने पर तुमने नमस्कारपूर्वक 'यह प्रसाद है' ऐसा नहीं कहा ! और हर्षोत्फुल्लमुख से इसे शिर पर धारण भी नहीं किया । हे मूढ ! तुमने मेरे द्वारा दी गयी माला का सम्मान नहीं किया, अतएव तुम्हारी तीनों लोकों की लक्ष्मी विनाश को प्राप्त हो जायेगी ॥७-१४ ॥

मां मन्यतेऽन्यैः सदृशं न्यूनं शक्र भवान् द्विजैः ।
अतोऽवमानमस्माकं मानिना भवता कृतम् ॥ १५ ॥

मद्दत्ता भवता यस्मात् क्षिप्ता माला महीतले ।
तस्मात् प्रनष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति ॥ १६ ॥

यस्य सञ्जातकोपस्य भयमेति चराचरम् ।
तं त्वं मामतिगर्वेण देवराजावमन्यसे ॥ १७ ॥

दुर्वासा बोले—तू मुझे अन्य ब्राह्मणों के समान समझते हो इसीलिए अभिमानी तुमने मेरा अपमान किया है । जिस कारण से तूने मेरी दी हुई माला भूतल पर फेंका है अतएव तुम्हारे तीनों लोक लक्ष्मी विहीन हो जाये । देवराज ! क्रोधित मुझसे (दुर्वासा) चराचर जगत् भयभीत होता है और अभिमानवशतूने मेरा अपमान किया ॥१५-१७ ॥

महेन्द्रो वारणस्कन्धादवतीर्य्य त्वरान्वितः ।
प्रसादयामास तदा दुर्वाससमकल्मषम् ॥ १८ ॥

प्रसाद्यमानः स तदा प्रणिपातपुरःसरम् ।
प्रत्युवाच सहस्राक्षं दुर्व्वासा मुनिसत्तमः ॥ १९ ॥

नाहं कृपालुहृदयो न च मां भजते क्षमा ।
अन्ये ते मुनयः शक्र दुर्व्वाससमवेहि माम् ॥ २० ॥

गौतमादिभिरन्यैस्त्वं गर्व्वमापादितो मुधा।
अक्षान्तिसारसर्वस्वं दुर्वाससमवेहि माम्॥ २१॥

वसिष्ठाद्यैर्दयासारैः स्तोत्रं कुर्व्वद्भिरुच्चकैः।
गर्व्वं गतोऽसि येनैवं मामप्यद्यावमन्यसे॥ २२॥

श्रीपराशर जी बोले—तब इन्द्र हाथी पर से शीघ्रतापूर्वक उतर कर निष्पाप दुर्वासा मुनि को प्रसन्न करने लगे। प्रणामपूर्वक इन्द्र के द्वारा प्रसन्न किये जाते हुए मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा जी इन्द्र से बोले। हे इन्द्र! मैं दयालुहृदय नहीं हूँ और मेरे पास क्षमा भी नहीं है। अन्य मुनिगण दयालु और क्षमाशील होते हैं किन्तु मुझे दुर्वासा समझो। गौतमादि अन्य मुनियों ने तुझे व्यर्थ ही घमण्डी बना दिया है किन्तु जिसका मुख्य तत्त्व अक्षम ही है मुझे वही दुर्वासा जानो। दयासार और बड़ी बड़ी स्तुति करने वाले वसिष्ठ आदि मुनियों ने व्यर्थ ही तुझे घमण्डी बना दिया है अत एव तुम आज मेरा भी अपमान करते हो॥१८-२२॥

ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम्।
निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम्॥ २३॥

नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शत्कतो।
विड़म्बनामिमां भूयः करोष्यनुनयात्मिकाम॥ २४॥

इस त्रिलोकी में ऐसा कौन है जो प्रज्वलित जटा कलापवाले तथा टेढ़ी भ्रुकुटियुक्त मेरे इस मुखको देखकर भयभीत न हो जाय। हे इन्द्र! मैं क्षमा नहीं करूंगा ज्यादा करने से क्या होगा बारम्बार प्रार्थना विडम्बना मात्र है॥ २३-२४॥

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवराजोऽपि तं पुनः।
आरुह्यैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम्॥ २५॥

ततः प्रभृति निःश्रीकं सशक्रं भुवनत्रयम्।
मैत्रेयासीदपध्वस्तं संक्षीणौषधिवीरुधम्॥ २६॥

न यज्ञाः संप्रवर्त्तन्ते न तपस्यन्ति तापसाः।
न च दानादिधर्मेषु मनश्चक्रे तदा जनः॥ २७॥

निःसत्त्वा सकला लोका लोभाद्युपहतेन्द्रियाः ।
स्वल्पेऽपि हि बभूवुस्ते साभिलाषा द्विजोत्तम ॥ २८ ॥

यतः सत्त्वं ततो लक्ष्मीः सत्त्वं भूत्यनुसारि च ।
निःश्रीकाणां कुतः सत्त्वं विना तेन गुणाः कुतः ॥ २९ ॥

बलशौर्य्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्व्विना ।
लङ्घनीयः समस्तस्य बलशौर्य्यविवर्जितः ॥ ३० ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार कह कर वह ब्राह्मण दुर्वासाजी चले गये और देवराज इन्द्र भी ऐरावत हाथी पर चढ़कर अमरावती में चले गये ।

हे मैत्रेय ! उसी समय से इन्द्र के साथ तीनों लोक लक्ष्मी विहीन और औषधि एवं लताओं के भीक्षीण हो जाने से विनाश को प्राप्त होने लगा । यज्ञ बन्द हो गये । तपस्वियों ने तपस्या छोड़ दी और लोगों का मन भी दान आदि धर्मों में नहीं रहा । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! समस्त लोक लोभ आदि में लग जाने से निःसत्त्व हो गये तथा छोटी-छोटी चीजों के लिये भी लालायित होने लगे । जहाँ सत्त्व होता है वहीं श्रीलक्ष्मी निवास करती है क्योंकि सत्त्व भी लक्ष्मी जी का ही अनुसरण करने वाला है । जिनके पास लक्ष्मीजी नहीं उनके पास सत्त्व (सामर्थ्य) कहाँ है और सत्त्व के बिना गुण भी कहाँ से रहेगा ? तथा गुणों के बिना बल, पराक्रम आदि का भी अभाव हो जाता है । बल पराक्रम हीन पुरुष सभी से अपमानित होता है ॥२५-३० ॥

भवत्यपध्वस्तमतिर्लङ्घितः प्रथितः पुमान् ।
एवमत्यन्तनिःश्रीके त्रैलोक्ये सत्त्ववर्ज्जिते ॥ ३१ ॥

अपमानित पुरुष प्रतिष्ठित होने पर भी बुद्धिहीन बन जाता है ॥ ३१ ॥

देवान्प्रति बलोद्योगं चक्रु दैतेयदानवाः ।
लोभाभिभूता निःश्रीका दैत्याः सत्त्वविवर्जिताः ॥ ३२ ॥

श्रिया विहीनैर्निःसत्त्वैर्देवैश्चक्रुस्ततो रणम् ।
विजितास्त्रिदशा दैत्यैरिन्द्राद्याः शरणं ययुः ॥ ३३ ॥

पितामहं महाभागं हुताशनपुरोगमाः ।
यथावत् कथितो देवैर्ब्रह्मा प्राह ततः सुरान् ॥ ३४ ॥

परापरेशं शरणं व्रजध्वमसुरादर्दनम् ।
उत्पत्तिस्थितिनाशानामहेतुं हेतुमीश्वरम् ॥ ३५ ॥

प्रजापतिपतिं विष्णुमनन्तमपराजितम् ।
प्रधानपुंसोरजयोः कारणं कार्य्य भूतयोः ॥ ३६ ॥

प्रणतार्त्तिहरं विष्णुं स वः श्रयो विधास्यति ।

एवभुक्तवा सुरान् सर्व्वान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
क्षीरोदस्योत्तरं तीरं तैरेव सहितो ययौ ॥ ३७ ॥

इस प्रकार त्रिलोकी के लक्ष्मी विहीन और सामर्थ्य रहित हो जाने पर दैत्य एवं दानवों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया । लक्ष्मी एवं सामर्थ्यशून्य होते हुए भी दैत्यों ने सामर्थ्य लक्ष्मी विहीन देवगण को पराजित कर दिया । दैत्यों से पराजित इन्द्रादि देवगण अग्निको आगे करके महाभाग श्रीब्रह्माजी की शरण में पहुँचे, देवताओं से समस्त वृतान्त यथावत् सुनकर ब्रह्माजी ने देवताओं को कहा, ब्रह्माजी बोले—तुमलोग परात्पर ईश्वर दैत्यों के संहारक (संसार के) उत्पत्ति, पालन और विनाश के कारण तथा स्वयं अकारण (अजन्मा) प्रजापति के भी पति, अनन्त जिनका अन्त नहीं, कार्यरूप में परिणत हुए प्रधान (मूलप्रकृति) और पुरुष के कारण प्रजागण के कष्टों को हरण करने वाले श्रीविष्णु भगवान् की शरण में जाओ वही तुम लोगों का कल्याण करेंगे । पराशर जी बोले—लोक पितामह श्रीब्रह्मा जी देवताओं को ऐसा कहकर और उन लोगों को साथ में लेकर क्षीरसागर के उत्तरतट पर गये ॥३२-३७ ॥

स गत्वा त्रिदशैः सर्व्वैः समवेतः पितामहः ।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परातत्परपतिं हरिम् ॥ ३८ ॥

सभी देवगण के साथ ब्रह्मा जी ने वहाँ पहुंचकर उत्तम एवं अधम के ईश्वर हरि की अति मङ्गलमय वचनों से प्रार्थना की ॥ ३८ ॥

नमाम सर्व्वं सर्व्वेशमनन्तमजमव्ययम् ।
लोकधामधराधारमप्रकाशमभेदिनम् ॥ ३९ ॥

नारायणमणीयांसमशेषाणानणीयसाम् ।
समस्तानां गरिष्ठं यद् भूरादीनां गरीयसाम् ॥ ४० ॥

यत्र सर्व्वं यतः सर्व्वमुत्पन्नं सत्पुरःसरम् ।
सर्व्वभूतश्च यो देवः पराणामपि यः परः ॥ ४१ ॥

परः परस्मात् पुरुषात् परमात्मस्वरूपधृक् ।
योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ मुक्तिहेतुर्म्मुक्षुभिः ॥ ४२ ॥

सत्तादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः ।
स शुद्धः सर्व्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु ॥ ४३ ॥

कला-काष्ठा-निमेषादिकालसूत्रस्य गोचरे ।
यस्य शक्तिर्न शुद्धस्य प्रसीदतु स नो हरिः ॥ ४४ ॥

प्रोच्यते परमेशो हि यः शुद्धोऽप्युपचारतः ।
प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सर्व्वदेहिनाम् ॥ ४५ ॥

ब्रह्माजी बोले—सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, अनन्त, अजन्मा अविनाशी, त्रिलोकी के सभी प्रभावशालियों के (इन्द्रादि के) भी आश्रय, भेद रहित (अद्वितीय) , समस्त अणुवस्तुओं से भी अणु एवं गुरुवस्तुओं से भी गुरु नारायण को नमस्कार करते हैं। जिसमें मेरे सहित समस्त जगत् स्थित है, तथा जिससे मेरे सहित अशेष जगत् उत्पन्न हुआ है, और जो देव सर्वभूतस्वरूप एवं प्रधानों के भी प्रधान है, परमात्मा-स्वरूप है मुक्ति की इच्छा वाले योगियों द्वारा मुक्तिलाभ के लिए जिनका चिन्तन किया जाता है जिस ईश्वर में सत्त्वादि प्राकृत गुण नहीं है वह समस्त शुद्धवस्तुओं से शुद्ध आदिपुरुष भगवान् प्रसन्न हों। जिस शुद्धस्वरूप भगवान श्रीविष्णुकी शक्ति (विभूति) कला, काष्ठा, मुहूर्त, प्रहर आदि समय के विषयभूता नहीं है वे भगवान् हम लोगों पर प्रसन्न हों। जो भगवान् शुद्धस्वरूप होकर भी उपचार से परमेश्वर परमा महालक्ष्मी के ईश कहे जाते हैं वह समस्त देहधारियों के आत्मा श्रीविष्णु भगवान् प्रसन्न हों ॥३९-४५ ॥

यः कारणञ्च कार्य्यञ्च कारणस्यापि कारणम् ।
कार्य्यस्यापि च यः कार्य्यं प्रसीदतु स नो हरिः ॥ ४६ ॥

कार्य्यकार्य्यश्यो यः कार्य्यं तत्कार्यस्यापि यः स्वयम् ।
तत्कार्य्यकार्य्यभूतो यस्तश्च प्रणताः स्म तम् ॥ ४७ ॥

कारणं कारणस्यापि तस्य कारणकारणम् ।
तत्कारणानां हेतुं त्वां प्रणताः स्म सुरेश्वरम् ॥ ४८ ॥

भोक्तारं भोज्यभूतञ्च स्रष्टारं सृस्टमेव च ।
कार्य्यं कर्म्मस्वरूपं तं प्रणताः स्म परं पदम् ॥ ४९ ॥

विशुद्धं बोधनं नित्यमजमक्षयमव्ययम् ।
अव्यक्तमविकारं यत् तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ५० ॥

न स्थूलं न च सूक्ष्मं यन्न विशेषणगोचरम् ।
तत्पदं परमं विष्णोः प्रणमामः सदामलम् ॥ ५१ ॥

जो कारण एवं कार्य हैं तथा कारण के भी कारण तथा कार्य के भी कार्य हैं वह श्रीविष्णु भगवान् हम लोगों पर प्रसन्न हों । जो कार्य (प्रकृति) के भी कार्य (महत्तत्व) उसका भी कार्य (भूतसूक्ष्मवर्ग) तथा उसका भी कार्य (ब्रह्माण्ड) उसका भी कार्य (ब्रह्मदक्षादिगण) हैं । उनसे उत्पन्न उनके पुत्रपौत्रादिस्वरुप श्रीविष्णु भगवान् को हम प्रणाम करते हैं । तथा जो जगत् के कारण (अर्वाक्सृष्टि ब्रह्मादि) उसका भी कारण (ब्रह्माण्ड) उसका कारण (पञ्च महाभूत) उसका कारण (भूतसूक्ष्म) इन भूतसूक्ष्मों के भी कारण हैं उस परमेश्वर को हम प्रणाम करते हैं । जो भोक्ता (भोग करने वाले भोज्य (भोग करने योग्य) तथा उत्पादक (उत्पन्न करने वाले) एवं उत्पाद्य (उत्पन्न करने योग्य) अथच जो कर्ता और कार्यरूप भी स्वयं—है उस परमपद को हम प्रणाम करते हैं । जो विशुद्ध बोध (ज्ञान) स्वरूप, नित्य, अजन्मा, अक्षय, अविनाशी, अव्यक्त और विकार रहित है वही श्रीविष्णु-भगवान का परमपद है । जो स्थूल सूक्ष्म एवं किसी दूसरे विशेषण के योग्य नहीं है वही श्रीविष्णु भगवान का सर्वदा निर्मल परमपद है हम उसको प्रणाम करते हैं ॥४६-५१ ॥

यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता ।
परं ब्रह्मस्वरूपं यत् प्रणमामस्तमव्ययम् ॥ ५२ ॥

यन्न देवा न मुनयो च चाहं न च शंकरः।
जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परम पदम्॥ ५३॥

यद् योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम्।
पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ५४॥

शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवादिकाः।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ५५॥

सर्व्वेश सर्व्वभूतात्मन् सर्व्व सर्वाश्रयाच्युत।
प्रसीद विष्णो भक्तानां व्रज नो दृष्टिगोचरम्॥ ५६॥

जिसके अयुतांश (दश हजार के एक अंश) के अयुतांश में यह विश्व-रचना की शक्ति विराजमान है तथा जो परब्रह्मस्वरूप एवं अविनाशी है उस श्रीविष्णु भगवान् को हम प्रणाम करते हैं। जिसको देवगण, मुनिजन, शिव और मैं कोई भी नहीं जानते वही परमेश्वर श्रीविष्णु भगवान् का परमपद है। सद-युक्त योगिजन अपने पुण्य और पाप को नाश हो जाने पर (पुण्य पाप को नाश होने से किसी प्रकार के प्रतिबन्धक न रहने के कारण) प्रणव (ओंकार) में स्थित होकर जिस परमपद का दर्शन करते हैं वही श्रीविष्णु भगवान का परमपद है। जिससे पहले कोई नहीं हुआ (अर्थात् जो अनादि है) तथा जिस देव की ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवरूप शक्तियां हैं वही श्रीविष्णु भगवान् का परमपद है। हे सर्वेश्वर ! हे सर्वभूतात्मस्वरूप ! हे सर्वरूप ! हे सर्वाधार ! हे विष्णो ! प्रसन्न होकर हम लोगों को दर्शन दीजिए ॥५२-५६ ॥ !

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मणस्त्रिदशास्ततः।
प्रणम्योचुः प्रसीदेति व्रज नो दृष्टिगोचरम्॥ ५७॥

यन्नायं भगवान् ब्रह्मा जानाति परमं पदम्।
तन्नताः स्म जगद्धाम तव सर्व्वं गताच्युत॥ ५८॥

श्री पराशर जी बोले—ब्रह्मा के इन उद्गारों को सुनने के पश्चात् देवगण भी नमस्कार करके बोले—हे भगवन् हम लोगों को दर्शन दीजिए। हे जगद्धाम ! हे सर्वव्यापी ! हे अच्युत ! जिसको यह ब्रह्मा जी भी नहीं जानते आपके उस परमपद को हम लोग प्रणाम करते हैं ॥५७-५८ ॥

इत्यन्ते वचसस्तेषां देवानां ब्रह्मणस्तथा ।
ऊचुर्देवर्षयः सर्व्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥ ५९ ॥

आद्यो यज्ञपुमानिड्यो यः सर्व्वेषाञ्च पूर्व्वजः ।
तं नताः स्म जगत्स्रष्टुः स्रष्टारमविशेषणम् ॥ ६० ॥

भगवन् भूतभव्येश जगन्मूर्त्तिधराव्यय ।
प्रसीद प्रणतानां त्वं सर्व्वेषां देहि दर्शनम् ॥ ६१ ॥

एष ब्रह्मा तथैवायं सह रुद्रैस्त्रिलोचनः ।
सर्वादित्यैः समं पूषा पावकोऽयं सहाग्निभिः ॥ ६२ ॥

अश्विनौ वसवश्चेमे सर्व चैते मरुद्गणाः ।
साध्या विश्वे तथा देवा देवेन्द्रश्चायमीश्वरः ॥ ६३ ॥

प्रणामप्रवणा नाथ दैत्यसैन्यपराजिताः ।
शरणं त्वामनुप्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ॥ ६४ ॥

इस प्रकार देवगण एवं ब्रह्माजी की स्तुति के बाद बृहस्पति आदि सभी देवर्षिगण भी स्तुति करने लगे । जो परम प्रार्थनीय आदि यज्ञपुरूष हैं और पूर्वजों के भी पूर्वज हैं उन विशेषणरहित जगत् के निर्माता के प्रति हम लोग प्रणाम करते हैं । हे भूतभव्येश यज्ञमूर्त्तिधर भगवन ! हे अव्यय ! हम सब शरणागतों पर आप प्रसन्न हो जाइये और दर्शन दीजिए । हे नाथ ! यह ब्रह्मा जी तथा ग्यारह रूद्रों के साथ त्रिलोचन भगवान् शिव, बारहों आदित्यों के साथ पूषा (सूर्य), अग्नियों के साथ पावक और दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसुगण, सभी देवगण, साध्य, विश्वेदेव और यह इन्द्र इस प्रकार समस्त देवतागण दैत्य सेना से पराजित होकर एवं अति नम्र होकर आपकी शरण में उपस्थित हैं ॥५९-६४ ॥

एव संस्तूयमानस्तु भगवाञ्छङ्खचक्रधृक् ।
जगाम दर्शनं तेषां मैत्रेय परमेश्वरः ॥ ६५ ॥

तं दृष्ट्वा ते तदा देवाः शङ्खचक्रगदाधरम् ।
अपूर्व्वरूपसंस्थानं तेजसां राशिमूर्ज्जितम् ॥ ६६ ॥

श्री पराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! ब्रह्मा आदि देवगणों से इस प्रकार स्तुति किये जाने पर शंख-चक्रधारी भगवान् परमेश्वर उनके सामने प्रगट हो गये । तब शंख, चक्र और गदा को धारण करने वाले अपूर्व आकृति वाले तेजःपुञ्जमय उन कमलनेत्र भगवान् को देख कर क्षोभ से चकित नेत्रवाले ब्रह्मा आदि देवतागण प्रणाम करके नम्रतापूर्वक स्तुति करने लगे ॥ ६५-६६ ॥

प्रणम्य प्रणताः पूर्व्वं संक्षोभस्तिमितेक्षणाः ।
तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं पितामहपुरोगमाः ॥ ६७ ॥

नमो नमोऽविशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक् ।
इन्द्रस्त्वमग्निः पवनो वरुणः सविता यमः ॥ ६८ ॥

वसवो मरुतः साध्या विश्वे देवगणा भवान् ।
योऽयं तवागतो देव समीपं देवतागणः ॥ ६९ ॥

स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्व्वगतो भवान् ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः प्रजापतिः ॥ ७० ॥

वेद्यावेद्यञ्च सर्व्वात्मंस्त्वन्मयञ्चाखिलं जगत् ।
त्वामत्र शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्ज्जिताः ॥ ७१ ॥

वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजस्याप्यायवस्व नः ।
तावदार्त्तिस्तथा वाञ्छा तावन्मोहस्तथासुखम् ॥ ७२ ॥

यावन्नायाति शरणं त्वामशेषाघनाशनम् ।
त्वं प्रसादं प्रसन्नात्मन् प्रपन्नानां कुरुष्व नः ॥ ७३ ॥

तेजसां नाथ सर्वेषां स्वशक्तयाप्यायनं कुरु ॥ ७४ ॥

एवं संस्तूयमानस्तु प्रणतैरमरैर्हरिः ।
प्रसन्नदृष्टिर्भगवानिदमाह स विश्वकृत् ॥ ७५ ॥

तेजसो भवतां देवाः करिष्याम्युपबृंहणम् ।
वदाम्यहं यत् क्रियतां भवद्भिस्तदिदं सुराः ॥ ७६ ॥

आनीय सहिता दैत्यैः क्षीराब्धौ सकलौषधीः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम् । ७७ ॥

मथ्यताममृतं देवाः सहाये मय्यवस्थिते ।
सामपूर्व्वञ्च दैतेयास्तत्र साहाय्यकर्मणि ॥ ७८ ॥

सामान्यफलभोक्तारो यूयं वाच्या भविष्यथ ।
मथ्यमाने च तत्राब्धौ यत् समुत्पद्यतेऽमृतम् ॥ ७९ ॥

तत्पानाद् बलिनो यूयममराश्च भविष्यथ ।
तथा चाहं करिष्यामि यथा त्रिदशविद्विषः ।
न प्राप्स्यन्त्यमृतं देवाः केवलं क्लेशभागिनः ॥ ८० ॥

इत्युक्तवा देवदेवेन सर्व्व एव ततः सुराः ।
सन्धानमसुरैः कृत्वा यत्नवन्तोऽमृतेऽभवन् ॥ ८१ ॥

नानौषधीः समानीय देव-दैतेयदानवाः ।
क्षिप्त्वा क्षीराब्धिपयसि शरदभ्रामलत्विषि ॥ ८२ ॥

मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ।
ततो मथितुमारब्धा मैत्रैय तरसामृतम् ॥ ८३ ॥

देवगण बोले—हे भगवन् ! आपको नमस्कार है, । आप ही शुद्ध परमात्मा हैं, आप ही ब्रह्मा है, आप ही शिव हैं, और इन्द्र, अग्नि, वायु, वरूण, सूर्य, यमराज, वसुगण, मरूद्गण, साध्य और विश्वेदेवगण भी आप ही हैं । हे भगवन् ये देवगण आपके सम्मुख उपस्थित हैं वह भी आप ही हैं, क्योंकि जगत् के उत्पादक आप सर्वव्यापी हैं आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार हैं, और आप ही ओंकार तथा प्रजापति हैं । हे सर्वात्मन ! आप ही वेद्य (जानने योग्य) एवं अवेद्य (अज्ञेय) हैं तथा यह समस्त जगत् त्वन्मय है (अर्थात् सम्पूर्ण संसार में आप ही व्याप्त हैं । हे सर्वात्मन ! हे विष्णो ! दैत्यों से पराजित हम लोग आतुर होकर आपकी शरण में आये हैं आप प्रसन्न होइये और अपनी शक्ति से हम लोगों को शक्ति सम्पन्न कीजिये । हे भगवन् ! पुरूष में दीनता, इच्छा, मोह और दुःख तभी तक रहते हैं जब तक समस्त पापों के नाश करने वाले आपकी शरण में वह नहीं जाता । हे

प्रसन्नात्मन् ! शरण में आये हुए हम सबों पर प्रसन्न होइये । हे नाथ ! अपनी शक्ति से हम सबों की शक्ति को बढ़ाइये । श्री पराशरजी बोले—प्रणत देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर विश्वकर्ता भगवान श्रीहरि प्रसन्न होकर बोले । श्री भगवान् बोले—हे देवगण ! आप लोगों की शक्ति को मैं फिर से बढ़ाऊंगा । हे सुरगण ! मैं जो कहता हूं उसे आप लोग करें । दैत्यों के साथ आप लोग समस्त औषधियाँ लाकरं अमृत के लिए क्षीर समुद्र में डाल दीजिये तथा मन्दराचल को मथानी और वासुकिनाग को रस्सी बनाकर उसको दैत्य और दानवों के साथ मिलकर मेरी साहाय्य से उसको मथकर अमृत प्राप्त कीजिए । आप सब दैत्यों से शान्तिपूर्वक कहिये कि आप लोग इस कार्य में सहायता कीजिए तथा फल में आप लोगों को भी बराबर भाग मिलेगा । समुद्र को मथन करने पर उससे जो अमृत प्राप्त होगा उसे पीने से आप लोग बलिष्ठ और अमर हो जायेंगें और हे देवगण ! मैं वैसा कार्य करूंगा जिससे देवताओं के शत्रु (दैत्य दानव) अमृत न पावे किन्तु वे कलेश के भागीदार बने । श्री पराशर जी बोले—तब देवों के देव भगवान् श्रीविष्णु द्वारा ऐसा कहे जाने पर देवगण असुरों के साथ सन्धि करके अमृत प्राप्ति के लिए यत्न करने लगे । हे मैत्रेय ! देव, दानव तथा दैत्यों ने नाना प्रकार की औषधियां लाकर शरद् कालीन आकाश के समान स्वच्छ कान्तिवाले क्षीर समुद्र में डाल दिया तथा मन्दराचल को मथानी और वासुकी को रस्सी बनाकर बड़े जोर से मथना आरम्भ किया ॥६७-८३ ॥

विबुधाः सहिताः सर्व्वे यतः पुच्छं ततः कृताः ।
कृष्णेन वासुकेर्दैत्याः पूर्व्वकाये निवेशिताः ॥ ८४ ॥

ते तस्य फणनिःश्वास-वह्निनापहतत्त्विषः ।
निस्तेजसोऽसुराः सर्व्वे बभुवुरमितद्यु ते ॥ ८५ ॥

तेनैव मुखनिःश्वास-वायुनास्तबलाहकैः ।
पुच्छप्रदेशे वर्षद्भिस्तथा चाप्यायिताः सुराः ॥ ८६ ॥

क्षीरोदमध्ये भगवान् कूर्म्मरूपी स्वयं हरिः ।
मन्थनाद्रे रधिष्ठानं भ्रमतोऽभून्महामुने ॥ ८७ ॥

रूपेणान्येन देवानां मध्ये चक्रगदाधरः ।
चकर्ष भोगिराजानं दैत्यमध्येऽपरेण च ॥ ८८ ॥

उपर्य्याक्रान्तवान् शैलं बृहदरूपेण केशवः ।
तथापरेण मैत्रय यन्न दृष्टं सुरासुरैः ॥ ८९ ॥

तेजसा नागराजानं तथाप्यायितवान् हरिः ।
अन्येन तेजसा देवान् उपबृंहितवान् विभुः ॥ ९० ॥

भगवान् श्रीविष्णु ने जिस ओर वासुकि की पूंछ थी उस ओर देवताओं को और मुख की ओर दैत्यों को लगाया । वे सभी दैत्य अमिततेजस्वी वासुकी के मुख से निकलते हुए निःश्वासाग्नि से झुलसकर निस्तेज (पराक्रमरहित) हो गये ।और उसी वासुकिके श्वासवायु से विक्षिप्त हुए मेघों को पूंछ की ओर बरसने से देवगण की शक्ति बढ़ी । हे महामुने ! स्वयं भगवान् श्रीविष्णु क्षीरसागर में धूमते हुए मन्दरपर्वत के आधार बने । और चक्र-गदाधर भगवान् अपने एक अन्य रूप से देवताओं के बीच और दूसरे से दैत्यों के बीच से होकर वासुकि को खींच भी रहे थे । है मैत्रेय ! वह भगवान् केशव एक दूसरे विशाल रूप से उस मन्दराचल को दबाये थे इस रूप को देवता या दानव कोई भी नहीं देख रहे थे । सर्वव्यापी भगवान् श्रीहरि अपने एक तेज से नागराज वासुकि को बल दे रहे थे, और दूसरे तेज से देवताओं का बल बढ़ा रहे थे ॥८४-९० ॥

मध्यमाने ततस्तस्मिन् क्षीराब्धौ देव-दानवैः ।
हविर्धामाभवत् पूर्व्वं सुरभिः सुरपूजिता ॥ ९१ ॥

जग्मुर्म्मुदं ततो देवा दानवांश्च महामुने ।
व्याक्षिप्तचेतसश्चैव बभूवुस्तिमितेक्षणाः ॥ ९२ ॥

किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिन्तयतां ततः ।
बभूव वारुणी देवी मदाघूर्णितलोचना ॥ ९३ ॥

कृतावर्त्तात् ततस्तस्मात् क्षीरोदाद् वासयन् जगत् ।
गन्धेन पारिजातोऽभूद् देवस्त्रीनन्दनस्तरूः ॥ ९४ ॥

रूपौदार्य्यगुणोपेतस्ततश्चाप्सरसां गणः ।
क्षीरोदधेः समुत्पन्नो मैत्रय परमाद्भुतः ॥ ९५ ॥

ततः शीतांशुरभवज्जगृहे त्वं महेश्वरः ।
जगृहुश्च विषं नागाः क्षीरोदाच्च समुत्थितम् ॥ ९६ ॥

ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बधरः खयम्।
विभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः ॥ ९७ ॥

ततः स्वस्थमनस्कास्ते सर्व्वे दैतेय-दानवाः ।
बभूवुर्म्मुदिताः सर्व्वे मैत्रेय मुनिभिः सह ॥ ९८ ॥

तब देवदानवों द्वारा इस क्षीरसागर उदधि के मंथन होने पर सर्वप्रथम दुग्ध एवं आश्रयरूपा देवताओं से पूजिता सुरभि गौ निकली। हे महामुने उस समय देवता और दानव दोनों ही प्रसन्न हुए और उसकी ओर नेत्र खिंच जाने से वे लोभ से आकृष्ट भी हो गये। यह क्या है इस प्रकार स्वर्ग में विचार करते हुए सिद्धों के समक्ष मद से घूमती हुई आंखवाली वारुणी देवी उत्पन्न हुई। इसके बाद मन्दराचल के घूमने से उत्पन्न हुए आवर्त्त (भंवर) वाले उस क्षीरसागर से अपने सुगन्ध से जगत को सुगन्धित करता हुआ और देवसुन्दरियों को आनन्ददायक पारिजात नाम का वृक्ष निकला। हे मैत्रेय ! पुनः रूप एवं उदारता आदि गुणों से युक्त परम अद्‌भुत अप्सराएं उस क्षीरसागर से उत्पन्न हुईं। इसके बाद क्षीरसागर से चन्द्रमा उत्पन्न हुए जिसको शिवजी ने लिया, और क्षीरसागर से ही निकले हुए विष को सर्पों ने ग्रहण किया। अनन्तर श्वेतवस्त्र धारण किये हुए और अमृत से पूर्ण कमण्डलु को हाथ में लिए स्वयं भगवान् धन्वन्तरि निकले। हे मैत्रेय ! इसके बाद मुनियों के साथ स्वस्थ मनवाले वे सभी दैत्य दानव आनन्दित हो गये ॥९१-९८ ॥

ततः स्फुरत्कान्तिमती विकासिकमले स्थिता।
श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुत्थिता भृतपंकजा ॥ ९९ ॥

तां तुष्टुवुर्म्मुदा युक्ताः श्रीसूक्तेन महर्षयः ।
विश्वावसुमुखास्तस्या गन्धर्वाः पुरतो जगुः ॥ १०० ॥

घृताचीप्रमुखा ब्रह्मन् ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे ॥ १०१ ॥

दिग्गजा हेमपात्रस्थम् आदाय विमलं जलम्।
स्नापयाञ्चक्रिरे देवीं सर्व्वलोकमहेश्वरीम् ॥ १०२ ॥

क्षीरोदो रूपधृक् तस्यै मालामम्लानपङ्कजाम्।
ददौ विभूषणान्यङ्गे विश्वकर्मा चकार च ॥ १०३ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरा स्नाता भूषणभूषिता।
पश्यतां सर्व्वदेवानां ययौ वक्षःस्थलं हरेः ॥ १०४ ॥

तयावलोकिता देवा हरिवक्षःस्थलस्थया।
लक्ष्म्या मैत्रेय सहसा परां निर्वृतिमागताः ॥ १०५ ॥

उद्वेगं परमं जग्मुर्दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः।
त्यक्ता लक्ष्म्या महाभाग विप्रचित्तिपुरोगमाः ॥ १०६ ॥

पुनः हाथों में कमल लिए स्फुटकान्तिवाली विकसित कमलपर विराजमान श्रीलक्ष्मीदेवी क्षीरसमुद्र से निकली। उस समय अत्यन्त प्रसन्न महर्षिगण श्रीसूक्त के द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। तथा विश्वावसु आदि गन्धर्व श्रीलक्ष्मी जी के आगे गाने लगे। घृताची आदि अपसराएँ श्रीलक्ष्मीजी के सामने नाचने लगी, और उनने स्नानकराने के लिए गंगा आदि नदियां स्वयं उपस्थित हो गई तथा दिग्गजों ने सुवर्ण के पात्र में स्थित जल से समस्त लोकों की महेश्वरी उस लक्ष्मीदेवी को स्नान कराया। मूर्तिमान् क्षीरसागर ने विकसित कमलपुष्पों की माला दी और विश्वकर्माने श्रीलक्ष्मीजी के अंग प्रत्यङ्ग में अनेक आभूषण पहनाये। स्नानकर के एवं दिव्यमाला और दिव्य वस्त्र धारण कर समस्त देवताओं के सामने श्रीलक्ष्मीजी भगवान् श्रीहरि के वक्षःस्थल में विराजमान हो गई। हे मैत्रेय! भगवान् श्री विष्णु के वक्षःस्थल में विराजमान श्रीलक्ष्मीजी की दृष्टि पड़ने से देवगण सहसा अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और हे महाभाग! श्रीविष्णु भगवान् से विमुख होने के कारण श्रीलक्ष्मीजी से परित्यक्त विप्रचिति आदि दैत्यगण अत्यन्त व्याकुल हुए ॥९९-१०६ ॥

ततस्ते जगृहुर्दैत्या धन्वन्तरिकरे स्थितम्।
कमण्डलुं महावीर्य्या यत्रास्ते तद् द्विजामृतम् ॥ १०७ ॥

मायया लोभयित्वा तान् विष्णुः स्त्रीरूपमास्थितः।
दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ विभुः ॥ १०८ ॥

ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत् तदामृतम्।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दैत्यास्तांश्च समभ्ययुः ॥ १०९ ॥

पीतेऽमृते च बलिभिर्देवैर्दैयचमुस्तदा।
वध्यमाना दिशो भेजे पातालं तु विवेश वै ॥ ११० ॥

तदा देवा मुदा युक्ताः शङ्खचक्रगदाभृतम् ।
प्रणिपत्य यथापूर्वम् आशासत त्रिविष्टपम् ॥ १११ ॥

ततः प्रसन्नभाः सूर्य्यः प्रययौ स्वेन वर्त्मना ।
ज्योतींषि च यथामार्गं प्रययुर्मुनिसत्तम ॥ ११२ ॥

जज्वाल भगवांश्चोच्चैश्चारुदीप्तिर्व्विभावसुः ।
धर्मे च सर्व्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥ ११३ ॥

त्रैलोक्यञ्च श्रिया जुष्टं बभूव मुनिसत्तम ।
शक्रश्च त्रिदशश्रेष्ठः पुनः श्रीमानजायत ॥ ११४ ॥

इस के बाद बलशाली दैत्यों ने धन्वन्तरी जी के हाथों में से उत्तम अमृतयुक्त कमण्डल छीन लिया तब स्त्रीरूप धारण कर श्रीविष्णु भगवान् ने अपनी माया से मोहित कर दानवों के हाथ से अमृतकमण्डलु को लेकर देवताओं को दे दिया। तथा इन्द्र आदि देवगण उस अमृत को पी गये, इसलिए दैत्यों ने शस्त्र धारण कर उन देवताओं के ऊपर आक्रमण कर दिया। तदनन्तर इन्द्रादि देवगण ने अमृतपान करके और खड्ग लेकर सम्पूर्ण दैत्यों पर आक्रमण कर दिया। अमृतपान करने के बाद बलवान् देवताओं से मारी काटी जाकर सम्पूर्ण दैत्यसेना दिशाओं में भागने लगी और पाताल में प्रवेश कर गयी। उस समय सुप्रसन्न देवगण शंखचक्रगदाधारी भगवान् श्रीविष्णु को प्रणाम करके पहले के समान ही स्वर्ग में शासन करने लगे। हे मुनिसत्तम। इसके बाद स्पष्टकान्तिवाले सूर्य अपने मार्ग से अर्थात् दक्षिणायन और उत्तरायन गति से गमन करने लगे, तथा ताराग्रहमंगल आदि भी वक्र और अतिचार रहित होकर सीधे मार्ग से चलने लगे। सुन्दर प्रकाशवाले भगवान् अग्निदेव पूर्ण प्रज्वलित होने लगे और समस्त प्राणियों का विचार धार्मिक हो गया। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! त्रिलोकी लक्ष्मीसम्पन्न हो गई। देवश्रेष्ठ इन्द्र पुनःलक्ष्मीवान् हो गये ॥१०७-११४ ॥

सिंहासनगतः शक्रः सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः ।
देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाब्जकरां ततः ॥ ११५ ॥

अपने सिंहासन पर विराजमान इन्द्र ने पुनःस्वर्ग को प्राप्त किया देवराज्य में इन्द्र ने कमलहस्ता देवी श्रीलक्ष्मी जी की इस प्रकार स्तुति की ॥ ११५ ॥

नमस्ये सर्व्वभूतानां जननीमब्जसम्भवाम्।
श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णोर्वक्ष:स्थलस्थिताम्॥ ११६॥

त्वं सिद्धिस्त्वं सुधा स्वाहा स्वधा त्वं लोकपावनि।
सन्ध्या रात्रि: प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती॥ ११७॥

यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने।
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी॥ ११८॥

इन्द्र बोले समस्त लोकों की जननी विकसित कमल के नेत्र वाली भगवान् श्रीविष्णु के वक्ष:स्थल में निवास करने वाली कमलोद्भवा श्रीलक्ष्मी जी को नमस्कार करता हूं॥११६॥

हे देवि! तुम (अणिमादि) सिद्धि हो, तुम सुधा हो, तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा हो, तुम तीनों लोकों को पवित्र करने वाली हो, और तुम सन्ध्या, रात्रि, प्रभा (दिन) भूति, मेधा, श्रद्धा, सरस्वती, यज्ञविद्या (कर्मविद्या), महाविद्या (विश्वरूप की उपासना), गुह्यविद्या (मन्त्रविद्या) हो, और हे शोभने! तुम ही मुक्तिफल को देने वाली आत्मविद्या (ब्रह्मविद्या) हो॥ ११७-११८॥

आन्वीक्षिकी त्रयी वार्तादण्डनीतिस्त्वमेव च।
सौम्यासौम्यैर्ज्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम्॥ ११९॥

का त्वन्या त्वामृते देवि सर्व्वयज्ञमयं वपु:।
अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृत:॥ १२०॥

त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्।
विनष्टप्रायमभवत् त्वयेदानीं समेधितम्॥ १२१॥

दारा: पुत्रास्तथागारं सुहृद् धान्यधनादिकम्।
भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम्॥ १२२॥

शरीरारोग्यमैश्वर्य्य मरिपक्षक्षय: सुखम्।
देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्ल्लभम्॥ १२३॥

त्वं माता सर्व्वभूतानां देवदवो हरि: पिता।
त्वयैतद विष्णुना चाद्य जगद्व्याप्तं चराचरम्॥ १२४॥

मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम् ।
मा शरीरं कलत्रञ्च त्यजेथाः सर्व्वपावनि ॥ १२५ ॥

मा पुत्रान् मा सुहृद्वर्गं मा पशून् मा विभूषणम् ।
त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्व्वक्षःस्थलालये ॥ १२६ ॥

हे देवि ! आन्विक्षिकी (तर्कविद्या), त्रयी (वेदत्रय-स्वरूपा), वार्ता (शिल्प वाणिज्यादि), दण्डनीति (साम आदि उपाययुक्त राजनीति) भी तुम्ही हो, इसी प्रकार शान्त और उग्र रूपों से तुम्हीं समस्त संसार में व्याप्त हो । हे देवि ! तुमसे अतिरिक्त दूसरी कौन स्त्री है जो देवों के देव गदाधर भगवान् के योगियों द्वारा चिन्तित सर्वयज्ञमय शरीर में निवास कर सके अर्थात् तुम्हारा सौभाग्य आश्चर्यजनक है । हे देवि ! तुमसे परित्यक्त होने पर समस्त त्रिलोक नष्टप्राय हो गया था, अब तुम्हीं ने उसे जीवित किया । हे महाभागे ! स्त्री, पुत्र, गृह, धन, धान्य, मित्र, ये सब आप ही के दृष्टिप्रदान से मनुष्यों को प्राप्त होते हैं । हे देवि ! तुम्हारी कृपादृष्टि वाले मनुष्यों के लिए शरीर का नीरोग, ऐश्वर्य, शत्रुपक्ष का विनाश और सुख ये सब दुर्लभ नहीं हैं । तुम समस्त लोकों की माता हो और देव देव श्रीविष्णु भगवान् पिता हैं । तुम और श्रीविष्णु भगवान् ये दो ही समस्त जगत् में व्याप्त हो । हे सर्वपावनि देवि ! हमारे कोश (खजाना), गोष्ठ (पशुशाला), गृह, परिच्छद (भोगसामग्री), शरीर और स्त्री इन सबों में आप सदा निवास करें । हे विष्णु वक्षःस्थल में निवास करने वाली देवि ! आप मेरे पुत्र मित्रवर्ग, पशु और आभूषण आदि का कभी परित्याग न करें ॥११९-१२६ ॥

सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः ।
त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ॥ १२७ ॥

त्वयावलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः ।
कुलैश्वर्य्यैश्च मुह्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥ १२८ ॥

स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान् ।
स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥ १२९ ॥

सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः ।
पराङ्मुखी जगद्धात्रि यस्य त्वं विष्णुवल्लभे ॥ १३० ॥

न ते वर्णयितुं शक्ता गुणान् जिह्वापि वेधसः ।

प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन ।। १३१ ।।

हे अमले ! आपसे परित्यक्त मनुष्यों को सत्त्व (मानसिक बल) सत्य, पवित्रता और शील आदि गुण भी शीघ्र ही छोड़ देते हैं । और हे देवि ! तुम्हारी कृपादृष्टि होने पर निर्गुण पुरूष भी, कुल, ऐश्वर्य और शील आदि समस्त गुणों से युक्त हो जाते हैं । हे देवि ! जिसके ऊपर आपकी कृपा दृष्टि हो जाती है वही पुरूष (संसार में) प्रशंसनीय, गुणवान धन्यभाग्य, बुद्धिमान, शूरवीर और पराक्रमी हैं । हे विष्णुवल्लभे ! हे जगद्धात्रि ! जिससे तुम विमुख हो जाती हो उसके शील आदि समस्त गुण भी शीघ्र ही अवगुण हो जाते हैं । हे कमलनयने ! हे देवि ! आपके गुणों का वर्णन करने में श्री ब्रह्माजी की जिह्वा भी असमर्थ हैं, अतः आप प्रसन्न होइये हमें कभी न छोड़िये ।।१२७-१३१ ।।

एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतक्रतुम् ।

शृण्वतां सर्वदेवानां सर्व्वभूतस्थिता द्विज ।। १३२ ।।

परितुष्टास्मि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे ।

वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाहं तवागता ।। १३३ ।।

वरदा यदि मे देवि वरार्हो यदि वाप्यहम् ।

त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः परः ।। १३४ ।।

स्तोत्रेण यस्तथैतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धिसम्भवे ।

न त्वया स परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ।। १३५ ।।

श्री पराशरजी बोले—इस प्रकार अच्छी प्रकार से स्तुति किये जाने पर समस्त प्राणियों में विराजमान रहने वाली श्रीलक्ष्मी जी सभी देवताओ को सुनाते हुए इन्द्र से बोलीं । श्री लक्ष्मीजी बोलीं—हे इन्द्र ! हे देवेश ! तुम्हारी इस स्तुति से मैं सन्तुष्ट हूं तुम्हें जो अभीष्ट हो वही वर मांग लो । तुम्हें वर देने के लिए ही आयी हूं । इन्द्र बोले—हे देवि ! यदि आप वर देना चाहती हो अथवा मैं यदि वर पाने योग्य हूं तो आप त्रिलोकी को कभी न त्यागे यही हमारा प्रथम वर है । और हे सागरसम्भवे ! जो कोई भी मनुष्य इस स्तोत्र के द्वारा आपकी स्तुति करे उसे आप कभी न त्यागें यह हमारा दूसरा वर है ।।१३२-१३५ ।।

त्रैलोक्यं त्रिदशश्रेष्ठ न संत्यक्ष्यामि वासव।
दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्टया ॥ १३६ ॥

यश्च सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः।
मां स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्मुखी ॥ १३७ ॥

श्री लक्ष्मी जी बोली—हे देवश्रेष्ठ इन्द्र ! मैं त्रिलोकी का परित्याग नहीं करूंगी तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर मैं तुम्हें यह वर दे रही हूं। और जो कोई मनुष्य इस स्तोत्र से सायंकाल और प्रातः काल मेरी स्तुति करेगा उससे भी मैं कभी विमुख न होऊँगी ॥१३६-१३७ ॥

एवं वरं ददौ देवी देवराजाय वै पुरा।
मैत्रेय श्रीर्महाभागा स्तोत्राराधनतोषिता ॥ १३८ ॥

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीः पूर्व्वमुदधेः पुनः।
देव-दानवयत्नेन प्रसूतामृतमन्थने ॥ १३९ ॥

एवं यथा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्द्दनः।
अवतारं करोत्येष तथा श्रीस्तत्सहायिनी ॥ १४० ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! स्तोत्ररूपी आराधन से सन्तुष्ट होकर महाभागा देवी श्रीमहालक्ष्मी जी ने प्राचीनकाल में इन्द्र को इस प्रकार वर प्रदान किया। पहले श्रीलक्ष्मीजी भृगु से ख्यातिनाम की उनकी पत्नी से उत्पन्न हुई, पुनः अमृत मन्थन के समय में देवता और दानवों के उद्योग से सागर से निकली। इस प्रकार जगत्पति देवाधिदेव जनार्दन जैसा अवतार लेते हैं वैसा ही उनकी सहायिका श्रीलक्ष्मी जी अवतार लेती हैं ॥१३९-१४० ॥

पुनश्च पद्मादुद्भूता आदित्योऽभूद् यदा हरिः।
यदा तु भार्गवो रामस्तदाभूद् धरणी त्वियम् ॥ १४१ ॥

राघवत्वेऽभवत् सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि।
अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषा सहायिनी ॥ १४२ ॥

देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी।
विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥ १४३ ॥

यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म लक्ष्म्या यश्च पठेन्नरः ।
श्रियो न विच्युतिस्तस्य गृहे यावत् कुलत्रयम् ।। १४४ ।।

पठ्यते येषु चैवैष गृहेषु श्रीस्तवो मुने ।
अलक्ष्मीः कलहाधारा न तेष्वास्ते कदाचन ।। १४५ ।।

एतत् ते कथितं ब्रह्मन् यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
क्षीराब्धौ श्रीर्यथा जाता पूर्व्वं भृगुसुता सती ।। १४६ ।।

इति सकलविभूत्यवाप्तिहेतुः
स्तुतिरियमिन्द्रमुखोद्गता हि लक्ष्म्याः ।
अनुदिनमिह पठ्यते नृभिर्ये-
र्वसति न तेषु कदाचिदप्यलक्ष्मीः ।। १४७ ।।

पुनः भगवान् श्रीहरि ने जब आदित्यरूप (वामन) धारण किया तब श्रीलक्ष्मी जी पद्म (कमल) से उत्पन्न हुईं (पद्मा कहलायी) और जब भगवान् परशुरामरूप धारण किये तब श्रीलक्ष्मीजी पृथ्वी हुई । श्री लक्ष्मीजी भगवान् के रामावतार में सीता और कृष्णावतार में रूक्मिणी हुई । इसी प्रकार श्रीविष्णु के अन्य अवतारों में भी ये उनकी सहायिका होती हैं । भगवान् श्रीविष्णु के देवरूप धारण करने पर श्रीलक्ष्मी जी देवशरीरवाली और मानवशरीर धारण करने पर वह मानवीरूप से उत्पन्न होती हैं, यह भगवती श्रीलक्ष्मी जी भगवान् श्रीविष्णु के शरीर के अनुकूल ही अपना शरीर बनाती हैं । जो कोई मनुष्य श्रीलक्ष्मीजी की इस जन्मकथा को सुनेगा अथवा पढ़ेगा उसके तीनों कुलों तक श्रीलक्ष्मीजी का विनाश नहीं होगा । हे मुने ! यह लक्ष्मी स्तुति जिन घरों में पढ़ी जाती है उन घरों में कलहकारिणी दरिद्रा का वास कभी नहीं होता । हे ब्रह्मन् ! श्रीलक्ष्मी पहले भृगु की पुत्री होकर पुनः समुद्र से उत्पन्न कैसे हुई यह तुमने पूछा था वह मैंने कह दिया । इस प्रकार इन्द्र के मुख से निकली हुई श्री लक्ष्मीजी की स्तुति समस्त विभूतियों की प्राप्ति का कारण है, जो मनुष्य इस स्तुति का प्रतिदिन पाठ करता है उनके यहां दरिद्रता कभी नहीं आती ।।१४१-१४७ ।।

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में नवाँ अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - दशवाँ अध्याय

(भृगु आदि की सृष्टि का पुनः वर्णन)

मैत्रेय उवाच।

कथितं मे त्वया सर्व्वं यत्पृष्टोऽसि महामुने।
भृगुसर्गात् प्रभृत्येष सर्गो मे कथ्यतां पुनः ॥ १ ॥

मैत्रेय जी बोले—हे महामुने हमने जो आपसे पूछा वह सब आपने कहा, अब भृगुजी की सन्तान से आरम्भ करके समस्त सृष्टि का वर्णन आप मुझ से कीजिये ॥ १ ॥

पराशर उवाच।

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्विष्णुपरिग्रहः।
तथा धातृविधातारौ ख्यात्यां जातौ सुतौ भृगोः ॥ २ ॥

आयतिर्नियतिश्चैव मेरोः कन्ये महात्मनः।
धातृविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥ ३ ॥

प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः।
ततो वेदशिरा जज्ञे प्राणस्यापि सुतं श्रृणु ॥ ४ ॥

प्राणस्य कृतिमान् पुत्रो राजवांश्च ततोऽभवत्।
ततो वंशो महाभाग विस्तारं भार्गवो गतः ॥ ५ ॥

श्रीविष्णु भगवान् की पत्नी श्रीलक्ष्मीजी और धाता विधाता नाम के दो पुत्र भृगुमुनि की ख्याति नाम की पत्नी से उत्पन्न हुए। महात्मा मेरु की आयति और नियति नाम की दो कन्याएं धाता और विधाता की पत्नियाँ थीं, उनमें आयति तथा नियति इन दोनों के एक एक पुत्र हुए, जिनका नाम प्राण और मृकण्डु था। तथा

मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय और उनसे वेदशिरा नाम के पुत्र हुए। अब प्राण की वंशावलि सुनो। प्राण का पुत्र द्युतिमान् तथा उसका राजवान् नाम का पुत्र हुआ। हे महाभाग उससे (राजवान् से) भृगुवंश बहुत विस्तार को प्राप्त हुआ ॥२-५॥

पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत।
विरजाः सर्व्वगश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ॥ ६ ॥

मरीचि मुनि की पत्नी सम्भूति ने पौर्णमासनामक पुत्र उत्पन्न किया। उस महात्मा के विरजा ओर सर्वग नाम के दो पुत्र हुए ॥६॥

वंशसंकीर्त्तने पुत्रान् वदिष्येऽहं तयोर्द्विज।
स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी प्रसूताः कन्यकास्तथा ॥ ७ ॥

सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा।
अनुसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् ॥ ८ ॥

सोमं दुर्व्वाससञ्चैव दत्तात्रे यञ्च योगिनम्।
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् ॥ ९ ॥

हे द्विज! वंशवर्णनके समय दोनों की सन्तानों का वर्णन करूँगा। अङ्गिरा की स्मृति नाम की पत्नी थी। और उसके सिनीवाली, कुहू, राका, अनुमति नाम की कन्याएँ हुईं। अत्रि की पत्नी अनसूया ने चन्द्रमा, दुर्वासा तथा योगी दत्तात्रेय-इन तीनों निष्पाप पुत्रों को उत्पन्न किया। पुलस्त्यकी भार्या प्रीति से दत्तोलि नामका पुत्र हुआ ॥ ७-९ ॥

पूर्व्वजन्मनि योऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
कदमश्चावरीयांश्च सहिष्णुश्च सूतत्रयम् ॥ १० ॥

क्षमा तु सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापतेः।
क्रतोश्च सन्नतिर्भार्य्या बालखिल्यानसूयत ॥११॥

षष्टिर्यानि सहस्राणि यतीनामूर्द्ध्वरेतसाम्।
अङ्गुष्ठपर्व्वमात्राणां जलद्भास्करतेजसाम् ॥ १२ ॥

जो पूर्वजन्म में स्वायम्भुव मन्वन्तर में अगस्त्य कहा जाता था। कर्दम, अवरीयान् (उर्वरीयान) और सहिष्णु ये तीन पुत्र प्रजापति पुलह की भार्या क्षमा से

उत्पन्न हुए। और क्रतु की सन्तति नाम की पत्नी ने अंगुष्ठप्रमाण शरीर वाले सूर्य के-समान तेजस्वी वालखिल्य आदि ऊर्ध्वरिता साठ हजार मुनियों को जन्म दिया।। १०-१२ ॥

ऊर्ज्जायाञ्च वशिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः।
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च वसनश्चानघस्तथा ॥ १३ ॥

सुतपाः शुक्र इत्येते सर्व्वे सप्तर्षयोऽमलाः।
योऽसावग्निरभिमानी ब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ॥ १४ ॥

तस्मात् स्वाहा सुतांल्लेभे त्रीणुदारौजसो द्विज।
पावकं पावमानञ्च शुचिञ्चापि जलाशिनम् ॥ १५ ॥

वशिष्ठ की ऊर्जानाम की भार्या से रज, गोत्र, ऊर्ध्वबाहु सवन, अनघ, सुतपा और शुक्र ये सात पुत्र उत्पन्न हुए। सभी निर्मल विचारवाले सप्तर्षिनाम से (तीसरे मन्वन्तर में) प्रसिद्ध हुए। हे ब्राह्मण ! ब्रह्मा जी के ज्येष्ठपुत्र अग्निका अभिमानी देव हैं, उनकी पत्नी स्वाहा से पावक, पावमान और जलभक्षी शुचि ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १३-१५ ॥

तेषान्तु सन्ततावन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च।
एवमेकोनपञ्चाशद् वह्नयः परिकीर्त्तिताः ॥ १६ ॥

कथ्यन्ते वह्नयश्चैते पिता पुत्रत्रयञ्च यत्।
पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव ॥ १७ ॥

अग्निष्वात्ता बर्हिर्षदोऽग्न्यः साग्नयश्च ये।
तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वैधारिणीं तथा ॥ १८ ॥

इन तीनों के पन्द्रह कुल पैतालिस पुत्र हुए। पिता और तीनों पुत्र कुल चार इस प्रकार सभी उनचास अग्नि विख्यात हुए। हे द्विज ! ब्रह्माजी ने अनग्निक, अग्निष्वात्ता तथा साग्निक, बर्हिषद् आदि पितर उत्पन्न किये, उनके द्वारा स्वधा ने मेना और धारिणी नाम की दो कन्याएं उत्पन्न की ॥ १६-१८ ॥

ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चाप्युभे द्विज।
उत्तमज्ञानसम्पन्ने सर्व्वैः समुदितैर्गुणैः ॥ १९ ॥

इत्येषा दशकन्यानां कथितापत्यसन्ततिः ।
श्रद्धावान् संस्मरन्नेताम् अनपत्यो न जायते ॥ २० ॥

हे द्विज ! वे दोनों कन्याएं सभी उत्तम गुणों से सम्पन्न तथा श्रेष्ठज्ञानयुक्त ब्रह्मविचारवाली योगिनी हुईं । इस प्रकार कही गई यह दशकन्याओं की वंशावली है । श्रद्धापूर्वक जो कोई इसका स्मरण करता है वह सन्तानहीन नहीं होता ॥१९-२० ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में दशवाँ अध्याय समाप्त ।

ग्यारहवाँ अध्याय

(ध्रुव का वनगमन तथा मरीचिप्रभृति ऋषियों से भेंट)

पराशर उवाच।

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
द्वौ पुत्रौ सुमहावीर्य्यौ धर्म्मज्ञौ कथितौ तव॥ १॥

तयोरुतानपादस्य सुरुच्यामुत्तमः सुतः।
अभीष्टायाम्भूद् ब्रह्मन् पितुरत्यन्तवल्लभः॥ २॥

सुनीतिर्नाम या राज्ञस्तस्याभून्महिषी द्विज।
स नातिप्रीतिमांस्तस्यां तस्याश्चाभूद् ध्रुवः सुतः॥ ३॥

राजासनस्थितस्याङ्कं पितुर्भ्रातरमाश्रितम्।
दृष्ट्वोत्तमं ध्रुवश्चके तमारोढुं मनोरथम्॥ ४॥

प्रत्यक्षं भूपतिस्तस्याः सुरुच्या नाभ्यनन्दत।
प्रणयेनागतं पुत्रमुत्सङ्गारोहणोत्सुकम्॥ ५॥

सपत्नीतनयं दृष्ट्वा तमङ्कारोहणोत्सुकम्।
पितुः पुत्रं तदारूढं सुरुचिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ६॥

क्रियते किं वृथा वत्स महानेष मनोरथः।
अन्यस्त्रीगर्भजातेन असम्भूय (च) ममोदरे॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय! हमने तुमसे स्वाम्भुवमनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक महापराक्रमी और धर्मज्ञ दो पुत्र कहे थे। हे ब्रह्मन्! इन दोनों में से उत्तानपाद की अत्यन्त प्रिया पत्नी सुरूचि से उत्तमनामक पुत्र हुआ, जिसे राजा

बहुत प्यार करते थे । हे द्विज ! उस राजा की सुनीति नाम की जो दूसरी पत्नी थी उसमें राजा का विशेष प्रेम नहीं था, उसका पुत्र ध्रुव हुआ । एक दिन राजा सिंहासनपर विराजमान थे अपने पिता की गोद में स्थित अपने छोटे भाई उत्तम को देखकर ध्रुव की इच्छा भी अपने पिता की गोद में बैठने की हुई । राजा ने सुरुचि के सामने, प्रेम से आये हुए और गोद में बैठने की इच्छा वाले पुत्र का आदर नहीं किया । राजा की गोद में बैठने के लिए उत्सुक अपनी सौत के पुत्र को देख और अपने पुत्र को इस प्रकार से राजा की गोद में बैठे हुए देखकर सुरुचि बोली । हे वत्स ! मेरे पेट से उत्पन्न न होकर (राजा की) दूसरी स्त्री से उत्पन्न होकर क्यों व्यर्थ ही यह महान् मनोरथ करते हो ॥१-७ ॥

उत्तमोत्तममप्राप्यमविवेकोऽभिवाञ्छसि ।
सत्यं सुतस्त्वमप्यस्य किन्तु न त्वं मया धृतः ॥ ८ ॥

एतद् राजासनं सर्व्वभूभृत्संश्रयकेतनम् ।
योग्यं ममैव पुत्रस्य किमात्मा क्लेश्यस्त्वया । ९ ॥

उच्चैर्मनोरथस्तेऽयं मत्पुत्रस्येव किं वृथा ।
सुनीत्यामात्मनो जन्म किं त्वया नावगम्यते ॥ १० ॥

तुम अविवेकी हो, अत एव अलभ्य उत्तमोत्तम वस्तु की इच्छा करते हो । सत्य है कि तुम भी राजा के ही पुत्र हो, किन्तु मेरे गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए । यह राजसिंहासन समस्त राजाओं का आश्रय स्थान है, । (अर्थात् चक्रवर्ती राजा का सिंहासन है) मेरे गर्भ से ही उत्पन्न पुत्र के योग्य है, तुम अपने चित्त को क्लेश क्यों देते हो । मेरे पुत्र उत्तम के समान तुम्हारा यह ऊँचा मनोरथ व्यर्थ हैं, क्या तुम नहीं जानते हो कि तुम्हारा जन्म सुनीति के गर्भ से हुआ है ॥८-१० ॥

उत्सृज्य पितरं बालस्तच्छ्रुत्वा मातृभाषितम् ।
जगाम कुपितो मातुर्निजाया द्विज मन्दिरम् ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा कुपितं पुत्रमीषत्प्रस्फुरिताधरम् ।
सुनीतिरङ्कमारोप्य मैत्रेयेतदभाषत ॥ १२ ॥

वत्स कः कोपहेतुस्ते कश्च त्वां नाभिनन्दति ।
कोऽवजानाति पितरं तव यस्तेऽपराध्यति ॥ १३ ॥

इत्युक्तः सकलं मात्रे कथयामास तद्यथा।
सुरुचिः प्राह भूपालप्रत्यक्षमपि गर्विता ॥ १४ ॥

निःश्वस्येति कथिते तस्मिन् पुत्रेण दुर्मनाः।
श्वासक्षामेक्षणा दीना सुनीतिर्व्वाक्यमब्रवीत् ॥ १५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विज ! सौतली माता की ऐसी बात सुनकर बालक ध्रुव अपने पिता को छोड़ कर अपनी माता के महल में चला गया। हे मैत्रेय ! कुछ कुछ कांपते हुए ओष्ठवाले क्रोधित उस अपने बालक को देखकर सुनीति उसे अपनी गोद में बिठाकर बोली। हे वत्स ! तुम्हारे क्रोध का कारण क्या है ? कौन तुम्हारा आदर नहीं करता है। जो तेरा अपमान करता है वह तेरे पिताजी का अपमान करता है। श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार पूछने पर ध्रुव ने अपनी माता से सभी बातों को कह दिया जो राजा के सामने अत्यन्त गर्विता सुरुचि ने कही थीं। निःश्वासपूर्वक रोते हुए अपने पुत्र के द्वारा ऐसा कहे जाने पर अत्यन्त दुःखी और श्वास से क्षीण नेत्रवाली सुनीति बोली ॥११-१५ ॥

सुरुचिः सत्यमाहेदं स्वल्पभाग्योऽसि पुत्रक।
न हि पुण्यवतां वत्स सपत्नैरेवमुच्यते ॥ १६ ॥

नोद्वेगस्तात कर्त्तव्यः कृतं यद् भवता पुरा।
तत् कोऽपहर्त्तुं शक्नोति दातुं कश्चाकृतं त्वया ॥ १७ ॥

राजासनं तथाच्छत्रं वराश्वा वरवारणाः।
यस्य पुण्यनि तस्यैते मत्वैतच्छाम्य पुत्रक ॥ १८ ॥

अन्यजन्मकृतैः पुण्यैः सुरुच्यां सुरुचिर्नृपः।
भार्येति प्रोच्यते चान्या मद्विधा भाग्यवर्जिता ॥ १९ ॥

पुण्योपचयसम्पन्नस्तस्याः पुत्रस्तथोत्तमः।
मम पुत्रस्तथा जातः स्वल्पपुण्यो ध्रुवो भवान् ॥ २० ॥

तथापि दुःखं न भवान् कर्तुमर्हति पुत्रक।
यस्य यावत् स तेनैव स्वेन तुष्यति बुद्धिमान् ॥ २१ ॥

यदि वा दुःखमत्यर्थं सुरुच्या वचसा तव।
तत् पुण्योपचये यत्नं कुरु सर्व्वफलप्रदे ॥ २२ ॥

सुशीलो भव धर्म्मात्मा मैत्रः प्राणिहिते रतः।
निम्नं यथापः प्रवणाः पात्रमायान्ति सम्पदः ॥ २३ ॥

हे पुत्र ! सुरुचि ने सत्य ही कहा है, तुम अवश्य मन्द भागी हो । हे वत्स ! पुण्य शालियों के शत्रु ऐसा (सामने) नहीं कह सकते । हे तात ! व्याकुल मत हो, जो तुमने पूर्वजन्म में किया है उसे कौन दूर कर सकता है और जो तुमने नहीं किया है वह तुझे कोई दे भी नहीं सकता । जिनका पूर्वजन्म का सञ्चित पुण्य है उन्हीं को राजसिंहासन छत्र, उत्तम घोड़े और उत्तम हाथी ये सभी प्राप्त होते हैं ऐसा समझ कर शान्ति धारण करो । पूर्वजन्म में किये हुए पुण्यों से ही सुरुचि में राजा की प्रीति है, और पुण्यहीना होने के कारण मेरे समान अन्य स्त्री केवल भायों (पालन योग्य) कही जाती है ।(अर्थात् राजा की प्रीति मेरे में नहीं है) इनके गृह में केवल भरण पोषण ही होता है । उसी प्रकार उसका पुत्र उत्तम भी बहुत पुण्यवान् है और मेरा पुत्र ध्रुव स्वल्प पुण्यवान् उत्पन्न हुए । किन्तु हे पुत्र ! तथापि दुःख मत करो, क्योंकि जिसको जितना मिलता है वह उतने से ही सन्तोष करता है । और यदि सुरुचि के वचन से तुझे अत्यन्त दुःख हुआ है तो समस्त फलदायक पुण्य के संग्रह में यत्नशील बनो । तुम सुशील, धर्मात्मा, प्रेमी और सभी प्राणियों के हितैषी बनो, जैसे नीचे की ओर बहनेवाला जल स्वयं पात्र में आ जाता है उसी प्रकार सुपात्र मनुष्य के पास सारी सम्पत्तियाँ स्वतः आ जाती हैं ॥१६-२३ ॥

ध्रुव उवाच।

अम्ब यत् त्वमिदं प्राह प्रशमाय वचो मम।
नैतद् दुर्वचसा भिन्ने हृदये मम तिष्ठति ॥ २४ ॥

सोऽहं तथा यतिष्यामि यथा सर्वोत्तमोत्तमम्।
स्थानं प्राप्स्याम्यशेषाणां जगतामपि पूजितम् ॥ २५ ॥

सुरुचिर्दयिता राज्ञस्तस्या जातोऽस्मि नोदरात्।
प्रभावं पश्य मेऽम्ब त्वं वृद्धस्यापि तवोदरे ॥ २६ ॥

उत्तमः स मम भ्राता यो गर्भे न धृतस्त्वया।
स राजासनमाप्नोतु पित्रा दत्तं तथास्तु तत्॥ २७॥

नान्यदत्तमभीप्सामि स्थानमम्ब स्वकर्म्मणा।
इच्छामि तदहं स्थानं यन्न प्राप पिता मम॥ २८॥

ध्रुव बोले—हे माता ! तुमने मेरे मनकी । शान्ति के लिए जो बात कही वह दुर्वाक्य से छिदे हुए मेरे हृदय में ठहरती नहीं है । अतएव अब मैं उस प्रकार का यत्न करूंगा जिससे समस्त जगत् में आदरणीय सर्वश्रेष्ठ स्थान को प्राप्त कर सकूं । सुरुचि राजा की प्रिया है और उसके गर्भ से मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूं किन्तु हे माँ ! तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न मेरा प्रभाव भी देखो । जिस उत्तम को सुरुचि ने अपने गर्भ में धारण किया वह मेरा भाई है और वह पिता से दिया गया राजसिंहासन प्राप्त करे, ऐसा ही हो । हे माता जी ! दूसरे से दिये गये स्थान की इच्छा मैं नहीं करता हूं मैं तो अपने कर्म से उस स्थान की इच्छा करता हूं जिसे मेरे पिता ने भी नहीं प्राप्त किया है ॥२५-२८ ॥

निर्जगाम गृहान्मातुरित्युक्त्वा मातरं ध्रुवः।
पुराच्च निष्क्रम्य ततस्तद् बाह्योपवनं ययौ॥ २९॥

स ददर्श मुनींस्तत्र सप्त पूर्वागतान् ध्रुवः।
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु विष्टरेषु समास्थितान्॥ ३०॥

स राजपुत्रस्तान् सर्वान् प्रणिपत्याभ्यभाषत।
प्रश्रयावनतः सम्यगभिवादनपूर्वकम्॥ ३१॥

श्रीपराशरजी बोले—ध्रुव माता को इस प्रकार कह कर माता के महल से निकल गया पुनः नगर से बाहर होकर बाहरी बगीचे में पहुंच गया । वहाँ पर ध्रुव ने पहले से आये हुए कृष्णमृगचर्म धारण करने वाले तथा कुशा के आसन पर विराजमान सात मुनियों को देखा । वह राजकुमार उन सभी को प्रणाम कर विनय से अत्यन्त नम्र होकर यथोचित अभिवादनपूर्वक उनसे बोला ॥२९-३१ ॥

उत्तानपादतनयं मां निबोधत सत्तमाः।
जातं सुनीत्यां निर्वेदाद् युष्माकं प्राप्तमन्तिकम्॥ ३२॥

चतुःपञ्चाब्दसम्भूतो बालस्त्वं नृपनन्दन।
निर्वेदकारणं किञ्चित् तव नाद्यापि विद्यते ॥ ३३ ॥

न चिन्त्यं भवतः किञ्चिद् ध्रियते भूपतिः पिता।
न चैवेष्टवियोगादि तव पश्यामि बालक ॥ ३४ ॥

शरीरे न च ते व्याधिरस्माभिरुपलक्ष्यते।
निर्वेदः किं निमित्तं ते कथ्यतां यदि विद्यते ॥ ३५ ॥

ध्रुव बोला—हे महात्माओं ! सुनीति से उत्पन्न हुए उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव मुझे जानें। और मैं आत्म-ग्लानि से आप लोगों के समीप आया हूँ। ऋषिगण बोले—हे नृपनन्दन ! तुम तो अभी चार पाँच वर्ष के बालक हो। अभी तेरे लिए ग्लानि का कारण तो कोई मालूम नहीं होता। अभी तुम्हारे पिता जी वर्तमान हैं, अतः तुम्हें किसी प्रकार का (कुटुम्ब परिवार आदि का) विचारणीय विषय नहीं है। और हे बालक ! तुम्हारे किसी इष्टवियोग (प्रियवस्तु को खो जाना) आदि भी हम लोग नहीं देखते हैं। और तुम्हारे शरीर में कोई व्याधि भी हम लोगों को लक्षित नहीं होती, पुनः तुम्हारे मन में आत्मग्लानि किस कारण हुई। फिर भी यदि कोई कारण हो तो कहो ॥३२-३५ ॥

ततः स कथयामास सुरुच्यां यदुपाहृतम्।
तन्निशम्य ततः प्रोचुर्मुनयस्ते परस्परम् ॥ ३६ ॥

अहो क्षात्रं परं तेजो बालस्यापि यदक्षमा।
सपत्न्या मातुरुक्तस्य हृदयान्नापसर्पति ॥ ३७ ॥

भो भो क्षत्रियदायाद निर्वेदाद् यत् त्वयाधुना।
कर्तुं व्यवसितं तन्नः कथ्यतां यदि रोचते ॥ ३८ ॥

यच्च कार्यं तवास्माभिः साहाय्यममितद्युते।
तदुच्यतां विवक्षुस्तमस्माभिरुपलक्ष्यसे ॥ ३९ ॥

नाहमर्थमभीप्सामि न राज्यं द्विजसत्तमाः।
तत्स्थानमेकमिच्छामि भुक्तं नान्येन यत् पुरा ॥ ४० ॥

एतन्मे क्रियतां सम्यक् कथ्यतां प्राप्यते यथा।
स्थानणग्रयं समस्तेभ्यः स्थानेभ्यो मुनिसत्तमाः ॥ ४१ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद ध्रुव ने सुरूचि ने जो कुछ कहा था वह सब मुनियों को कह दिया उसे सुनकर वे मुनिगण आपस में कहने लगे। अहो क्षत्रिय का तेज कैसा बलिष्ठ है, जो कि बालक भी अपने मान भङ्ग को सहन नहीं करता है, और अपनी विमाता का वचन भी इसके हृदय से सहा नहीं जाता है। हे क्षत्रियकुमार ! अपनी ग्लानि से तुम जो करना चाहते हो वह यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम लोगों से कहो। हे अतुलतेजस्वी ! और हम लोग तुम्हारी क्या सहायता करें वह भी कहो, हम लोगों को ऐसा मालूम होता है कि तुम कुछ कहना चाहते हो। ध्रुव ने बोला—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! मैं धनकी इच्छा नहीं करता और न राज्य चाहता हूं, किन्तु एक ऐसे स्थान की कामना करता हूं जिसे पहले किसी ने भोगा न हो। हे मुनिश्रेष्ठ ! आप लोग हमारी यही सहायता करें कि हमें यह ठीक ठीक बता दें कि समस्त स्थानों से अग्रगण्य स्थान कैसे प्राप्त करूं ॥३६-४१ ॥

अनाराधितगोविन्दै-र्नरैः स्थान नृपात्मज।
न हि सम्प्राप्यते श्रेष्ठं तस्मादाराधयाच्युतम् ॥ ४२ ॥

परः पराणां पुरुषो यस्य तुष्टो जनार्दनः।
स प्राप्नोत्यक्षयं स्थानमेतत् सत्यं मयोदितम् ॥ ४३ ॥

यस्यान्तः सर्वमेवेदमच्युतस्याव्ययात्मनः।
तमाराधय गोविन्दं स्थानमग्रयं यदीच्छसि ॥ ४४ ॥

परं ब्रह्म परं धाम योऽसौ ब्रह्म तथा परम्।
तमाराध्य हरिं याति मुक्तिमप्यतिदुर्ल्लभाम् ॥ ४५ ॥

यो यज्ञपुरुषो यज्ञे योगे यः परमः पुमान्।
तस्मिंस्तुष्टे यदप्राप्यं किं तदस्ति जनार्दने ॥ ४६ ॥

ऐन्द्रमिन्द्रः परं स्थानं यमाराद्य जगत्पतिम्।
प्राप यज्ञपतिं विष्णुं तमाराधय सुव्रत ॥ ४७ ॥

मरीचि मुनि बोले—हे राजकुमार ! बिना गोविन्द की आराधना किये श्रेष्ठ स्थान प्राप्त नहीं हो सकता अतएव अच्युत भगवान् की आराधना करो । अत्रि बोले—प्रकृति आदि से भी परे भगवान् जनार्दन जिसके ऊपर प्रसन्न होते हैं वही अक्षय स्थान को प्राप्त करता है यह हमारा कथन सत्य है । अङ्गिरा बोले—यदि तुम उत्तम पद की कामना करते हो तो जिस अव्ययात्मा (नित्य) अच्युत में समस्त चराचर जगत् स्थित है उस गोविन्द की आराधना करो । पुलस्त्य बोले—जो परमब्रह्म, परमधाम और पर ब्रह्मस्वरूप हैं उन हरि की आराधना से अति दुर्लभ मुक्ति भी प्राप्त होती है । क्रतु बोले—यज्ञ में यज्ञपुरूष और योग में परमपुरूष हैं उन जनार्दन भगवान् को प्रसन्न होने पर कोई भी वस्तु अप्राप्य नहीं रहती अर्थात् तुम भी उसी भगवान् की आराधना करो अवश्य सर्वाग्रगण्य स्थान प्राप्त करोगे । पुलह बोले—हे सुव्रत इन्द्र ने जिन जगत्पति की आराधना करके अत्युत्तम इन्द्र को प्राप्त किया उन यज्ञपति श्रीविष्णु की आराधना करो ॥४२-४७ ॥

प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ मनसा यद् यदिच्छति ।
त्रैलोक्यान्तर्गतं स्थानं किमु वत्सोत्तमोत्तमम् ॥ ४८ ॥

वसिष्ठ बोले हे वत्स ! श्रीविष्णु भगवान् की आराधना करने पर मन से जो इच्छा करोगे वही प्राप्त होगा, और तीनों लोकों के अन्तर्गत उत्तमोत्तम सर्वश्रेष्ठ स्थान के विषय में तो कहना ही क्या है ॥ ४८ ॥

आराध्यः कथितो देवो भवद्भिः प्रणतस्य मे ।
मया तत् परितोषाय यज्जप्तव्यं तदुच्यताम् ॥ ४९ ॥

यथा चाराधनं तस्य मया कार्य्यं महात्मनः ।
प्रसादसुमुखास्तन्मे कथयन्तु महर्षयः ॥ ५० ॥

राजपुत्र यथा विष्णोराराधनपरैर्नरैः ।
कार्य्यमाराधनं तन्मे यथावच्छ्रुतुमर्हसि ॥ ५१ ॥

बाह्यार्थानखिलांश्चित्तं त्वाजयेत् प्रथमं नरः ।
तस्मिन्नेव जगद्धाम्नि ततः कुर्वीत निश्चलम् ॥ ५२ ॥

एवमेकाग्रचित्तेन तन्मयेन धृतात्मना ।
जप्तव्यं यन्निबोधैतत् त्वं नः पार्थिवनन्दन ॥ ५३ ॥

हिरण्यगर्भपुरुषप्रधानाव्यक्तरूपिणे ।
ॐ नमो वासुदेवाय शुद्धज्ञानस्वभाविने ॥ ५४ ॥

एतज्जजाप भगवान् जप्यं स्वायम्भुवो मनुः ।
पितामहस्तव पुरा तस्य तुष्टो जनार्दनः ॥ ५५ ॥

ददौ यथाभिलषिताम् कृद्धिं त्रैलोक्यदुर्ल्लभाम् ।
तथा त्वमपि गोविन्दं तोषयैतत् सदा जपन् ॥ ५६ ॥

ध्रुव बोला—आप लोगों ने प्रणत मुझे आराध्यदेव तो बता दिया, किन्तु उनकी सन्तुष्टि हेतु क्या जप करना चाहिए यह भी कहें । और उस महात्मा की आराधना मैं कैसे करूं यह भी प्रसन्नचित्त होकर आप महर्षिगण मुझे बतायें । ऋषिगण बोले—हे राजपुत्र श्रीविष्णु भगवान् की आराधना में तत्पर मनुष्यों द्वारा जिस प्रकार आराधना करनी चाहिए वह यथावत् हमसे सुनो । आराधना में तत्पर मनुष्य को चाहिए कि वह सर्वप्रथम बाह्य विषयों का परित्याग करें, तब उस जगत्प्रकाशक भगवान् में अपना निश्चल मन लगावे । हे राजपुत्र ! इस प्रकार तन्मय होकर एकाग्रचित्त से जो जपना चाहिए वह भी हमसे सुनो । ओं हिरण्यगर्भ, पुरूष, प्रधान, अव्यक्तरूप, शुद्धज्ञान-स्वरूप, वासुदेव भगवान को नमस्कार हे 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इस मन्त्र का जप प्राचीन काल में पितामह स्वायम्भुवमनु ने कियाथा । और उनसे सन्तुष्ट होकर भगवान् जनार्दन ने उन्हें मनोनुकूल त्रिलोकी में दुर्लभ सिद्धि दी थी । उसी प्रकार से सदा इस मन्त्र को जप करते हुए तुम भी गोविन्द भगवान् को प्रसन्न करो ॥ ४९-५६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में ग्यारहवां अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - बारहवां अध्याय

(ध्रुव को भगवद्दर्शन तथा वर प्राप्ति)

पराशर उवाच ।

निशम्य तशेषेण मैत्रेय नृपतेः सुतः
निर्जगाम वनात् तस्मात् प्रणिपत्य स तानृषीन् ॥ १ ॥

कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानस्ततो द्विज ।
मधुसंज्ञं महापुण्यं जगाम यमुनातटम् ॥ २ ॥

पुनश्च मधुसंज्ञेन दैत्येनाधिष्ठितं यतः ।
ततो मधुवनं नाम्ना ख्यातमत्र महीतले ॥ ३ ॥

हत्वा च लवणं रक्षो मधुपुत्रं महाबलम् ।
शत्रुघ्नो मथुरां नाम पुरीं यत्र चकार वै ॥ ४ ॥

यत्र वै देवदेवस्य सान्निध्यं हरिमेधसः ।
सर्व्वपापहरे तस्मिन् तपस्तीर्थे चकार सः ॥ ५ ॥

मरीचिमुख्यैर्मुनिभिर्यथोद्दिष्टमभूत् तथा ।
आत्मन्यशेषदेवेशं स्थितं विष्णुममन्यत ॥ ६ ॥

अनन्यचेतसस्तस्य ध्यायतो भगवान् हरिः ।
सर्व्वभूतगतो विप्र सर्वभावगतोऽभवत् ॥ ७ ॥

मनस्यवस्थिते तस्य विष्णौ मैत्रेय योगिनः ।
न शशाक धरा भारमुद्वोढुं भूतधारिणी ॥ ८ ॥

श्रीपराशर जी बोले—इस प्रकार वह राजकुमार ध्रुव समस्त विषयों को सुनकर और उन ऋषियों को प्रणाम करके उस वन से निकल गया । हे द्विज ! अपनी आत्मा को कृतकृत्य मानता हुआ वह परम पवित्र यमुनातीरवर्ती मधुनामक वन में गया । उस स्थान में पहले मधु नामका एक दैत्य रहता था इसलिए उस स्थान का नाम मधुवन ऐसा विख्यात हुआ । और जिस स्थान पर मधु के पुत्र महाबलवान् लवण राक्षस का वध करके शत्रुघ्नजी ने मधुरा (मथुरा) नाम की पुरी बसायी । तथा जहाँ पर देवाधिदेव भगवान् श्री हरि का सदा निवास रहता है उसी सर्वपापहारी तीर्थ में ध्रुव ने तपस्या आरम्भ की । मरीचि आदि प्रधान मुनियों ने जैसा उपदेश किया था उसी प्रकार से उसने अपने हृदय में स्थित निखिल देवेश्वर भगवान् श्रीविष्णु का ध्यान किया । हे विप्र ! एकाग्रचित्त होकर ध्यान करते हुए ध्रुव के हृदय में सभी प्राणियों में स्थित भगवान् श्रीहरि सर्वतोभावेन विराजमान हो गये । हे मैत्रेय ! योगी ध्रुव के मन में भगवान् श्रीविष्णु के विराजमान हो जाने पर समस्त प्राणियों को धारण करने वाली भूमिभी उसका भार धारण न कर सकी ॥१-८ ॥

वामपादस्थिते तस्मिन् ननामार्द्धेन मेदिनी ।
द्वितीयञ्च ननामार्द्धं क्षितेर्दक्षिणसंस्थिते ॥ ९ ॥

पादाङ्गुष्ठेन संपीड्य यदा स वसुधां स्थितः ।
तदा सा वसुधा विप्र चचाल सह पर्वतैः ॥ १० ॥

ध्रुव जब बांयें चरणपर खड़ा होता था तब पृथिवीका बायाँ आधा भाग और जब दाहिने चरण पर खड़ा होता था तब पृथ्वी का दाहिना आधा भाग झुक जाता था । किन्तु जब ध्रुव अपने पाँव के अंगूठे से पृथिवी को दबाकर खड़ा हुआ तब पर्वतों के साथ समस्त पृथ्वी कम्पित होने लगी ॥९-१० ॥

नद्यो नदाःसमुद्रांश्च संक्षोभं परमं ययुः ।
तत्क्षोभादमराः क्षोभं परं जग्मुर्महामुने ॥ ११ ॥

यामा नाम तदा देवा मैत्रेय परमाकुलाः ।
इन्द्रेण सह संमन्त्र्य ध्यानभङ्गं प्रचक्रमुः ॥ १२ ॥

कुष्माण्डा विविधै रूपैः सहस्त्रेण महामुने ।
समाधिभङ्गमत्यन्तमारब्धाः कर्त्तुमातुराः ॥ १३ ॥

सुनीतिर्नाम तन्माता सास्रा तत्पुरतः स्थिता ।
पुत्रेति करुणां वाचमाह मायामयी तदा ॥ १४ ॥
पुत्रकास्मान्निवर्त्तस्व शरीरव्ययदारुणात् ।
निर्बन्धतो मया लब्धो बहुभिस्त्वं मनोरथैः ॥ १५ ॥

दीनामेकां परित्यक्तुमनाथां न त्वमर्हसि ।
सपत्नीवचनाद् वत्स अगतेस्तं गतिर्मम ॥ १६ ॥

हे महामुने, नदी, नद समुद्र, आदिसब अत्यन्त क्षोभ को प्राप्त हो गये तथा उनके क्षोभ से देवगण भी बहुत उद्विग्न हो गये । हे मैत्रेय ! तब अत्यन्त व्याकुल हो कर यामनामक देवताओं ने इन्द्र के साथ विचार करके ध्रुव का ध्यानभंग करने का उपाय किया । हे महामुने ! कूष्माण्डनामक उपदेवों ने अत्यन्त आतुर होकर इन्द्र के साथ अनेकरूप धारण करके समाधि भंग करना आरम्भ किया । उस समय मायामयी अश्रुपरिपूर्णनेत्रवाली उसकी माता सुनीति वहाँ उसके आगे स्थित होकर बोली हे पुत्र ! शरीर को विनाश करने वाले इस कठोर आग्रह को तुम छोड़ दो । मैंने अनेक मनोरथों से तुझे प्राप्त किया है । हे वत्स ! केवल सौत के वचन से तुम एकाकिनी अनाथा और दु:खिनी माको मत त्यागो, मुझ निराधार का तुम ही एकमात्र आधार हो ॥१२-१६ ॥

क च त्वं पञ्चवर्षीयः क्व चेतद् दारुणं तपः ।
निवर्त्त्यतां मनः कष्टान्निर्बन्धात् फलवर्जितात् ॥ १७ ॥

कालः क्रीड़नकानां ते तदन्तेऽध्ययनस्य च ।
ततः समस्तभोगानां तदन्ते चेष्यते तपः ॥ १८ ॥

कालक्रीड़नकाना यस्तद बालस्य पुत्रक ।
तस्मिंस्त्वमित्थं तपसि किं नाशयात्मनो रतः ॥ १९ ॥

मत्प्रीतिः परमो धर्म्मो वयोऽवस्थांक्रियाक्रमम् ।
अनुवर्त्तस्व सा मोहं निवर्त्तास्मादधर्मतः ॥ २० ॥

परित्यजति वत्साद्य यद्ये तन्न भवांस्तपः ।
त्यक्ष्याम्यहमपि प्राणांस्ततो वै पश्यतस्तव ॥ २१ ॥

कहाँ तुम्हारी पाँचवर्ष की अवस्था और कहाँ यह कठोर तपस्या, अरे फलहीन कष्टकारक इस आग्रह से तुम अपना मन लौटा लो । अभी तुम्हारी अवस्था खेल कूदकी है, इसके बाद की अवस्था पढ़ने लिखने वाली होगी, अनन्तर समस्त भोगों के भोगने की, और सबसे अन्त की अवस्था तप करने वाली आयेगी । हे पुत्र ! जो तुम्हारा खेल कूद का समय है उसी में तप करते हो । क्या तुम अपने विनाश में लगे हो ? । हे बेटा ! तुम्हारा सबसे प्रधान धर्म तो मुझको प्रसन्न करना है, अतएव तुम अपनी आयु के अनुकूल कार्य में लगो, अज्ञान में मत लगो, और अधर्म से अपना मन लौटा लो । हे वत्स ! यदि तुम आज ही इस कठोर तपको परित्याग नहीं करते तो मैं आज ही तेरे सामने यहीं पर अपना प्राण त्याग दूंगी ॥१७-२१ ॥

तां विलापवतीमेवं वाष्पाबिल-विलोचनाम ।
समाहितमना विष्णो पश्यन्नपि न दृष्टवान् ॥ २२ ॥

वत्स वत्स सुघोराणि रक्षांस्येतानि भीषणे ।
वनेऽभ्युद्यतशस्त्राणि समायान्त्यपगम्यताम् ॥ २३ ॥

इत्युक्त्वा प्रययौ साथ रक्षांस्याविर्बभुस्ततः ।
अभ्युद्यतोग्रशस्त्राणि ज्वालामालाकुलैर्मुखैः ॥ २४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—भगवान् श्री विष्णु में स्थिर चित्तवाला वह बालक ध्रुव इस प्रकार विलाप करती हुई और अश्रुपूर्णनेत्रवाली अपनी माता को देखते हुए भी नहीं देख सका । हे वत्स ! इस भयानक वन में ये सब भयङ्कर राक्षस शस्त्र उठाये हुए आ रहे हैं, अतएव यहाँ से भागो । इतनी बातें कहकर सुनीति के चले जाने पर वहाँ अपने मुख से आग उगलते हुए और उग्रशस्त्र लिये हुए भयङ्कर राक्षसगण प्रकट हुए ॥२२-२४ ॥

ततो नादानतीवोग्रान् राजपुत्रस्य ते पुरः ।
मुमुचुर्दीप्तशस्त्राणि भ्रामयन्तो निशाचराः ॥ २५ ॥

शिवाश्च शतशो नेदुः सज्वालाकवलैर्मुखैः ।
त्रासाय तस्य बालस्य योगयुक्तस्य सर्व्वशः ॥ २६ ॥

हन्यतां हन्यतामेष छिद्यतां छिद्यतामयम् ।
भक्ष्यतां भक्ष्यताञ्चायमित्यूचुस्ते निशाचराः ॥ २७ ॥

ततो नानाविधान् नादान् सिंहोष्ट्रमकराननाः ।
त्रासाय राजपुत्रस्य नेदुस्ते रजनीचराः ॥ २८ ॥

रक्षांसि तानि ते नादाः शिवास्तान्यायुधानि च ।
गोविन्दासक्तचित्तस्य ययुर्नेन्द्रियगोचरम् ॥ २९ ॥

एकाग्रचेताः सततं विष्णुमेवात्मसंश्रयम् ।
दृष्टवान् पृथिवीनाथपुत्रो नान्यत् कथञ्चन ॥ ३० ॥

तब वे राक्षस अपने तेज चमकीले शस्त्रों को घुमाते हुए उस राजकुमार ध्रुव के सामने अत्यन्त भयङ्कर कोलाहल करने लगे । और योगयुक्त उस बालक को डराने के लिए आग की लपट निकालते मुखवाले सैकड़ों शिवा (गिदडीयां) वहाँ पर भयङ्कर शब्द करने लगीं । वे राक्षसगण इसे मारो मारो, काटो काटो, इस प्रकार के उच्चस्वर में बोलने लगे । और सिंह, ऊँट तथा मकर के समान मुखवाले राक्षसगण भी उस राजकुमार ध्रुव को भयभीत करने के लिए अनेक तरह की गर्जना करने लगे । किन्तु भगवान् गोविन्द में स्थित मनवाले उस बालक ध्रुव को वे राक्षसगण, उनके वे भयङ्कर शब्द, और स्यारियाँ अथवा वे अस्त्र-शस्त्र कोई भी इन्द्रियगोचर नहीं हुए (प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दिये) । एकाग्रचित्त उस राजपुत्र ध्रुव ने सदा अपने आश्रयभूत भगवान् श्रीविष्णु के सिवा और कुछ नहीं देखा ॥२५-३० ॥

ततः सर्वासु मायासु विलीनासु पुनः सुराः ।
संक्षोभं परमं जग्मुस्तत्पराभवशङ्किताः ॥ ३१ ॥

ते समेत्य जगदयोनिमनादिनिधनं हरिम् ।
शरण्यं शरणं यातास्तपसा तस्य तापिताः ॥ ३२ ॥

इसके बाद समस्त माया के विनष्ट हो जाने पर उससे पराभव की आशंका से देवगण पुनः घबड़ाये । और उसकी तपस्या से सन्तप्त देवगण इकट्ठे होकर जगत् के उत्पादक, जन्म मृत्यु से रहित, और शरणदायक भगवान् श्रीहरि की शरण में पहुंचे ॥३१-३२ ॥

देव देव जगन्नाथ परेश पुरुषोत्तम ।
ध्रुवस्य तपसा तप्तास्त्ववां वयं शरणं गताः ॥ ३३ ॥

दिने दिने कलालेशैः शशाङ्कः पूर्य्यते यथा ।
तथायं तपसा देव प्रयात्यृद्धमहर्निशम् ॥ ३४ ॥

औत्तानपादितपसा वयमित्थं जनार्दन ।
भीतास्त्वां शरणं यातास्तपसस्तं निवर्त्तय ॥ ३५ ॥

न विद्मः किं स शक्रत्वं किं सूर्य्यत्वमभीप्सति ।
वित्तापाम्बुपसोमानां साभिलाषः पदे नु किम् ॥ ३६ ॥

तदस्माकं प्रसीदेश हृदयाच्छल्यमुद्धर ।
उत्तानपादतनयं तपसः सन्निवर्त्तय ॥ ३७ ॥

नेन्द्रत्वं न च सूर्य्यत्वं नैवाम्बुपधनेशताम् ।
प्रार्थयत्येष यं कामं तं करोम्यखिलं सुराः ॥ ३८ ॥

यात देवा यथाकामं स्वस्थानं विगतज्वराः ।
निवर्त्तयाम्यहं बालं तपस्यासक्तमानसम् ॥ ३९ ॥

देवगण बोले—हे देव देव जगन्नाथ, परमेश्वर, पुरुषोत्तम ! ध्रुव की तपस्या से संतप्त हम देवगण आपकी शरण में आये हैं । हे देव ! जैसे प्रतिदिन अपनी कलाओं से चन्द्रमा बढ़ता है वैसे ही ध्रुव भी अपनी तपस्या से बढ़ रहा है । हे जनार्दन ! उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव की तपस्या से भयभीत होकर हमलोग आपकी शरण में आयें हैं, अतएव उसे तपस्या से रोकिये । हमलोग नहीं जानते कि वह इन्द्रत्व या सूर्यत्वकी इच्छा करता है, अथवा कुबेर वरुण या चन्द्र के पद प्राप्त करने की उसकी अभिलाषा है । अत एव हे ईश ! हम सब पर प्रसन्न होइये, हमलोगों के हृदय का संदेह निकालिये, एवं ध्रुव को तपस्या से निवृत्त कीजिये । श्रीभगवान् बोले—हे देवगण ! वह इन्द्र, सूर्य, वरुण, कुबेर, आदि के पद की अभिलाषा नहीं करता है, वह जो चाहता है उसे मैं पूर्ण करूंगा । हे देवगण ! आपलोग निर्भय होकर इच्छानुकूल अपने स्थान को जायें । तपस्या में लगे हुए मनवाले बालक ध्रुव को मैं जाकर तपसे निवृत्त करता हूँ ॥ ३३-३९ ॥

इत्युक्ता देवदेवेन प्रणम्य त्रिदशास्ततः
प्रययुः स्वानि धिष्णानि शतक्रतुपुरोगमाः ॥ ४० ॥

श्रीपराशर जी बोले—देव देव भगवान् श्रीविष्णुद्वारा इस प्रकार कहे जाने पर इन्द्र आदि सभी देवगण प्रणाम करके अपने अपने स्थान को चले गये ॥ ४० ॥

भगवानपि सर्वात्मा तन्मयत्वेन तोषितः ।
गत्वा ध्रुवमुवाचेदं चतुर्भुजवपुर्हरिः ॥ ४१ ॥

उत्तानपादे भद्रं ते तपसापिरतोषितः ।
वरदोऽहमनुप्राप्तो वरं वरय सुव्रत ॥ ४२ ॥

बाह्यार्थनिरपेक्षं ते मयि चित्रं यदाहितम् ।
तुष्टोऽहं भवतस्तेन तद् वृणीष्व वरं परम् ॥ ४३ ॥

श्रुत्वा तद् गदितं तस्य देवदेवस्य बालकः ।
उन्मीलिताक्षो ददृक्षे ध्यानदृष्टं हरिं पुरः ॥ ४४ ॥

शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गवरासिधरमच्युतम् ।
किरीटिनं समालोक्य जगाम शिरसा महीम् ॥ ४५ ॥

रोमाञ्चिताङ्गः सहसा साध्वसं परमं गतः ।
स्तवाय देवदेवस्य स चक्रे मानसं ध्रुवः ॥ ४६ ॥

किं वदामि स्तुतावस्य केनोक्तेनास्य संस्तुतिः ।
इत्याकुलमतिर्देवं तमेव शरणं ययौ ॥ ४७ ॥

भगवन् यदि मे तोषं तपसा परमं गतः ।
स्तोतुं तदहमिच्छामि वरमेतं प्रयच्छ मे ॥ ४८ ॥

ध्रुव की तन्मयता से प्रसन्न सर्वात्मा भगवान् श्रीहरि भी चतुर्भुजरूप से ध्रुव के समीप जाकर बोले । श्रीभगवान् बोले—हे उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ! तेरा कल्याण हो । तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट होकर वरदान देने मैं तेरे समीप आया हूं हे सुव्रत ! वर माँगो । बाह्य विषयों से निरपेक्ष तुम्हारा मनं मेरे में लग गया । अत एव मैं अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ तुम श्रेष्ठ वर माँग लो । श्रीपराशर जी बोले—उस देव देव

श्रीविष्णु भगवान् के इस प्रकार के वचन सुनकर ध्रुव ने अपनी आंखें खोली और ध्यानावस्था में देखे हुए भगवान् को अपने आगे देखा। इसके बाद बालक ध्रुव ने शंख, चक्र, गदा, शाङ्‌र्ग, धनुष धारण किए हुए किरीट युक्त उस अच्युत भगवान् को देखकर भूमि पर माथा रख के प्रणाम किया। और सहसा रोमाञ्चित शरीरवाले अत्यन्त भयभीत बालक ध्रुव ने देव देव भगवान् श्रीविष्णु की स्तुति करने का विचार किया। किन्तु इनकी स्तुति में मैं क्या कहूं, क्या कहने से इनकी स्तुति होगी इस प्रकार व्याकुलमतिवाला वह भगवान् की शरण में गया। ध्रुव बोला—हे भगवन्! यदि मेरी तपस्या से आप परम सन्तुष्ट हो गये हैं तब मैं आपकी स्तुति करने की इच्छा करता हूं पहले यही वर मुझे दीजिये ॥४१-४८ ॥

ब्रह्माद्यैर्व्वेदवेदज्ञैर्ज्ञायते यस्य नो गतिः ।
तं त्वां कथमहं देव स्तोतुं शक्नोमि बालकः ॥ ४९ ॥

त्वद्भक्तिप्रवणं ह्येतत् परमेश्वर मे मनः ।
स्तोतुं प्रवृत्तं त्वत्पादौ तत्र प्रज्ञां प्रयच्छ मे ॥ ५० ॥

हे देव! वेदज्ञ, आदि भी जिनकी गति नहीं जानते उन्हीं आपकी स्तुति मै बालक कैसे करूँ। हे परमेश्वर! यह मेरा मन आपकी भक्ति से द्रवित हो गया है, और आपके चरणों की स्तुति में प्रवृत्त हुआ है। अतएव मुझे स्तुति के योग्य बुद्धि दीजिये ॥४९-५० ॥

शङ्खप्रान्तेन गोविन्दस्तं पस्पर्श कृताञ्जलिम्।
उत्तानपादतनयं द्विजवर्य्य जगत्पतिः ॥ ५१ ॥

अथ प्रसन्नवदनस्तत्क्षणान्नृपनन्दनः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा भूतधातारमच्युतम् ॥ ५२ ॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्यस्य रूपं नतोऽस्ति तम् ॥ ५३ ॥

शुद्धः सूक्ष्मोऽखिलव्यापी प्रधानात् परतः पुमान्।
यस्य रूपं नमस्तस्मै पुरुषाय गुणाशिने ॥ ५४ ॥

भूरादीनां समस्तानां गन्धादीनाञ्च शाश्वतः ।
बुध्यादीनां प्रधानस्य पुरुषस्य च यः परः ॥ ५५ ॥

तं ब्रह्मभूतमात्मानमशेषजगतः परम् ।
प्रपद्ये शरणं शुद्धं तद्रूपं परमेश्वरम् ॥ ५६ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! तब जगत्पति भगवान गोविन्द ने हाथ जोड़े हुए उस उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव को अपने (सर्ववेदमय शंख के ब्रह्मप्रतिपादक भाग से) शंख के एक भाग से स्पर्श किया । उसी क्षण ज्ञान प्राप्त होने से प्रसन्न मुखवाला राजकुमार अति नम्र होकर सभी भूतों के आधार अच्युत भगवान् की स्तुति करने लगा । ध्रुव बोला—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार और मूल-प्रकृति जिनके स्वरूप हैं उस भगवान् को नमस्कार करता हूं । (अर्थात् भूमि आदि स्थूल और सूक्ष्मरूप, दश भूत तथा मन इस प्रकार ग्यारह इन्द्रियों का उपलक्षण है । महत्तत्त्व अहङ्कार आदि प्रकृति इस प्रकार चौबीस तत्त्व जिसके रूप हैं उस परमात्मा को नमस्कार करता हूँ)। जो परमशुद्ध, सूक्ष्म, सर्वव्यापी, प्रधान से भी परे पुरुष जिनका रूप है, उस गुणसाक्षी पुरुष को नमस्कार करता हूँ । हे परमेश्वर ! भूमि आदि सम्पूर्ण भूत, और उनके गुण गन्ध आदि, तथा बुद्धि आदि, एवं जीव इनसे भी जो परे हैं । (जो सनातन पुरुष है) उन समस्त जगत् के पति शुद्ध ब्रह्मस्वरूप परमात्मा की शरण में हूँ ॥५१-५६ ॥

बृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च यद्रूप ब्रह्मसंज्ञितम् ।
तस्मै नमस्ते सर्वात्मन् योगिचिन्त्याविकारवत् ॥ ५७ ॥

सहस्त्रशीर्षा पुरुष सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
सर्व्वव्यापी भुवः स्पर्शदत्यतिष्ठद् दशाङ्गुलम् ॥ ५८ ॥

यद्भूतं यच्च वै भाव्यं पुरुषोत्तम तद् भवान् ।
त्वत्तो विराट् स्वराट् सम्राट् त्वत्तश्चाप्यधिपूरुषः ॥ ५९ ॥

अत्यरिच्यत सोऽधश्च तिर्यक् चोर्ध्वञ्च वै भुवः ।
त्वत्तो विश्वमिदं जातं त्वत्तो भूतभविष्यती ॥ ६० ॥

त्वद्रूपधारिणश्चान्तर्भूतं सर्व्वमिदं जगत् ।
त्वत्तो यज्ञः सर्व्वहुतः पृषदाज्यं पशुर्द्विधा ॥ ६१ ॥

हे योगियों द्वारा चिन्तनीय ! हे सर्वात्मन् ! सर्वगत एवं वर्धनशील होने के कारण ब्रह्मनाम का जो आपका रूप है, उस अविकारी रूप को मैं नमस्कार करता हूँ । हे देव ! आप हजारों शिरों वाले, हजारों नेत्रों वाले, हजारों पाँववाले पुरुष हैं, तथा सर्वव्यापक आप आवरणसहित समस्त ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दश गुण प्रमाण से विराजमान हैं । और हे पुरुषोत्तम ! (जो हो चुका) भूत ? (जो होने वाला है) भविष्यत्, जो कुछ भी वस्तु है वह सब आप ही हैं आपसे ही विराट्, स्वराट्, सम्राट और अधिपुरुष (ब्रह्मा) आदि भी उत्पन्न हुए हैं । तथा आप ही पृथ्वी के ऊपर, नीचे और तिरछे हैं, तथा आपसे ही समस्त विश्व और भूत भविश्यत् भी उत्पन्न हुए हैं । हे भगवन् ! आपके स्वरूपभूत ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत समस्त जगत् आप है (आपके अन्तर्गत जगत् है ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति नहीं) और इसी जगत् में सभी पुरोडाशों का हवन होता है । एवं यज्ञ, पृषदाज्य दधि घृत, ग्रामीण और वन्य ये दो प्रकार के यज्ञ पशु भी आप ही से उत्पन्न हुए हैं ॥५७-६१ ॥

त्वत्तों ऋचोऽथ सामानि त्वत्तश्छन्दांसि जज्ञिरे ।
त्वत्तो यजूंष्यजायन्त त्वत्तोऽश्वाश्चैकतोदतः ॥ ६२ ॥

गावस्त्वत्तः समुद्भूतास्त्वत्तोऽजा अवयो मृगाः ।
त्वन्मुखाद ब्राह्मणास्त्वत्तो बाह्वोः क्षत्रमजायत ॥ ६३ ॥

वैश्यास्तवोरुजाः शूद्रास्तव पद्भ्यां समुद्गताः ।
अक्ष्णोः सूर्य्योऽनिलः श्रोत्राच्चन्द्रमा मनसस्तव । ६४ ॥

प्राणो नः शुषिराज्जातो मुखादग्निरजायत ।
नाभितो गगनं द्यौश्च शिरसः समवर्त्तत ॥ ६५ ॥

दिशः श्रोत्रात् क्षितिः पद्भ्यां त्वत्तः सर्व्वमभूदिदम् ।
न्यग्रोधः सुमहानल्पे यथा बीजे व्यवस्थितः ॥ ६६ ॥

संयमे विश्वमखिलं बीजभूते तथा त्वयि ।
बीजादङ्कुरसम्भूतो न्यग्रोधः सुसमुत्थितः ॥ ६७ ॥

विस्तारञ्च यथा याति त्वत्तः सृष्टौ तथा जगत् ।
यथा हि कदली नान्या त्वक्पत्राद् वाथ दृश्यते ॥ ६८ ॥

और आप ही से ऋक्, साम और समस्त छन्द उत्पन्न हुए हैं, तथा आपही से यजुर्वेद, अश्व एवं एक ओर दाँतवाले सभी पशु उत्पन्न हुए हैं । तथा आपसे ही गौ, आपही से बकरें, भेड़ और मृग भी उत्पन्न हुए हैं । और आपके मुख से ब्राह्मण एवं बाहुओं से क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं । वैश्य आपकी जंघाओं से, और शूद्र आपके चरणों से उत्पन्न हुए । इसी प्रकार आप के नेत्रों से, सूर्य, प्राण से वायु, मनसे चन्द्रमा, भीतरी छिद्र से प्राण, मुख से अग्नि, नाभि से आकाश, शिर से स्वर्ग, कर्ण से दिशाएँ, और आपके चरणों से यह पृथिवी आदि सभी उत्पन्न हुए, जिस प्रकार छोटे से बीज में विशाल वरगद का वृक्ष स्थित रहता है उसी प्रकार प्रलय के समय बीज रूप आप में ही यह समस्त विश्व विराजमान रहता है । और जिस प्रकार बीज से अङ्कुर उत्पन्न होता है और उससे विशाल वटवृक्ष हो जाता है उसी प्रकार सृष्टि काल में आपसे ही उत्पन्न यह जगत् विस्तार को प्राप्त करता है । हे ईश्वर ! जैसे कदली (केला) त्वचा और पत्र से पृथक् नहीं दिखायी देती । उसी प्रकार आप जगत् से भिन्न नहीं हैं किन्तु जगत् आप ही में.स्थित देखा जाता है ॥६२-६८ ॥

एवं विश्वस्य नान्यत्वं तत्स्थायीश्वर दृश्यते ।
ह्लादिनी सन्धिनी सम्बित् त्वय्येका सर्व्वसंस्थितौ ॥ ६९ ॥

ह्लादतापकरी मिश्रा त्वयि नो गुणवर्ज्जिते ।
पृथग्भूतैकभूताय भूतभूताय ते नमः ॥ ७० ॥

प्रभूतभूतभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः ।
व्यक्तप्रधानपुरुषविराट् सम्राट् स्वराट् तथा ॥ ७१ ॥

विभाव्यतेऽन्तःकरणैः पुरुषेष्वक्षयो भवान् ।
सर्व्वस्मिन् सर्व्वभूतस्त्वं सर्व्वः सर्व्वस्वरूपधृक् ॥ ७२ ॥

सर्व्वं त्वत्तस्ततश्च त्वं नमः सर्व्वात्मनेऽस्तु ते ।
सर्व्वात्मकोऽसि सर्वेश सर्व्वभूतस्थितो यतः ॥ ७३ ॥

कथयामि ततः कि ते सर्व्वं वेत्सि हृदि स्थितम् ।
सतर्व्वात्मन् सर्व्वभूतेश सर्व्वसत्वसमुद्भव ॥ ७४ ॥

सभी के आश्रयभूत आप में ह्लादिनी (सदा आनन्दित करने वाली) और सन्धिनी (अविच्छिन्न) संवित् (विद्याशक्ति) अभिन्न होकर निवास करती है । और निर्गुण आप में विषय से उत्पन्न आनन्द और ताप देनेवाली अर्थात् सात्त्विकी मायामयी तथा मिश्र दोनों मिली हुई संवित् नहीं है । कार्यरूप से आप भिन्न रूप तथा (कारणरूप से) एक रूप हैं । और आप ही भूतों में सूक्ष्मभूत हैं । आप ही नानाविध भूतरूप हैं, भूतों की अन्तरात्मा में स्थित आपको नमस्कार करता हूँ । आप की व्यक्त (महत्तत्त्व) प्रधान, पुरुष, विराट्, स्वराट् तथा सम्राट् आदि अनेकरूपों से योगीयों द्वारा अन्तःकरण में चिन्तित होते हैं, और आप ही क्षयशील पुरुषों में अक्षय हैं । आप ही आकाशादि में सर्वभूत उनके गुणस्वरूप हैं, सर्वस्वरूप होने के कारण आप ही सब कुछ हैं, एवं आप ही से सब उत्पन्न हुआ है, और सबके द्वारा आप हो रहे हैं । अतएव सर्वात्मरूप आपको नमस्कार है । हे सर्वेश ! आप समस्त प्राणियों में स्थित होने के कारण सर्वात्मक हैं, अतएव मैं आपको क्या कहूं । आप हृदय में स्थित सभी बातों को जानते हैं । हे सर्वात्मन् ! हे सर्वभूतों के ईश्वर ! हे सभी प्राणियों के आदि-स्थान । आप सर्वभूतस्वरूप हैं । अतः सभी प्राणधारियों की इच्छा को जानते हैं ॥६९-७४ ॥

सर्व्वभूतो भवान् वेत्ति सर्व्वभूतमनोरथम् ।
यो मे मनोरथो नाथ सफलः स त्वया कृतः ।
तपश्च तप्तं सफलं यद् इहोऽसि जगत्पते ॥ ७५ ॥

हे नाथ ! हमारा जो मनोरथ था उसे आपने सफल कर दिया और हे जगदीश्वर ! मेरे द्वारा की गयी तपस्या भी सफल हो गयी, जो आपका साक्षात् दर्शन हुआ ॥ ७५ ॥

तपसस्तु फलं प्राप्तं यद् दृष्टोऽहं त्वया ध्रुव ।
मद्दर्शनं हि विफलं राजपुत्र न जायते ॥ ७६ ॥

वरं वरय तस्मात् त्वं यथाभिमतमात्मनः ।
सर्व्वं संपद्यते पुंसां मयि दृष्टिपथं गते ॥ ७७ ॥

भगवन् सर्व्वभूतेश सर्व्वस्यास्ते भवान् हृदि ।
किमज्ञातं तव स्वामिन् मनसा यन्मयेप्सितम् ॥ ७८ ॥

तथापि तुभ्यं देवेश कथयिष्यामि यन्मया।
प्रार्थ्यते दुर्व्विनीतेन हृदयेनातिदुर्ल्लभम्॥ ७९॥

किं वा सर्व्वजगत्स्त्रष्टः प्रसन्ने त्वयि दुर्ल्लभम्।
त्वत्प्रसादफलं भुङ्क्ते त्रैलोक्यं मघवानपि॥ ८०॥

नैतद् राजासनं योग्यमजातस्य ममोदरात्।
इति गर्व्वादवोचन्मां सपत्नी मातुरुच्चकैः॥ ८१॥

आधारभूतं जगतः सर्व्वेषामुत्तमोत्तमम्।
प्रार्थयामि प्रभो स्थानं त्वत्प्रसादादतोऽव्ययम॥ ८२॥

श्रीभगवान् बोले—हे ध्रुव ! तुम्हारी तपस्या सफल हो गयी जो तुम्हें मेरा दर्शन हुआ। किन्तु हे राजपुत्र ! मेरा दर्शन कभी व्यर्थ नहीं होता। अतएव अब तुम अपने मनोनुकूल वर मांग लो। क्योंकि मेरा दर्शन होने के बाद पुरुष को सब कुछ मिल जाता है। ध्रुव ने बोला—हे भूत-भविष्यत् के ईश्वर ! आप समस्त प्राणियों के हृदय में विराजमान हैं। इसलिए हे ब्रह्मन् ! मेरे मन की इच्छा क्या आपसे छिपी हुई है ? तथापि हे देवेश्वर ! दुर्विनीत मैं अत्यन्त दुर्लभ जिस जिस वस्तु की अभिलाषा करता हूँ, उसे आपसे अवश्य कहूँगा। हे समस्त जगत् के उत्पादक ! आपके प्रसन्न होने पर कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। इन्द्र भी आपकी प्रसन्नता के फलस्वरूप त्रिलोकी का भोग करते हैं। 'मेरे गर्भ से उत्पन्न न होने के कारण तुम इस राज सिंहासन के योग्य नहीं हो', इस प्रकार से मेरी सौतेली माता ने अत्यन्त गर्व से और ऊँचे स्वर से कहा है। अतएव हे प्रभो ! आपके प्रसाद से मैं जगत् के आधार-भूत सभी स्थानों में उत्तमोत्तम और अक्षय स्थान की इच्छा करता हूँ॥७६-८२॥

यत त्वया प्रार्थितं स्थानम एत्तत् प्राप्स्यति वै भवान्।
त्वयाहं तोषितः पूर्व्वमन्यजन्मनि बालक॥ ८३॥

त्वमासीर्ब्राह्मणः पूर्व्वं मय्येकाग्रमतिः सदा।
मातापित्रोश्च शुश्रूषुर्निजधर्म्मानुपालकः॥ ८४॥

कालेन गच्छता मित्रं राजपुत्रस्तवाभवत्।
यौवनेऽखिलभोगाढ्यो दर्शनीयोज्ज्वलाकृतिः॥ ८५॥

तत्संगात् तस्य तामृद्धिमवलोक्यातिदुर्लभाम् ।
भवेयं राजपुत्रोऽहम् इति वाञ्छा त्वया कृता ॥ ८६ ॥

ततो यथाभिलषिता प्राप्ता ते राजपुत्रता ।
उत्तानपादस्य गृहे जातोऽसि ध्रुव दुर्लभे ॥ ८७ ॥

अन्येषां तद् वरं स्थानं कुले स्वायम्भुवस्य यत् ।
तस्यैतदवरं बाल येनाहं परितोषितः । ८८ ॥

मामाराध्य नरो मुक्तिमवाप्नोत्यविलम्बिताम् ।
मय्यर्पितमना बाल किमु स्वर्गादिकं पदम् ॥ ८९ ॥

त्रैलोक्यादधिके स्थाने सर्वताराग्रहाश्रयः ।
भविष्यति न सन्देहो मत्प्रसादाद् भवान् ध्रुव ॥ ९० ॥

श्रीभगवान् बोले—हे बालक ! तुम जिस स्थान की कामना करते हो, वह अवश्य प्राप्त करोगे; क्योंकि तुमने पूर्व जन्म में भी मुझे सन्तुष्ट किया था । तुम पूर्वजन्म में मुझ में निरन्तर एकाग्र मन लगाने वाले, माता पिता की सेवा करने वाले, तथा अपने धर्म का पालन करने वाले एक ब्राह्मण थे । समय बीतने पर एक राजकुमार तुम्हारा मित्र हुआ । वह युवाकाल में समस्त भोगों से सम्पन्न देखने योग्य उज्जवल आकृतिवाला था । उसके साथ से उसकी अत्यन्त दुर्लभ सम्पत्ति को देखकर मैं भी राजपुत्र बनूं ऐसी तुमने भी अभिलाषा की । अतएव हे ध्रुव ! तूने जैसी अभिलाषा की, वैसी राजपुत्रता भी पायी, और जिस स्वायम्भुवमनु के कुल में उत्तानपाद राजा के घर में जन्म लिये हो, वह स्थान दूसरों के लिये दुर्लभ है । किन्तु हे बालक ! उसमें भी जिसने मुझे सन्तुष्ट किया, उसके लिए तो यह स्थान कुछ भी नहीं है । हे बालक ! मेरी आराधना करके मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति प्राप्त कर लेता है, और जिसका मन मुझ में लगा है उसके लिए स्वर्गादि स्थान तुच्छ होते है । हे ध्रुव ! मेरी कृपा से तुम त्रिलोकी में सर्वोत्तम उस स्थान को निःसन्देह प्राप्त करोगे जो समस्त तारा मण्डल और ग्रहों का आश्रय होगा ॥८३-९० ॥

सूर्य्यात् सोमात् तथा भौमात् सोमपुत्राद् बृहस्पते ।
सितार्कतनयादीनां सर्वर्क्षाणां तथा ध्रुवम् ॥ ९१ ॥

सप्तर्षीणामशेषाणां य तु वेमानिकाः सुराः ।
सर्वेषामुपरि स्थानं तव दत्तं मया ध्रुव ॥ ९२ ॥

केचिच्चतुर्युगं यावत् केचिन्मन्वन्तरं सुराः ।
तिष्ठन्ति भवतो दत्ता मया वै कल्पसंस्थितिः ॥ ९३ ॥

सुनीतिरपि ते माता त्वदासन्नातिनिर्म्मला ।
विमाने तारका भूत्वा तावत् कालं निवत् स्यति ॥ ९४ ॥

ये च त्वां मानवाः प्रातः सायञ्च सुसमाहिताः ।
कीर्त्तयिष्यन्ति तेषाञ्च महत् पुण्यं भविष्यति ॥ ९५ ॥

हे ध्रुव ! सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, तथा शनि आदि ग्रहों से और समस्त सप्तर्षिगण सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल एवं विमानचारी सभी देवताओं से भी ऊपर का स्थान मैंने तुझे दिया । देवताओं में कोई देवता चार युगतक, कोई एक मन्वन्तर तक ही स्थित रहते हैं, किन्तु मैं तुझे एक कल्पतक की स्थिति देता हूँ । और तुम्हारी माता सुनीति भी तुम्हारे समीप ही अति निर्मल तारा होकर उतने ही काल तक विमान पर निवार्स करेगी । तथा जो लोग समाहित मन से सायंकाल और प्रातः काल तेरा गुणगान करेंगे, उन्हें बहुत पुण्य लाभ होगा ॥९१-९५ ॥

एवं पूर्वं जगन्नाथाद् देवदेवाज्जनार्दनात् ।
वरं प्राप्य ध्रुवः स्थानमध्यास्ते स महामते ॥ ९६ ॥

श्रीपराशर जी बोले—हे महामते ! इस प्रकार प्राचीन समय में जगन्नाथ देवताओं के भी देव जनार्दन भगवान् से वर प्राप्त करके ध्रुव उत्तमोत्तम स्थान में निवास करने लगा ॥ ९६ ॥

तस्यापि मानमृद्धिञ्च महिमानं निरीक्ष्य च ।
देवासुराणामाचार्य्यः श्लोकमत्रोशना जगौ ॥ ९७ ॥

स्वयं अपने माता पिता की धर्मपूर्वक सेवा शुश्रूषा करने से, द्वादशाक्षरमन्त्र के जप से तथा अपनी तपस्या के प्रभाव से ध्रुव के मान वैभव और महत्त्व को देख कर देवता और दानवों के आचार्य शुक्र ने इस विषय में एक श्लोक कहा है ॥ ९७ ॥

अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहोऽस्य तपसः फलम् ।
यदेनं पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः ॥ ९८ ॥

ध्रुवस्य जननी चेयं सुनीतिर्नाम सूनृता ।
अस्याश्च महिमानं कः शक्तो वर्णयितुं भुवि ॥ ९९ ॥

त्रैलोक्याश्रयतां प्राप्तं परं स्थानं स्थिरायति ।
स्थानं प्राप्ता वरं कृत्वा या कुक्षिविवरे ध्रुवम् ॥ १०० ॥

यश्चैतत् कीर्त्तयेन्नित्यं ध्रुवस्यारोहणं दिवि ।
स सर्वपापनिर्म्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥ १०१ ॥

स्थानभ्रंशं न चाप्नोति दिवि वा यदि वा भुवि ।
सर्वकल्याणसंयुक्तो दीर्घकालञ्च जीवति ॥ १०२ ॥

अहो ! इस ध्रुव के तप का प्रभाव कैसा है ! अहो ! इसके तप का फल है । जो इसको आगे स्थित कर सप्तर्षिगण स्थित हैं । और इसकी माता सुनीति भी अवश्य हितकारी वचन कहने वाली है, इसके महत्त्व को संसार में कौन कह सकता है । जिसने अपने गर्भ में ध्रुव को धारण करके तीनों लोकों के आश्रयभूत भविष्य में भी स्थिर रहने वाला उत्तम स्थान प्राप्त कर लिया । जो प्रतिदिन ध्रुव के इस स्वर्गारोहण प्रसङ्ग का कीर्तन करता है वह उन पापों से मुक्त होकर स्वर्गलोक में निवास करता है । और वह स्वर्गवासी कभी अपने स्थान (स्वर्ग) से च्युत नहीं होता, कदाचित् च्युत भी हो जाय तो भूमि पर समस्त कल्याणों से युक्त होकर बहुत समय तक जीवित रहता है ॥९८-१०२ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में बारहवां अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - तेरहवाँ अध्याय

(वेन और राजा पृथु का उपाख्यान)

ध्रुवाच्छिष्टिञ्च भव्यञ्च भव्याच्छम्भुर्व्यजायत।
शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥ १॥

रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं वृकलं वृकतेजसम्।
रिपोराधत्त बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम्॥ २॥

अजीजनत् पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम्।
प्रजापतेरात्मजायामरण

यस्य महात्मनः॥ ३॥

मनोरजायन्त दश नड्वलायां महौजसः।
कन्यायां जगतां श्रेष्ठ वैराजस्य प्रजापतेः॥ ४॥

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कविः।
अग्निष्टोमोऽतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते नव॥ ५॥

अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां महौजसः।
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षड़ाग्नेयी महाप्रभान्॥ ६॥

अङ्गं सुमनसं स्वाति क्रतुमङ्गिरसं शिवम्।
अङ्गात् सुनीथपत्यं वै वेणमेकमजायत॥ ७॥

श्रीपराशरजी बोले—ध्रुव के (उसकी पत्नी से) शिष्टि और भव्य नाम के दो पुत्र हुए और भव्य से शम्भु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, तथा शिष्टि से सुच्छाया नाम की पत्नी में रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, वृकल, वृकतेजा नाम के पांच निष्पाप पुत्र उत्पन्न

हुए, एवं रिपुने बृहती नाम की पत्नी में महातेजस्वी चाक्षुषनामका पुत्र उत्पन्न किया। चाक्षुष ने वरुण कुल में उत्पन्न महात्मा वीरण प्रजापति की पुत्री पुष्करिणी से मनु को जन्म दिया। (ये छठे मन्वन्तर के अधिपति हुए)। जगत् में श्रेष्ठ मनु ने वैराज प्रजापतिकी कन्या नड्वला में महातेजस्वी दश पुत्र उत्पन्न हुए। ऊरु, पुरु, शतद्युम्न, तपस्वी सत्यवान्, शुचि, अग्निष्टोम, अतिरात्र, सुधुम्न, अभिमन्यु ये दश पुत्र नड्वला से उत्पन्न हुए। इनमें ऊरु के आग्नेयी नाम की पत्नी से महातेजस्वी अङ्ग, सुमनस, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरा और शिवि ये छः पुत्र हुए। अङ्ग से सुनीथा ने वेन को उत्पन्न किया ॥ १-७ ॥

प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम्।
वेणस्य पाणौ मथिते सम्बभूव महामुने ॥ ८ ॥

वैण्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीत्तितः।
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकारणात् ॥ ९ ॥

ऋषियों ने सन्तान के लिए उसके वेन के दाहिने हाथ का मन्थन किया। मन्थन करने से वैन्य नाम का पुत्र हुआ जो पृथु नाम से विख्यात हुआ। और जिसने प्रजाओं की हितकामना से प्राचीनकाल में इस पृथ्वी का दोहन किया था ॥ ८-९ ॥

किमर्थं मथितः पाणिर्वेणस्य परमर्षिभिः।
यत्र यज्ञे महावीर्य्यः स पृथुर्मुनिसत्तमः ॥ १० ॥

सुनीथा नाम या कन्या मृत्योः प्रथमतोऽभवत्।
अङ्गस्य भार्या सा दत्ता तस्यां वेणो व्यजायत ॥ ११ ॥

मैत्रेय जी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ऋषियों ने किसलिए वेन के हाथ का मन्थन किया, जिससे महापराक्रमी पृथुराजा उत्पन्न हुए। श्रीपराशरजी बोले—मृत्यु की प्रथम कन्या सुनीथा अङ्गराज को भार्या रूप में दी गयी। जिससे वेण की उत्पत्ति हुई ॥ १०-११ ॥

स मातामहदोषेण तेन मृत्योः सुतात्मजः।
निसर्गादिव मैत्रेय दुष्ट एव व्यजायत ॥ १२ ॥

अभिषिक्तो यदा राज्ये स वेणः परमर्षिभिः।
घोषयामास स तदा पृथिव्यां पृथिवीपतिः ॥ १३ ॥

न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्यं कदाचन।
भोक्ता यज्ञस्य कस्त्वन्यो ह्यहं यज्ञपतिः प्रभुः ॥ १४ ॥

ततस्तमृषयः पूर्वं संपूज्य जगतीपतिम्।
ऊचुः सामकलं सम्यङ् मैत्रेय समुपस्थिताः ॥ १५ ॥

भो भो राजन् शृणुष्व त्वं यद् वदामस्तव प्रभो।
राज्यदेहोपकाराय प्रजानाञ्च हितं परम् ॥ १६ ॥

दीर्घसत्रेण देवेशं सर्व्वयज्ञेश्वरं हरिम्।
पूजयिष्याम भद्रं ते तस्यांशस्ते भविष्यति ॥ १७ ॥

यज्ञेन यज्ञपुरुषो हरिः संप्रीणितो नृप।
अस्माभिर्भवतः कामान् सर्वानेव प्रदास्यति ॥ १८ ॥

यज्ञैर्यज्ञेश्वरो येषां राष्ट्रे संपूज्यते हरिः।
तेषां सर्वेप्सितावाप्तिं ददाति नृप भूभृताम् ॥ १९ ॥

वह वैन मृत्युकन्या का पुत्र वे अपने मातामहके दोष से स्वभाव से ही दुष्ट हुआ। प्रधान प्रधान ऋषियों ने जब राज्य में उसका (वेनका) अभिषेक किया, तब उस पृथिवीपति ने नीचे लिखी घोषणा की। मेरे राज्य में कोई यज्ञ न करें, कोई हवन न करें, मैं स्वयं ही यज्ञपति भगवान् हूँ। मेरे सिवा दूसरा कौन यज्ञ को भोग करने वाला है। हे मैत्रेय! इसके बाद ऋषियों ने पहले उस पृथिवीपतिके समीप आकर उसकी पूजा की प्रशंसा की पुनः शान्ति पूर्वक वचन कहे। ऋषिगण बोले हे—राजन्! हे भूपाल! हमलोग राज्य एवं अपने शरीर की भलाई के लिए तथा प्रजाजनों के उपकार के लिए जो हितकारी वचन कहते हैं, उसे आप सुनिये। हे राजन्! आपका कल्याण हो, हमलोग महायज्ञों द्वारा सभी यज्ञों के अधिपति भगवान् श्रीहरि की जो पूजा करेंगे, उसमें से आपको भी भाग मिलेगा। हे राजन्! इस प्रकार यज्ञों द्वारा प्रसन्न यज्ञपुरुष भगवान् श्रीविष्णु हमलोगों के साथ आपकी भी समस्त कामनाएं पूरी करेंगे। हे नृप! जिन राजाओं के राज्य में यज्ञों के द्वारा यज्ञेश्वर भगवान् श्रीहरि की पूजा होती हैं, उन राजाओं की सभी इच्छाएं एवं मनोरथों की पूर्ति भगवान् करते हैं ॥ १२-१९ ॥

मत्तः कोऽभ्यधिकोऽन्योऽस्ति यश्चाराध्यो ममापरः ।
कोऽयं हरिरिति ख्यातो योऽयं यज्ञेश्वरो मतः ॥ २० ॥

ब्रह्मा जनार्दनः शम्भुरिन्द्रो वायुर्यमो रविः ।
हुतभुग् वरुणो धाता पूषा भूमिर्निशाकरः ॥ २१ ॥

एते चान्ये च ये देवाः शापानुग्रहकारिणः ।
नृपस्यैते शरीरस्थाः सर्व्वदेवमयो नृपः ॥ २२ ॥

एतज्ज्ञात्वा मयाज्ञप्तं यथावत् क्रियतां तथा ।
दातव्यं न होतव्यं न यष्टव्यञ्च वो द्विजाः ॥ २३ ॥

भर्तृशुश्रूषणं धर्म्मो यथा स्त्रीणां परो मतः ।
ममाज्ञापालनं धर्म्मो भवताञ्च तथा द्विजाः ॥ २४ ॥

देह्यनुज्ञां महाराज मा धर्म्मो यातु संक्षयम् ।
हविषां परिणामोऽयं यदेतदखिलं जगत् ॥ २५ ॥

इति विज्ञाप्यमानोऽपि स वेणः परमर्षिभिः ।
यदा ददाति नानुज्ञां प्रोक्तः प्रोक्तः पुनः पुनः ॥ २६ ॥

ततस्तु मुनयः सर्वे कोपामर्षसमन्विताः ।
हन्यतां हन्यतां पाप इत्यूचुस्ते परस्परम् ॥ २७ ॥

यो यज्ञपुरुषं देवमनादिनिधनं प्रभुम् ।
विनिन्दत्यधमाचारी न स योग्यो भुवः पतिः ॥ २८ ॥

वह बोला—मुझसे दूसरा कौन बड़ा है, जो मेरा भी आराधनीय है और जो तुमलोगों का यज्ञेश्वर है, वह हरि नाम से विख्यात कौन है ? ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य अग्नि, वरुण, धाता, पूषा, पृथ्वी, चन्द्रमा, ये सभी देवगण और इनके अतिरिक्त जो अन्य देव शाप तथा अनुग्रह करने वाले हैं, वे सभी राजा के शरीर में निवास करते हैं; क्यों कि राजा सर्व देवमय है ऐसा समझकर मैंने जैसी जो आज्ञा दी है, उसे वैसा ही करें । हे ब्राह्मणो ! कोई भी न दान करे, न यज्ञ करे, न हवन करे । हे द्विजगण ! जिस प्रकार स्त्रियों के लिए अपने पति की सेवा ही परम

धर्म माना गया है, वैसे ही मेरी आज्ञा का पालन आपलोगों के लिए परमधर्म है। ऋषिगण बोले—हे महाराज! आप इस प्रकार की आज्ञा दीजिए, जिससे धर्म का विनाश न हो यह समस्त जगत् यज्ञ में हवन की गयी हवि (सामग्री) का ही परिणाम है। श्रीपराशर जी बोले—इस प्रकार उन महर्षियों द्वारा पुनः पुनः कहे जाने पर भी वेनने (यज्ञादि की) आज्ञा नहीं दी, तब क्रोध और अमर्ष से युक्त सभी मुनिगण इस पापी को मारों मारों ऐसा आपस में कहने लगे। जो अनादिनिधन (अजन्मा एवं अविनाशी) यज्ञपुरुष प्रभु श्रीविष्णु की निन्दा करता है, वह दुराचारी किसी प्रकार भी पृथिवी का स्वामी होने योग्य नहीं है ॥ २०-२८ ॥

इत्युक्त्वा मन्त्रपूतैस्तैः कुशैर्मुनिगणा नृपम्।
निजघ्नुर्निहतं पूर्वं भगवन्निन्दनादिना ॥ २९ ॥

ऐसा कह कर उन महर्षियों ने भगवान् श्रीविष्णु की निन्दा आदि से पूर्वमृत उस राजा वेन को मन्त्र से पवित्र कुशा द्वारा मार दिया ॥ २९ ॥

ततश्च मुनयो: रेणुं ददृशुः सर्वतो द्विज।
किमेतदिति चासन्नं पप्रच्छुस्ते जनं तदा ॥ ३० ॥

आख्यातञ्च जनैस्तेषां चैरीभूतैरराजके।
राष्ट्रे तु लोकैरारब्धं परस्वादानमातुरैः ॥ ३१ ॥

तेषामुदीर्णवेगानां चौराणां मुनिसत्तमाः।
सुमहान् दृश्यते रेणुः परवित्तापहरिणाम् ॥ ३२ ॥

ततः संमन्त्र्य ते सर्व्वे मुनयस्तस्य भूभृतः।
ममन्थुरूरुं पुत्रार्थम् अनपत्यस्य यत्नतः ॥ ३३ ॥

मथ्यतश्च समुत्तस्थौ तस्योरोः पुरुषः किल।
दग्धस्थूणाप्रतीकाशः खर्बटास्योऽतिह्रस्वकः ॥ ३४ ॥

किं करोमीति तान् सर्व्वान् विप्रान् प्राह त्वरान्वितः।
निषीदेति तमूचुस्ते निषादस्तेन सोऽभवत् ॥ ३५ ॥

ततस्तत्सम्भवा जाता विन्ध्यशैलनिवासिनः।
निषादा मुनिशार्दूल पापकर्मोपलक्षणाः ॥ ३६ ॥

हे द्विज ! इसके बाद उन मुनियों ने चारों तरफ उठती हुई धूलि देखी, तब उन्होंने समीपवाले लोगों से यह क्या है ऐसा पूछा । उन समीपवर्त्तिजनों ने कहा कि राष्ट्र को राजा से रहित हो जाने के कारण दुखी लोगों ने चोर बनकर दूसरों का धन चुराना शुरु कर दिया है । हे मुनीश्वरो ! उन दूसरों के धन चुराने वाले तेज वेगवाले चोरों के उपद्रव से यह भारी धूल उड़ती हुई दिखाई देती है । तब उन सभी मुनियों ने आपस में विचार करके उस सन्तान विहीन राजा की जंघा को पुत्र के लिए यत्नपूर्वक मन्थन किया । मन्थन करने पर उस राजा की जंघा से जले हुए ठूंठ वृक्ष के समान काला, नाटा और छोटा मुखवाला एक पुरुष निकला । अत्यन्त व्याकुल उस पुरुषने उन ब्राह्मणों से मैं क्या करूं ऐसा कहा उन मुनियों ने 'निषीद' (बैठो) ऐसा कहा अत एव वह 'निषाद' कहलाया । हे मुनिशार्दूल ! अतएव उससे उत्पन्न विन्ध्य पर्वत में रहने वाले पापकर्म में निरत निषाद कहलाये ॥ ३०-३६ ॥

तेन द्वारेण तत् पापं निष्क्रान्तं तस्य भूपतेः ।
निषादस्ते ततो जाता वेणकल्मषनाशनाः ॥ ३७ ॥

ततोऽस्य दक्षिणं हस्तं ममन्थुस्तस्य ते द्विजाः ।
मथ्यमाने च तत्राभूत् पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥ ३८ ॥

दीप्यमानः स वपुषा साक्षादग्निरिव ज्वलन् ।
आद्यमाजगेवं नाम खात् पपाग ततो धनुः ॥ ३९ ॥

शराश्च दिव्या नभसः कवचञ्च पपात ह ।
तस्मिन् जाते तू भूतानि सम्प्रहृष्टानि सर्व्वशः ॥ ४० ॥

सत्पुत्रेण च जातेन वेणोऽपि त्रिदिवं ययौ ।
पुन्नाम्नो नरकात् त्रातः स तेन सुमहात्मना ॥ ४१ ॥

और उसी निषादरूपी द्वार से उस राजा का पाप निकल गया और वे निषाद वेन के पापों को नाश करने वाले हुए । पुनः उन ब्राह्मणों ने उस राजा वेन के दाहिने हाथ का मन्थन किया । उसके मन्थन से महाप्रतापी और अपने शरीर से साक्षात् प्रज्वलित अग्नि के समान देदीप्यमान वेन के पुत्र पृथु प्रगट हुए । पृथु के प्रगट होने के बाद सर्वप्रथम आजगवनाम का धनुष आकाश से गिरा । तथा दिव्यवाण और कवच भी आकाश से गिरे उनके उत्पन्न होने पर सभी प्राणी प्रसन्न हो गये, और

सत्पुत्र के जन्म से वेन भी स्वर्गलोक में चला गया। इस प्रकार महात्मा पृथु के जन्म से ही पुम् (नरक) से वेन की रक्षा हो गई ॥ ३७-४१ ॥

तं समुद्राश्च नद्यश्च रत्नान्यादाय सर्व्वशः।
तोयानि चाभिषेकार्थं सर्व्वाण्योवोपतस्थिरे ॥ ४२ ॥

पितामहश्च भगवान् देवैराङ्गिरसैः सह।
स्थावराणि च भूतानि जंगमानि च सर्व्वशः ॥ ४३ ॥

समागम्य तदा वैण्यमभ्यषिञ्चन् नराधिपम्।
हस्ते तु दक्षिणो चक्रं दृष्ट्वा तस्य पितामहः ॥ ४४ ॥

विष्णोरंशं पृथुं मत्वा परितोषं परं ययौ।
विष्णुचिन्हं करे चक्रं सर्व्वेषां चक्रवर्त्तिनाम् ॥ ४५ ॥

भवत्यव्याहतो यस्य प्रभावस्त्रिदशैरपि।
महता राजराज्येन पृथुर्व्वेण्यः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥

सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्म्मकोविदैः।
पित्रा परञ्जितास्तस्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥ ४७ ॥

अनुरागात् ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत।
आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ॥ ४८ ॥

पर्व्वताश्च ददुर्मागं ध्वजभङ्गश्च नाभवत्।
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया ॥ ४९ ॥

उस पृथु के अभिषेक के लिए सभी समुद्र और नदियाँ सभी प्रकार के रत्न और जल लेकर वहाँ उपस्थित हुए। उस समय अङ्गिरस आदि देवगणों के साथ ब्रह्मा जी ने तथा समस्त स्थावर जंगमात्मक प्राणियों ने वहाँ आकर वेनपुत्र पृथुको राजा के पदपर राज्याभिषेक किया। और उनके दाहिने हाथ में चक्र का चिन्ह देखकर पितामह ब्रह्माजी पृथु को विष्णु का अंश समझकर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। श्रीविष्णु भगवान् के चक्र का चिन्ह सभी चक्रवर्ती राजाओं के हाथ में होता है, और उसका प्रभाव देवताओं से कुण्ठित नहीं होता। इस प्रकार धर्मपारङ्गतों द्वारा महातेजस्वी

परम प्रतापी वेनपुत्र पृथु महाराजराजेश्वरपदपर अभिषिक्त हुए। अपने पिता वेन से अप्रसन्न प्रजाजनों को उन्होंने अनुरञ्जित (प्रसन्न) किया। इस प्रकार अनुरञ्जन करने के कारण उनका नाम राजा हुआ। समुद्र में जाने पर जल स्थिर हो जाता था, पर्वत उन्हें मार्ग देते थे, और उनकी ध्वजा कभी भी भंग नहीं हुई पृथिवी विना कर्षण के (बिना जोते) अन्न उत्पन्न करती थी, तथा चिन्तामात्र से ही अन्न सिद्ध होते थे ॥४२-४९ ॥

सर्व्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु।
तस्य वै जातमात्रस्य यज्ञे पैतामहे शुभे ॥ ५० ॥

सूतः सूत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः।
तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ॥ ५१ ॥

प्रोक्तौ तदा मुनिवरैस्तावुभौ सुतमागधौ।
स्तूयतामेष नृपतिः पृथुर्वैण्यः प्रतापवान् ॥ ५२ ॥

कर्म्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम्।
ततस्तावूचतुर्व्विप्रान् सर्व्वानेव कृताञ्जली ॥ ५३ ॥

अद्य जातस्य नो कर्म ज्ञायतेऽस्य महीपतेः।
गुणा न चास्य ज्ञायन्ते न चास्य प्रथितं यशः।
स्तोत्रं किमाश्रयञ्चास्य कार्य्यमस्माभिरुच्यताम् ॥ ५४ ॥
करिष्यत्येष यत् कर्म्म चक्रवर्त्ती महाबलः।
गुणा भविष्या ये चास्य तैरयं स्तूयतां नृपः ॥ ५५ ॥

सभी गायें कामधेनु समान थी और प्रत्येक पुटक में मधु भरा रहता था। राजा पृथु के पैतामह नामकयज्ञ में सोमाभिषवके दिन सोमाभिषव भूमि में सूत की उत्पत्ति हुई, तथा उसी महायज्ञ में मागध की भी उत्पत्ति हुई। मुनियों ने उन दोनों सूत तथा मागधों से कहा कि तुम दोनों इस प्रतापी राजा पृथु की स्तुति करो, तुम दोनों के योग्य यह काम है और राजा भी स्तुति के पात्र हैं। तब उन सूत मागधों ने हाथ जोड़कर ब्राह्मणों से कहा आज ही उत्पन्न हुए राजा के हमलोग कोई कार्य जानते नहीं। और गुण भी नहीं जानते। इनका कोई यश भी संसार में अभी नहीं

फैला है तो आपलोग बताइये ये किस आश्रय पर इनकी स्तुति करे। ऋषियों ने कहा—ये चक्रवती महाबलवान् राजा भविष्य में जो कार्य करेंगे और इनके जो गुण होंगे उन्हीं से इनकी स्तुति करो ॥ ५०-५५ ॥

ततः स नृपतिस्तोषं तच्छ्रुत्वा परमं ययौ।
सद्गुणैः श्लाघ्यतामेति स्तव्याश्चाभ्यां गुणा मम ॥ ५६ ॥

तस्माद् यंदद्य स्तोत्रेण गुणनिर्व्वर्णनं त्विमौ।
करिष्येते करिष्यामि तदेवाहं समाहितः ॥ ५७ ॥

यदिमौ वर्ज्जनीयञ्च किञ्चिदत्र वदिष्यतः।
तदहं वर्ज्जयिष्यामीत्येवञ्चक्रे मतिं नृपः ॥ ५८ ॥

अथ तौ चक्रतुः स्तोत्रं पृथोर्वैण्यस्य धीमतः।
भविष्यैः कर्मभिः सम्यक् सुस्वरौ सूतमागधौ ॥ ५९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस वचन को सुनकर राजा भी परम सन्तुष्ट हुए, और उन्होंने विचार किया कि मनुष्य अच्छे गुणों से ही प्रशंसा प्राप्त करता है, इसलिए मुझे भी उत्तम गुण प्राप्त करना चाहिये। अतएव आज ये दोनों (सूत और मागध) स्तुति द्वारा, जिन गुणों का वर्णन करेंगे, मैं भी सावधान होकर वही करूंगा अर्थात् वैसा ही गुणी बनूंगा। और यदि ये दोनों कोई त्यागने योग्य अवगुण कहेंगे तो उनका परित्याग करूंगा, राजा ने ऐसा विचार स्थिर किया। इसके बाद सुन्दरस्वरवाले उन दोनों (सूत और मागध ने) वेनपुत्र बुद्धिमान् पृथु की स्तुति, उनके भावी कर्मों के अनुसार सम्यक् प्रकार से की ॥ ५६-५९ ॥

सत्यवाग् दामशीलोऽयं सत्यसन्धो नरेश्वरः।
ह्रीमान् मैत्रः क्षमाशीलो विक्रान्तो दुष्टशासनः ॥ ६० ॥

धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च दयावान् प्रियभाषकः।
मान्यमानयिता यज्वा ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ॥ ६१ ॥

उन्होंने कहा,—ये नरपति सत्यवचन बोलनेवाले, दानशील, सत्यमर्यादावाले, लज्जाशील, सुहृद,क्षमाशील, महापराक्रमी, तथा दुष्टों के दमन करने वाले हैं।

और ये महाराज धर्मात्मा, कृतज्ञ, दयालु, मधुरभाषी मान्यजनों का मानकरने वाले यज्ञकर्त्ता, ब्राह्मणभक्त तथा साधुओं से सम्मानित हैं ॥ ६०-६१ ॥

समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारे स्थितो नृपः ।
सूतेनोक्त न् गुणानित्थं स तदा मागधेन च ॥ ६२ ॥

चकार हृदि तादृक् च कर्मणा कृतवानसौ ।
ततः स पृथिवीपालः पालयन् वसुधामिमाम् ॥ ६३ ॥

इयाज विविधैर्य्यज्ञैर्महद्भिर्भूरिदक्षिणैः ।
तं प्रजाः पृफ्वीनाथमुपतस्थुः क्षुधार्दिताः ॥ ६४ ॥

ओषधीषु प्रनष्टाषु तस्मिन् काले ह्यराजके ।
तमूचुस्तेन ताः पृष्टास्तत्रागमनकारणम् ॥ ६५ ॥

अराजके नृपश्रेष्ठ धरित्र्या सकलौषधीः ।
ग्रस्तास्ततः क्षयं यान्ति प्रजाः सर्व्वाः प्रजेश्वर ॥ ६६ ॥

त्वं नो वृत्तिप्रदो धात्रा प्रजापालो निरूपितः ।
देहि नः क्षुत्परीतानां प्रजानां जीवनौषधीः ॥ ६७ ॥

तथा ये राजा व्यवहार की स्थिति में शत्रु और मित्र के साथ समान भाववाले हैं, इस प्रकार सूत और मागध के द्वारा कहे गये गुणों को उन्होंने धारण किया । और उसी प्रकार के कार्य भी किये । इसके बाद पृथिवी के पालक राजा पृथु ने इस पृथिवी का पालन करते हुए प्रचुर दक्षिणावाले बड़े बड़े यज्ञ किये । अनन्तर उस अराजकता के समय में औषधियों के नष्ट हो जाने पर क्षुधा से पीड़ित प्रजा उस प्रजानाथ के समीप उपस्थित हुई, तथा राजा से पूछे जाने पर नमस्कार पूर्वक अपने आने का कारण सुनाया । प्रजा बोली—हे प्रजाओं के ईश्वर ! हे नृपश्रेष्ठ ! अराजकता के समय में पृथिवी ने समस्त औषधियाँ ग्रसित कर ली हैं, अतएव प्रजा क्षय को प्राप्त कर रही है । ब्रह्मा ने आपको हम लोगों को वृत्ति देने वाला प्रजापालक बनाया है, अतएव क्षुधार्त (भूख से पीड़ित) हम सभी प्रजाजनों को जीवनरूप औषधि प्रदान कीजिये ॥ ६२-६७ ॥

ततोऽथ नृपतिर्दिव्यमादायाजगवं धनुः ।
शरांश्च दिव्यान् कुपितः सोऽन्वधावद् वसुन्धराम् ॥ ६८ ॥

ततो ननाश त्वरिता गौर्भूत्वा तु वसुन्धरा ।
सा लोकान् ब्रह्मलोकादीन् तत्वासादगमन्मही ॥ ६९ ॥

यत्र यत्र ययौ देवी सा तदा भूतधारिणी ।
तत्र तत्र तु सा वैण्यं ददर्शाभ्युद्यतायुधम् ॥ ७० ॥

ततस्तं प्राह वसुधा पृथुं पृथुपराक्रमम् ।
प्रवेपमाणा तद्वाणपरित्राणपरायणा ॥ ७१ ॥

श्रीपराशर जी बोले—तदनन्तर राजा पृथु दिव्य आजगव धनुष और दिव्य वाण लेकर अत्यन्त क्रोध के साथ पृथिवी के पीछे दौड़े । तब पृथ्वी अत्यन्त भय से व्याकुल हो गयी और गौका रूप धारण करके ब्रह्मलोक आदि लोकों में गयी । प्राणियों को धारण करने वाली वह पृथिवी देवी जहाँ जहाँ गयी वहीं वहीं उसने शस्त्रधारी पृथु को सामने ही देखा । इसके बाद उनके बाण से रक्षा पाने की कामनावाली पृथ्वी काँपती होती हुई महापराक्रमी राजा पृथु से बोली ॥ ६८-७१ ॥

स्त्रीवधे त्वं महापापं किं नरेन्द्र न पश्यसि ।
येन मां हन्तुमत्यर्थं प्रकरोषि नृपोद्यमम् ॥ ७२ ॥

एकस्मिन् यत्र निधनं प्रापिते दुष्टकारिणि ।
बहूनां भवति क्षेमं तस्य पुण्यप्रदो वधः ॥ ७३ ॥

प्रजानामुपकाराय यदि मां त्वं हनिष्यसि ।
आधारः कः प्रजानां ते नृपश्रेष्ठ भविष्यति ॥ ७४ ॥

त्वं हत्वा वसुधे वाणैर्मच्छासनपराङ्मुखीम् ।
आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ ७५ ॥

ततः प्रणम्य वसुधा तं भूयः प्राह पार्थिवम् ।
प्रवेपिताङ्गी परमं साध्वसं समुपागता ॥ ७६ ॥

उपायतः समारब्धाः सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः ।
तस्माद् वदाम्युपायं ते तत् कुरुष्व यदिच्छसि ॥ ७७ ॥

समस्तास्ता मया जीर्णा नरनाथ महौषधीः ।
यदीच्छसि प्रदास्यामि ताः क्षीरपरिणामिनीः ॥ ७८ ॥

तस्मात् प्रजाहितार्थाय मम धर्म्मभृतां वर ।
तं तु वत्सँ प्रयच्छ त्वं क्षरेयं येन वत्सला ॥ ७९ ॥

समाञ्च कुरु सर्वत्र येन क्षीरं समन्ततः ।
वरोषधी बीजभूतं वीर सर्वत्र भावये ॥ ८० ॥

पृथिवी बोली—हे नरेन्द्र ! क्या आप स्त्री वध में महापाप नहीं देखते, जिससे हे नृप ! मुझे मारने के लिए बहुत उद्योग करते हैं। पृथु बोले—एक दुष्टकर्मकरने वाले को वध करने से यदि बहुतों को कल्याण हो तो उसका वध करना ही पुण्यदायक। पृथिवी बोली—हे राजश्रेष्ठ ! यदि प्रजाजन के उपकार के लिए मेरा वध करते हैं तो आपकी प्रजा का आश्रय क्या होगा। पृथु बोले—हे वसुधे ! मेरे शासन को उल्लंघन करने वाली तुझे अपने बाणों से वध करके मैं प्रजा को अपने योगबल से धारण करूंगा। श्रीपराशर जी बोले—अत्यन्त भयभीत और कम्पित शरीरवाली पृथिवी पुनः उस राजा पृथु को प्रणाम करके बोली। पृथिवी बोली—उपायपूर्वक आरम्भ किये गये सभी कार्य सिद्ध होते हैं, अतएव मैं जो उपाय बताती हूं उसे आपकी इच्छा हो तो कीजिये। हे राजन् ! मैंने जिन समस्त महौषधियों को पचा लिया है। यदि आप चाहते हैं तो उन सभी को क्षीर के (दूध के) रूप में दे दूंगी। हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! अतएव आप अपनी प्रजाओं की भलाई के लिए उस प्रकार का बछड़ा बनाइये जिससे वात्सल्यतावश उन औषधियों को दुध के रूप में निकाल सकूं। और हे राजन् ! मुझे सर्वत्र समतल बना दीजिये जिससे श्रेष्ठ औषधियों के बीज सभी जगह उत्पन्न कर सकूं ॥ ७२-८० ॥

तत उत्सारयामास शैलाञ् शतसहस्त्रशः ।
धनुःकोट्या तदा वैण्यस्ततः शैला विवर्ज्जिताः ॥ ८१ ॥

न हि पूर्वविसर्गे वै विषमे पृथिवीतले ।
प्रविभागः पुराणं वा ग्रामाणां वा तदाभवत् ॥ ८२ ॥

न शस्यानि न गोरक्षं न कृषिर्न वणिक्पथः ।
वैण्यात्प्रभृति मैत्रेय सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ ८३ ॥

यत्र यत्र समं तस्या भूमेरासीन्नराधिपः ।
तत्र तत्र प्रजानां हि निवासं समरोचयत् ॥ ८४ ॥

आहारः फलमूलानि प्रजानामभवत् तदा ।
कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रनष्टास्वौषधीषु वै ॥ ८५ ॥

स कल्पयित्वा वत्सं तु मनुं स्वायम्भुवं प्रभुः ।
स्वे पाणौ पृथिवीनाथो दुदोह पृथिवीं पृथुः ॥ ८६ ॥

शस्यजातानि सर्वाणि प्रजानां हितकाम्यया ।
तेनान्नेन प्रजास्तात वर्त्तन्तेऽद्यापि नित्यशः ॥ ८७ ॥

प्राणप्रदानात् स पृथु यस्माद् भूमेरभूत् पिता ।
ततस्तु पृथिवीसंज्ञामवापाखिलधारिणी ॥ ८८ ॥

श्रीपराशर जी बोले—तब महाराज वेनपुत्र पृथु ने अपने धनुष के अग्रभाग से सैंकड़ो हजारों पर्वतों को उखाड़ दिया, और उन्हें एक जगह पर इकट्ठा कर दिया। पूर्वकाल में पृथिवी के विषम रहने के कारण पुर या ग्राम का विभाग नहीं था। हे मैत्रेय ! उस समय धान्य, गोरक्षा, खेती और व्यापार का भी प्रबन्ध नहीं था। राजा पृथु के समय से ही ये सब आरम्भ हुआ। और जहाँ जहाँ पृथ्वी समान थी वहीं वहीं पर प्रजा ने निवास करना पसन्द किया। उस प्रजाजनों का आहार केवल फलमूल ही था, और वह भी औषधियों को नष्ट हो जाने से दुर्लभ हो रहा था। अनन्तर पृथिवीनाथ पृथु ने स्वायम्भुवमनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ में प्रजाजनों की भलाई के लिए समस्त अन्नों को दुह लिया। हे तात ! उसी अन्न से प्रजा आज भी जीवित रहती है। प्राणदाता वह पृथु भूमि के पिता हुए और उसी समय से समस्त प्राणियों को धारण करने वाली का नाम 'पृथिवी' हुआ ॥ ८१-८८ ॥

ततश्च देवैर्मुनिभिर्दैत्यैरक्षोभिरद्रिभिः ।
गन्धर्वैरुरगैर्यक्षैः पितृभिस्तरुभिस्तथा ॥ ८९ ॥

तत तत् पात्रमुपादाय तत् तद् दुग्धा मुने पयः ।
वत्सदोग्धृविशेषाश्च तेषां तद्योनयोऽभवन् ॥ ९० ॥

हे मुने ! पुनः—देवता, मुनिगण, दैत्य, राक्षस, पर्वत, गन्धर्व, सर्प, यक्ष, पितृगण, वृक्ष, आदि ने भी अपनी इच्छानुसार दुग्ध दुह लिया । बछड़ा और दुहने वाले भी उनके इच्छानुसार ही थे ॥ ८९-९० ॥

सैषा धात्री विधात्री च धारिणी पोषिणी तथा ।
सर्वस्य जगतः पृथ्वी विष्णुपादतलोद्भवा ॥ ९१ ॥

एवं प्रभावः स पृथुः पुत्रो वेणस्य वीर्य्यवान् ।
जज्ञे महीपतिः पूर्वो राजाभूज्जनरञ्जनात् ॥ ९२ ॥

अत एव श्रीविष्णु भगवान् के चरण से उत्पन्न हुई यह पृथिवी सबको जन्म देने वाली, बनाने वाली धारण और पालन करने वाली है । इस प्रकार के प्रभाववाले पराक्रमी वेनपुत्र महाराज पृथु उत्पन्न हुए जो सर्वप्रथम प्रजारञ्जन के कारण 'राजा' कहलाये ॥ ९१-९२ ॥

य इदं जन्म वैण्यस्य पृथोः कीर्त्तयते नरः ।
न तस्य दुष्कृतं किञ्चित् फलदायी प्रजायते ॥ ९३ ॥

दुःस्वप्नोपशमं नृणां शृण्वतां चैतदुत्तमम् ।
पृथोर्जन्म प्रभावश्च करोति सततं नृणाम् ॥ ९४ ॥

जो कोई मनुष्य वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म का कीर्तन करता है उसका दुष्कर्म फल देने वाला नहीं होता । अर्थात् सुकर्म में बदल जाता है राजा पृथु के जन्म और प्रभाव सुनने वाले मनुष्यों का दुःस्वप्न सदा शान्त हो जाता है ॥ ९३-९४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में तेरहवां अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - चौदहवाँ अध्याय

(प्रचेताओं की तपस्या)

पृथोः पुत्रौ महावीर्यौ जज्ञातेऽन्तर्द्धिपालिनौ
शिखण्डिनी हविर्द्धानमन्तर्द्धानाद् व्यजायत ॥ १ ॥

हविर्द्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान् ।
प्राचीनबर्हिषं शुक्रं गयं कृष्णं व्रजाजिनौ ॥ २ ॥

प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।
हरिर्धानान्महाराजो येन संवर्द्धिता प्रजाः ॥ ३ ॥

प्राचीनाग्राः कुशास्तस्य पृथिव्यामभवन् मुने ।
प्राचीनबर्हिर्भगवान् ख्यातो भुवि महाबलः ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—पृथु के अन्तर्धान और वादी-नाम के दो पुत्र हुए, और अन्तर्धान से उसकी पत्नी शिखण्डिनी में हविर्धाननाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। हविर्धान से अग्निकुलप्रसूता धिषणानाम की उसकी पत्नी में प्राचीनबर्हि, शुक्र, गय, कृष्ण, बृज और अजिन ये छः पुत्र उत्पन्न हुए। हे महाभाग ! हविर्धान से उत्पन्न भगवान् प्राचीनबर्हि एक महान् प्रजापति हुए, जिन्होंने अतीव प्रजा की वृद्धि की। उनके समय में पृथ्वी पर (यज्ञ की अधिकता से) सर्वत्र प्राचीनाग्र कुशा व्याप्त थी, अतएव उस महाबली का नाम 'प्राचीनबर्हि' विख्यात हुआ ॥ १-४ ॥

समुद्रतनयायां तु कृतदारो महीपतिः ।
महतस्तपसः पारे सवर्णायां महीपतेः ॥ ५ ॥

सवर्णाधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।
सर्व्वे प्रचेतसो नाम धनुर्व्वेदस्य पारगाः ॥ ६ ॥

अपृथग्धर्म्मचरणास्तेऽतप्यन्त महातपः ।
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः ॥ ७ ॥

यदर्थं ते महात्मानस्तपस्तेपुर्महामुने ।
प्रचेतसः समुद्राम्भस्येतदख्यातुमर्हसि ॥ ८ ॥

हे महामते ! उस राजा ने महान् तप करने के बाद समुद्र की कन्या सवर्णा से विवाह किया ।समुद्रतनया सवर्णाने धनुर्वेद में पारङ्गत प्रचेतसनाम के दश पुत्रों को उत्पन्न किया । समान धर्माचरण करनेवाले सभी प्रचेताओं ने समुद्र में निवास करके दस हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या की । श्रीमैत्रेयजी बोले—हे महामुने ! उन महात्मा प्रचेताओं ने समुद्र के जल में जिस कार्य के लिए तपस्या की वह आप मुझे बतलाइये ॥ ५-८ ॥

पित्रा प्रचेतसः प्रोक्ता प्रजार्थममितात्मना ।
प्रजापतिनियुक्तेन बहुमानपुरःसरम् ॥ ९ ॥

ब्रह्मणा देवदेवेन समादिष्टोऽस्म्यहं सुताः ।
प्रजाः संवर्द्धनीयास्ते मया चोक्तं तथेति तत् ॥ १० ॥

तन्मम पीयते पुत्राः प्रजावृद्धिमतन्द्रिताः ।
कुरुध्वं माननीया वः समाज्ञा च प्रजापतेः ॥ ११ ॥

ततस्ते तत्पितुः श्रुत्वा वचन नृपनन्दनाः ।
तथेत्युक्त्वा तु तं भूयः पप्रच्छुः पितरं मुने ॥ १२ ॥

येन तात प्रजावृद्धौ समर्थाः कर्म्मणा वयम ।
भवामस्तत् समस्तं नः कर्म्म व्याख्यातुमर्हसि ॥ १३ ॥

आराध्यं वरदं विष्णुमिष्टप्राप्तिमसंशयम् ।
समेति नान्यथा मर्त्यः किमन्यत् कथयामि वः ॥ १४ ॥

तस्मात् प्रजाविवृद्ध्यर्थं सर्व्वभूतप्रभुं हरिम् ।
आराधयत गोविन्दं यदि सिद्धिमभीप्सथ ॥ १५ ॥

धर्म्ममर्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्चान्विच्छता सदा।
आराधनीयो भगवान् अनादिः पुरुषोत्तमः ॥ १६ ॥

यस्मिन्नाराधिते सर्ग चकारादौ प्रजापतिः।
तमाराध्याच्युतं वृद्धिः प्रजानां वो भविष्यति ॥ १७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—प्रजापति ब्रह्माजी से आज्ञापाकर अमितात्मा उनके (प्रचेताओं के) पिता प्राचीनबर्हि ने बहुत सम्मानपूर्वक प्रचेताओं को कहा। प्राचीनबर्हि बोले—हे पुत्रों! देवाधिदेव श्रीब्रह्माजी ने तुम प्रजा बढ़ाओ ऐसा आदेश मुझे दिया, और मैंने 'अच्छा' ऐसा कह दिया। अतएव हे पुत्रो! मेरी प्रसन्नता के लिए सावधान होकर प्रजा की वृद्धि करो, क्योंकि प्रजापति की आज्ञा तुमलोगों को भी अवश्य माननी चाहिए। श्रीपराशर जी बोले—हे मुने! इसके बाद उन राजपुत्रों ने पिता की बात सुनकर अच्छा है ऐसा कहने के बाद अपने पिता से पुनः पूछा। हे तात! जिस कर्म से हम लोग प्रजावृद्धि करने में समर्थ हो सकें उस कर्म की अच्छी तरह व्याख्या करें। पिता बोले—वरदाता श्रीविष्णु भगवान् की आराधना करके निःसन्देह मनुष्य इच्छित वस्तु को प्राप्त करता है अन्यथा नहीं, इसके अतिरिक्त और क्या कहूं। अतएव तुमलोग यदि प्रजावृद्धि में सफलता की कामना करते हो तो सभी जीवों के प्रभु श्रीहरि गोविन्द भगवान् की आराधना करो। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की कामनावाले मनुष्यों को अनादि भगवान् पुरुषोत्तम की आराधना करनी चाहिये। कल्प के आरम्भ में जिनकी आराधना करके प्रजापति ब्रह्मा ने सृष्टि की, उन अच्युत भगवान् की उपासना करके तुम लोग भी अपनी प्रजावृद्धि करोगे ॥ ९-१७ ॥

इत्येवमुक्तास्ते पित्रा पुत्राः प्रचेतसो दश।
मग्नाः पयोधिसलिले तपस्तेपुः समाहिताः ॥ १८ ॥

दशवर्षसहस्राणि न्यस्तचित्ता जगत्पतौ।
नारायणे मुनिश्रेष्ठ सर्व्वलोकपरायणे ॥ १९ ॥

तत्रैव ते स्थिता देवमेकाग्रमनसो हरिम्।
तुष्टुवुर्य स्तुतः कामान् स्तोतुरिष्टान् प्रयच्छति ॥ २० ॥

श्रीपराशरजी बोले—अपने पिताद्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दस प्रचेताओं ने समुद्र के जल में निमग्न होकर समाहित होकर तप करना आरम्भ किया। हे मुनिश्रेष्ठ ! समस्त लोकों के आश्रयभूत जगत्पति नारायण में चित्त स्थिर किये हुए एकाग्रचित्तवाले वहीं समुद्र जल में स्थित प्रचेताओं ने दस हजार वर्षों तक उन श्रीहरि भगवान् की स्तुति की, जो अपनी स्तुति की जाने पर स्तुति करने वालों की सभी कामना पूरी करते हैं ॥ १८-२० ॥

मैत्रेय उवाच ।

स्तवं प्रचेतसो विष्णोः समुद्राम्भसि संस्थिताः ।
चक्रुस्तन्मे मुनिश्रेष्ठ सुपुण्यं वक्तुमर्हसि ॥ २१ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! समुद्र के जल में स्थित होकर प्रचेताओं ने जो भगवान् श्रीविष्णु की परम पवित्र स्तुति की वह मुझे कहिये ॥ २१ ॥

पराशर उवाच ।

शृणु मैत्रेय गोविन्दं यथा पूर्व्वं प्रचेतसः ।
तुष्टुवुस्तन्मयीभूताः समुद्रसलिलेशयाः ॥ २२ ॥

श्रीपराशर जी बोले—हे मैत्रेय ! समुद्र जल में स्थित होकर प्रचेताओं ने तन्मयभाव से प्राचीनकाल में भगवान् गोविन्द की जो स्तुति की थी, वह सुनिए ॥ २२ ॥

नताः स्म सर्ववचसा प्रतिष्ठा यत्र शाश्वती ।
तमाद्यं तमशेषस्य जगतः परमं प्रभुम् ॥ २३ ॥

ज्योतिराद्यमनौपम्यमनन्तरमपारवत् ।
योनिभूतमशेषस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ २४ ॥

यस्याहः प्रथमं रूपमरूपस्य ततो निशा ।
सन्ध्या च परमेशस्य तस्मै कालात्मने नमः ॥ २५ ॥

भुज्यतेऽनुदिनं देवैः पितृभिश्च सुधात्मकः ।
जीवभूतः समस्तस्य तस्मै सोमात्मने नमः ॥ २६ ॥

प्रचेतागण बोले—जिस भगवान् में समस्त वचनों की शाश्वत प्रतिष्ठा है अर्थात् जो समस्त वाक्यों का एक मात्र प्रतिपाद्य हैं उन समस्त जगत् के आदि (उत्पत्ति) अन्त (विनाश) के कारण स्वरूप परम प्रभु को हम नमस्कार करते हैं। जो आदि ज्योतिस्वरूप, अनुपमेय, अणु, अनन्त, अपार, स्थावर, जङ्गम समस्त जगत् के कारण भूत तथा रूपरहित जिन परमेश्वर के दिन रात और सन्ध्या ही रूप है उन कालात्मक भगवान् को नमस्कार है। समस्त जीवों के जीवनभूत जिन के अमृतमय स्वरूप को प्रतिदिन देवता और पितृगण पान करते हैं उन सोम (चन्द्र) स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है ॥ २३-२६ ॥

यस्तमो हन्ति तीव्रात्मा स्वभाभिर्भासयन् नभः।
घर्म्मशीताम्भसां योनिस्तस्मै सूर्य्यात्मने नमः ॥ २७ ॥

काठिन्यवान् यो विभर्ति जगदेतदशेषतः।
शब्दादिसंश्रयो व्यापी तस्मै भूम्यात्मने नमः ॥ २८ ॥

यद्योनिभूतं जगतो बीजं यत् सर्वदेहिनाम्।
तत् तोयरूपमीशस्य नमामो हरिमेधसः ॥ २९ ॥

यो मुखं सर्वदेवानां हव्यभुक् कव्यभुक् तथा।
पितृणाञ्च नमस्तस्मै विष्णवे पावकात्मने ॥ ३० ॥

पञ्चधावस्थितो देहे यश्चेष्टां कुरुतेऽनिशम्।
आकाशयोनिर्भगवान् तस्तै वाय्वात्मने नमः ॥ ३१ ॥

अवकाशमशेषाणां भूतानां यः प्रयच्छति।
अनन्तमूर्त्तिमान् शुद्धस्तस्मै व्योमात्मने नमः ॥ ३२ ॥

समस्तेन्द्रियवर्गस्य यः सदा स्थानमुत्तमम्।
तस्मै शब्दादिरूपाय नमः कृष्णाय वेधसे ॥ ३३ ॥

गृहणाति विषयान् नित्यमिन्द्रियात्माक्षराक्षरः।
यस्तस्तै ज्ञानमूलाय नताः स्मो हरिमेधसे ॥ ३४ ॥

गृहीतानिन्द्रियैरर्थान् आत्मने यः प्रयच्छति ।

अन्तःकरणभूताय तस्मै विश्वात्मने नमः ॥ ३५ ॥

अपने तेज से आकाशमण्डल को प्रकाशित करते हुए जो तीव्रात्मा अन्धकार का भक्षण करते हैं जो घाम, शीत और जल के उद्गमस्थान हैं उन सूर्यस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है । काठिन्ययुक्त जो इस समस्त जगत् को धारण करते हैं, तथा जो शब्द आदि के आश्रय एवं सर्वव्यापी हैं उन भूमिस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है । और जो समस्त जगत् के योनिभूत हैं तथा समस्त देहधारियों के बीज हैं परमेश्वर भगवान् हरि के उस जलस्वरूप को नमस्कार है । जो समस्त देवताओं के हव्य को भोग करने वाले, तथा समस्त पितृगणों के कव्य को भोग करने वाले मुखस्वरूप हैं उन अग्निस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु को नमस्कार करते हैं । आकाशयोनि जो भगवान् प्राण, अपान आदि पाँच प्रकार के वायुरूप से शरीर में विराजमान होकर दिनरात चेष्टा करते, उन वायुरूप भगवान् को नमस्कार करते हैं । जो शुद्ध, अनन्त मूर्तिवाले भगवान् सभी प्राणियों को अवकाश प्रदान करते हैं उन आकाशस्वरूप भगवान् को नमस्कार करते हैं । जो समस्त इन्द्रिययुक्त सृष्टि के लिए सदा उत्तम स्थान हैं उन शब्द स्वरूप विधाता श्रीकृष्ण को नमस्कार करते हैं । जो क्षर और अक्षर इन्द्रियों के स्वरूप होकर सदा विषयों को ग्रहण करते हैं उन ज्ञानमूल हरि को नमस्कार करते हैं । जो इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये गये विषयों को आत्मा के लिये प्रदान करते हैं उन विश्वात्मा एवं अन्तःकरणस्वरूप भगवान् को नमस्कार करते है ॥ २७-३५ ॥

यस्मिन्ननन्ते सकलं विश्वं यस्मात् तथोद्गतम् ।

लयस्थानञ्च यस्तस्मै नमः प्रकृतिधर्म्मिणे ॥ ३६ ॥

शुद्धः संलक्ष्यते भ्रान्त्या गुणवानिव योऽगुणः ।

तमात्मरूपिणं देवं नताः स्म पुरुषोत्तमम् ॥ ३७ ॥

अविकारमजं शुद्धं निर्गुणं यन्निरञ्जनम् ।

नताः स्म तत्परं ब्रह्म यद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ३८ ॥

अदीर्घह्रस्वमस्थूलमनण्वग्रयमलोहितम् ।

अस्नेहच्छायमनणुमसक्तमशरीरिणम् ॥ ३९ ॥

अनाकाशमसंस्पर्शमगन्धमरसञ्च यत् ।
अचक्षुः श्रोत्रमचलमवाक्प्राणममानसम् ।। ४० ।।

अनामगोत्रममुखमतेजस्कमहेतुकम् ।
अभयं भ्रान्तिरहितमनिन्द्यमजरामरम् ।। ४१ ।।

अरजोऽशब्दममृतमप्लुतं यदसंवृतम् ।
पूर्वापरे न वै यस्मिन् तद् विष्णोः परमं पदम् ।। ४२ ।।

परमीशित्वगुणवत् सर्व्वभूतमसंश्रयम् ।
नताः स्म तत् पदं विष्णोजिह्वादृग्गोचर न यत् ।। ४३ ।।

जिस अनन्त में समस्त विश्व विराजमान है तथा जिससे समस्त विश्व उत्पन्न हुआ है और समस्त विश्व के लय (विनाश) के भी स्थान है उन प्रकृति स्वरूप भगवान् को नमस्कार करते हैं । जो शुद्ध एवं निर्गुण होते हुए भी भ्रान्तिवश गुणवान् के समान लक्षित होते हैं उन आत्मस्वरूप पुरुषोत्तम देव को नमस्कार करते हैं । जो विकार रहित, अजन्मा शुद्धस्वरूप, निर्गुण, निरञ्जन, और विष्णु का परमपद है उन परब्रह्म को हमलोग नमस्कार करते हैं । जो लम्बा, पतला, मोटा, छोटा, काला, लाल तथा स्नेह (द्रव) नहीं है, जो कान्तिरहित तथा शरीररहित है एवं अनासक्त और जीव से भिन्न है । जो अवकाश, स्पर्श गन्ध तथा रस से भी रहित, एवं नेत्र कर्णविहीन, अचल, अवाक्, तथा हाथ और मन से भी विहीन है । जो नाम, गोत्र, सुख और तेजसे रहित एवं अहेतुक है । जिसमें भय, भ्रम, नींद, वृद्धता और मृत्यु का अभाव है । जो रजोगुणरहित, शब्द विहीन, अमृत, गतिहीन, आच्छादनरहित है तथा जिसमें पूर्वापर व्यवहार नहीं है, वही श्रीविष्णुभगवान् का परमपद है । परमेशत्व रूपी गुणों से युक्त सर्वभूत अनाश्रय जिह्वा एवं दृष्टि से अगोचर भगवान् श्रीविष्णु का जो परमपद है उसके प्रति हमलोग प्रणत हैं ।। ३६-४३ ।।

एवं प्रचेतसो विष्णुं स्तुवन्तस्तत्समाधयः ।
दशवर्षसहस्राणि तपश्चेरुर्महार्णवे ।। ४४ ।।

ततः प्रसन्नो भगवांस्तेषामन्तर्जले हरिः ।
ददौ दर्शनमुन्निद्रनीलोत्पलदलच्छविः ।। ४५ ।।

पतत्रिराजमारूढमवलोक्य प्रचेतसः ।
प्राणिपेतुः शिरोभिस्तं भक्तिभारावनामितैः ॥ ४६ ॥

ततस्तानाह भगवान् व्रियतामीप्सतो वरः ।
प्रसादसुमुखोऽहं वो वरदः समुपस्थितः ॥ ४७ ॥

ततस्तमूचुर्वरदं प्रणिपत्य प्रचेतसः ।
यथा पित्रा समादिष्टं प्रजानां वृद्धिकारणम् ॥ ४८ ॥

स चापि देवस्तं दत्त्वा यथाभिलषितं वरम् ।
अन्तर्द्धानं जगामाशु ते च निश्चक्रमुर्जलात् ॥ ४९ ॥

श्रीपराशर जी बोले—इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् में समाधिवाले तथा उनकी स्तुति करते हुए प्रचेताओं ने समुद्र के जल में स्थित होकर दस हजार वर्षोंतक तप किया । तब प्रसन्न एवं विकसित कमलदल के समान कान्तिवाले श्रीहरिभगवान् ने उन प्रचेताओं को दर्शन दिया । पक्षिराज गरुड़पर विराजमान भगवान् श्रीविष्णु को देखकर उन प्रचेताओं ने भक्तिभाव से नम्र मस्तकों द्वारा उनको प्रणाम किया । तब भगवान् ने उनको कहा कि तुम लोग इच्छानुकूल वर मांग लो, प्रसन्न मनवाला मैं तुमलोगों को वर देने आया हूं । इसके बाद प्रचेताओं ने वरदाता श्रीविष्णु भगवान् को प्रणाम कर, प्रजा वृद्धि के लिए जिस प्रकार पिता ने उन्हें आदेश दिया था वह सब उनको कह दिया । भगवान् श्रीहरि भी उन्हें इच्छानुसार वर देकर शीघ्र अन्तर्धान हो गये, और तब वे प्रचेतागण जल से बाहर निकले ॥ ४४-४९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में चौदहवाँ अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - पन्द्रहवाँ अध्याय

(कण्डु मुनि का चरित्र)

पराशर उवाच।

तपश्चरत्सु पृथिवीं प्रचेतःसु महीरुहाः।
अरक्ष्यमाणामाबव्रु र्बभूवाथ प्रजाक्षयः ॥ १ ॥

नाशकन्मारुतो वातु वृतं खमभवद् द्रूमैः।
दशवर्षसहस्राणि न शेकुश्चेष्टितं प्रजाः ॥ २ ॥

तद् दृष्ट्वा जलनिष्क्रान्ताः सर्व्वे क्रुद्धाः प्रचेतसः।
मुखेभ्यो वायुमग्निञ्च तेऽसृजन् जातमन्यवः ॥ ३ ॥

उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरशोषयत्।
तानग्निरदहद् घोरस्तात्राभूद् द्रु मसंक्षयः ॥ ४ ॥

द्रु मक्षयमथो दृष्ट्वा किञ्चिच्छिष्टे षु शाखिषु।
उपागम्यब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रजापतीन् ॥ ५ ॥

कोपं यच्छत राजानः श्रृणुध्वञ्च वचो मम।
सन्धानं वः करिष्यामि सह क्षितिरुहैरहम् ॥ ६ ॥

रत्नभूता च कन्येयं वार्क्षेयी वरवर्णिनी।
भविष्यं जानता पूर्व्वं मया गोभिर्व्विवर्द्धिता ॥ ७ ॥

मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षाणामिति निर्म्मिता।
भार्या वोऽस्तु महाभागा ध्रुवं वंशविवर्द्धिनी ॥ ८ ॥

प्रचेताओं के तपस्या में संलग्न होने के कारण अरक्षित पृथिवी को वृक्षों ने ढँक लिया था और प्रजाओं का भी बहुत विनाश हो चुका था। वृक्षों से आकाश ढँक गया था, अतएव दस हजार वर्षों तक वायु नहीं चल सका तथा प्रजा भी किसी प्रकार की चेष्टा न कर सकी। जल से निकलने के बाद प्रचेताओं ने उन वृक्षों को देखकर बहुत क्रोधित हुए तथा उन लोगों ने अपने मुख से वायु और अग्नि को उत्पन्न किया। वायु ने वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया तथा अग्नि ने उन्हें जला डाला। इस प्रकार उस समय वहाँ वृक्षों का विनाश होने लगा। अनन्तर राजा सोमने वृक्षों का विनाश देखकर कुछ वृक्षों के शेष रह जाने पर प्रजापति प्रचेताओं को कहा। हे राजागण ! आप लोग अपने क्रोध को शान्त कीजिये और मेरी बात सुनिये, मैं वृक्षों के साथ आपलोगों की सन्धि करा दूंगा। रत्नभूता श्रेष्ठ वर्णवाली यह कन्या वृक्षों की है जिसके भविष्य को जानता हुआ मैंने अपनी (सुधामयी) किरणों से पालन किया है। उन वृक्षों की कन्या नाम 'मारिषा' है, यह महाभागा इसलिए उत्पन्न हुई है कि तुमलोगों की भार्या होकर निश्चय रूप से वंश वृद्धि करे ॥ १-८ ॥

युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम चार्द्धेन तेजसः ।
अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ९ ॥

मम चांशेन संयुक्तो युष्मत्तेजोमयेन वै ।
अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः संवर्द्धयिष्यति ॥ १० ॥

तुम् लोगों के आधे तेज से तथा मेरे आधे तेज से इस कन्या में विद्वान् दक्षनामक प्रजापति उत्पन्न होंगे। आप लोगों के तेज के साथ मेरे अंश से युक्त होकर अपने तेज से अग्नि के समान वह दक्ष प्रजापति पुनः प्रजा वृद्धि करेगा ॥ ९-१० ॥

कण्डुर्नाम मुनिः पूर्व्वमासीद् वेदविदां वरः ।
सुरम्ये गोमतीतीरे स तेपे परमं तपः ॥ ११ ॥

तत्क्षोभाय सुरेन्द्रेण प्रम्लोचाख्या वराप्सराः ।
प्रयुक्ता क्षोभयामास तमृषिं सा शुचिस्मिता ॥ १२ ॥

क्षोभितः स तया सार्द्धं वर्षाणामधिकं शतम ।
अतिष्ठन्मन्दरद्रोण्यां विषयासक्तमानसः ॥ १३ ॥

सा त्वं प्राह महात्मानं गन्तुमिच्छाम्यहं दिवम्।
प्रसादसुमुखो ब्रह्मन् अनुज्ञां दातुमर्हसि ॥ १४ ॥

तयैवमुक्तः स मुनिस्तस्यामासक्तमानसः।
दिनानि कतिचिद् भद्रे स्थीयतामित्यभाषत ॥ १५ ॥

एवमुक्ता ततस्तेन साग्रं वर्षशतं पुनः।
बुभुजे विषयांस्तन्वी तेन सार्द्धं महात्मना ॥ १६ ॥

अनुज्ञां देहि भगवन् व्रजामि त्रिदिवालयम्।
उक्तस्तथेति स मुनिः स्थीयतामित्यभाषत ॥ १७ ॥

पुनर्गते वर्षशते साधिके सा शुभानना।
यामीत्याह दिवं ब्रह्मन् प्रणयस्मितशोभनम् ॥ १८ ॥

प्राचीन काल में वेदज्ञों में श्रेष्ठ कण्डु नाम के मुनि थे। उन्होंने मनोहर गोमती के तट पर उत्कृष्ट तप किया था। उन्हें चञ्चल करने के लिए इन्द्र ने प्रम्लोचा नाम की अप्सरा को नियुक्त किया, तथा उस सुहासिनी ने उन ऋषि को तपस्या से भ्रष्ट कर दिया। उसके द्वारा तपस्या से विचलित किये गये और विषय में आसक्त मुनि ने सौ वर्षों से अधिक कालतक उसके साथ मन्दर पर्वत की गुफा में निवास किया। एक दिन वह (प्रम्लोचा) उनसे बोली कि हे महाभाग ! अब मैं स्वर्ग में जाना चाहती हूं। अत एव हे ब्रह्मन् ! प्रसन्न होकर मुझे आज्ञा दीजिये। उसमें आसक्त मनवाले मुनिने उसके ऐसा कहने पर कहा कि हे भद्रे ! कुछ दिनों तक और भी मेरे साथ यहाँ रहो। उस मुनि द्वारा ऐसा कहे जाने पर उनके साथ एक सौ वर्षों से कुछ ज्यादा समय तक उसने पुनः निवास किया और उन महात्मा मुनि के साथ उस सुन्दरी ने विषयों का भोग किया। हे भगवन् ! मुझे स्वर्ग जाने की आज्ञा दीजिये ऐसा प्रम्लोचा के कहने पर मुनि ने पुनः कुछ दिन और रहो ऐसा ही कहा। पुनः सौ वर्षों से अधिक समय बीत जाने पर उस सुमुखी ने मैं जा रही हूं ऐसी प्रेमपूर्ण हास्ययुक्त बात कही ॥ ११-१८ ॥

उक्तस्तयैवं स मुनिरुपगुह्यायतेक्षणाम्।
प्राहास्यतां क्षणं सुभ्रु चिरं कालं गमिष्यसि ॥ १९ ॥

तच्छापभीता शुश्रोणी सह तेनर्षिणा पुनः ।
शतद्वयं किञ्चिदूनं वर्षाणामन्वतिष्ठत ॥ २० ॥

गमनाय महाभागो देवराजनिवेशनम् ।
प्रोक्तः प्रोक्तस्या तन्व्या स्थीयतामित्यभाषत ॥ २१ ॥

तं सा शापभयाद् भीता दक्षिण्येण च दक्षिणा ।
प्रोक्ता प्रणयभङ्गार्त्ति वेदनी न जहौ मुनिम् ॥ २२ ॥

तया च रमतस्तस्य महर्षेस्तदहर्निशम् ।
नवं नवमभूत् प्रेम मन्मथाविष्टचेतसः ॥ २३ ॥

उसके द्वारा ऐसा कहे जाने पर मुनिने उस विशाललोचना को आलिङ्गन करके कहा—हे सुभ्रु ! अब तो तुम चिरकाल के लिए चली जाओगी, अतः एक क्षण और यहाँ रहो ऐसा कहा । पुनः उन मुनि के साथ कीड़ा करती हुई वह सुन्दर अप्सरा दो सौ वर्षों से कुछ कम समय तक और वहाँ ठहरी । हे महाभाग ! इन्द्र के स्थान में जाने के लिए उस सुन्दरी द्वारा बारम्बार कहे जाने पर कण्डु मुनिने अभी ठहरो ऐसा ही कहा । इस प्रकार मुनिद्वारा कही गयी प्रेमभङ्गकी वेदना को जाननेवाली एवं मुनि के शाप से भयभीत दक्षिणा नायिका ने अपने चातुर्य से कण्डु को परित्याग नहीं किया । (अन्य पुरुष में आसक्त रहते हुए भी जो गौरव, भय, प्रेम एवं सद्भाव के कारण अपने पूर्वनायकको परित्याग न करें । विद्वान् लोग उसे ही 'दक्षिणा' नायिका जानें) । और उस अप्सरा के साथ दिन रात रमण करते हुए कामासक्त उन ऋषि का नया-नया प्रेम भी बढ़ता गया ॥ १९-२३ ॥

एकदा तु त्वरायुक्तो निश्चक्रामोटजान्मुनिः ।
निष्क्रामन्तञ्च कृत्रेति गम्यते प्राह सा शुभा ॥ २४ ॥

इत्युक्तः स तया प्राह परिवृतमहः शुभे ।
सन्ध्योपास्तिं करिस्यामि क्रियालोपोऽन्यथा भवेत् ॥ २५ ॥

ततः प्रहस्य मुदिता तं सा प्राह महामुनिम् ।
किमद्य सर्व्वधर्म्मज्ञ परिवृत्तमहस्तव ॥ २६ ॥

बहूनां विप्र वर्षाणां परिणाममहस्तव ।
गतमेतन्न कुरुते विस्मयं कस्य कथ्यताम् ॥ २७ ॥

एक दिन कण्डु मुनि अति शीघ्रतापूर्वक अपनी कुटि से बाहर निकले, निकलते हुए उनको देखकर 'आप कहाँ जाते हैं' इस प्रकार वह सुन्दरी बोली । उस अप्सरा के द्वारा ऐसा कहे जाने पर मुनि ने कहा—हे सुन्दरि ! दिन समाप्त हो गया, अतएव अब मैं सन्ध्योपासना करूंगा अन्यथा नित्यक्रिया का लोप हो जायगा । तब हँसकर उस सुन्दर दाँतवाली अप्सरा उन मुनिसे बोली हे सर्वधर्मज्ञ ! क्या आज ही दिन समाप्त हुआ ? । हे विप्र ! अनेकों वर्षों के पश्चात् दिन आज आपके लिए बीता है इसमें किसको आश्चर्य न होगा ॥ २४-२७ ॥

प्रातस्त्वमागता भद्रे नदीतीरमिदँ शुभम् ।
मया दृष्टासि तन्वङ्गि प्रविष्टा च ममाश्रमम् ॥ २८ ॥

इयञ्च वर्त्तते सन्ध्या परिणाममहर्गतम् ।
उपहासः किमर्थोऽयं सद्भावः कथ्यतां मम ॥ २९ ॥

प्रत्यूषस्यागता ब्रह्मन् सत्यमेतन्न ते मृषा ।
किन्त्वद्य तस्य कालस्य गतान्यव्दशतानि ते ॥ ३० ॥

ततः ससाध्वसो विप्रस्तां पप्रच्छायतेक्षणाम् ।
कथ्यतां भीरु कः कालस्तया मे रमतः सह ॥ ३१ ॥

सप्तोत्तराण्यतीतानि नववर्ष शतानि ते ।
मासाश्च षट् तथैवान्यत् समतीतं दिनत्रयम् ॥ ३२ ॥

सत्यं भीरु वदस्येतत् परिहासोऽथ वा शुभे ।
दिनमेकमहं मन्ये त्वया सार्द्धमिहासितम् ॥ ३३ ॥

वदिष्याम्यनृतं ब्रह्मन् कथमत्र तवान्तिके ।
विशेषेणाद्य भवता पृष्टा मार्गानुवर्त्तिना ॥ ३४ ॥

मुनि बोले—हे भद्रे ! तुम आज ही प्रातःकाल इस नदी के तीर पर आयी हो । और मेरे आश्रम में प्रवेश किया ऐसा मैंने देखा । और दिन बीत गया यह आज

की सन्ध्या है, पुनः तुम उपहास क्यों करती हो, यह सत्य मुझसे कहो । प्रम्लोचा बोली—हे ब्रह्मन् ! मैं प्रातः काल में आई हूँ यह आपका कहना सत्य है, झूठ नहीं, किन्तु उस प्रातःकाल को आज सैकड़ों वर्ष बीत गये । चन्द्र बोले—तब व्याकुलता के साथ उन ब्राह्मण ने विशाललोचना से पूछा—हे भीरु ! तुम्हारे साथ रमण करते हुए मुझे कितने समय बीत गये यह कहो । प्रम्लोचा ने कहा—मेरे आने के बाद से आज तक नौ सौ सात वर्ष, छः महीने और तीन दिन बीत गये । ऋषि ने कहा—हे भीरु ! यह तुम सत्य कहती हो अथवा हे सुन्दरि ! यह परिहास करती हो, तुम्हारे साथ इस स्थान में एक ही दिन बिताया हूं, मैं तो ऐसा ही समझ रहा हूं । प्रम्लोचा बोली—हे ब्रह्मन् ! आपके समीप मैं असत्य कैसे बोलूंगी, विशेषकर आज आप धर्ममार्ग में तत्पर होकर मुझसे पूछ रहे हैं ॥ २८-३४ ॥

निशम्य तद् वचः सत्यं स मुनिर्नृपनन्दनाः ।
धिङ् मां धिङ् मामतीवेत्थं निनिन्दात्मानमात्मना ॥ ३५ ॥

तपांसि मम नष्टानि हतं ब्रह्मविदां धनम् ।
हतो विवेकः केनापि योषिन्मोहाय निर्मिता ॥ ३६ ॥

चन्द्रमा बोले—हे नृपनन्दनो ! उसकी सत्य बातको सुन करके मुनि ने मुझे धिक्कार है ऐसा बार बार कहते हुए अपनी निन्दा की । मुनि ने कहा—मेरी तपस्या नष्ट हो गयी, ब्रह्मवेत्ताओं का जो धन है, वह समाप्त हो गया, विचार मारा गया, अहो ! किसी ने स्त्री को मोह के लिए ही उत्पन्न किया है ॥ ३५-३६ ॥

ऊर्म्मिषट्कातिगं ब्रह्म ज्ञेयमात्मजयेन मे ।
मतिरेषा हृता येन धिक् तं काममहाग्रहम् ॥ ३७ ॥

व्रतानि वेदविद्याप्तिकारणान्यखिलानि च ।
नरकग्राममार्गेण सङ्गेनापहृतानि मे ॥ ३८ ॥

विनिन्द्येत्थं स धर्म्मज्ञः स्वयमात्मानमात्मना ।
तामप्सरसमासीनामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥

गच्छ पापे यथाकामं यत् कार्य्यं तत्कृतं त्वया ।
देवराजस्य मत्क्षोभं कुर्व्वन्त्या भावचेष्टितैः ॥ ४० ॥

न त्वां करोम्यहं भस्म क्रोधतीव्रेण वह्निना।
सतां साप्तपदं मैत्रमुषितोऽहं त्वया सह ॥ ४१ ॥

अथवा तव को दोषः किं वा कुप्याम्यहं तव।
ममैव दोषो नितरां येनाहमजितेन्द्रियः ॥ ४२ ॥

यया शक्रप्रियार्थिन्या कृतो मे तपसो व्ययः।
त्वया धिक् त्वां महामोहमञ्जूषां सुजुगुप्सिताम् ॥ ४३ ॥

मुझे आत्मविजय पूर्वक छः (क्षुधा, पिपासा, लोभ, मोह, जरा और मृत्यु) ऊर्मियों को अतिक्रमण किये हुए ब्रह्म को जानना चाहिये था, किन्तु जिसने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी उस कामरूपी महाग्रह को धिक्कार है। वेदों से जानने योग्य भगवान् की प्राप्ति के कारणभूत मेरे समस्त व्रत नरकरूपी ग्राम के मार्गभूत इस स्त्री की संगति से विनष्ट हो गये। इस प्रकार उन धर्मज्ञ मुनि ने ही अपनी आत्मा की निन्दा में वहाँ बैठी हुई उस अप्सरा को निम्नलिखित बात कही। हे पापिनि ! अब तुम अपने इच्छानुसार चली जाओ। तुमने अपनी भावचेष्टा से (भाव भङ्गी से) मेरे को तपसे भ्रष्ट करके इन्द्र का कार्य सम्पन्न कर दिया। मैं क्रोध से प्रज्वलित अग्निद्वारा तुझे भस्म नहीं करूंगा, क्योंकि सज्जनों की मित्रता सात पग में ही होती है और मैं तो तेरे साथ इतने दिनों तक रह चुका हूं। अथवा तुम्हारा क्या दोष है, तुम्हारे पर क्यों क्रोध करूं, सबसे बड़ा दोष तो मेरा ही है, क्योंकि मैं स्वयं ही अजितेन्द्रिय हूं। इन्द्र का प्रिय करने के लिए तुमने मेरी तपस्या का विनाश किया अतएव महा अज्ञान-पिटारी एवं निन्दनीय तुम्हें धिक्कार हैं ॥ ३७-४३ ॥

यावदित्थं स विप्रर्षिस्तां ब्रवीति सुमध्यमाम्।
तावद् गलत्स्वेदजला सा बभूवातिवेपथुः ॥ ४४ ॥

चन्द्रमा बोले—वे ब्रह्मर्षि कण्डु जब तक उस सुन्दरकटीवाली अप्सरा से ऐसा बातें कह रहे थे तभी अत्यन्त कम्पित शरीरवाली उस अप्सरा के शरीर से पसीने निकलने लगे ॥ ४४ ॥

प्रवेपमाणां सततं स्विन्नगात्रलतां सतीम्।
गच्छ गच्छेति सक्रोधमुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४५ ॥

सा तु निर्भर्त्सिता तेन विनिष्क्रम्य तदाश्रमात्।
आकाशगामिनी स्वेदं ममार्ज तरुपल्लवैः ॥ ४६ ॥

वृक्षाद् वृक्ष ययौ बाला तदग्रारुणपल्लवैः ।
निर्म्मार्ज्जमाना गात्राणि गलत्स्वेदजलानि वै ॥ ४७ ॥

ऋषिणा यस्तदा गर्भस्तस्या देहे समाहितः ।
निर्जगाम स रोमाञ्च स्वेदरूपी तदङ्गतः ॥ ४८ ॥

तं वृक्षा जगृहुर्गर्भमेकं चक्रे तु मारुतः ।
मया चाप्यायितो गोभिः स तदा ववृधे शनैः ॥ ४९ ॥

वृक्षाग्रगर्भसंभूता भारिषाख्या वरानना ।
तां प्रदास्यन्ति वो वृक्षाः कोप एष प्रशाम्यताम् ॥ ५० ॥

कण्डोरपत्यमेवं सा वृक्षेभ्यश्च समुद्गता ।
ममापत्यं तथा वायोः प्रम्लोचातनया च सा ॥ ५१ ॥

स चापि भगवान् कण्डुः क्षीणे तपसि सत्तमः ।
पुरुषोत्तमाख्यं मैत्रेय विष्णोरायतनं ययौ ॥ ५२ ॥

तत्रैकाग्रमतिर्भूत्वा चकाराराधनं हरेः ।
ब्रह्मपारमयं कुर्व्वन् जपमेकाग्रमानसः ।
ऊर्ध्वबाहुर्महायोगी स्थित्वासौ भूपनन्दनाः ॥ ५३ ॥

अत्यन्त कम्पित होती हुई तथा पसीने से सरावोर शरीरवाली उस अप्सरा को तुम जाओ, तुम जाओ, ऐसा वे मुनिश्रेष्ठ ने क्रोध के साथ कहा । मुनिद्वारा इस प्रकार डाटी गयी वह उनके आश्रय से निकल कर आकाश मार्ग से जाती हुई उस अप्सरा ने वृक्षों के पत्तों से अपना पसीना पोंछा । वह बाला वृक्षों के नये नये लाल पत्तों से गिरते हुए पसीने वाले अपने शरीर को पोंछती हुई एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर गयी । और ऋषि ने उसके शरीर में जो गर्भाधान किया था वह रोमाञ्च से निकले हुए पसीने के रूप में उसके शरीर से निकल गया । तथा उस गर्भ को वृक्षों ने ग्रहण कर लिया और वायु ने उसे एकत्रित कर दिया और मेरे द्वारा अपनी किरणों से पुष्ट

होकर वह धीरे धीरे बढ़ने लगा। वृक्षों के अग्रभाग से उत्पन्न हुई वह सुमुखी मारिषा नाम से विख्यात हुई। वृक्ष उसे तुमलोगों को देंगे तुम लोग अपना क्रोध शान्त करो। इस प्रकार वह कण्डु मुनि की सन्तान वृक्षों से उत्पन्न हुई कन्या प्रम्लोचा की पुत्री मेरी वायु की भी सन्तान है। हे राजपुत्रो ! वह श्रेष्ठ मुनि भगवान् कण्डु भी अपनी तपस्या के क्षीण हो जाने पर पुरुषोत्तम नाम से विख्यात श्रीविष्णु भगवान् के स्थान में चले गये। वहाँ पहुंच कर ऊर्ध्वबाहु महायोगी वह कण्डु मुनि एकाग्र मन से ब्रह्मपारण मन्त्र को जपते हुए स्थिरबुद्धिहोकर श्रीविष्णु भगवान् की आराधना में लीन होगये ॥ ४५-५३ ॥

ब्रह्मपारं मुनेः श्रोतुमिच्छामः परमं स्तवम्।
जपता कण्डुना देवो येनाराध्यत केशवः ॥ ५४ ॥

पारं परं विष्णुपारापारः परः परेभ्यः परमार्थ रूपी।
स ब्रह्मपारः परपारभूतः परः पराणामपि पारपारः ॥ ५५ ॥

स कारणं कारणतस्ततोऽपि तस्यापिहेतुः परहेतुहेतुः।
कार्य्येषु चैवं सह कर्म्मकर्त्तृ रूपैरशेषै रवतीह सर्व्वम् ॥ ५६ ॥

प्रचोताओं ने कहा—कण्डुमुनिका पवित्र ब्रह्मपार स्तोत्र को हमलोग सुनना चाहते हैं, जिसका जप करते हुए उन्होंने भगवान् केशव की आराधना की थी। चन्द्रमा बोले—भगवन् श्रीविष्णु अपारसंसारमार्ग के अन्तिम पार हैं, उनका पार पाना अत्यन्त कठिन है, सत्य स्वरूप वे परसे (आकाशादि से) भी पर (अनन्त) हैं। तथा वे महात्माओं से ही प्राप्त किये जा सकते हैं क्योंकि वे अनात्मप्रपञ्च से भी परे हैं इन्द्रियों से अगोचर वही परमात्मा हैं और भक्तों के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं। वे परमात्मा कारण के कारण के कारण और उसके कारण के भी परम कारण है (अर्थात् कारण पञ्च महाभूत, उसका कारण पञ्च तन्मात्रा, उसका कारण तामस अहङ्कार, उसका कारण महत्तत्त्व, उसका भी प्रधान कारण है) ओर वे इस प्रकार समस्त कर्म और कर्ता आदि के साथ कार्यरूप में स्थित समस्त जगत् प्रपञ्च का पालन करते हैं ॥ ५४-५६ ॥

ब्रह्म प्रभुर्ब्रह्म स सर्व्वभूतो ब्रह्म प्रजानां पतिरच्युतोऽसौ।
ब्रह्माक्षरं नित्यमजं स विष्णु-रपक्षयाद्यैरखिलैरसङ्गि ॥ ५७ ॥

ब्रह्माक्षरमजं नित्यं यथासौ पुरुषोत्तमः ।
तथा रागादयो दोषाः प्रयान्तु प्रशमं मम ॥ ५८ ॥

एतद् ब्रह्मा पराख्यं वै संस्तवं परमं जपन् ।
अवाप परमां सिद्धिं समाराध्य स केशवम् ॥ ५९ ॥

ब्रह्म ही प्रभु, ब्रह्म ही सर्वस्वरूप, ब्रह्म ही प्रजापालक और अच्युत हैं । वही ब्रह्म अविनाशी, नित्य, अजन्मा क्षर आदि समस्त विकारों से रहित भगवन् श्रीविष्णु हैं । ब्रह्म, अक्षर, अज, नित्य, पुरुषोत्तम श्रीविष्णु भगवान् हैं अतएव मेरे सभी रागादि दोष शान्त हो जाय । इस ब्रह्मपार-नामक स्तोत्र को जप करते हुए उन कण्डु मुनि ने भगवान् केशव की आराधना करके परमसिद्धि प्राप्त की ॥ ५७-५९ ॥

इयञ्च मारिषा पूर्व्वमासीद् या तां ब्रवीमि वः ।
कार्य्यगौरवमेतस्याः कथने फलदायि वः ॥ ६० ॥

अपुत्रा प्रागियं विष्णुं मृते भर्त्तरि सत्तमाः ।
भूपपत्नी महाभागा तोषयामास भक्तितः ॥ ६१ ॥

आराधितस्तया विष्णुः प्राह प्रत्यक्षतां गतः ।
वरं वृणीष्वेति शुभा सा च प्राहात्मवाञ्छितम् ॥ ६२ ॥

भगवन् बालवैधव्याद् वृथाजन्माहमीदृशी ।
मन्दभाग्या समुत्पन्ना विफला च जगत्पते ॥ ६३ ॥

भवन्तु पतयः श्लाघ्या मम जन्मनि जन्मनि ।
त्वत्प्रसादात् तथा पुत्रः प्रजापतिसमोऽस्तु मे ॥ ६४ ॥

रूपसम्पत्समायुक्ता सर्व्वस्य प्रियदर्शना ।
अयोनिजा च जायेयं त्वत्प्रसादादधोक्षज ॥ ६५ ॥

यह मारिषा पूर्वजन्म में जो थी वह भी तुमलोगों को कहता हूं, इसे कहने से तुम लोगों का प्रजा वृद्धिरूपी कार्य गौरव सफल होगा । पूर्वजन्म में यह एक राजा की पत्नी थी और पुत्रहीन अवस्था में ही अपने पति के मर जाने पर इस महाभागा ने भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीविष्णु को सन्तुष्ट किया । उसके द्वारा आराधना किये

जाने पर प्रत्यक्ष हुए भगवान् श्रीविष्णु ने शुभे ! तुम वर माँगो ऐसा कहा, और इसने भी मनोवाञ्छित वर माँगा । हे भगवन् ! बालविधवा होने के कारण मेरा जन्म व्यर्थ हो गया । हे जगत्पते ! मैं मन्दभागिनी विफल जन्म वाली ही उत्पन्न हुई । अत एव हे भगवन् ! मेरे जन्म जन्म में प्रशंसनीय पति हो और आपकी कृपा से मेरा पुत्र प्रजापति के समान हो । और हे अधोक्षज ! आपकी कृपा से मैं रूपसम्पत्ति से युक्त सबकी दृष्टि में सुन्दर दीखने वाली तथा विना योनि के (माता के गर्भ विना) मेरा जन्म हो ॥ ६०-६५ ॥

तयैवमुक्तो देवेशो हृषीकेश उवाच ताम् ।
प्रणामनम्रामुत्थाप्य वरदः परमेश्वरः ॥ ६६ ॥

भविष्यन्ति महावीर्य्या एकस्मिन्नेव जन्मनि ।
प्रख्यातोदारकर्म्माणो भवत्याः पतयो दश ॥ ६७ ॥

पुत्रञ्च सुमहात्मानम् अतिवीर्य्यपराक्रमम् ।
प्रजापतिगुणैर्युक्तं त्वमवाप्स्यसि शोभने ॥ ६८ ॥

वंशानां तस्य कर्त्तृत्वं जगत्यस्मिन् भविष्यति ।
त्रैलोक्यमखिलं सूतिस्तस्य चापूरयिष्यति ॥ ६९ ॥

त्वञ्चाप्ययोनिजा साध्वी रूपौदार्य्यगुणान्विता ।
मनः प्रीतिकरी नृणां मत्प्रसादाद् भविष्यसि ॥ ७० ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तां विशालविलोचनाम् ।
सा चेयं मारिषा जाता युष्मत्पत्नी नृपात्मजाः ॥ ७१ ॥

चन्द्रमा बोले—उससे इस प्रकार कहे जाने पर देवों के भी ईश परमेश्वर वरदाता भगवान् हृषिकेश ने प्रणाम के लिए झुकी हुई उसे उठा कर बोले । भगवान् बोले—तेरे को एक ही जन्म में महापराक्रमी एवं विख्यात उदार कर्म वाले दश पति होंगे । और हे शोभने ! प्रजापति के गुणों से युक्त महापराक्रमी महाबलिष्ठ एक पुत्र भी तुम प्राप्त करोगी । तथा हे शोभने ! वह इस संसार में वंशों को चलाने वाला होगा, और उसकी सन्तान से त्रिलोकी पूर्ण हो जायगी । तथा रूप एवं उदारता आदि गुणों से सम्पन्न करने वाली साध्वी तुम भी बिना योनि के ही उत्पन्न होगी । उस

विशाल लोचना मारिषा को ऐसा कह कर भगवान् अन्तर्धान हो गये । हे राजपुत्रो ! वही यह मारिषा आप लोगों की पत्नी है ॥ ६६-७१ ॥

ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ।
संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ॥ ७२ ॥

दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
जज्ञे दक्षो महायोगो यः पूर्व्वं ब्रह्मणोऽभवत् । ७३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब प्रचेतागण ने चन्द्रमा के वचन से क्रोध को त्याग कर वृक्षों से मारिषा को पत्नीरूप में ग्रहण किया । उन दश प्रचेताओं से मारिषा में महाभाग दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए जो पूर्व जन्म में ब्रह्मा जी से उत्पन्न हुए थे ॥७२-७३ ॥

स तु दक्षो महाभागः सृष्ट्यर्थं सुमहामते ।
पुत्रान् उत्पादयामास प्रजासृष्ट्यर्थमात्मनः ॥ ७४ ॥

अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ।
आदेशं ब्रह्मणः कुर्व्वन् सृष्ट्यर्थ समुपस्थितः ॥ ७५ ॥

स सृष्ट्वा मनसा दक्षः पश्चादप्यसृजत् स्त्रियः ।
ददौ स दशधर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ ७६ ॥

कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ।
तासु देवास्तथा दैत्या नागा गावस्तथा खगाः ॥ ७७ ॥

गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव दानवाद्याश्च जज्ञिरे ।
ततः प्रभृति मैत्रेय प्रजा मैथुनसम्भवाः ॥ ७८ ॥

संकल्पाद् दर्शनाद् स्पर्शाद् पूर्व्वेषामभवत् प्रजाः ।
तपोविशेषैः सिद्धानां तदात्यन्ततपस्विनाम् ॥ ७९ ॥

हे महामते ! उन महाभाग दक्ष ने ब्रह्मा जी के आदेश को पालन करते हुए अपनी सृष्टि बढ़ाने के लिए तैयार होकर चर, अचर दो पैरवाले चार पैरवाले आदि अनेक प्रकार के पुत्रों को उत्पन्न किया । इस प्रकार दक्ष ने मन से अनेक प्रकार के

पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद साठ कन्याओं को उत्पन्न किया । जिनमें दस कन्याएँ धर्म को एवं तेरह कन्याएँ कश्यप को प्रदान की । तथा काल को दो कन्याएँ और चन्द्रमा को सत्ताईस कन्याएँ दक्ष ने दी, इन सभी कन्याओं में देव, दैत्य, नाग, पक्षी, गन्धर्व और अप्सरा एवं दानवादि के जन्म हुए । हे मैत्रेय ! उसी समय से प्रजा की मैथुनी सृष्टि आरम्भ हुई । पहले संकल्प, दर्शन और स्पर्श द्वारा एवं अत्यन्त तपस्वी लोगों के तप विशेषद्वारा प्रजाओं की सृष्टि होती थी ॥ ७४-७९ ॥

अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाद् दक्षः पूर्व्वं जातः श्रुतं मया ।
कथं प्राचेतसो भूयः स सम्भूतो महामुने ॥ ८० ॥

एष मे संशयो ब्रह्मन् सुमहान् हृदि वर्त्तते ।
यद् दौहित्रः स सोमस्य पुनः श्वशुरतां गतः ॥ ८१ ॥

मैत्रेय जी बोले—हे महामुने ! (ब्रह्माजी के) दाहिने अँगूठे से दक्ष उत्पन्न हुए थे ऐसा हमने सुना है, पुनः प्रचेताओं से उनकी उत्पत्ति कैसे हुई । हे ब्रह्मन् ! हमारे मन में यह भी एक बहुत बड़ा सन्देह है कि जो दक्ष चन्द्रमा के दौहित्र नाती थे वही श्वसुर कैसे हो गये ॥ ८०-८१ ॥

उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यौ भूतेषु सत्तम ।
ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति ये चात्र दिव्यचक्षुषः ॥ ८२ ॥

युगे युगे भवन्त्येते दक्षाद्या मुनिसत्तमाः ।
पुनश्चैवं निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ८३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे सत्तम ! प्राणियों की उत्पत्ति और विनाश नित्य है (अर्थात् प्रवाह रूप से चलते रहते है) दिव्यचक्षु ऋषिगण इस विषय में मोहित नहीं होते । दक्ष आदि श्रेष्ठ मुनिगण प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं और पुनः निरूद्ध हो जाते हैं । विद्वानलोग इस विषय में मोह को प्राप्त नहीं होते ॥ ८२-८३ ॥

कानिष्ठ्यं ज्येष्ठ्यमप्येषां पूर्व्वं नाभूद् द्विजोत्तम ।
तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कारणम् ॥ ८४ ॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! पूर्वकाल में किसी को ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ(बड़ा छोटा) आदि का विचार नहीं था, किन्तु महान् तप का प्रभाव ही बड़ा माना जाता था ॥ ८४ ॥

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणह मम ब्रह्मन् प्रकीर्त्तय॥ ८५॥

मैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन्! आप देव, दानव, गन्धर्व, सर्प और यक्ष यादि की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये॥ ८५॥

प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्व्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
यथा ससर्ज भूतानि तथा शृणु महामते॥ ८६॥

मानसानि तु भूतानि पूर्व्वं दक्षोऽसृजत् तदा।
देवानृषीन् सगन्धर्व्वान् असुरान् पन्नगांस्तथा॥ ८७॥

यदास्य द्विज मानस्यो नाभ्यवर्द्धन्त ताः प्रजाः।
ततः सञ्चिन्त्य स पुनः सृष्टिहेतोः प्रजापतिः॥ ८८॥

मैथुनेनैव धर्मेण सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
असिक्नीमावहत् कन्यां वीरणस्य प्रजापतेः॥ ८९॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामते! पूर्व काल में 'तुम प्रजा की सृष्टि करो' इस प्रकार से ब्रह्माजीद्वारा आदिष्ट दक्ष ने जिस प्रकार प्रजाओं की सृष्टि की उसे सुनो। पहले दक्ष ने अपने मन से दैव, ऋषि, गन्धर्व, असुर और सर्पों को उत्पन्न किया। किन्तु हे ब्राह्मण! जब उनकी यह मानसी (मनसे उत्पन्न हुई) प्रजा पुत्र पौत्रादि क्रम से नहीं बढ़ी, तब उन्होंने प्रजा उत्पत्ति की इच्छा से विचारपूर्वक मैथुनधर्मद्वारा प्रजा सृष्टि की इच्छावाले होकर तपस्विनी लोकधारिणी श्रेष्ठा एवं योग्या वीरण प्रजापति की पुत्री असिक्नी से विवाह किया॥ ८६-८९॥

सुतां सुतपसा युक्तां महतीं लोकधारिणीम्।
अथ पुत्रसहस्राणि वैरण्यां पञ्च वीर्य्यवान्॥ ९०॥

असिक्न्यां जनयामास सर्गहेतोः प्रजापतिः।
तान् दृष्ट्वा नारदो विप्रः संविवर्द्धयिषून् प्रजाः।
सङ्गम्य प्रियसंवादो देवर्षिरिदमब्रवीत्॥ ९१॥

हे हर्य्यश्वा महावीर्य्याः प्रजा यूयं करिष्यथ ।
ईदृशो लक्ष्यते यत्नो भवतां श्रूयतामिदम् ॥ ९२ ॥

बालिशा बत यूयं वै नास्या जानीथ वै भुवः ।
अन्तरूर्ध्वमधश्चैव कथं स्त्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ ९३ ॥

ऊर्द्ध्वं तिर्य्यगधश्चैव यदा प्रतिहता गतिः ।
तदा कस्माद् भुवो नान्तं सर्व्वं द्रक्ष्यथ बालिशाः ॥ ९४ ॥

ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ ९५ ॥

और सामर्थ्यशाली प्रजापति दक्ष ने सृष्टि बढ़ाने के निमित्त वीरण प्रजापति की पुत्री असिक्नी में पाँच हजार पुत्रों को उत्पन्न किये । प्रिय बोलने वाले ब्राह्मण देवर्षि नारद उनको प्रजा बढ़ाने के इच्छुक देखकर उनके पास जाकर बोले । नारदजी बोले—हे महापराक्रमी हर्यश्वगण ! (दक्षके पुत्रों का नाम हर्यश्व था) आपलोगों का ऐसा प्रयत्न लक्षित होता है कि ; आप प्रजा की सृष्टि करेंगे, किन्तु मेरी यह बात सुनिये । दुःख की बात है कि तुमलोग अभी बालिश (अनभिज्ञ या मूर्ख) हो ; क्योंकि इस पृथ्वी का अन्दरका भाग, ऊपर का भाग और नीचे का भाग जानते नहीं हो पुनः प्रजा की सृष्टि कैसे करोगे । और जब तुम्हारी ऊपर, नीचे और तिरछे की गति बिना रूकावटकी है, तो हे अनभिज्ञो ! इस पृथ्वी का अन्त क्यों नहीं देख लेते हो । श्रीपराशरजी बोले—वे सब नारदजी की उस बात को सुनकर सभी दिशाओं में चले गये और आजतक उसी प्रकार नहीं लौटे जैसे समुद्र में मिल जाने से नदियाँ नहीं लौटती ॥ ९०-९५ ॥

हर्य्यश्वेष्वथ नष्टेषु दक्षः प्राचेतसः पुनः ।
वैरण्यामथ पुत्राणां सहस्त्रमसृजत् प्रभुः ॥ ९६ ॥

विवर्द्धयिषवस्ते तु शवलाश्वाः प्रजाः पुनः ।
पूर्व्वोक्तं वचनं ब्रह्मन् नारदेन प्रचोदिताः ॥ ९७ ॥

अन्योऽन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महामुनिः ।
भ्रातृणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ॥ ९८ ॥

इस प्रकार अपने पुत्रों हर्यश्वों के चले जाने के बाद प्रचेताओं के पुत्र दक्ष ने वैरुणी में एक सहस्त्र पुत्र और उत्पन्न किये। पुनः प्रजा वृद्धि की इच्छावाले उन शबलाश्वनामक दक्ष के पुत्रों को नारदजी पहले समान ही बातें कहीं नारद जी की बातें सुनकर महामुनि ने ठीक ही कहा इस प्रकार आपस में कहने लगे हम लोगों को भी अपने भाईयों के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिये ॥ ९६-९८ ॥

ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च प्रजाः स्त्रक्ष्यामहे ततः ।
तेऽपि तेनेत्र मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतो दिशम् ।
अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥ ९९ ॥

ततः प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषण द्विज ।
प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्य्यं विजानता ॥ १०० ॥

तांश्चापि नष्टान् विज्ञाय पुत्रान् दक्षः प्रजापतिः ।
क्रोधं चक्रे महाभागो नारदं स शशाप च ॥ १०१ ॥

पृथ्वी के परिमाण को जान कर ही हमलोग भी प्रजा की सृष्टि करेंगे, ऐसा विचार कर वे भी उसी मार्ग से सभी दिशाओं में चले गये और आजतक भी समुद्र में मिली हुई नदियों के समान नहीं लौटे। हे द्विज ! उसी समय से भाई यदि भाई को खोजने के लिये जाय तो वह नष्ट हो जाता है, अतएव विद्वान् पुरुष को ऐसा नहीं करना चाहिए। उन पुंत्रों को भी नष्ट होने पर महाभाग दक्ष प्रजापति ने अत्यन्त क्रोधित होकर नारद जी को शाप दिया ॥ ९९-१०१ ॥

सर्गकामस्ततो विद्वान् स मैत्रेय प्रजापतिः ।
षष्टिं दक्षोऽसृजत् कन्या वैरण्यामिति नः श्रुतम् ॥ १०२ ॥

ददौ स दश धर्म्माय कश्यपाय त्रयोदश ।
सप्तविशति सोमाय चतस्त्रोऽरिष्टनेमिने ॥ १०३ ।

द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे तासां नामानि मे श्रृण ॥ १०४ ॥

हे मैत्रेय ! तब सृष्टि की कामनावाले विद्वान् प्रजापति दक्ष ने वैरुणी में साठ कन्याएँ उत्पन्न की—ऐसा हम लोग सुने हैं। उनमें से उन्होंने दश धर्म को, तेरह

कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को, चार अरिष्टनेमिको, दो बहुपुत्रको, दो अङ्गिरा को और दो कन्याएं कृशाश्व को दी, उन कन्याओं का नाम सुनो ॥ १०२-१०४ ॥

अरुन्धती वसुर्य्यामी लम्बा भानुर्मरुत्वती ।
सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च ता दश ॥ १०५ ॥

धर्म्मपत्न्यो दश त्वेतास्तदपत्यानि मे श्रृणु ।
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत ॥ १०६ ॥

मरुत्वत्या मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवः स्मृताः ॥ १०७ ॥

भानोस्तु भानवः पुत्रा मुहूर्त्तायां मुहूर्त्तजाः ।
लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथी तु यामिजा ॥ १०८ ॥

पृथिवीविषयं सर्व्वमरुन्धत्यां व्यजायत ।
संकल्पायान्तु सर्व्वात्मा जज्ञे संकल्प एव तु ॥ १०९ ॥

अरुन्धती , वसु, यामी, लम्बा, भानु , मरुत्वती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या तथा विश्वा । ये सभी धर्म की पत्नियाँ थी, अब इनके पुत्रों का नाम सुनो—विश्वा के विश्वेदेवा, साध्या के साध्यगण, मरुत्वती के मरुत्वान्, वसु के वसुगण, भानु के भानु, मुहूर्ता के मुहूर्त नामक देवगण, लम्बा के घोषनामक पुत्र हुए, यामि के नागविथी, और अरुन्धती से समस्त पृथिवी के प्राणी हुए, और संकल्पा के सर्वात्मक संकल्पनामक पुत्र हुआ ॥ १०५-१०९ ॥

ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिपुरोगमाः ।
वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ११० ॥

आपो ध्रुवंश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभावश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥ १११ ॥

आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः श्रान्तो ध्वनिस्तथा ।
ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकालनः ॥ ११२ ॥

सोमस्य भगवान् वर्च्चा वर्च्चस्वी येन जायते ।
धरस्य पुत्रौ द्रविणो हुतहव्यवहस्तथा ॥ ११३ ॥

मनोहरायाः शिशिरः प्राणोऽथ वरुणस्तथा।
अनिलस्य शिवा भार्य्या तस्याः पुत्रो मनोजवः ॥ ११४॥

अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य च।
अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ॥ ११५॥

जो अनेक प्रकार के धन के प्राण है, ऐसे ज्योति आदि जो आठ वसुगण विख्यात हैं, अब मैं उनका वृत्तान्त विस्तार से सुनाता हूं। आप, ध्रुव, सोम, धर्म, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभाव ये आठ वसुओं के आठ नाम हैं। वैत्तण्ड, श्रम, शान्त, ध्वनि, ये चार आपके पुत्र हैं, लोक विनाशक भगवान् काल ध्रुव के पुत्र हैं। सोम के पुत्र वर्चा थे, जिनसे मनुष्य तेजस्वी होता है धर्म की पत्नी मनोहरा से शिशिर, प्राण, वरुण, हुत तथा हव्य वह नाम के पुत्र हुए। और अनिल की भार्या शिव से मनोजव तथा अविज्ञातगति नाम के दो पुत्र हुए। अग्नि का कुमार नामका एक पुत्र सरकण्डे से उत्पन्न हुआ ॥ ११०-११५ ॥

तस्य शाखा विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः।
अपत्यं कृत्तिकानान्तु कार्त्तिकेय इति स्मृतः ॥ ११६॥

प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्नाथ देवलम्।
द्वौ पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ॥ ११७॥

बृहस्तपतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी।
योगसिद्धा जगत्कृस्नमसक्ता विचरत्युत ॥ ११८॥

प्रभासस्य तु सा भार्य्या वसूनामष्टमस्य च।
विश्वकर्म्मा महाभागस्तस्यां जज्ञे प्रजापतिः ॥ ११९॥

कर्त्ता शिल्पसहस्त्राणां त्रिदशनाञ्च वर्द्धकिः।
भूषणानाञ्च सर्वेषां कर्त्ता शिल्पवतां वरः ॥ १२०॥

यः सर्व्वेषां विमानानि देवतानां चकार ह।
मनुष्याश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पं महात्मनः ॥ १२१॥

तस्य पुत्रास्तु चत्वारस्तेषां नामानि मे शृणु।

अजैकपादहिर्बुध्नस्त्वष्टा रुद्रश्च बुद्धिमान् ।
त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महायशाः ॥ १२२ ॥

हरश्च बहुरूपस्त्र त्रयम्बकश्चापराजितः ।
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्द्दी रैवतस्तथा ॥ १२३ ॥

मृगव्याधश्च शर्व्वश्च कपाली च महामुने ।
एकादशैते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ १२४ ॥

शतं त्वेवं समाख्यातं रुद्राणाममितौजसाम् ।
अदितिर्दितिर्दनुः काला अरिष्टा सुरसा तथा ॥ १२५ ॥

सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा ।
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञ तदपत्यानि मे शृणु ॥ १२६ ॥

अथ शाख, विशाख और नैगम ये तीन उनके छोटे भाई थे । और कृत्तिका का पुत्र कार्तिकेय था । प्रत्यूषका पुत्र देवलऋषि और देवल के क्षमाशील और मनिषी नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए । बृहस्पति की बहिन ब्रह्मचारिणी वरस्त्री नाम की थी, जो सिद्धयोगिनी होकर अनासक्त भाव से समस्त जगत् में विचरण करती थी, वह आठवें वसु प्रभास की भार्या हुई । उससे महाभाग प्रजापति विश्वकर्मा उत्पन्न हुए, जो सहस्त्रों शिल्पों के कर्त्ता देवताओं के शिल्पी तथा सभी प्रकार के आभूषणों के निर्माता एवं शिल्पियों में श्रेष्ठ हुए । जिन्होंने समस्त देवताओं के विमानों का निर्माण किया और जिनके निर्माण किये हुए शिल्पशास्त्र के आश्रय से बहुत मनुष्य जीवन चलाते हैं । उनके अजैकपाद, अहिब्रघ्न, त्वष्टा और बुद्धिमान् रुद्र ये चार पुत्र हुए। और त्वष्टा के पुत्र महायशस्वी विश्वरूप हुए। हर, बहुरूप, त्रयम्बक, अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी, रैवत, मृगव्याध, कपाली और शर्व तीनों भुवन के ईश्वर ये ग्यारह रुद्र कहे गये हैं । इस प्रकार के महातेजस्वी एक सौ रुद्र कहे गये हैं । कश्यप मुनि की जो तेरह भार्याएँ थीं उनके नाम सुनो— अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरमा, स्वसा, सुरभि, विनता, ताम्रा क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि । हे धर्मज्ञ ! अब उनकी सन्तानों का विवरण सुनो ॥ ११६-१२६ ॥

पूर्व्वमन्वन्तरे श्रेष्ठा द्वादशासन् सुरोत्तमाः ।
तुषिता नाम तेऽन्योन्यमूचुर्वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १२७ ॥

उपस्थितेऽतियशसश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
समवायीकृताः सर्व्वे समागम्य परस्परम् ॥ १२८ ॥

आगच्छत द्रुतं देवा अदितिं संप्रविश्य वै ।
मन्वन्तरे प्रसूयामस्तन्नः श्रेयो भविष्यति ॥ १२९ ॥

एवमुक्त्वा तु ते सर्व्वे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ।
मारीचात कश्यपोज्जातास्ते दित्या दक्षकन्यया ॥ १३० ॥

पहले चाक्षुष मन्वन्तर में बारह तुषित नाम के श्रेष्ठ देवगण थे। अति यशस्वी वे देवगण चाक्षुष मन्वन्तर के बाद वैवस्वत मन्वन्तर आने पर सभी ने इकट्ठें होकर उन्होंने आपस में विचार किया। हे देवगण ! आओ हमलोग अब अदिति के गर्भ में प्रवेश कर यदि उत्पन्न हों, तब हम लोगों का कल्याण होगा। वे सभी मन्वन्तर में ऐसा विचार करके, मरीचि के पुत्र कश्यप जी के द्वारा दक्षकन्या अदिति से जन्म लिये ॥ १२७-१३० ॥

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च जज्ञाते पुनरेव च ।
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैव च ॥ १३१ ॥

विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च ।
अंशो भगश्चादितिजा आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ १३२ ॥

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्व्वमासन् ये तुषिताः सुराः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ते वै आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ १३३ ॥

विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता त्वष्टा, पूषा, विवस्वान् , सविता, मित्र, वरुण, अंशु और भग ये बारह पुत्र अति तेजस्वी आदित्य नाम से प्रसिद्ध हुए। चाक्षुष मन्वन्तर में जो तुषित नाम से विख्यात देवगण थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्य नाम से विख्यात हुए ॥ १३१-१३३ ॥

याः सप्तविंशतिः प्रोक्ताः सोमपत्न्योऽथ सुव्रताः ।
सर्व्वा नक्षत्रयोगिन्यस्तन्नाम्न्यश्चैव ताः स्मृताः ॥ १३४ ॥

तासामपत्यान्यभवन् दीप्तान्यमिततेजसा ।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥ १३५ ॥

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ।

प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ॥ १३६ ॥

चन्द्रमा की जिन सत्ताईस भार्याओं के विषय में कहा गया है, वे सभी नक्षत्र योगिनियां उन नामों से ही विख्यात हुईं । अत्यन्त तेजस्विनी उन चन्द्र पत्नियों से अनेक सन्तान हुईं और अरिष्टनेमिकी पत्नियों के सोलह पुत्र हुए । विद्वान् बहुपुत्र की प्रकार पत्नियाँ विद्युत् के नाम से प्रसिद्ध हुई (कपिला, अतिलोहिता, पीता और सीता) और ब्रह्मर्षियों से सम्मानित ऋचाओं के अभिमानी श्रेष्ठ देवगण प्रत्यङ्गिरा से उत्पन्न हुए ॥ १३४-१३६ ॥

कृशाश्वस्य तु दवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ।

एत युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥ १३७ ॥

देवप्रहरणनामक देवगण देवर्षि कृशाश्व की सन्तान कहे गये हैं । इस प्रकार युगसहस्र के बाद पुनः उत्पन्न होते हैं ॥ १३७ ॥

सर्व्वे देवगणास्तात त्रयस्त्रिंशत् तु छन्दजाः ।

तेषामपीह सततं निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥ १३८ ॥

यथा सूर्य्यस्य मैत्रेय उदयास्तमयाविह ।

एवं देवनिकायास्ते संभवन्ति युगे युगे ॥ १३९ ॥

हे तात ! ये सभी तैंतीस देवगण अपनी इच्छा के अनुसार ही जन्म लेते हैं । कहा जाता है कि, इस लोक में इनके उत्पत्ति और विनाश सदा होते हैं । हे मैत्रेय ! जिस प्रकार संसार में सूर्य के अस्त और उदय सदा होते हैं, उसी प्रकार ये देवगण भी युगयुग में उत्पन्न होते हैं ॥ १३८-१३९ ॥

दित्याः पुत्रद्वयं जज्ञे कश्यपादिति नः श्रुतम् ।

हिरण्यकशिपुश्चैव हिरण्याक्षश्च दुजेयः ॥ १४० ॥

सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तेः परिग्रहः ।

हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथितौजसः ॥ १४१ ॥

अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव बुद्धिमान् ।
संह्लादश्च महावीर्य्या दैत्यवंशविवर्द्धनाः ॥ १४२ ॥

और दिति के कश्यप से दुर्जय हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए—ऐसा हमने सुना है । दिति की सिंहिका नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका विवाह विप्रचिति से हुआ था । हिरण्यकशिपु के विख्यात तेजवाल अनुह्लाद, ह्लाद, बुद्धिमान् प्रह्लाद् और संह्लाद नाम के चार पुत्र हुए—जो दैत्यवंश की वृद्धि करने वाले थे ॥ १४०-१४२ ॥

तेषां मध्ये महाभाग सर्व्वत्र समदृग् वशी ।
प्रह्लादः परमां भक्तिं य उवाह जनार्दने ॥ १४३ ॥

दैत्येन्द्रदीपितो वह्निः सर्व्वाङ्गोपचितो द्विज ।
न ददाह च यं विप्र वासुदेवे हृदि स्थिते ॥ १४४ ॥

महार्णवान्तः सलिले स्थितस्य चलतो मही ।
चचाल सकला यस्य पाशबद्धस्य धीमतः ॥ १४५ ॥

न भिन्नं विविधैः शस्त्रैर्यस्य दैत्येन्द्रपातितैः ।
शरीरमद्रिकठिनं सर्व्वत्राच्युतचेतसः ॥ १४६ ॥

विषानलोज्ज्वलमुखा यस्य दैत्यप्रचोदिताः ।
नान्ताय सर्पपतयो बभूवुरुरुतेजसः ॥ १४७ ॥

शैलैराक्रान्तदेहोऽपि यः स्मरन् पुरुषोत्तमम् ।
तत्याज नात्मनः प्राणान् विष्णुस्मरणदंशितः ॥ १४८ ॥

पतन्तमुच्चादवनिर्यमुपेत्य महामतिम् ।
दधार दैत्यपतिना क्षिप्तं स्वर्गनिवासिना ॥ १४९ ॥

हे महाभाग ! उनमें प्रह्लाद सर्वत्र समानदृष्टिवाला और जितेन्द्रिय था, जिसने जनार्दन भगवान् की भक्ति का वर्णन किया है । जिसको दैत्यराज ने प्रपीडित किया गया तथा सर्वाङ्ग में फैला हुआ अग्नि भी नहीं जला पाया ; क्योंकि उसके हृदय में भगवान् जनार्दन स्थित थे । पाश में बन्धकर समुद्र के जल में स्थित जिसके हिलने

डुलने से समस्त पृथ्वी हिलने लगी थी। सर्वत्र अच्युतमय चित्तवाले जिसके पर्वत के समान कठिन शरीर, दैत्येन्द्रद्वारा चलाये गये विविध प्रकार के शस्त्रों से भी छिन्न नहीं हुआ। विषरूपी अग्नि से प्रज्वलित मुखवाले दैत्यराज से प्रेरित सर्पराज भी जिस महातेजस्वी का अन्त करने में समर्थ नहीं हो सके। विष्णुभगवान् के स्मरणरूपी कवच को धारण किये हुए जिसने पत्थरों से मारे जाने पर भी अपना प्राणत्याग नहीं किया। स्वर्गनिवासी दैत्यपतिद्वारा ऊपर से गिराये जाने पर जिन महामति को पास में पहुंचकर पृथ्वी ने धारण कर लिया था ॥ १४३-१४९ ॥

यस्य संशोषको वायुर्देहे दैत्येन्द्रयोजितः।
अवाप संक्षयं सद्यश्चित्तस्थे मधुसूदने ॥ १५० ॥

विषाणभङ्गमुन्मत्ता मदहानिञ्च दिग्गजाः।
यस्य वक्षःस्थले प्राप्ता दैत्येन्द्रपरिणामिताः ॥ १५१ ॥

यस्य चोत्पादिता कृत्या दैत्यराजपुरहितैः।
बभूव नान्ताय पुरा गोविन्दासक्तचेतसः ॥ १५२ ॥

शम्बरस्य च मायानां सहस्त्रमतिमायिनः।
यस्मिन् प्रयुक्तं चक्रेण कृष्णस्य वितथीकृतम् ॥ १५३ ॥

दैत्येन्द्रसूदोपहृतं यस्तु हालाहलं विषम्।
जारयामास मनिमानविकारममत्सरी ॥ १५४ ॥

समचेता जगत्यस्मिन् यः सर्वेष्वेव जन्तुषु।
यथात्मनि तथान्यत्र परं मैत्रगुणान्वितः ॥ १५५ ॥

धर्म्मात्मा सत्यशौचादिगुणानामाकरस्तथा।
उपमानमशेषाणां साधूनां यः सदाभवत् ॥ १५६ ॥

मधुसूदन भगवान् के चित्त में स्थित रहने के कारण जिसके शरीर में लगने से दैत्यराजद्वारा नियुक्त सर्वशोषक वायु भी शान्त हो गया। दैत्यराजद्वारा प्रेरित उन्मत्त दिग्गजों के दाँत जिसकी छाती में लगकर भङ्ग हो गये तथा उनकी मदहानी भी हुई। दैत्यराज के पुरोहितों द्वारा उत्पन्न की गयी कृत्या भी गोविन्द भगवान् में संलग्न मनवाला जिसका अन्त न कर सकी। अत्यन्त मायावी शम्बरासुर की सहस्त्रों

मायाएँ जिनके ऊपर प्रयुक्त हुई, किन्तु कृष्ण के चक्रद्वारा व्यर्थ कर दी गयी । और जिस बुद्धिमान् एवं निर्मत्सरने दैत्यराज के पाचको (रसोइयो) द्वारा लाये हुए हालाहल विष को निर्विकार रूप से पचा लिया । इस जगत् में समस्त प्राणियों में समान विचारवाला जो अपने समान ही दूसरों के प्रति भी प्रेमगुण से सम्पन्न थे । सत्य, शौर्य आदि गुणों का खान और परम धर्मात्मा जो समस्त साधुओं के उपमास्वरूप थे ऐसे भक्तशिरोमणी प्रह्लाद हुए ॥ १५०-१५६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में पन्द्रहवां अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - सौलहवाँ अध्याय

(प्रह्लादचरित्रविषयक प्रश्न)

मैत्रेय उवाच ।

कथितो भवता वंशो मानवानां महामुने ।
कारणञ्चास्य जगतो विष्णुरेव सनातनः ॥ १ ॥

यच्चैतद् भगवानाह प्रह्लादं दैत्यसत्तमम् ।
ददाह नाग्निर्नास्त्रैश्च क्षुण्णस्तत्याज जीवितम् ॥ २ ॥

जगार्म वसुधा क्षोभं प्रह्लादे सलिले स्थिते ।
बन्धबद्धे विचलति विक्षिप्ताङ्गैः समाहता ॥ ३ ॥

शैलैराक्रान्तदेहोऽपि न ममार च यः पुरा ।
त्वयैवातीव माहात्म्यं कथितं यस्य धीमतः ॥ ४ ॥

तस्य प्रभावमतुलं विष्णोर्भक्तिमतो मुने ।
श्रोतुमिच्छामि यस्येतच्चरितं दीप्ततेजसः ॥ ५ ॥

किं निमित्तमसौ शस्त्रैर्विक्षतो दितिजैर्मुने ।
किमर्थञ्चाब्धिसलिले नृक्षिप्तो धर्म्मतत्परः ॥ ६ ॥

आक्रान्तः पर्व्वतैः कस्मात् कस्माद्दष्टो महोरगैः ।
क्षिप्तः किमद्रिशिखरात् कि वा पावकसञ्चये ॥ ७ ॥

दिग्दन्तिनां दन्तभूमिं स च कस्मान्निरूपितः ।
संशोषकोऽनिलश्चास्य प्रयुक्तः किं महासुरैः ॥ ८ ॥

कृत्याश्च दैत्यगुरवो युयुजुस्तत्र किं मुने।
शम्बरश्चापि मायानां सहस्रं कि प्रयुक्तवान्॥ ९॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—आपने महात्मा मानवों के वंशों का वर्णन किया, तथा इस जगत् के कारण सनातन श्रीविष्णु, भगवान् ही हैं यह भी कहा। किन्तु आपने जो कहा कि दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लादको अग्नि ने भस्म नहीं किया तथा विविध प्रकार के अस्त्रों द्वारा आघात किये जाने पर भी उन्होंने प्राण नहीं त्यागा। और पाशबद्ध होकर समुद्र जल में स्थित होने पर उनके चञ्चल अङ्गों से ताड़ित हुई पृथ्वी हिलने लगी। तथा पत्थरों के आघात से युक्त शरीरवाले भी जिन्होंने मृत्यु प्राप्त नहीं किया, इस प्रकार आपने जिस बुद्धिमान् के अत्यन्त माहात्म्य कहे। हे मुने! जिन महातेजस्वी महात्मा का यह चरित्र है, उन श्रीविष्णुभक्त का अतुल प्रभाव सुनने की इच्छा करता हूँ। हे मुने! क्या कारण था कि वह असुरों द्वारा अस्त्र से ताड़ित हुआ, और क्या कारण था कि वह धर्मात्मा समुद्र के जल में गिराया गया। उन्हें किसलिए पर्वतों से आक्रान्त किया गया, किस कारण से सर्पों से डसाया गया, किस कारण से पर्वत शिखर से गिराया गया, किस कारण से अग्नि में जलाया गया, और महासुरों ने किस कारण उन्हें दिग्गजों की दन्तभूमि में फेंका, तथा क्यों सर्वशोषक वायु को उनके लिए नियुक्त किया। हे मुने! किस कारण से दैत्यगुरुओं ने प्रह्लाद के ऊपर कृत्या का प्रयोग किया तथा किस कारण से शम्बरासुर ने उनके ऊपर सहस्रों मायाओं का प्रयोग किया? ॥ १-९ ॥

हालाहलं विषमहो दैत्यसूदैर्महात्मनः।
कस्माद् दत्त विनाशाय यद् जीर्ण तेन धीमता॥ १०॥

एतत् सर्व्वं महाभाग प्रह्लादस्य महात्मनः।
चरितं श्रोतुमिच्छामि महामाहात्म्यसूचकम्॥ ११॥

न हि कौतूहलं तत्र यद् दैत्येर्न हतो हि सः।
अनन्यमनसो विष्णौ कः शक्नोति निपातने॥ १२॥

तस्मिन् धर्म्मपरे नित्यं केशवाराधानोद्यते।
स्ववंशप्रभवैर्दैत्यैः कर्त्तुं द्वेषोऽतिदुष्करः॥ १३॥

धर्म्मात्मनि महाभागे विष्णुभक्ते विमत्सरे ।
दैतेयैः प्रहृतं यस्मात् तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ १४ ॥

प्रहरन्ति महात्मानो विपक्षा अपि नेदृशे ।
गुणैः समन्विते साधौ किं पुनर्यः स्वपक्षजः ॥ १५ ॥

तदेतत् कथ्यतां सर्व्वं विस्तरान्मुनिसत्तम ।
दैत्येश्वरस्य चरितं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ १६ ॥

दैत्य के रसोइयों ने उन महात्मा प्रह्लाद के विनाश के लिए हालाहल विषप्रदान क्यो किया, जिसे उन बुद्धिमानने स्वयं पचा लिया । हे महाभाग ! महात्मा प्रह्लाद के माहात्म्यसूचक सभी चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ । यदि दैत्यों से प्रह्लादजी मारे नहीं गये तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ! क्योंकि भगवान् श्रीविष्णु में अनन्य मनवाले को मारने में कौन समर्थ हो सकता है ? सदा धर्मपरायण और केशव भगवान् के आराधना में तत्पर प्रह्लादजी से अपने वंश में उत्पन्न दैत्यों ने ही द्वेष किया यही आश्चर्य है । धर्मात्मा महाभाग मत्सरहीन और विष्णुभक्त प्रह्लाद जी के ऊपर दैत्यों ने क्यों प्रहार किया, वह आप मुझे कहिये । महात्मागण तो ऐसे विपक्षी होने पर भी प्रहार नहीं करते, पुनः गुणवान् एवं साधु स्वपक्षी के ऊपर क्यों प्रहार किया गया ? हे मुनिपुङ्गव ! ये सारी बातें विस्तार से हमें कहिये । दैत्येश्वर प्रह्लादजी का पूरा चरित्र सुनना चाहता हूँ ॥ १०-१६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में सोलहवां अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - सतरहवाँ अध्याय

प्रह्लाद-चरित

मैत्रेय श्रूयतां सम्यक् चरितं तस्य धीमतः ।
प्रह्लादस्य सदोदारचरितस्य महात्मनः ॥ १ ॥

दितेः पुत्रो महावीर्य्यो हिरण्यकशिपुः पुरा ।
त्रैलोक्य वशमानिन्ये ब्रह्मणो वरदर्पितः ॥ २ ॥

इन्द्रत्वमकरोद् दैत्यः स चासीत् सविता स्वयम् ।
वायुरग्निरपां नाथः सोमश्चाभून्महासुरः ॥ ३ ॥

धनानामधिपः सोऽभूत् स एवासीत् स्वयं यमः ।
यज्ञभागानशेषांस्तु स स्वयं बुभुजेऽसुरः ॥ ४ ॥

देवाः स्वर्गं परित्यज्य तत्त्रसान्मुनिसत्तम ।
विचेरुरवनौ सर्व्वं बिभ्राणा मानुषीं तनुम् ॥ ५ ॥

जित्वा त्रिभुवनं सर्व्वं त्रैलोक्यैश्वर्य्यदर्पितः ।
उपगीयामानो गन्धर्वैर्बुभुजे विषयान् प्रियान् ॥ ६ ॥

पानासक्तं महात्मानं हिरण्यकशिपु तदा ।
उपासाञ्चकिरे सर्व्वे सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ॥ ७ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! सदा उदारचरित बुद्धिमान् महात्मा उन प्रह्लाद जी का चरित सुनो । प्राचीन काल में दिति के पुत्र महाबली हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजी से प्राप्त वर से गर्वित होकर त्रिलोकी को वश में कर लिया था । वह दैत्य इन्द्र-पद का भोग करता था, तथा वह महासुर स्वयं सूर्य, वायु, अग्नि, वरुण और चन्द्रमा भी बन गया था । वह स्वयं कुबेर और यम भी था, तथा स्वयमेव समस्त

यज्ञों के भाग को भी उपभोग करता था । अतएव हे मुनिश्रेष्ठ ! उसके भय से देवगण स्वर्ग को त्यागकर मानव शरीर धारण करके पृथ्वी पर विचरण करते थे । इस प्रकार से तीनों लोकों को जीतकर त्रिलोक के ऐश्वर्य से गर्वित एवं गन्धर्वों द्वारा स्तुति किया जाता वह दैत्य अपने प्रिय विषयों का भोग करता था । उस समय मद्यपान में आसक्त उस महात्मा हिरण्यकशिपु की सभी सिद्ध, गन्धर्व एवं दानव उपासना करते थे ॥ १-७ ॥

अवादयञ्जगुश्चान्ये जयशब्दानथापरे ।
दैत्यराजस्य पुरतश्चक्रुः सिद्धा मुदान्विताः ॥ ८ ॥

तत्र प्रनृत्याप्सरसि स्फटिकाभ्रमयेऽसुरः ।
पपौ पानं मुदा युक्तः प्रासादे सुमनोहरे ॥ ९ ॥

तस्य पुत्रो महाभागः प्रह्लादो नाम नामतः ।
पपाठ बालपाठ्यानि गुरुगेहे गतोऽर्भकः ॥ १० ॥

एकदा तु स धर्म्मात्मा जगाम गुरुणा सह ।
पानासक्तस्य पुरतः पितुर्दैत्यपतेस्तदा ॥ ११ ॥

पादप्रणामावनतं तमुत्थाप्य पिता सुतम् ।
हिरण्यकशिपुः प्राह प्रह्लादममितौजसम् ॥ १२ ॥

पठ्यतां भवता वत्स ! सारभूतं सुभाषितम् ।
कालेनैतावता यत् ते सदोद्युक्तेन शिक्षितम् ॥ १३ ॥

श्रूयतां तात ! वक्ष्यामि सारभूतं तवाज्ञया ।
समाहितमना भूत्वा यन्मे चेतस्यवस्थितम् ॥ १४ ॥

अनादिमध्यान्तमजमवृद्धिक्षयमच्युतम् ।
प्रणतोऽस्मि महात्मानं सर्व्वकारणकारणम् ॥ १५ ॥

एवं निशम्य दैत्येन्द्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ।
विलोक्य तद्गुरुं प्राह स्फुरिताधरपल्लवः ॥ १६ ॥

उस दैत्यराज हिरण्यकशिपु के आगे कोई सिद्ध आनन्द पूर्वक गान करते थे और कोई उसका जयजयकार करते थे। अप्सराओं के नृत्य से युक्त स्फटिक एवं अभ्रशिलावाले मनोहर महल में वह दैत्यराज आनन्दपूर्वक मद्यपान करता था। उसका महाभाग्यवान् प्रह्लाद नामक पुत्र था, जो गुरु के घर में बालकों के पाठ्यको पढ़ता था। एक दिन वह धर्मात्मा प्रह्लाद गुरु के साथ मद्य पान में आसक्त अपने पिता दैत्यपति हिरण्यकशिपु के समीप गया। अपने चरणों में प्रणाम के लिए नम्र उस परमतेजस्वी बालक प्रह्लाद को उठाकर हिरण्यकशिपु ने कहा। हे वत्स! इतने समय तक सदा उद्यत रहकर तुमने जो शिक्षा पायी है, उस सारभूत सुन्दर सुभाषित को पढ़ो। प्रह्लाद बोला—हे तात! मेरे मन में जो सारभूत स्थित है, वह आपकी आज्ञा से कहता हूँ; सावधान मन से आप सुनिये। आदि, मध्य और अन्त से रहित, अजन्मा एवं वृद्धिक्षय से भी रहित जो अच्युत भगवान् हैं, उन सभी कारणों के कारण और इस जगत् के उत्पन्न तथा विनाश करने वाले हैं उनके प्रति मैं प्रणत हूं (नमस्कार करता हूँ)। श्रीपराशरजी बोले—यह सुनकर क्रोध के साथ लालनेत्र एवं काँपते हुए होठों से दैत्यराज हिरण्यकशिपुने उसके गुरु को देखकर कहा॥ ८-१६॥

ब्रह्मबन्धो! किमेतत् ते विपक्षस्तुतिसंहितम्।
असारं ग्राहितो बालो मामवज्ञाय दुर्मते!॥ १७॥

दैत्येश्वर! न कोपस्य वशमागन्तुमर्हसि।
ममोपदेशजनितं नायं वदति ते सुतः॥ १८॥

अनुशास्तोसि केनेदृग् वत्स! प्रह्लाद कथ्यताम्।
ममोपदिष्टं नेत्येष प्रब्रवीति गुरुस्तव॥ १९॥

शास्ता विष्णुरशेषस्य जगतो यो हृदि स्थितः।
तमृते परमात्मानं तात! कः केन शास्यते॥ २०॥

कोऽय विष्णुः सुदुर्बुद्धे! यं ब्रवीषि पुनः पुनः।
जगतामीश्वरस्येह पुरतः प्रसभं मम॥ २१॥

न शब्दगोचरे यस्य योगिध्येयं परं पदम्।
यतो यश्च स्वयं विश्वं स विष्णुः परमेश्वरः॥ २२॥

परमेश्वरसंज्ञोऽज्ञ ! किमन्यो मय्यवस्थिते।

तवास्ति मर्त्तुकामस्त्वं प्रब्रवीषि पुनः पुनः ॥ २३॥

न केवलं तात ! मम प्रजानां स ब्रह्मभूतो भवतशच विष्णुः।

धाता विधाता परमेश्वरश्च प्रसीद कोपं कुरुषे किमर्थम् ॥२४॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे दुर्बुद्धि नीच ब्राह्मण ! मेरा अपमानकर तुमने यह क्या किया ? मेरे विरोधियों की स्तुति से युक्त निःसार शिक्षा दी है। गुरु बोले—हे दैत्यराज ! आप क्रोध के वशीभूत न होइये, आपका यह पुत्र मेरे उपदेश की बात नहीं कहता। हिरण्यकशिपुने कहा—हे वत्स प्रह्लाद ! तुमको इस प्रकार का उपदेश किसने दिया है यह कहो, क्योंकि तुम्हारे गुरु मैंने ऐसा उपदेश नहीं दिया है ऐसा कहते हैं। प्रह्लाद बोला—जो भगवान् श्रीविष्णु मेरे हृदय में विराजमान हैं, वही समस्त जगत् के शासन करने वाले हैं; उस परमात्मा को छोड़कर हे पिताजी ! कौन किससे शासित होता है ? । हिरण्यकशिपु ने कहा—अरे दुर्बुद्धि ! वह विष्णु कौन है ? जिसे तुम जगदीश्वर बारम्बार कहते हो ? । प्रह्लाद बोला—योगियों के द्वारा ध्यान करने योग्य जिनका परमपद शब्द का विषय नहीं है, और जिससे विश्व उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं विश्वरूप है, वही परमेश्वर श्रीविष्णु है । हिरण्यकशिपु बोला—अरे अज्ञ ! मेरे रहते परमेश्वर नाम का दूसरा व्यक्ति कौन है, तथापि मृत्यु की इच्छावाले तुम बार बार ऐसा कहते हो ? । प्रह्लाद जी बोले—हे तात ! वह ब्रह्मस्वरूप श्रीविष्णु केवल मेरे ही नहीं, किन्तु समस्त प्रजाजनों के तथा आपके भी उत्पादक, पालक एवं परमेश्वर है, आप प्रसन्न होइये, व्यर्थ क्रोध क्यों करते हैं।। १७-२४ ॥

प्रविष्टः कोऽस्य हृदये दुर्बुद्धेरतिपापकृत्।

येनेदृशान्यसाधूनि वदत्याविष्टमानसः ॥ २५ ॥

न केवलं मद्हृदयं स विष्णु—राक्रम्य लोकान् सकलानवस्थितः।

स मां त्वदादींश्च पितः ! समस्तान् समस्तचेष्टासु युनक्ति सर्वगः ॥ २६ ॥

निष्काम्यतामयं दुष्टः शास्यताञ्च गुरोर्गृहे।

योजितो दुर्म्मतिः केन विपक्षवितथस्तुतौ ॥ २७ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—अरे ! इस दुर्बुद्धि के मन में कौन पापी प्रवेश कर गया है, जिससे आविष्ट होकर इस प्रकार के अयोग्य वचन बोलता है ? । प्रह्लाद

बोला—हे पिताजी ! वह भगवान् श्रीविष्णु केवल मेरे हृदय में ही नहीं किन्तु समस्त लोकों में स्थित हैं। सर्वव्यापी वही मुझे आपलोगों को और सभी प्राणियों को समस्त चेष्टाओं में नियुक्त करते हैं। हिरण्यकशिपु बोला—इस पापी को निकालो और गुरु गृह में इसका शासन करो; न मालूम किसके द्वारा यह दुर्बुद्धि मेरे विरोधी की स्तुति में नियुक्त किया गया है ॥ २५-२७ ॥

इत्युक्तोऽसौ तदा दैत्यैर्नीतो गुरुगृहं पुनः ।
जग्राह विद्यामनिशं गुरुशुश्रूषणोद्यतः ॥ २८ ॥

कालेऽतीते च महति प्रह्लादमसुरेश्वरः ।
समाहूयाब्रवीत् पुत्र ! गाथा काचित् प्रगीयताम् ॥ २९ ॥

यतः प्रधानपुरुषौ यतश्चैतच्चराचरम् ।
कारणं सकलस्यास्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥ ३० ॥

श्रीपराशर जी बोले—ऐसा कहे जाने पर दैत्यों द्वारा वह पुनः गुरुगृह में ले जाया गया और दिनरात गुरु की सेवा में तत्पर होकर विद्या अध्ययन करने लगा। बहुत समय बीत जाने पर दैत्यराज हिरण्यकशिपुने प्रह्लाद को बुलाकर हे पुत्र ! कोई कथा कहो, ऐसा कहा। प्रह्लाद बोला—जिससे प्रधान और पुरुष एवं चराचर समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है, वे श्रीविष्णु भगवान् हम सभी पर प्रसन्न हों ॥ २८-३० ॥

दुरात्मा वध्यतामेष नानेनार्थोऽस्ति जीवता ।
स्वपक्षहानिकर्त्तृत्वाद् यः कुलाङ्गारतां गतः ॥ ३१ ॥

इत्याज्ञप्तास्ततस्तेन प्रगृहीतमहायुधाः ।
उद्यतास्तस्य नाशाय दैत्याः शतसहस्रशः ॥ ३२ ॥

विष्णुः शस्त्रेषु युष्माकं मयि चासौ यथा स्थितः ।
दैतेयास्तेन सत्येन मा क्रामन्त्वायुधानि मे ॥ ३३ ॥

ततस्तैः शतशो दैत्यैः शस्त्रौघैराहतोऽपि सन् ।
नावाप वेदनामल्पामभूच्चैव पुनर्नवः ॥ ३४ ॥

दुर्बुद्धे ! विनिवर्त्तस्व वैरिपक्षस्तवादतः ।
अभयं ते प्रयच्छामि मातिमूढमतिर्भव ॥ ३५ ॥

भयं भयानामपहारिणि स्थिते मनस्यनन्ते मम कुत्र तिष्ठति ।

यस्मिन् स्मृते जन्मजरान्तकादि—भयानि सर्व्वाण्यपयान्ति तात ॥ ३६ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—इस दुरात्मा का वध कर दो, इसके जीवित रहने से कोई प्रयोजन नहीं, अपने पक्ष की हानि करने के कारण यह कुल के लिए अङ्गार उत्पन्न हुआ है । श्रीपराशर जी बोले—उस दैत्यराज के इस प्रकार आदेश होने पर सैकड़ों हजारों दैत्य बड़े बड़े शस्त्र लेकर उस प्रह्लादको मारने के लिए तैयार हो गये । प्रह्लाद बोला—हे दैत्यो ! भगवान् श्रीविष्णु शस्त्रों में, आपलोगों में तथा मेरे में भी स्थित हैं, इसको सत्य मानकर मेरे ऊपर शस्त्रों का प्रहार न करें । श्रीपराशरजी बोले—तब सैकड़ों दैत्यों द्वारा शस्त्र समूह से आघात होने पर भी प्रह्लाद को थोड़ी भी वेदना नहीं हुई, किन्तु वह प्रसन्नमन हो रहा । हिरण्यकशिपु बोला—अरे दुर्बुद्धि ! अभी भी शत्रु पक्ष की स्तुति करना छोड़ दो, तुझे अभयदान देता हूँ, अब ज्यादा मूर्ख न बनो । प्रह्लाद बोला—हे तात ! जिनके स्मरण करने पर जन्म मरण आदि के सभी भय समाप्त हो जाते हैं, उन समस्त भय को दूर करने वाले अनन्त भगवान् के मन में विराजमान रहने पर मुझे भय कहाँ से रह सकता है ॥ ३१-३६ ॥

भा भोः सर्वा ! दुराचारमेनमत्यन्तदुर्मतिम् ।

विषज्वालाकुलैर्व्वक्त्रैः सद्यो नयत संक्षयम् ॥ ३७ ॥

इत्युक्तास्तेन ते सर्पाः कुहकास्तक्षकान्धकाः ।

अदशन्त समस्तेषु गात्रेष्वतिविषोल्वणाः ॥ ३८ ॥

हिरण्यकशिपु बोले—हे सर्पगण ! इस अत्यन्त दुर्बुद्धि एवं दुराचारी को विषज्वाला से युक्त अपने मुखों से शीघ्र नष्ट कर दो । श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहे जाने पर अत्यन्त विष युक्त कुहक, तक्षक, अन्धक आदि सर्पगण उसके सर्वाङ्ग में काटने लगे ॥ ३७-३८ ॥

स त्वासक्तमतिः कृष्णे दश्यमानो महोरगैः ।

न विवेदात्मनो गात्रं तत्स्मृत्याह्लादसंस्थितः ॥ ३९ ॥

दंष्ट्रा विशीर्णा मणयः स्फुटन्ति फणेषु तापो हृदयेषु कम्पः ।

नास्य त्वचः स्वल्पमपीह भिन्नं प्रशाधि दैत्येश्वर ! कार्य्यमन्यत् ॥४० ॥

हे दिग्गजाः ! सङ्कटदन्तमिश्रा ! घ्नतैनमस्मद्रिपुपक्षभिन्नम् ।
तज्जा विनाशाय भवन्ति तस्य यथारणेः प्रज्वलितो हुताशः ।४१ ।

ततः स दिग्गजैर्बालो भूभृच्छिखरसन्निभैः ।
पातितो धरणीपृष्ठे विषाणैरवपीड़ितः ॥ ४२ ॥

स्मरतस्तस्य गोविन्दमिभदन्ताः सहस्रशः ।
शीर्णा वक्षःस्थलं प्राप्य स प्राह पितरं ततः ॥ ४३ ॥

दन्ता गजानां कुलिशाग्रनिष्ठुराः शीर्णा यदेते न बलं ममैतत् ।
महाविपत्पापविनाशनोऽयं जनार्दनानुस्मरणानुभावः ॥ ४४ ॥

किन्तु श्रीकृष्ण में आसक्त मनवाला वह प्रह्लाद महासर्पों से काटे जाने पर भी भगवान् के स्मरणरूपी आनन्द में स्थिर होने के कारण अपने शरीर की सुधि नहीं भुलायी । सर्पगण बोले—हे दैत्यराज ! हमलोगों की दाँते टूट गयी मणियाँ फूट रही हैं, फणाओं में सन्ताप और हृदय में कम्पन्न हो रहा है; किन्तु इसकी त्वचा कुछ भी नहीं कटी । अतएव अब आप हमलोगों को कोई दूसरा ही कार्य बताइये । हिरण्यकशिपु बोला—हे दिग्गजों ! तुम सब अपने संकीर्ण दातों को मिलाकर हमारे शत्रुपक्ष द्वारा बहकाये गये प्रह्लाद को मार दो; जैसे अरणि से उत्पन्न अग्नि अरणिको भी जला देता है, उसी प्रकार कोई जिससे उत्पन्न होता है उसी को विनाश कर देता है । श्रीपराशरजी बोले—तब पर्वतशिखर के समान दिग्गजों द्वारा वह बालक पृथ्वी पर पटक कर दांतों से पीड़ित किया गया । किन्तु श्रीगोविन्द भगवान् को स्मरण करते हुए उसके वक्षः स्थल में लगकर उन दिग्गजों के हजारों दाँत चकना चूर हो गये, उसके बाद वह अपने पिता से बोला । वज्र के समान कठोर हाथियों के दाँत जो (मेरी छाती से टकराकर) टूट गये, यह मेरा प्रभाव नहीं है, किन्तु महाविपत्ति और ताप को विनाश करने वाले श्रीजनार्दन भगवान् के स्मरण का ही यह प्रभाव है ॥३९-४४ ॥

ज्वाल्यतामसुरा ! वह्निरपसर्पत दिग्गजाः ।
वायो समेधयाग्निं त्वं दह्यतामेष पापकृत् ॥ ४५ ॥

महाकाष्ठचयच्छन्नमसुरेन्द्रसुतं ततः ।
प्रज्वाल्य दानवा वह्निं ददहुः स्वामिनोदिताः ॥ ४६ ॥

तातैष वह्निः पवनेरितोऽपि न मां दहत्यत्र समन्ततोऽहम् ।

पश्यामि पद्मास्तरणास्तृतानि शीतानि सर्व्वाणि दिशां मुखानि ॥ ४७ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—दिग्गजो ! तुम हट जाओ, दैत्यगण ! अग्नि जलाओ, हे वायु ! तुम अग्नि को प्रज्वलित करो और इस पापी को जला डालो । श्रीपराशरजी बोले—तब अपने स्वामी से प्रेरित दानवों ने उस दैत्यराज के पुत्र प्रह्लाद को एक विशाल काष्ठ के ढेर में बैठाकर अग्नि प्रज्वलित करके जलाने लगे । प्रह्लाद बोला—हे पिताजी ! वायु से प्रज्वलित यह अग्नि भी मुझे नहीं जलासकता है, किन्तु मैं समस्त दिशाओं को कमल के बिछौने के समान शीतल देख रहा हूँ ॥ ४५-४७ ॥

अथ दैत्येश्वरं प्रोचुर्भार्गवस्यात्मजा द्विजाः ।
पुरोहिता महात्मानः साम्ना संस्तूय वाग्मिनः ॥ ४८ ॥

राजन् ! नियम्यतां कोपो बालेऽत्र तनयेऽनुजे ।
कोपो देवनिकायेषु यत्र ते सफलो यतः ॥ ४९ ॥

तथा तथैनं बालं ते शासितारो वयं नृप ।
यथा विपक्षनाशाय विनीतस्ते भविष्यति ॥ ५० ॥

बालत्वं सर्व्वदोषाणां दैत्यराजास्पदं यतः ।
ततोऽत्र कोपमत्यर्थं योक्तुमर्हसि नार्भके ॥ ५१ ॥

न त्यक्ष्यति हरेः पक्षमस्माकं वचनाद् यदि ।
ततः कृत्यां वधायास्य करिष्यामो निवर्त्तिनीम् ॥ ५२ ॥

एवमभ्यर्थितस्तैस्तु दैत्यराजः पुरोहितैः ।
दैत्यैर्निष्काशयामास पुत्रं पावकसञ्चयात् ॥ ५३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—तब शुक्राचार्य के पुत्र वाग्मी महात्मा पुरोहितगण शान्तिपूर्वक दैत्यराज की स्तुति करके बोले । पुरोहित बोले—हे राजन् ! अपने बालक पुत्र पर किये गये क्रोध को शान्त कीजिये, आप अपना क्रोध देवगण पर ही करें, क्योंकि वह वहीं पर सफल होता है । और हे राजन् ! हम लोग भी आपके इस बालक को उसी प्रकार के उपदेश देंगे, जिससे शत्रुपक्ष के विनाश के लिये होकर

आपके प्रति विनम्र हो जायगा। हे दैत्यराज ! बचपन सभी दोषों का आश्रय है, अतएव इस बालक के ऊपर ज्यादा क्रोध करना उचित नहीं। और यदि हम लोगों के वचन से भगवान् के पक्ष का परित्याग नहीं करेगा, तब किसी भी प्रकार न लौटानेवाली न इसके वध के लिए कृत्या का प्रयोग करूंगा। श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार उन पुरोहितों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर दैत्यराज हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र को दैत्यों के द्वारा अग्नि से निकलवा दिया ॥ ४८-५३ ॥

ततो गुरुगृहे बालः स वसन् बालदानवान्।
अध्यापयामास मुहुरुपदेशान्तरे गुरोः ॥ ५४ ॥

श्रूयतां परमार्थो मे दैतेया दितिजात्मजाः।
न चान्यथैतन्मन्तव्यं नात्र लोभादिकारणम् ॥ ५५ ॥

पुनः गुरु के घर में निवास करता हुआ वह बालक प्रह्लाद गुरु के उपदेश के बाद दैत्यों के बालकों को उपदेश देने लगा। प्रह्लाद बोला—हे दैत्यवंश में उत्पन्न बालको ! मेरे परमार्थ वचन सुनो, इसमें दूसरी बात नहीं मांनना और इसमें लोभ आदि कोई कारण नहीं ॥ ५४-५५ ॥

जन्म बाल्यं ततः सर्वो जन्तुः प्राप्नोति यौवनम्।
अव्याहतैव भवति ततोऽनुदिवसं जरा ॥ ५६ ॥

ततश्च मृत्युमभ्येति जन्तुर्दैत्येश्वरात्मजाः।
प्रत्यक्षं दृश्यते चैतदस्माकं भवतां तथा ॥ ५७ ॥

मृतस्य च पुनर्जन्म भवत्येतच्च नान्यथा।
आगमोऽयं तथा तत्र नोपादानं विनोद्भवः ॥ ५८ ॥

गर्भवासादि यावत् तु पुनर्जन्मोपपादनम्।
समस्तावस्थकं तावद् दुःखमेवावगम्यताम् ॥ ५९ ॥

क्षुत्तृष्णोपशमं तद्वच्छीताद्यु पशमं सुखम्।
मन्यते बालबुद्धित्वाद् दुःखमेव हि तत् पुनः ॥ ६० ॥

अत्यन्तस्तिमिताङ्गानां व्यायामेन सुखेषिणाम्।
भ्रान्तिज्ञानावृताक्षाणां प्रहारोऽपि सुखायते ॥ ६१ ॥

क्व शरीरमशेषाणां श्लेष्मादीनां महाचयः ।
क्व कान्ति शोभा-सौरभ्य- कमनीयादयो गुणाः ॥ ६२ ॥

सभी प्राणी जन्म, बचपन इसके बाद युवावस्था को प्राप्त करते हैं इसके बाद दिन प्रतिदिन निश्चित रूप से बिना रुकावट के बुढ़ापा होती है । हे दैत्य राजकुमारो ! इसके बाद प्राणी मृत्यु को प्राप्त करता है, इस विषय को प्रत्यक्ष रूप से हम और तुम सब भी देखते हैं । और मृत्यु के बाद पुनः जीवात्मा दूसरे शरीर में जन्म लेता है, इसमें अन्यथा नहीं हो सकता—ऐसा आगम (श्रुतिस्मृति) का भी प्रमाण है कि बिना उपादान कारण के कार्य नहीं होता है । पुनर्जन्म को प्राप्त कराने वाला गर्भवास आदि सभी अवस्थाओं को दुःख ही समझना चाहिए । फिर भी क्षुधा, तृष्णा और शीत आदि की शान्ति को ही मनुष्य अपनी मूर्खतावश सुख मानता है, किन्तु वास्तव में वह दुःख ही है । सुख की इच्छावाले अत्यन्त शिथिलाङ्ग मानव जैसे व्यायाम को ही सुख मानते हैं, उसी प्रकार भ्रान्तिज्ञान से ढँकी हुई नेत्रवाले मनुष्य दुःख को ही सुख मानते हैं । कहाँ तो कफ आदि पदार्थों का महासमूह यह शरीर और कहाँ कान्ति, शोभा, सौन्दर्य आदि गुण; अतएव इन कान्ति आदि गुणों को देख कर मनुष्य अपने को सुखी मानता है ॥ ५६-६२ ॥

मांसाऽसृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जाऽस्थिरसंहतौ ।
देहे चेत् प्रीतिमान् मूढ़ो नरके भवितापि सः ॥ ६३ ॥

अग्नेः शीतेन तोयस्य तृषा भक्तस्य च क्षुधा ।
क्रियते सुखकर्त्तृत्वं तद् विलोमस्य चेतरैः ॥ ६४ ॥

करोति हे दैत्यसुता ! यावन्मात्रं परिग्रहम् ।
तावन्मात्रं स एवास्य दुःखं चेतसि यच्छति ॥ ६५ ॥

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान् मनसः प्रियान् ।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः ॥ ६६ ॥

यद् यद् गृहे तन्मनसि यत्र तत्रावतिष्ठतः ।
नाशदाहापहरणं तत्र तस्यैव तिष्ठति ॥ ६७ ॥

जन्मन्यत्र महद् दुःखं म्रियमाणस्य चापि तत्।
यातनासु यमस्योग्रं गर्भसंक्रमणेषु च ॥ ६८ ॥

गर्भे च सुखलेशोऽपि भवद्भिरनुमीयते।
यदि तत् कथ्यतामेवं सर्वं दुःखमयं जगत् ॥ ६९ ॥

तदेवमतिदुःखानामास्पदेऽत्र भवार्णवे।
भवतां कथ्यते सत्यं विष्णुरेकः परायणम् ॥ ७० ॥

मांस, रक्त, पीव, विष्ठा, मूत्र, स्नायु मज्जा और अस्थि समूह रूपी शरीर से यदि मनुष्य प्रेम करता है, तो उसे नरक में भी प्रेम हो सकता है। शीत के कारण अग्नि, प्यास से जल, भूख से भात सुखदायक होता है और इनके प्रतियोगी जल आदि भी अपने से दूसरे अग्नि आदि के कारण से ही सुखदायक होते हैं। हे दैत्यपुत्रों ! जितना अधिक विषयों का संग्रह किया जाता है, उतना ही अधिक वे बढ़े हुए विषय मनुष्य के मन में दुःख प्रदान करते हैं। तथा प्राणी मनको प्रिय लगने वाले जितने अधिक सम्बन्धों को बढ़ाता है, उतने ही अधिक उसके हृदय में शोक के काँटे घुसते हैं। जो जो वस्तु घर में रहती यह सभी वस्तु मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके मन में रहती है और उसके विनाश एवं दाह की सामग्री भी वहीं रहती है। इस प्रकार इस जन्म में महादुःख और मरने के बाद भी यम की पीड़ा में और गर्भप्रवेश में भी अत्यन्त दुःख होता है। यदि आपलोग गर्भ में सुख के लेशमात्र का भी अनुमान करते हैं तो कहिए ! अन्यथा यह सारा संसार दुःखमय ही है। इस प्रकार अत्यन्त दुःख के आश्रय इस संसार सागर में आपलोगों के लिये भगवान् श्रीविष्णु ही एक परम गति है, यह मैं सत्य कहता हूं ॥ ६३-७० ॥

मा जानीत वयं बाला देही देहेषु शाश्वतः।
जरा-यौवन-जन्माद्या धर्म्मा देहस्य नात्मनः ॥ ७१ ॥

बालोऽहं तावदिच्छातो यतिष्ये श्रेयसे युवा।
युवाहं वार्द्धके प्राप्ते करिष्याम्यात्मनो हितम् ॥ ७२ ॥

वृद्धोऽहं मम कर्म्माणि समस्तानि न गोचरे।
किं करिष्यामि मन्दात्मा समर्थेन न यत् कृतम् ॥ ७३ ॥

एवं दुराशयाक्षिप्तमानसः पुरुषः सदा।
श्रेयसोऽभिमुखं याति न कदाचित् पिपासितः ॥ ७४ ॥

बाल्ये क्रीड़नकासक्ता यौवने विषयोन्मुखाः।
अज्ञा नयन्त्यशक्तया च वार्द्धकं समुपस्थितम् ॥ ७५ ॥

तस्माद् बाल्ये विवेकात्मा यतेत श्रेयसे सदा।
बाल्य-यौवन-वृद्धाद्यैर्देहभावैरसंयुतः ॥ ७६ ॥

यह नहीं समझे कि हम लोग बालक हैं, क्योंकि बुढ़ापा, जवानी और जन्म तो देहका ही धर्म है, आत्मा के धर्म नहीं। आत्मा तो शरीर में नित्य रूप से स्थित रहता है। अभी मैं बालक हूँ, अत एव क्रीड़ा में लीन रहूँ; युवा होने पर कल्याण का साधन करूँगा। अभी मैं युवा हूँ, वृद्ध होने पर अब मैं वृद्ध हो गया, इन्द्रियाँ शिथिल हो गयीं, कोई कार्य मेरे दृष्टिगोचर नहीं होता, क्या करूं, समर्थ रहते कुछ भी नहीं कर सका, इस प्रकार दुराशा से सदा व्याकुल मनवाला पुरुष कभी भी कल्याण मार्ग में अग्रसर नहीं होता। अज्ञानी जीव बाल्यावस्था में क्रीड़ा में आसक्त रहता है, युवावस्था में विषय में लगा रहता है, और वृद्धावस्था को असमर्थता में व्यातीत करते हैं। अतएव बाल्य, यौवन, वृद्धावस्था की अपेक्षा को परित्याग करके विचारवान् पुरुष बाल्यावस्था में ही अपने कल्याण का प्रयत्न करे ॥ ७१-७६ ॥

तदेतद् वो मयाख्यातं यदि जानीत नानृतम्।
तदस्मत्प्रीतये विष्णुः स्मर्य्यतां बन्धमुक्तिदः ॥ ७७ ॥

आयासः स्मरणे कोऽस्य स्मृतो यच्छति शोभनम्
पापक्षयश्च भवति स्मरतां तमहर्निशम् ॥ ७८ ॥

सर्व्वभूतस्थिते तस्मिन् मतिर्मैत्री दिवानिशम्।
भवतां जायतामेवं सर्वक्लेशान् प्रहास्यथ ॥ ७९ ॥

तापत्रयेणाभिहतं यदेतदखिलं जगत्।
तदा शोच्येषु भूतेषु द्वेषं प्राज्ञः करोति कः ॥ ८० ॥

अथ भद्राणि भूतानि हीनशक्तिरहं परम्।
मुदं तथापि कुर्व्वीत हानिर्द्वेषफलं यतः ॥ ८१ ॥

बद्धवैराणि भूतानि द्वेषं कुर्व्वन्ति चेत् ततः ।
शोच्यान्यहोऽतिमोहेन व्याप्तानीति मनीषिणा ॥ ८२ ॥

इस प्रकार मैंने तुमलोगों को जो कुछ भी कहा उसे असत्य मत समझो और मेरी प्रसन्नता के लिए बन्धन से मुक्त करने वाले श्रीविष्णु भगवान् का स्मरण करो । और विष्णु भगवान् के स्मरण में कोई परिश्रम भी नहीं है, केवल स्मरणमात्र से ही वह शुभ फल प्रदान करते हैं और दिन रात स्मरण करने वाले पुरुष के पाप का नाश भी होता है । सभी प्राणियों में विराजमान श्रीविष्णु भगवान् में दिन रात तुम लोगों का प्रेम हो, इस प्रकार तुम लोगों का समस्त क्लेश नाश भी होगा । जब यह समस्त जगत् तीनों ताप (आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक) से व्याप्त है तो शोचनीय इन सांसारिक प्राणियों के साथ कौन द्वेष करेगा । और यदि ऐसा समझ में आवे कि सभी जीव आनन्द में हैं, मैं ही केवल शक्तिहीन हूं; फिर भी प्रसन्न ही रहना चाहिए; क्योंकि द्वेष का फल तो हानि ही है । और यदि कोई प्राणी द्वेष भी करे तो बुद्धिमानों को चाहिए कि ये प्राणी अज्ञान से युक्त हैं, अतएव वे शोचनीय हैं, ऐसा ही विचार करे ॥ ७७-८२ ॥

एते भिन्नदृशा दैत्या विकल्पाः कथिता मया ।
कृत्वाभ्युपगमं तत्र संक्षेपः श्रूयतां मम ॥ ८३ ॥

विस्तारः सर्व्वभूतस्य विष्णोर्विश्वमिदं जगत् ।
द्रष्टव्यमात्मवत् तस्मादभेदेन विचक्षणैः ॥ ८४ ॥

समुत्सृज्यासुरं भावं तस्माद् यूयं तथा वयम् ।
तथा यत्नं करिष्यामो यथा प्राप्स्याम निर्वृतिम् ॥ ८५ ॥

या नाग्निना न वार्केण नेन्दुना नैव वायुना ।
पर्ज्जन्यवरुणाभ्यां वा न सिद्धैर्न च राक्षसैः ॥ ८६ ॥

न यक्षैर्न च दैत्येन्द्रैर्नोरगैर्न च किन्नरैः ।
न मनुष्यैर्न पशुभिर्दोषैर्नैवात्मसम्भवैः ॥ ८७ ॥

ज्वराक्षिरोगाऽतीसार-प्लीह-गुल्मादिकैस्तथा ।
द्वेषेर्ष्यामत्सराद्यैर्वा रागलोभादिभिः क्षयम् ॥ ८८ ॥

न चान्यैर्नीयते कैश्चिन्नित्या ह्यत्यन्तनिर्म्मला ।
तामाप्नोति मलं त्यक्तवा केशवे हृदि संस्थिते ॥ ८९ ॥
असारसंसारविवर्त्तनेषु मा यात तोषं प्रसभं ब्रवीमि ।
सर्व्वत्र दैत्याः समतामुपेत समत्वमाराधनमच्युतस्य ॥ ९० ॥
तस्मिन् प्रसन्ने किमिहास्त्यलभ्यं धर्म्मार्थकामैरलमल्पकास्ते ।
समाश्रिताद् ब्रह्मतरोरनन्तान्निसंशयं प्राप्स्यथ वै महत् फलम् ॥९१ ॥

हे दैत्यों ! मैंने यह विभिन्न दृष्टिवालों के लिये विभिन्न उपाय कहा, उसमें अब समन्वय पूर्वक संक्षेप भी सुनो । यह समस्त जगत् सर्वभूतमय भगवान् का ही विस्तार है, अतएव बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि समस्त प्राणियों को अपने समान देखें । अतएव मैं और आपलोग समस्त आसुरी भाव को परित्याग करके उस प्रकार के यत्न करें, जिससे शान्ति लाभ हो । जो सदा अत्यन्त निर्मल परम शान्ति है, उस आनन्द निर्मलस्वरूप श्रीकेशव भगवान् में मन लगा कर ही मनुष्य वह शान्ति प्राप्त करता है, जो अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ, वरुण, सिद्ध, राक्षस, यक्ष, दैत्येन्द्र, सर्प, किन्नर, मनुष्य, पशु से और अपने से उत्पन्न दोषों से अथवा ज्वर, नेत्ररोग,, अतिसार, तिल्ली, गुल्म, आदि रोगों से एवं द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर, राग, लोभ, तथा कोई अन्य भाव से भी वह क्षीण नहीं होती । हे दैत्यो ! तुमलोग इस असार संसार के विषयों से कभी भी सन्तुष्ट मत हो और सभी जगह समान दृष्टि रखो, क्योंकि समानता ही भगवान् अच्युत की परम आराधना है । और उन अच्युत भगवान् के प्रसन्न हो जाने पर इस संसार में अलभ्य क्या है ? धर्म, अर्थ, काम, ये तो व्यर्थ है इनकी तुमलोग कभी इच्छा न करना, क्योंकि उस अनन्त परम ब्रह्मस्वरूप वृक्ष को आश्रय लेने से निःसन्देह मोक्षरूपी महाफल को प्राप्त करोगे ॥ ८३-९१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में सतरहवाँ अध्याय समाप्त ।

अठारहवाँ अध्याय

(प्रह्लाद चरित्र)

तस्यैवं दानवाश्चेष्टां दृष्ट्वा दैत्यपतेर्भयात्।
आचचक्षुः स चोवाच सूदानाहूय सत्वरः ॥ १ ॥

हे सूदा मम पुत्रोऽसावन्येषामपि दुर्म्मतिः।
कुमार्गदेशको दुष्टो हन्यतामविलम्बितम् ॥ २ ॥

हालाहलं विषं तस्य सर्व्वभक्ष्येषु दीयताम्।
अविज्ञातमसौ पापो हन्यतां मा विचार्य्यताम् ॥ ३ ॥

ते तथैव ततश्चक्रुः प्रह्लादाय महात्मने।
विषदानं यथाज्ञप्तं पित्रा तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥

हालाहलं विषं घोरमन्तोच्चारणेन सः।
अभिमन्त्र्य सहान्नेन मैत्रेय बुभुजे तदा ॥ ५ ॥

अविकारं स तद् भुक्त्वा प्रह्लादः स्वस्थमानसः।
अनन्तख्यातिनिर्वीर्य्यं जरयामास तद्विषम् ॥ ६ ॥

ततस्तदा भयत्रस्ता जीर्णं दृष्ट्वा महद्विषम्।
दैत्येश्वरमुपागम्य प्रणिपत्येदमब्रुवन् ॥ ७ ॥

दैत्यराज ! विषं दत्तमस्माभिरतिभीषणम्।
जीर्णं तेन सहान्नेन प्रह्लादेन सुतेन ते ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—उस प्रह्लाद की ऐसी चेष्टा को देख कर दानवों ने दैत्यपति हिरण्यकशिपु के भय से सारा वृतान्त उससे कह दिया और हिरण्यकशिपु

ने भी अपने पाचकों को बुलाकर कहा। हिरण्यकशिपु बोला—हे पाचको ! यह मेरा दुर्बुद्धि पुत्र दूसरों को भी कुमार्ग का उपदेश देता है, अतएव इस दुष्ट को शीघ्र मार डालो। और उसके बिना जाने ही उसको भोज्य पदार्थों में हलाहल विष मिलाकर दो, विना विचारे इसको मार डालो। श्रीपराशर जी बोले—इसके बाद उन पाचकों ने महात्मा प्रह्लाद जी को राजा ने जैसी आज्ञा दी थी, उसी प्रकार विष प्रदान किया। हे मैत्रेयजी ! प्रह्लाद ने भी अनन्त भगवान् के उच्चारण से अभिमन्त्रित करके उस हलाहल विष को अन्न के साथ खा लिया। भगवन्नामोच्चारण से निर्वीर्य उस विष को खाकर स्वस्थ मनवाला प्रह्लाद ने उसे पचा भी लिया। इसके बाद उस महाविष को पचाये हुए देख कर भयभीत पाचकों ने दैत्यराज के समीप पहुंच कर प्रणाम पूर्वक कहा। पाचकों ने कहा—हे दैत्यराज ! हम लोगों ने अत्यन्त तेज विष दिया, किन्तु आपके पुत्र प्रह्लाद ने अन्न के साथ उसे भी पचा लिया ॥ १-८ ॥

त्वर्य्यतां त्वर्य्यतां हे हे सद्यो दैत्यपुरोहिताः।
कृत्यां तस्य विनाशाय उत्पादयत मा चिरात् ॥ ९ ॥

सकाशमागम्य ततः प्रह्लादस्य पुरोहिताः।
सामपूर्व्वमथोचस्ते प्रह्लादं विनयान्वितम् ॥ १० ॥

जातस्त्रैलोक्यविख्यात आयुष्मन् ! ब्रह्मणः कुले।
दैत्यराजस्य तनयो हिरण्यकशिपोर्भवान् ॥ ११ ॥

किं देवैः किमनन्तेन किमन्येन तवाश्रयः।
पिता ते सर्व्वलोकानां त्वं तथैव भविष्यसि ॥ १२ ॥

तस्मात् परित्यजैनां त्वं विपक्षस्तवसंहिताम्।
वाचं पिता समस्तानां गुरूणां परमो गुरुः ॥ १३ ॥

एवमेतन्महाभागाः ! श्लाघ्यमेतन्महाकुलम्।
मरीचेः सकलैऽप्यस्मिन् त्रैलोक्ये कोऽन्यथा वदेत् ॥ १४ ॥

पिता च मम सर्व्वस्मिन् जगत्युत्कृष्टचेष्टितः।
एतदप्यवगच्छामि सत्यमत्रापि नानृतम् ॥ १५ ॥

गुरूणामपि सर्व्वेषां पिता परमको गुरुः ।
यदुक्तं भ्रान्तिरत्रापि स्वल्पापि हि न विद्यते ॥ १६ ॥

पिता गुरुर्न सन्देहः पूजनीयः प्रयत्नतः ।
तत्रापि नापराध्यामीत्येवं मनसि मे स्थितम् ॥ १७ ॥

हिरण्यकशिपु बोला—हे पुरोहितो ! शीघ्रता कीजिये, उस प्रह्लाद के विनाश के लिए कृत्या उत्पन्न कीजिये, देर न कीजिये । श्रीपराशरजी बोले—तब पुरोहितों ने प्रह्लाद के समीप आकर विनययुक्त प्रह्लाद को शान्तिपूर्वक कहा । पुरोहितगण बोले—हे आयुष्मन् ! तीनों लोकों में विख्यात ब्रह्मा जी के कुल में उत्पन्न हुए हो और तुम दैत्यराज हिरण्यकशिपु के पुत्र हो । देवताओं से, अनन्त से अथवा किसी दूसरे से क्या प्रयोजन ? तुम्हारे पिता समस्त लोगों के आश्रय हैं तुम भी वैसे ही बनोगे । अतएव तुम शत्रु की स्तुति करना छोड़ दो, तुम्हारे पिता सभी में प्रशंसनीय तथा गुरुओं में भी परमगुरु हैं । प्रह्लाद बोला—हे महाभागगण ! यह ठीक है ! समस्त त्रिलोकी में मरीचि का यह महान् कुल प्रशंसनीय है इसमें कोई सन्देह नहीं । और मेरे पिता भी समस्त जगत् में महापराक्रमी हैं, यह भी मैं समझता हूँ, यह भी सत्य है—झूठ नहीं । तथा पिताजी भी मेरे लिए समस्त गुरुओं में परमगुरु हैं, यह आपलोगों ने जो कहा इसमें थोड़ी भी भ्रान्ति नहीं है । पिताजी गुरु हैं, परम पूजनीय हैं । और मेरे मन में ऐसा ही विचार है कि, तथा मैं यत्नपूर्वक उनका कोई अपराध नहीं करता हूँ ॥ ९-१७ ॥

यदेतत् किमनन्तेनेत्युक्तं युष्माभिरीदृशम् ।
को ब्रवीति यथायुक्तं किन्तु नैतद् वचोऽर्थवत् ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा सोऽभवन्मौनी तेषां गौरवयन्त्रितः ।
प्रहस्य च पुनः प्राह किमनन्तेन साध्विति ॥ १९ ॥

साधु भोः किमनन्तेन साधु भो गुरवो मम ।
श्रूयतां यदनन्तेन यदि खेदं न यास्यथ ॥ २० ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्था उदाहृताः ।
चतुष्टयमिदं यस्मात् तस्मात् किं किमिदं वृथा ॥ २१ ॥

मरीचिमिश्रैर्दक्षेण तथैवान्यैरनन्ततः ।
धर्म्मः प्राप्तस्तयैवान्यैरर्थः कामस्तथापरैः ॥ २२ ॥

तत्तत्त्ववेदिनो भूत्वा ज्ञानध्यानसमाधिभिः ।
अवापुर्मुक्तिमपरे पुरुषा ध्वस्तबन्धनाः ॥ २३ ॥

सम्पदैश्वर्य्यमाहात्म्यज्ञानसन्ततिकर्म्मणाम् ।
विमुक्तेश्चैकतालभ्यं मूलमाराधनं हरेः ॥ २४ ॥

यतो धर्म्मार्थकामाख्यं मुक्तिश्चापि फलं द्विजाः ।
तेनापि हि किमेत्येवमनन्तेन किमुच्यते ॥ २५ ॥

किञ्चात्र बहुनोक्तेन भवन्तो गरवो मम ।
वदन्तु साधु वाऽसाधु विवेकोऽस्माकमल्पकः ॥ २६ ॥

किन्तु आप लोगों ने जो यह कहा कि अनन्त से क्या प्रयोजन है तो इस बात को कौन उचित कह सकता है और यह वचन युक्तियुक्त भी नहीं हैं । इतनी बात कह कर प्रह्लाद उन गुरुजनों के गौरव रक्षा के लिए मौन हो गया और पुनः हँसकर बोला कि अनन्त से क्या प्रयोजन है ? इस कथन के लिए धन्यवाद है । हे मेरे गुरुदेव ! आप लोग कहते हैं कि अनन्त से क्या प्रयोजन ? इस कथन के लिए आपको साधुवाद है । यदि आपलोग अप्रसन्न नहीं हो तो सुनिये कि मुझे अनन्त से क्या प्रयोजन है । धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं, ये चारों पुरुषार्थ जिससे सिद्ध होते हैं—उस अनन्त भगवान् से क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार के आपके वचन को क्या कहा जाए । दक्ष, मरीचि, आदि ने उसी अनन्त से धर्म प्राप्त किये तथा किन्हीं अन्य मुनियों ने अर्थ और किन्हीं अन्य मुनियों ने उन अनन्त से ही काम भी प्राप्त किये । एवं किन्हीं दूसरे अनन्त के तत्ववेत्ता पुरुषों ने ज्ञान, ध्यान और समाधिद्वारा संसार बन्धन को काटकर मुक्ति को प्राप्त किया । सम्पत्ति, ऐश्वर्य, ज्ञान, माहात्म्य, सन्तान, कर्म और मुक्ति प्राप्त करने के लिए भगवान् श्रीहरि की आराधना ही मूल है । हे ब्राह्मणगण ! जिस अनन्त भगवान् से धर्म, अर्थ, काम, तथा मोक्ष, ये चारों फल प्राप्त होते हैं, उस अनन्त से क्या प्रयोजन है, यह आप लोग क्यों कहते हैं । और विशेष कहने से क्या लाभ, आप लोग मेरे गुरु हैं । उचित अनुचित जो कुछ भी कहे, और मेरा ज्ञान भी तो कम ही है ॥ १८-२६ ॥

दह्यमानस्त्वमस्माभिरग्निना बाल रक्षितः ।
भूयो न वक्ष्यसीत्येवं नैव ज्ञातोऽस्यबुद्धिमान् ॥ २७ ॥

यदास्मद्ववचनान्मोहग्राहं न त्यक्ष्यते भवान् ।
ततः कृत्यां विनाशाय तव स्त्रक्ष्याम दुर्म्मतेः ॥ २८ ॥

कः केन हन्यते जन्तुर्जन्तुः कः केन रक्ष्यते ।
हन्ति रक्षति चैवात्मा ह्यसत् साधु समाचरन् ॥ २९ ॥

इत्युक्तास्तेन ते क्रुद्धा दैत्यराजपुरोहिताः ।
कृत्यामुत्पादयामासुर्ज्वालामालोज्ज्वलाकृतिम् ॥ ३० ॥

अतिभीमा समागम्य पादन्यासक्षतक्षितिः ।
शूलेन सा सुसंक्रुद्धा तं जघानाशु वक्षसि ॥ ३१ ॥

पुरोहितों ने कहा—हे बालक ! पुनः ऐसी बातें नहीं कहोगे, ऐसा समझकर हम लोगों ने जलने से तुम्हारी रक्षा की किन्तु हम लोग यह नहीं जानते थे कि तुम इस प्रकार के मूर्ख हो । हे दुर्मते ! यदि तुम लोगों के वचन से अपने अज्ञान के आग्रह को नहीं त्यागोगे, तब हम लोग तुम्हारे विनाश के लिए कृत्या उत्पन्न करेंगे । प्रह्लाद बोला—किससे कौन प्राणी मारा जाता है किससे कौन रक्षित होता है, किन्तु शुभ अशुभ का आचरण करने वाली आत्मा ही स्वयं रक्षा और विनाश करती है । श्रीपराशर जी बोले—प्रह्लाद के द्वारा ऐसा कहे जाने के कारण क्रोधित उन दैत्यपुरोहितों ने प्रज्वलित शरीर वाली कृत्या उत्पन्न कर दी । अपने पाद के आघात से पृथ्वी को क्षत करने वाली तथा अत्यन्त भयङ्कर स्वरूपवाली एवं क्रोधित उस कृत्या ने आकर प्रह्लाद जी की छाती में त्रिशूल से प्रहार किया ॥ २७-३१ ॥

तत् तस्य हृदयं प्राप्य शूलं बालस्य दीप्तिमत् ।
जगाम खण्डितं भूमौ तत्रापि शतधा गतम् ॥ ३२ ॥

यज्ञानपायी भगवान् हृद्यास्ते हरिरीश्वरः ।
भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा ॥ ३३ ॥

अपाये तत्र पापैश्च पातिता तत्र याजकैः ।
तानेव सा जघानाशु कृत्या नाशं जगाम च ॥ ३४ ॥

कृत्यया दह्यमानांस्तान् विलोक्य स महामतिः ।
त्राहि कृष्णेत्यनन्तेति वदन्नभ्यवपद्यत ॥ ३५ ॥

सर्व्वव्यापिन् जगद्रूप जगत्स्त्रष्टर्जनार्दन ।
पाहि विप्रानिमानस्माद् दुःसहान्मन्त्रपावकात् ॥ ३६ ॥

यथा सर्व्वेषु भूतेषु सर्व्वव्यापी जगद्गुरुः ।
विष्णुरेव तथा सर्व्वे जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥ ३७ ॥

प्रथा सर्व्वगतं विष्णुं मन्यमानो न पावकम् ।
चिन्तयाम्यरिपक्षेऽपि जीवन्त्वेते पुरोहिताः ॥ ३८ ॥

ये हन्तुमागता दत्तं यैर्विषं यैर्हुताशनः ।
यैर्दिग्गजैरहं क्षुण्णो दष्टः सर्पैश्च यैरपि ॥ ३९ ॥

तेष्वहं मित्रभावेन समः पापोऽस्मि न क्वचित् ।
तथा तेनाद्य सत्येन जीवन्त्वसुरयाजकाः ॥ ४० ॥

किन्तु उस बालक के हृदय में लगते ही वह तेजस्वी त्रिशूल खण्डित होकर भूमिपर गिर गया और वहाँ उसके सौ टुकड़े हो गये । जिस हृदय में अविनाशी श्री हरि भगवान् निवास करते हैं उसमें लगकर वज्र भी टूट जाता है और त्रिशूल की बात ही क्या है । पापी दैत्य पुरोहितों ने निष्पाप उस बालक पर जिस कृत्या का प्रयोग किया था, वह उन पुरोहितों पर अपना वार करके स्वयं भी नष्ट हो गयी । महामति प्रह्लाद ने कृत्या से जलते हुए उन पुरोहितों को देखकर हे कृष्ण ! हे अनन्त ! ऐसा बोलता हुआ उनके पास पहुंच गया । प्रह्लाद बोला—हे सर्वव्यापी ! हे जगत्स्वरूप ! हे जगत्स्रष्टा जनार्दन ! दुःसह इस मन्त्ररूपी अग्नि से इन ब्राह्मणों की रक्षा करो । सर्वव्यापी जगद्गुरु श्रीविष्णु भगवान् सभी प्राणियों में व्याप्त हैं, इस सत्य के प्रभाव से ये पुरोहितगण जीवित हो जायें । यदि मैं अविनाशी श्रीविष्णु भगवान् को सर्वव्यापक मानते हुए शत्रुपक्ष में भी उनको देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जाये । जो मेरे को मारने के लिए आये, जिन लोगों ने मुझे विष दिया, जिन लोगों ने आग में जलाया, जिन लोगों ने मुझे दिग्गजों से पीड़ित किया और जिन्होंने सापों से डँसाया उन लोगों को भी यदि मैं समानरूप से मित्रभाव से देखता हूँ और कभी

भी उनके प्रति पापभावना नहीं हुई हो तो उसी सत्य से आज ये असुरपुरोहितगण जीवित हो जायँ ॥ ३२-४० ॥

इत्युक्तास्तेन ते सर्व्वे संस्पृष्टाश्च निरामयाः ।
समुत्तस्थुर्द्विजा भूयस्तञ्चोचुः प्रश्रयान्वितम् ॥ ४१ ॥

दीर्घायुरप्रतिहत-बलवीर्य्यसमन्वितः ।
पुत्र-पौत्र-धनैश्वर्य्ययुक्तो वत्स ! भवोत्तम ॥ ४२ ॥

इत्युक्त्वा तं ततो गत्वा यथावृत्तं पुरोहिताः ।
दैत्यराजाय सकलमाचचक्षु र्महामुने ॥ ४३ ॥

श्रीपराशर जी बोले—ऐसा कहकर प्रह्लाद के द्वारा स्पर्श किये जाने पर वे पुरोहित स्वस्थ होकर उठ गये और विनम्र बालक से कहने लगे। पुरोहितगण बोले—हे वत्स ! तुम दीर्घायु, निर्द्वन्द, बल वीर्य-सम्पन्न एवं पुत्र पौत्र धन-ऐश्वर्य से युक्त होकर सर्वश्रेष्ठ बनो। श्रीपराशर जी बोले—हे महामुने ! पुरोहितों ने ऐसा कहकर दैत्यराज हिरण्यकशिपु के समीप गये और उनसे सारा वृत्तान्त यथावत् कह दिया ॥ ४१-४३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

प्रथम अंश - उन्नीसवाँ अध्याय

(प्रह्लाद द्वारा भगवान् श्रीविष्णु की स्तुति)

हिरण्यकशिपुः श्रुत्वा तां कृत्यां वितथीकृताम्।
आहूय पुत्रं पप्रच्छ प्रभावस्यास्य कारणम् ॥ १ ॥

प्रह्लाद ! सुप्रभावोऽसि किमेतत् ते विचेष्टितम्।
एतन्मन्त्रादिजनितमुताहो सहजं तव ॥ २ ॥

एव पृष्टस्तदा पित्रा प्रह्लादोऽसुरबालकः ।
प्रणिपत्य पितुः पादाविदं वचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥

न मन्त्रादिकृतं तात ! न वा नैसर्गिकं मम ।
प्रभाव एष सामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि ॥ ४ ॥

अन्येषां यो न पापानि चिन्तयत्यात्मनो यथा ।
तस्य पापागमस्तात ! हेत्वभावान्न विद्यते ॥ ५ ॥

कर्म्मणा मनसा वाचा परपीड़ां करोति यः ।
तद्बीजजन्म फलति प्रभूतं तस्य चाशुभम् ॥ ६ ॥

श्रीपराशर जी बोले—हिरण्यकशिपु ने उस कृत्या को व्यर्थ हुए सुनकर अपने पुत्र को बुलाकर इस प्रभाव का कारण पूछा । हिरण्यकशिपु बोला—हे प्रह्लाद ! तुम बड़े प्रभाववाले हो, किन्तु यह तुम्हारा प्रभाव मन्त्र आदि से उत्पन्न है अथवा स्वाभाविक है । श्रीपराशर जी बोले—इस प्रकार अपने पिता द्वारा पूछे जाने पर वह असुर बालक प्रह्लाद पिता के चरणों में प्रणाम करके इस प्रकार वचन बोला । प्रह्लाद बोला,—हे तात ! यह मेरा प्रभाव न तो मन्त्रादि जनित है और न स्वाभाविक है, किन्तु जिसके हृदय में अच्युत भगवान् का निवास होता हैं, उन सबके लिये यह

प्रभाव साधारण बात है। और जो मनुष्य अपने समान दूसरों के पापों का विचार नहीं करता है, हे तात! कारण के अभाव से उसका भी पाप नहीं रहता। जो मनुष्य कर्म, मन और वचन से दूसरों को पीड़ा देता है, उसको परपीड़ा रूपी बीज से उत्पन्न हुआ बहुत अशुभ फल होता है ॥ १-६ ॥

सोऽहं न पापमिच्छामि न करोमि वदामि वा।
चिन्तयन् सर्व्वभूतस्थमात्मन्यपि च केशवम् ॥ ७ ॥

शारीरं मानसं दुःखं दैवं भूतभवं तथा।
सर्व्वत्र शुभचित्तस्य तस्य मे जायते कुतः ॥ ८ ॥

एवं सर्व्वेषु भूतेषु भक्तिरव्यभिचारिणी।
कर्त्तव्या पण्डितैर्ज्ञात्वा सर्व्वभूतमयं हरिम् ॥ ९ ॥

किन्तु अपने सहित सभी प्राणियों में श्रीकेशव भगवान् की चिन्ता करता हुआ मैं पाप कभी नहीं करता हूँ नहीं कहता हूँ, तथा न कराता हूँ। इस प्रकार सर्वत्र शुभ विचारवाले मुझे शारीरिक, मानसिक, दैविक या भौतिक दुःख कहाँ से हो सकता है। और इसी प्रकार भगवान् श्रीहरि को सभी प्राणियों में स्थित जानकर पण्डितों को चाहिये कि सभी प्राणियों में निश्चल भक्ति करें ॥ ७-९ ॥

इति श्रुत्वा स दैत्येन्द्रः प्रासादशिखरे स्थितः।
क्रोधान्धकारितमुखः प्राह दैतेयकिङ्करान् ॥ १० ॥

दुरात्मा क्षिप्यतामस्मात् प्रासादाच्छतयोजनात्।
गिरिपृष्ठे पतत्वस्मिन् शिलाभिन्नाङ्गसंहतिः ॥ ११ ॥

ततस्तं चिक्षिपुः सर्व्वे बालं दैतेयदानवाः।
पपात सोऽप्यधः क्षिप्तो हृदयेनोद्वहन् हरिम् ॥ १२ ॥

पतमानं जगद्धात्री जगद्धातरि केशवे।
भक्तियुक्तं दधारैनमुपसंगम्य मेदिनी ॥ १३ ॥

श्रीपराशर जी बोले—प्रासाद शिखर पर बैठा हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु प्रह्लाद की ऐसी बात सुनकर क्रोध से अन्धा हुआ असुर अनुचरों से बोला। हिरण्यकशिपु बोला—इस दुरात्मा को इस सौ योजन ऊँचे महल से इस पर्वत पर

फेंक दो, जिससे इसके अङ्ग प्रत्यङ्ग छिन्नभिन्न हो जायँ। तब उन सभी दैत्य-दानवों ने उस बालक (प्रह्लाद) को महल से फेंक दिया और फेंका जाने पर भी वह भी हृदय में भगवान् को स्मरण करते हुए नीचे गिर गया। भगवान् श्रीकेशव के परमभक्त उस प्रह्लाद को नीचे गिरते हुए जगद्धात्री पृथिवी ने उसके पास जाकर (अपनी गोद में) धारण कर लिया ॥ १०-१३ ॥

ततो विलोक्य तं स्वस्थमविशीणास्थिपञ्जरम्।
हिरण्यकशिपुः प्राह शम्बरं मायिनां वरम् ॥ १४ ॥

नास्माभिः शक्यते हन्तुमसौ दुर्बुद्धिबालकः।
मायां वेत्ति भवांस्तस्मान्माययैनं निषूदय ॥ १५ ॥

तब बिना टूटे हुए अस्थि पञ्जर वाले और स्वस्थ उस बालक को देखकर हिरण्यकशिपु ने मायावियों में श्रेष्ठ शम्बरासुर को कहा। हिरण्यकशिपु बोला—यह दुर्बुद्धि बालक हम लोगों से मारा नहीं जा सकता और आप माया जानते हैं, इस लिए इसे माया से मार डालें ॥ १४-१५ ॥

सूदयाम्येष दैत्येन्द्र पश्य मायाबलं मम।
सहस्त्रमात्रं मायानां यस्य कोटिशतं तथा ॥ १६ ॥

ततः स ससृजे मायां प्रह्लादे शम्बरोऽसुरः।
विनाशमिच्छन् दुर्बुद्धिः सर्व्वत्र समदर्शिनि ॥ १७ ॥

समाहितमतिर्भूत्वा शम्बरेऽपि विमत्सरः।
मैत्रेय ! सोऽपि प्रह्लादः सस्मार मधुसूदनम् ॥ १८ ॥

ततो भगवता तस्य रक्षार्थं चक्रमुत्तमम्।
आजगाम समाज्ञप्तं ज्वालामालि सुदर्शनम् ॥ १९ ॥

तेन मायासहस्त्रं तच्छम्बरस्याशुगामिना।
बालस्य रक्षता देहमैकैकश्येन सूदितम् ॥ २० ॥

संशोषकं तथा वायुं दैत्येन्द्रस्त्विदमब्रवीत्।
शीघ्रमेष ममादेशाद् दुरात्मा नीयतां क्षयम् ॥ २१ ॥

तथेत्युक्तवा तु सोऽप्येनं विवेश पवनो लघु।

शीतोऽतिरूक्षः शोषाय तद्देहस्यातिदुःसहः ॥ २२ ॥

तेनाविष्टमथात्मानं स बुद्ध्वा दैत्यबालकः।

हृदयेन महात्मानं दधार धरणीधरम् ॥ २३ ॥

हृदयस्थस्ततस्तस्य तं वायुमतिभीषणम्।

पपौ जनार्द्दनः क्रुद्धः स ययौ पवनः क्षयम् ॥ २४ ॥

शम्बर बोला—हे दैत्यराज ! मैं अभी इसे मारता हूँ, आप मेरी सैकड़ों हजारों करोड़ों मायाएँ देखें। श्रीपराशरजी बोले—इसके बाद दुर्बुद्धि शम्बरासुर ने सर्वत्र समदर्शी प्रह्लाद के विनाश की इच्छा से उसके ऊपर बहुत सी मायाएं रचीं। किन्तु हे मैत्रेय ! वह प्रह्लाद भी शम्बरासुरपर द्वेषहीन होकर सावधान चित्त से मधुसूदन भगवान् को स्मरण करने लगा। तब भगवान् की आज्ञा से उसकी रक्षा के लिए अग्नि की ज्वाला से युक्त उत्तम सुदर्शनचक्र वहाँ पहुंच गया। शीघ्रगामी उस सुदर्शनचक्र ने उस बालक की रक्षा करते हुए शम्बरासुर की हजारों मायाओं को विनाश कर दिया। इसके बाद दैत्यराज ने शोषण करने वाले वायु को मेरी आज्ञा से इस दुरात्मा को शीघ्र विनाश कर डालो ऐसा कहा। अच्छा 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर शीतल, अत्यन्त रूखा और अत्यन्त दुःसह वायु ने उस प्रह्लाद के देह को सुखाने के लिए उसमें शीघ्रतापूर्वक प्रवेश किया। वायु को अपने शरीर में प्रवेश किये हुए जानकर महात्मा प्रह्लाद ने अपने हृदय में धरणीधर भगवान् को धारण किया। तब उसके हृदय में स्थित जनार्दन भगवान् ने क्रुद्ध होकर उस अत्यन्त भीषण वायु को पी लिया, इससे वायु नष्ट हो गया ॥ १६-२४ ॥

क्षीणासु सर्व्वमायासु पवने च क्षयं गते।

जगाम सोऽपि भवनं गुरोरेव महामतिः ॥ २५ ॥

अहन्यहन्यथाचार्य्यो नीतिं राज्यफलप्रदाम्।

ग्राहयामास तं बालं राज्ञामुशनसा कृताम् ॥ २६ ॥

गृहीतनीतिशास्त्रं तं विनीतञ्च यदा गुरुः।

मेने तदैनं तत्पित्रे कथयामास शिक्षितम् ॥ २७ ॥

गृहीतनीतिशास्त्रस्ते पुत्रो दैत्यपते ! कृतः ।
प्रह्लादस्तत्त्वतो वेत्ति भार्गवेण यदीरितम् ॥ २८ ॥

मित्रेषु वर्त्तेत कथमरिवर्गेषु भूपतिः ।
प्रह्लाद ! त्रिषु कालेषु मध्यस्थेषु कथं चरेत् ॥ २९ ॥

कथं मन्त्रिष्वमात्येषु बाह्येष्वभ्यन्तरेषु च ।
चारेषु चौरवर्गेषु शङ्कितेष्वितरेषु च ॥ ३० ॥

कृत्याकृत्यविधानेषु दुर्गाटविकसाधने ।
प्रह्लाद कथ्यतां सम्यक् तथा कण्टकशोधने ॥ ३१ ॥

एताच्चान्यच्च सकलमधीतं भवता यथा ।
तथा मे कथ्यतां ज्ञातु तवेच्छामि मनोगतम् ॥ ३२ ॥

प्रणिपत्य पितुः पादौ तथा प्रश्रयभूषणः ।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं कृताञ्जलिपुटस्तथा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सभी प्रकार की माया के क्षीण हो जाने पर और वायु के भी विनष्ट हो जाने पर महामति प्रह्लाद पुनः गुरु के ही गृह में चला गया । इसके बाद आचार्य ने प्रतिदिन उसे शुक्राचार्य द्वारा बनायी गयी राज्यफल देने वाली नीति पढ़ाना आरम्भ किया । जब गुरु ने उसे नीतिशास्त्र में प्रवीण एवं विनयसम्पन्न मान लिया, तब यह शिक्षित हो गया, ऐसा उसके पिता के पास जाकर कहा । आचार्य बोले—हे दैत्यराज ! आपका यह पुत्र नीतिशास्त्र में परमप्रवीण हो गया और शुक्राचार्य ने जो नीति कही है, उसे यह तात्त्विक रूप से जानता है । हिरण्यकशिपु बोला—हे प्रह्लाद ! यह बताओ कि राजा मित्रों के साथ कैसा व्यवहार करे ? और शत्रुओं के साथ कैसा ? तथा तीनों लोकों में मध्यस्थ रहने वाले के साथ कैसा व्यवहार करे ? । और मन्त्रियों, अमात्यों, बाहर और भीतर के गुप्तचरों, तथा पुरवासियों, शंकितों अन्यजनों के साथ कैसा व्यवहार करे ? । हे प्रह्लाद ! करने और न करने वाले कार्यों का विधान क्या है तथा दुर्गवासी और जंगली मनुष्यों को वशीभूत कैसे करे एवं छिपे हुए शत्रुरूप कांटे को कैसे समाप्त करे ? । यह सब तथा और अन्य विषय भी तुमने जो कुछ अध्ययन किया है, वह सब विषय मुझे सुनाओं, मैं तुम्हारे मनोगत

भावों को जानने की इच्छा करता हूँ। श्रीपराशरजी बोले—तब विनयभूषण प्रह्लाद ने पिता के चरणों में प्रणाम करके से हाथ जोड़कर कहा ॥ २५-३३ ॥

ममोपदिष्टं सकलं गुरुणा नात्र संशयः ।
गृहीतञ्च मया किन्तु न सदेतन्मतं मम ॥ ३४ ॥

साम चोपप्रदानञ्च भेददण्डौ तथापरौ ।
उपायाः कथिताः सर्व्वे मित्रादीनाञ्च साधने ॥ ३५ ॥

तानेवाहं न पश्यामि मित्रादींस्तात ! मा क्रुधः ।
साध्याभावे महाबाहो ! साधनैः किं प्रयोजनम् ॥ ३६ ॥

सर्व्वभूतात्मके तात ! जगन्नाथे जगन्मये ।
परमात्मनि गोविन्दे मित्रामित्रकथा कुतः ॥ ३७ ॥

त्वय्यस्ति भगवान् विष्णुर्मयि चान्यत्र चास्ति सः ।
यतस्ततोऽयं मित्रं मे शत्रुश्चेति पृथक् कुतः ॥ ३८ ॥

तदेभिरलमत्यर्थं दुष्टारम्भोक्तिविस्तरैः ।
अविद्यान्तर्गतैर्यत्नः कर्त्तव्यस्तात ! शोभने ॥ ३९ ॥

विद्याबुद्धिरविद्यायामज्ञानात् तात ! जायते ।
बालोऽग्निं किं न खद्योतमसुरेश्वर ! मन्यते ॥ ४० ॥

तत् कर्म्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये ।
आयासायापरं कर्म्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम् ॥ ४१ ॥

प्रह्लाद बोला—गुरुजी ने सभी विषयों के उपदेश दिये, मैने ग्रहण भी कर लिया इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु वे नीतियाँ अच्छी नहीं हैं यह मेरा विचार है। साम, दाम, भेद और दण्ड ये सभी उपाय मित्र आदि के साधने के लिए है। हे तात ! आप क्रोध न करें, क्योंकि मैं तो शत्रु, मित्र आदि कोई देखता नहीं हूँ, पुनः हे महाबाहो ! साध्यके अभाव होने से साधन का क्या प्रयोजन है ? । और हे तात ! सर्वभूतात्मक विश्वव्यापी जगन्नाथ परमात्मा गोविन्द में शत्रु मित्र की बात ही क्या है ? । आप में, मेरे में और अन्यत्र सभी स्थानों में श्रीविष्णु भगवान् विराजमान हैं,

तब यह मेरा मित्र है, यह मेरा शत्रु है, ऐसा भेद का स्थान ही कहाँ रह जाता है ? अतएव हे तात ! अविद्या के अन्तर्भूत दुष्कर्म को उत्पन्न करने वाले इन वाग्विस्तार से कोई लाभ नहीं किन्तु व्यक्ति को शुभकर्म में ही लगना चाहिए । हे तात ! मनुष्य को अज्ञान से ही अविद्या में विद्या की बुद्धि होती है । हे असुरराज ! बालक क्या खद्योत को ही अग्नि नहीं मानता ? । वही कर्म है जो बन्धन का कारण न हो और वही विद्या है जो मुक्ति देने वाली हो, इसके अतिरिक्त दूसरे कर्म आयास के लिए और दूसरी विद्या केवल कला कौशल मात्र है ॥ ३४-४१ ॥

तदेतदवगम्याहमसारं सारमुत्तमम् ।
निशामय महाभाग ! प्रणिपत्य ब्रवीमि ते ॥ ४२ ॥

न चिन्तयति को राज्यं को धनं नाभिवाञ्छति ।
तथापि भाव्यमेवैतदुभयं प्राप्यते नरैः ॥ ४३ ॥

सर्व एव महाभाग ! महत्त्वं प्रति सोद्यमाः ।
तथापि पुंसां भाग्यानि नोद्यमा भूतिहेतवः ॥ ४४ ॥

जड़ानामर्विवेकानामसुराणामपि प्रभो ।
भोग्यभोज्यानि राज्यानि सन्त्यनीतिमतामपि ॥ ४५ ॥

तस्माद् यतेत पुण्येषु य इच्छेन्महतीं श्रियम् ।
यतितव्यं समत्वे च निर्व्वाणमपि चेच्छता ॥ ४६ ॥

देवा मनुष्याः पशवः पक्षिवृक्षसरीसृपाः ।
रूपमेतदनन्तस्य विष्णोर्भिन्नमिव स्थितम् ॥ ४७ ॥

एतद्विजानता सर्व्वं जगत् स्थावरजङ्गमम् ।
द्रष्टव्यमात्मवद् विष्णुर्यतोऽयं विश्वरूपधृक् ॥४८ ॥

एवं ज्ञाते स भगवाननादिः परमेश्वरः ।
प्रसीदत्यच्युतस्तस्मिन् प्रसन्ने क्लेशसंक्षयः ॥ ४९ ॥

हे महाभाग ! अतएव मैं इन सभी को सारहीन समझ कर उत्तम एवं सारविषय प्रणामपूर्वक सुनाता हूँ, आप श्रवण करें । कौन राज्य पाने की चिन्ता नहीं

करता और कौन धन की इच्छा नहीं करता ? किन्तु पूर्वजन्म के सत्कर्म से ही ये दोनों प्राप्त होते हैं ।और हे महाभाग ! सभी लोग महत्त्व प्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं, तथापि वैभव प्राप्ति भाग्य से ही होती है उद्योग से नहीं । हे प्रभो ! मूर्ख, अविवेकी, कायर और नीतिविहीन मनुष्य भी अपने भाग्य से विविध भोग्यसामग्री और राज्य भी प्राप्त करते हैं । अतएव जो मनुष्य महासम्पत्तिशाली बनना चाहे उसे धर्म करना चाहिए, और मोक्ष चाहने वाला मनुष्य सर्वत्र समभाव के लिये यत्न करे । देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष, सर्प—ये सब वास्तव में अनन्त भगवान् श्रीविष्णु के ही स्वरूप हैं, किन्तु केवल भिन्न रूप से स्थित हैं । इस तत्त्व को जानने वाला पुरुष समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् को अपने समान देखें, क्योंकि ये सभी विश्वरूप श्रीविष्णु भगवान् ही हैं । इस प्रकार जान लेने पर अनादि परमेश्वर भगवान् अच्युत प्रसन्न होते हैं और उनके प्रसन्न हो जाने पर समस्त कष्ट दूर हो जाते हैं ॥ ४२-४९ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु कोपेन समुत्थाय वरासनात् ।
हिरण्यकशिपुः पुत्रं पदा वक्षस्यताड़यत् ॥ ५० ॥

श्रीपराशर जी बोले—यह सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोध से अपने आसन से उठा और अपने पुत्र की छाती में लात मारी ॥ ५० ॥

उवाच च स कोपेन सामर्षः प्रज्वलन्निव ।
निष्पिष्य पाणिना पाणिं हन्तुकामो जगद् यथा ॥ ५१ ॥

हे विप्रचित्ते ! हे राहो ! हे बलैष महार्णवे ।
नागपाशैर्दृढ़ैर्बद्ध्वा क्षिप्यतां मा विलम्ब्यताम् ॥ ५२ ॥

अन्यथा सकलो लोकस्तथा दैतेयदानवाः ।
अनुयास्यन्ति मूढ़स्य मतमस्य दुरात्मनः ॥ ५३ ॥

बहुशो वारितोऽस्माभिरयं पापस्तथापरैः ।
स्तुतिं करोति दुष्टानां वध एवोपकारकः ॥ ५४ ॥

ततस्ते सत्वरा दैत्या बद्ध्वा तं नागबन्धनैः ।
भर्त्तुराज्ञां पुरस्कृत्य चिक्षिपुः सलिलालये ॥ ५५ ॥

ततश्चचाल चलता प्रह्लादेन महार्णवः ।
उद्वेलोऽभूत् परं क्षोभमुपेत्य च समन्ततः ॥ ५६ ॥

भूर्लोकमखिलं दृष्ट्वा प्लाव्यमानं महाम्भसा ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यानिदमाह महामते ॥ ५७ ॥

दैतेयाः सकलैः शैलैरत्रैव वरुणालये ।
निश्छिद्रैः सर्वशः सर्वैश्चीयतामेष दुर्म्मतिः ॥ ५८ ॥

और अमर्ष के साथ क्रोध से जलते हुए के समान जैसे समस्त जगत् को ही मार डालेगा, इस प्रकार हाथ मलता हुआ बोला। हिरण्यकशिपु बोला—हे विप्रचिते ! हे राहु ! हे बल ! नागपाश से इसे अच्छी तरह बाँधकर महासमुद्र में डाल दो, इसमें देरी मत करो। अन्यथा सभी लोग तथा दैत्य-दानव इस मूर्ख दुरात्मा के मत का अनुसरण करेंगे। मैंने इसे बहुत मना किया, तथापि यह पापी शत्रुपक्ष की ही स्तुति करता है अस्तु, दुष्टों का वध करना ही लाभ दायक होता है। श्रीपराशर जी बोले—इसके बाद उन दैत्यों ने अपने स्वामी की आज्ञा मानकर शीघ्रतापूर्वक उस प्रह्लाद को नागपाश से बाँधकर महासागर के जल में फेंक दिया। उस समय समुद्र के जल में प्रह्लाद के हिलने डुलने से सागर भी चंचल हो गया और सर्वत्र क्षोभ के कारण समुद्र में लहरें उठने लगीं। अनन्तर हे महामते ! हिरण्यकशिपु ने महान् जलधारा से समस्त भूलोक को व्याप्त देखकर दैत्यों से इस प्रकार कहा। हिरण्यकशिपु बोला—हे दैत्यगण ! तुमलोग इस मूर्ख को इसी महासागर में किसी ओर खुला न रहे इस प्रकार समस्त पर्वतों से दबा दो ॥ ५१-५८ ॥

नाग्निर्दहति नैवायं शस्त्रैश्छिन्नो न चोरगैः ।
क्षयं नीतो न वातेन न विषेण न कत्यया ॥ ५९ ॥

न मायाभिर्न चैवोच्चात् पातितो न च दिगगजैः ।
बालोऽतिदुष्टचित्तोऽयं नानेनार्थोऽस्ति जीवता ॥ ६० ॥

तदेष तोयधावत्र समाक्रान्तो महीधरैः ।
तिष्ठत्वब्दसहस्रान्तं प्राणान् हास्यति दुर्म्मतिः ॥ ६१ ॥

ततो दैत्या दानवाश्च पर्व्वतैस्तं महोदधौ ।
आक्रम्य चयनं चक्रु र्योजनानि सहस्त्रशः ॥ ६२ ॥

स चितः पर्व्वतैरन्तः समुद्रस्य महामतिः ।
तुष्टावाह्निकवेलायामेकाग्रमतिरच्युतम् ॥ ६३ ॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ! नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमस्ते सर्व्वलोकात्मन् ! नमस्ते तिग्मचक्रिणे ॥ ६४ ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥ ६५ ॥

ब्रह्मत्वे सृजते विश्वं स्थितौ पालयते पुनः ।
रुद्ररूपाय कल्पान्ते नमस्तुभ्यं त्रिमूर्त्तये ॥ ६६ ॥

देवा यक्षासुराः सिद्धा नागा गन्धर्व्वकिन्नराः ।
पिशाचा राक्षसाश्चैव मनुष्याः पशवस्तथा ॥ ६७ ॥

पक्षिणः स्थावराश्चैव पिपीलिकाः सरीसृपाः ।
भूमिरापो नभो वायुः शब्दः स्पर्शस्तथा रसः ॥ ६८ ॥

रूपं गन्धो मनो बुद्धिरात्मा कालस्तथा गुणाः ।
एतेषां परमार्थञ्च सर्व्वमेतत् त्वमच्युत ॥ ६९ ॥

इसे अग्नि नहीं जला सका और यह शस्त्रों से कट नहीं सका, तथा सर्प, वायु, विष एवं कृत्या से भी यह नष्ट नहीं हुआ । और न माया से, ऊपर से फेंके जाने से अथवा दिग्गजों से भी यह नष्ट नहीं हुआ । यह बालक दुष्टचित्त है, इसके जीवित रहने से कोई प्रयोजन नहीं । अतएव पर्वतों से दबा हुआ यह समुद्र में हजारों वर्ष तक पड़ा रहे, इससे मूर्ख स्वयं मर जायेगा । तब दैत्य दानवों ने समुद्र में उसे पर्वतों से दबाकर हजारों योजनतक पर्वतों का विशाल ढेर कर दिया । समुद्र में पर्वतों से दबे हुए उस महामति ने नित्य-कर्म के समय एकाग्रचित्त होकर अच्युत भगवान् की स्तुति की । प्रह्लाद बोला—हे कमलनेत्र ! आपको नमस्कार है । हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है । समस्तलोकों के आत्मास्वरूप आपको नमस्कार है, तीक्ष्ण-चक्रधारण करने वाले भगवन् आपको नमस्कार है । गो-ब्राह्मण-हितकारी ब्रह्मण्य-

देव भगवान् को नमस्कार है एवं जगत् हितैषी गोविन्द भगवान् श्रीकृष्ण को बार बार नमस्कार है । हे भगवन् ! आप ब्रह्मारूप से विश्वका निर्माण करके उसे स्थित हो जाने पर विष्णुरूप से उसका पालन एवं रुद्ररूप से उसका संहार करते हैं, इस प्रकार त्रिमूर्तिधारण करने वाले आपको नमस्कार है । हे अच्युत ! देवता, यक्ष, असुर, मनुष्य, पशु, पक्षी, स्थावर, पिपीलिका, सर्प, पृथिवी, जल, आकाश, वायु , शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, मन, बुद्धि, आत्मा, काल, गुण, इन सबों के वास्तविक स्वरूप आप ही हैं ॥ ५९-६९ ॥

विद्याविद्ये भवान् सत्यमसत्यं त्वं विषामृते ।
प्रवृत्तञ्च निवृतञ्च कर्म्म वेदोदितं भवान् ॥ ७० ॥

समस्तकर्म्मभोक्ता च कर्म्मोपकरणानि च ।
त्वमेव विष्णो ! सर्व्वाणि सर्व्वकर्म्मफलञ्च यत् ॥ ७१ ॥

मय्यन्यत्र तथाशेषभूतेषु भुवनेषु च ।
तवैव व्याप्तिरैश्वर्य्यगुणसंसूचिकाः प्रभो ॥ ७२ ॥

त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति त्वां यजन्ति च यज्विनः ।
हव्यकव्यभुगेकस्त्वं पितृदेवस्वरूपधृक् ॥ ७३ ॥

रूपं महत् ते स्थितमत्र विश्वं ततश्च सूक्ष्मं जगदेतदीश ।
रूपाणि सर्व्वाणि च भूतभेदा स्तेष्वन्तरात्माख्यमतीव सूक्ष्मम् ॥ ७४ ॥
तस्माच्च सूक्ष्मादिविशेषणाना मगोचरे यत् परमात्मरूपम् ।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमस्ति तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तमाय ॥ ७५ ॥

आप ही विद्या एवं अविद्या हैं, सत्य और असत्य एवं विष अमृत और वेदोक्त प्रवृत्त तथा निवृत्त कर्म भी आप ही हैं । हे विष्णो ! समस्त कर्मों के भोग करने वाले तथा उनकी सामग्री एवं सभी कर्मों के फल भी आप ही हैं । हे प्रभो ! मेरे में एवं अन्य समस्त भूतों तथा भुवनों में आपके ही ऐश्वर्य और गुण की सूचि फैली हुई है । योगिगण आपकी ही चिन्ता करते हैं, याज्ञिक लोग आपका ही यजन करते हैं तथा देव और पितृरूप से आप ही हव्य और कव्यका भोग करते हैं । हे ईश ! यह समस्त ब्रह्माण्ड आपका विराट् रूप है, और यह जगत् आपका सूक्ष्मरूप है । एवं इससे सूक्ष्म रूप भिन्न रूपवाले सभी प्राणी एवं उनमें जो अन्तरात्मा हैं,

वह भी आपका ही अति सूक्ष्मरूप है । और उससे भी परे जो सूक्ष्म आदि विशेषणों से विहीन आपका कोई अचिन्त्य परमात्मस्वरूप हैं, इस प्रकार उन पुरुषोत्तमस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ ७०-७५ ॥

सर्व्वभूतेषु सर्व्वात्मन्! या शक्तिरपरा तव ।
गुणाश्रया नमस्तस्ये शाश्वतायै सुरेश्वर ॥ ७६ ॥

यातीतगोचरा वाचां मनसाञ्चाविशेषणा ।
ज्ञानिज्ञानपरिच्छेद्या तां वन्दे चेश्वरीं पराम् ॥ ७७ ॥

ॐ नमो वासुदेवाय तस्मै भगवते सदा ।
व्यतिरिक्तं न यस्यास्ति व्यतिरिक्तोऽखिलस्य यः ॥ ७८ ॥

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै महात्मने ।
नामरूपं न यस्यैको योऽस्तित्वेनोपलभ्यते ॥ ७९ ॥

यस्यावताररूपाणि समर्च्चन्ति दिवौकसः ।
अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने ॥ ८० ॥

योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् ।
त सर्व्वसाक्षिणं विष्णुं नमस्ये परमेश्वरम् ॥ ८१ ॥

नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत् ।
ध्येयः स जगतमाद्यः प्रसीदतुः ममाव्ययः ॥ ८२ ॥

यत्रोतमेतत् प्रोतञ्च विश्वमक्षरमव्ययम् ।
आधारभूतः सर्व्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥ ८३ ॥

नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः ।
यत्र सर्व्वं यतः सर्व्वं यः सर्व्वं सर्व्वसंश्रयः ॥ ८४ ॥

हे सर्वात्मन् ! सभी प्राणियों में व्याप्त जो आपकी गुणाश्रया अपराशक्ति है, हे सुरेश्वर ! उस शाश्वत स्वरूपिणी को नमस्कार है । जो वचन से अगोचर, और जो मनसे विशेषणहीन है, उन ज्ञानियों के ज्ञान से परिच्छेद्य स्वतन्त्र पराशक्ति का मैं अभिवादन करता हूँ। ओंकारस्वरूप उन वासुदेव भगवान् को मैं सदा

नमस्कार करता हूँ, जिनसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है तथा जो स्वयं सबसे असङ्ग हैं । जिसका कोई नाम या रूप नहीं हैं और जो केवल अपने सत्तामात्र से ही उपलब्ध होते हैं, उन महात्मा को बारम्बार नमस्कार है, जिनके प्रधानस्वरूप को न जानते हुए भी उनके अवतार के रूपों को देवतागण पूजते हैं, उन महात्मा को नमस्कार है । और हे ईश ! सभी प्राणियों की अन्तरात्मा में स्थित होकर जो उनके शुभाशुभ को देखते हैं, उन सर्वसाक्षी परमेश्वर को नमस्कार है । जिनसे यह जगत् सर्वथा अभिन्न है, उन श्रीविष्णु भगवान् को नमस्कार है, तथा जो जगत् के आदिभूत योगियों द्वारा ध्यान करने योग्य तथा अविनाशी हैं वे श्रीविष्णु मेरे ऊपर प्रसन्न हों । जिसमें यह समस्त ब्रह्माण्ड ओतप्रोत है, वे अविनाशी तथा सबके आधारभूत भगवान् श्रीहरि मेरे ऊपर प्रसन्न हों । उन श्रीविष्णु भगवान् को नमस्कार है, तथा उन्हें बार बार नमस्कार है, जिनसे सब कुछ उत्पन्न है तथा जिसमें सब कुछ स्थित है और जो सभी के आधार हैं ॥ ७६-८४ ॥

सर्व्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः ।
मत्तः सर्व्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥ ८५ ॥

अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः ।
ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥ ८६ ॥

भगवान् अनन्त होने के कारण सर्वव्यापक हैं और वही मेरे स्वरूप भी स्थित हैं, अतः सब मेरे से ही उत्पन्न हुआ है और मुझ सनातन में ही सब कुछ स्थित है । मैं ही अविनाशी, नित्य और आत्माधार परमात्मा हूँ, तथा मैं ही जगत् के आदि और अन्त में रहने वाला ब्रह्मनामक परमपुरुष हूँ ॥ ८५-८६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ।

प्रथम अंश - बीसवाँ अध्याय

(नृसिंह भगवान् का प्रादुभाव)

एवं सञ्चिन्तयन् विष्णुमभेदेनात्मनो द्विज।
तन्मयत्वमवाप्याग्रयं मेने चात्मानमच्युतम्॥ १॥
विसस्मार तथात्मानं नान्यत् किञ्चिदजानत।
अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत्॥ २॥
तस्य तद्भावनायोगात् क्षीणपापस्य वै क्रमात्।
शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयेऽच्युतः॥ ३॥
योगप्रभावात् प्रह्लादे जाते विष्णुमयेऽसुरे।
चलत्युरगबन्धैस्तैर्मैत्रेय त्रुटितं क्षणात्॥ ४॥
भ्रान्तग्राहगणः सोर्म्मिर्ययौ क्षोभं महार्णवः।
चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—हे ब्राह्मण ! इस प्रकार अपने से अभिन्न बुद्धि द्वारा भगवान् श्रीविष्णु का ध्यान करता हुआ प्रह्लाद ने पूर्ण तन्मयता को प्राप्त कर लिया तथा अपनी आत्मा को अच्युतरूप ही मानने लगा। वह उस समय अपनी आत्मा को भी भूल गया केवल श्रीविष्णु भगवान् का ही चिन्तन में लीन था, तथा मैं ही अविनाशी अनन्त परमात्मा हूँ—यही एकमात्र उसका चिन्तन था। क्रमशः उस भावना के योग से क्षीणपापवाले उस प्रह्लाद के शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञानस्वरूप अच्युत श्रीभगवान् विष्णु विराजमान हो गये। योग के प्रभाव से असुर प्रह्लाद को विष्णुमय हो जाने पर हे मैत्रेय ! और उनके विचलित होने पर क्षण भर में नागपाश टूट गया। और पर्वत और वनों के साथ समस्त पृथ्वी कम्पित होने लगी तथा भ्रमणशील ग्राहगण एवं तरङ्गों से युक्त महासागर भी क्षुब्ध होने लगा॥ १-५॥

स च तं शैलसम्पातं दैत्यैर्न्यस्तमथोपरि ।
प्रक्षिप्य तस्मात् सलिलान्निश्चक्राम महामतिः ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा च स जगद् भूयो गगनाद्यु पलक्षणम् ।
प्रह्लादोऽस्मीति सस्मार पुनरात्मानमात्मना ॥ ७ ॥

तुष्टाव च पुनर्धीमाननादिं पुरुषोत्तमम् ।
एकाग्रमतिरव्यग्रो यतवाक्कायमानसः ॥ ८ ॥

ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्मक्षराक्षर ।
व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ॥ ९ ॥

गुणाञ्जन गुणधार निर्गुणात्मन् गुणस्थिर ।
मूर्त्तामूर्त्त महामूर्त्ते सूक्ष्ममूर्त्ते स्फुटास्फुट ॥ १० ॥

करालसौम्यरूपात्मन् विद्याविद्यालयाच्युत ।
सदसद्रूप सद्भाव सदसद्भावभावन ॥ ११ ॥

नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन् निष्प्रपञ्चामलाश्रित ।
एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥ १२ ॥

यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटः प्रकाशो
वः सर्व्वभूतो न च सर्व्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतो-
र्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ १३ ॥

और महामति प्रह्लाद दैत्यों द्वारा अपने ऊपर रखे हुए पर्वतसमूह को उलटकर उस सागर के जल से बाहर निकल गया । तब आकाशादिरूप जगत् को पुनः देखकर अपने चित में ऐसा मान हुआ कि मैं प्रह्लाद हूँ । और उस महाबुद्धिमान् ने शरीर, मन और वचन को संयत करके एकाग्रमति से पुनः अनादि पुरुषोत्तम भगवान् की स्तुति की । प्रह्लाद बोला—हे परमार्थ ! हे अर्थस्वरूप ! (दृश्यजगत्स्वरूप !) हे स्थूल-सूक्ष्म ! (जाग्रत्-स्वप्न-दृश्य-स्वरूप) हे कार्यकारणरूप ! हे दृश्य और अदृश्य ! हे कलातीत ! हे सकलेश्वर ! हे निरञ्जनदेव ! आपको नमस्कार है । हे गुणानुरञ्जक ! हे गुणाधार ! हे निर्गुणात्मस्वरूप ! हे गुणस्थित !

हे मूर्त और अमूर्तस्वरूप महामूर्त्तिमान् ! हे सूक्ष्मस्वरूप ! हे प्रकाश और अप्रकाशस्वरूप ! आपको नमस्कार है । हे विकराल और सुन्दर रूपवाले ! हे विद्या तथा अविद्यामय ! अच्युत ! हे सत् असतरूपी जगत् के उद्भवस्थान औरसत् असत् जगत् के पालक ! परमात्मन् आपको नमस्कार है । हे नित्य (आकाश), अनित्य (घटादि) स्वरूप प्रपञ्चात्मन् ! तथा प्रपञ्च से पृथक् रहने वाले और ज्ञानियों के आश्रयरूप, एक और अनेक रूप ! हे आदिकारण वासुदेव आपको नमस्कार है । जो स्थूल और सूक्ष्मरूप और प्रकट प्रकाशवाले हैं और जो सर्वप्राणिस्वरूप होते हुए वस्तुतः सब प्राणियों से परे हैं जिनसे विश्व उत्पन्न हुआ है, किन्तु जो विश्व के कारण नहीं है, उन पुरुषोत्तम भगवान् को नमस्कार है ॥ ६-१३ ॥

तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः ।
आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरी हरिः ॥ १४ ॥

ससम्भ्रमस्तमालोक्य समुत्थायाकुलाक्षरम् ।
नमोऽस्तु विष्णवेत्यतद व्याजहारासकृद द्विज ॥ १५ ॥

देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव ।
अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत ॥ १६ ॥

कुर्व्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम् ।
यथाभिलषितो मत्तः प्रह्लाद व्रियतां वरः ॥ १७ ॥

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम् ।
तेषु तेष्वच्युता भक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि ॥ १८ ॥

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी ।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्माऽपसर्पतु ॥ १९ ॥

मयि भक्तिस्तवास्त्येव भूयोऽप्येवं भविष्यति ।
वरस्तु मत्तः प्रह्लाद व्रियतां यस्तवेप्सितः ॥ २० ॥

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत् संस्तूतावुद्यते तव ।
मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु ॥ २१ ॥

उसके इस प्रकार तन्मय होकर स्तुति करने पर पीताम्बरधारी भगवान् हरि प्रकट हो गये। हे ब्राह्मण! भगवान् को सहसा प्रकट हुए देखकर प्रह्लाद खड़ा हो गया और गद्‌गद् बाणी से हे विष्णु भगवन्! अपको नमस्कार है—ऐसा बार-बार कहने लगा। प्रह्लाद बोला—हे शरणगत के दुःखहरने वाले केशव! प्रसन्न होइये! और हे अच्युत? अपने पवित्र दर्शन से पुनः मुझे पवित्र कीजिये। श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद! तुम्हारी इस अव्यभिचारिणी अनन्य भक्ति से मैं प्रसन्न हूँ, तुम अपनी इच्छानुसार वर माँग लो। प्रह्लाद बोला—हे नाथ! जिन जिन सहस्रों योनियों में मैं जन्म लूँ, उन उन योनियों में हे अच्युत! आप में मेरी अनन्य भक्ति बनी रहे। अविवेकी मानवों का जैसा अविचल प्रेम (सांसारिक) विषयों में रहता है, आपका स्मरण करते हुए मुझे भी आप में वैसा ही निश्चल प्रेम सदा बना रहे और मन से कभी दूर न हो। श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद! मेरे में तो तुम्हारी भक्ति है ही और आगे भी ऐसी ही रहेगी, किन्तु इसके अतिरिक्त और दूसरा भी वर मुझसे तुम मांग लो। प्रह्लाद बोला—हे देव! आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत होने पर मेरे पिता ने जो मेरे से विरोध किया उससे जो उनको पाप हुआ है, वह नष्ट हो जाय ॥१४-२१ ॥

शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ।
दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने ॥ २२ ॥

बद्ध्वा समुद्रे यत् क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयः।
अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि यानि कृतानि मे ॥ २३ ॥

त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवञ्च यत्।
त्वत्प्रसादात् प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता ॥ २४ ॥

प्रह्लाद सर्व्वमेतत् ते मत्प्रसादाद् भविष्यति।
अन्यञ्च ते वरं दद्मि व्रियतामसुरात्मज ॥ २५ ॥

कृतकृत्योऽस्मि भगवन् वरेणानेन यत् त्वयि।
भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी ॥ २६ ॥

धर्म्मार्थकामैः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा त्वयि ॥ २७ ॥

यथा ते निश्चलं चेतो मयि भक्तिसमन्वितम्।
तथा त्वं मत्प्रसादेन निर्व्वाण परमाप्स्यसि ॥ २८ ॥

इत्युक्त्वान्तर्द्दधे विष्णुस्तस्य मैत्रेय ! पश्यतः।
च चापि पुनरागम्य ववन्दे चरणौ पितुः ॥ २९ ॥

तं पिता मूर्द्धन्युपाघ्राय परिष्वज्य च पीडितम्।
जीवसीत्याह वत्सेति वाष्पार्द्रनयनो द्विज ॥ ३० ॥

और मेरे शरीर पर जो शस्त्र प्रहार किया गया, अग्नि ज्वाला में जो मुझे गिराया गया, सर्पों से डँसवाया गया, मेरे भोजन में विष दिया गया, और नागपाश से बाँधकर समुद्र में फेंक दिया गया, पर्वतों से मैं दबाया गया, और भी मेरे पिताने जो मेरे साथ दुर्व्यवहार किया तथा आप में भक्ति करने वाले मेरे साथ द्वेष करने से मेरे पिता को जो पाप लगा है, हे प्रभो ! आपकी प्रसन्नता से उन समस्त पापों से मेरे पिता शीघ्र मुक्त हो जाएँ। श्री भगवान् बोले—हे प्रह्लाद ? मेरी प्रसन्नता से यह सब पूर्ण हो जायगा, इसके अतिरिक्त हे असुरपुत्र ! मैं और भी वर देना चाहता हूँ, वह मुझ से अपनी इच्छानुसार माँग लो। प्रह्लाद बोला— हे भगवन् ! मैं आपके इस वर से ही कृतकार्य हो गया कि आपकी कृपा से आपमें हमारी निश्चल भक्ति सदा बनी रहेगी। समस्त जगत् के मूल कारण आप में जिसकी स्थिर भक्ति है, उसे धर्म, अर्थ और काम से क्या प्रयोजन ? मुक्ति भी उसके हाथ में ही रहती है। श्रीभगवान् बोले—हे प्रह्लाद ! मेरी भक्ति से युक्त तेरा चित्त मेरे में जिस प्रकार निश्चल भाव से लगा, उसी प्रकार मेरी कृपा से तुम्हें निर्वाणपद भी प्राप्त करेगा। श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! इस प्रकार कहकर उसके देखते देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये और प्रह्लाद ने भी पुनः आकर अपने पिता के चरणों को प्रणाम किया। हे द्विज ! तब पिता ने नाना प्रकार से पीड़ित किये हुए प्रह्लाद के शिर सूंघकर आँसू भरे हुए नेत्रों वाला उसने ऐसा कहा, बेटा जीवित तो हो ? ॥ २२-३० ॥

प्रीतिमांश्चाभवत् तस्मिन्ननुतापी महासुरः।
गुरुपित्रोश्चकारैवं शुश्रूषां सोऽपि धर्म्मवित् ॥ ३१ ॥

पितर्य्युपरतिं नीते नरसिंहस्वरूपिणा ।
विष्णुना सोऽपि दैत्यानां मैत्रेयाभूत् पतिस्ततः ॥ ३२ ॥

ततो राज्यद्युतिं प्राप्य कर्म्मशुद्धिकरीं द्विज ।
पुत्रपौत्रांश्च सुबहूनवाप्यैश्वर्य्यमेव च ॥ ३३ ॥

क्षीणाधिकारः स सदा पुण्यपापविवर्जितः ।
तदासौ भगवद्ध्यानात् परं निर्व्वाणमाप्तवान् ॥ ३४ ॥

वह महान् असुर हिरण्यकशिपु पीछे पश्चात्ताप करता हुआ प्रसन्न हो गया और धर्मात्मा प्रह्लाद भी गुरु एवं पिता की सेवा करने लगा। हे मैत्रेय ! नृसिंहस्वरूपी भगवान् श्रीविष्णु के द्वारा पिता के मारे जाने पर वह दैत्यों के राजा बना। हे द्विज ! पुनः अपने कर्मों को समाप्त करने वाली राज्य लक्ष्मी और बहुत से पुत्र पौत्रादि एवं ऐश्वर्य को प्राप्तकर कर्म के अधिकार समाप्त होने से पुण्यपाप से रहित हो जाने पर भगवान् को ध्यान करते हुए प्रह्लाद ने परम निर्वाण पद को प्राप्त किया ॥३१-३४ ॥

एवम्प्रभावी दैत्योऽसौ मैत्रेयासीन्महामतिः ।
प्रह्लादो भगवद्भक्तो यं त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३५ ॥

यस्त्वेतच्चरितं तस्य प्रह्लादस्य महात्मनः ।
श्रृणोति तस्य पापानि सद्या गच्छन्ति संक्षयम् ॥ ३६ ॥

अहोरात्रकृतं पापं प्रह्लादचरितं नरः ।
श्रृण्वन् पठंश्च मैत्रेय व्यपोहति न संशयः ॥ ३७ ॥

पौर्णमास्याममावस्यामष्टम्यामथवा पठन् ।
द्वादश्यां वा तदाप्नोति गोप्रदानफलं द्विज ॥ ३८ ॥

प्रह्लादं सकलापत्सु यथा रक्षितवान् हरिः ।
तथा रक्षति यस्तस्य श्रृणोति चरितं सदा ॥ ३९ ॥

हे मैत्रेय ! इस प्रकार के प्रभाव वाले परम भगवद्भक्त महामति प्रह्लाद जी हुए, जिनके विषय में तुमने पूछा था। जो कोई मनुष्य उन महात्मा प्रह्लाद जी के

चरित्र को श्रवण करता है, उसके पाप समूह शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं । हे मैत्रेय ! प्रह्लाद जी के चरित्र को सुनने और पढ़ने वाले मनुष्य का दिनरात में किया हुआ पाप विनष्ट हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं । हे विप्र ! पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी और द्वादशी को इस चरित्र को पढ़ने से गोदान का फल प्राप्त होता है । जिस प्रकार भगवान् श्रीविष्णु ने सभी आपत्तियों में प्रह्लाद की रक्षा की उसी प्रकार उनके चरित्र को सदा श्रवण करने वाले मनुष्य की भी भगवान् रक्षा करते हैं ॥ ३५-३९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में बीसवाँ अध्याय समाप्त।

प्रथम अंश - इक्कीसवाँ अध्याय

(प्रह्लादवंशवर्णन)

संह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च ।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्बलिर्ज्जज्ञे विरोचनात् ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—संह्लाद के पुत्र आयुष्मान्, शिवि और बाष्कल हुए तथा प्रह्लाद के पुत्र विरोचन थे, विरोचन से बलिका जन्म हुआ ॥ १ ॥

बलेः पुत्रशतन्त्वासीद् बाणज्येष्ठं महामुने ।
हिरण्याक्षसुताश्चासन् सर्व्व एव महाबालाः ॥ २ ॥

उत्कुरः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ।
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः ॥ ३ ॥

हे महामुने ! बलिके सौ पुत्र हुए, जिनमें बाणासुर सबसे ज्येष्ठ था । और हिरण्याक्ष के पुत्र उत्कुर, शकुनि, भूतसन्तापन, महानाभ, महाबाहु तथा कालनाम आदि सभी महाबलिष्ठ थे ॥ २-३ ॥

अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्द्धा शङ्करस्तथा ।
अयोमुखः शङ्कु शिराः कपिलः शम्बरस्तथा ॥ ४ ॥

एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः ।
स्वर्भानुर्वृषपर्व्वा च पुलोमा च महावलः ॥ ५ ॥

एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्य्यवान ।
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शर्म्मिष्ठा वार्षपर्व्वणी ॥ ६ ॥

उपदानवी-हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः ।
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा ॥ ७ ॥

(कश्यपजी की अन्य पत्नी) दनु से द्विमूर्द्धा, शम्बर, अयोमुख, शङ्कुशिरा, कपिल, शङ्कर, एकचक्र, महाबाहु, तारक, महाबल, स्वर्भानु, वृषपर्वा, पुलोम, महाबली तथा महापराक्रमी विप्रचित्ति ये सभी विख्यात पुत्र हुए

स्वर्भानु की पुत्री प्रभा थी और शर्मिष्ठा, उपदानी तथा हयशिरा ये परम सुन्दरी विख्यात पुत्रियाँ वृषपर्वा की थी। और वैश्वानरकी पुलोमा तथा कालका नाम की दो पुत्रियाँ थी ॥ ४-७ ॥

उभे सुते महाभागे मरीचेस्तु परिग्रहः।
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः ॥ ८ ॥

पौलोमा कालकेयाश्च मारीचतनयाः स्मृताः।
ततोऽपरे महावीर्य्या दारुणास्त्वतिनिर्घृणाः ॥ ९ ॥

सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तथा।
व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः ॥ १० ॥

वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा।
अञ्जको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥ ११ ॥

स्वर्भानुश्च महावीर्य्यश्चक्रयोधी महाबलः।
एते ते दानवाः श्रेष्ठा दनुवंशविवर्द्धनाः ॥ १२ ॥

ये दोनों ही महाभाग्यशालिनी कन्याएँ मरीचि के पुत्र कश्यप की भार्या थी। उनसे साठ हजार श्रेष्ठ दानव हुए। कश्यपजी के ये सब पुत्र पौलोम और कालकेय नाम से प्रसिद्ध थे। विप्रचित्ति के सिंहिका के गर्भ से अत्यन्त क्रूर महाबलवान् एवं भयङ्कर बहुत पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम व्यंश, शल्य, बलवान् नभ, महाबली वातायि, नमुचि, इल्वल, खसृम, अन्धक, नरक, कालनाभ, महावीर स्वर्भानु और महासुर चक्रयोधी। ये सभी दानवश्रेष्ठ दनु के वंश को बढ़ाने वाले हुए ॥ ८-१२ ॥

एतेषां पुत्रपौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
प्रह्लादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः कुले ॥ १३ ॥

समुत्पन्नाः सुमहता तपसा भावितात्मनः।
षट् सुताः सुमहासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः ॥ १४ ॥

शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका।
शुकी शुकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान्॥ १५ ॥

श्येनी श्येनांस्तथा भासी भासान् गृघ्रांश्च गृध्रयपि।
शुच्यौदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत॥ १६ ॥

अश्वानुष्ट्रान् गर्द्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः।
विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुड़ारुणौ॥ १७ ॥

इनके पुत्र पौत्रादि सैकड़ों हजारों हुए, तथा महातपस्या से आत्मज्ञानसम्पन्न प्रह्लाद जी के कुल में निवातकवच नाम के दैत्य उत्पन्न हुए। कश्यपमुनि की स्त्री ताम्रा की शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, शुचि, और गृध्रीका नाम की महाप्रभाव शालिनी छः कन्याएँ हुईं। तथा शुकी से शुक, उलूक और उलूकों के प्रतिपक्षी काक आदि जन्म लिये। श्येनी से श्येन, भासी से भास और गृदध्रिका से गृद्ध्रगण उत्पन्न हुए तथा सुची से जलचर पक्षीगण और सुग्रीवी से घोड़े, ऊँट, गदहें उत्पन्न हुए—इस प्रकार ताम्र का वंश कहा गया, विनता के अरुण और गरुड़ नामके दो विख्यात पुत्र हुए॥ १३-१७ ॥

सुपर्णः पततां श्रेष्ठो दारुणः पत्नगाशनः।
सुरसायां सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम्॥ १८ ॥

अनेकशिरसां ब्रह्मन् खेचराणां महात्मनाम्।
काद्रवेयास्तु बलिनः सहस्रममितौजसः॥ १९ ॥

सुपर्णवशगा ब्रह्मन् जज्ञिरे नैकमस्तकाः।
तेषां प्रधानभूतास्तु शेषवासुकितक्षकाः॥ २० ॥

शङ्खः श्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा।
एलापत्रस्तथा नागः कर्कोटक-धनञ्जयौ॥ २१ ॥

एते चान्ये च बह्वो दन्दशूका विषोल्वणाः।
गणं क्रोधवशं विद्धि तस्याः सर्व्वे च दंष्ट्रिणः॥ २२ ॥

स्थलजाः पक्षिणोऽब्जाश्च दारुणाः पिशिताशनाः।
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान्॥ २३ ॥

इनमें पक्षियों में गरुड़ पक्षियों में श्रेष्ठ, एवं भयङ्कर सर्पों को भक्षण करने वाले हैं। तथा सुरसा से अमिततेजस्वी हजारों सर्प उत्पन्न हुए, जो आकाश में विचरण करने वाले और अनेक शिरवाले थे। हे ब्रह्मन्! कद्रू के पुत्र भी अमिततेजस्वी हजारों सर्प ही हुए जो अनेक मस्तकवाले गरुड़जी के अधीन थे। उनमें शेष, वासुकि, तक्षक, शंख, श्वेत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, एलापुत्र नाग, कर्कोटक, धनञ्जय ये सभी प्रधान थे, इनके अतिरिक्त और अनेकों विषैले और दंशन करने वाले भी सर्प प्रधान हुए। क्रोधा के पुत्र बड़े बड़े निकले हुए दाँतवाले क्रोधवशगण हुए। ये सभी कच्चा मांस खाने वाले जलचर एवं स्थलचर पक्षिगण हैं, इसी प्रकार महाबलिष्ठ पिशाचों को भी क्रोधा ने ही उत्पन्न किया ॥ १८-२३ ॥

गास्तु वै जनयामास सुरभिर्म्महिषांस्तथा।
इरा वृक्ष-लता-वल्लीस्तृणजातीश्च सर्व्वशः।
खसा तु यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥ २४ ॥
अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्व्वान् समजीजनत्।
एते कश्यपदायादाः कीर्त्तिताः स्थाणु-जङ्गमाः ॥ २५ ॥

सुरभि ने गौ और महिषों को उत्पन्न किया। इराने वृक्ष, लता, वल्ली, और सभी प्रकार के तृण जाति को उत्पन्न किया। खसा से यक्ष, राक्षस, एवं मुनि से अप्सरागण उत्पन्न हुए तथा अरिष्टा ने महापराक्रमी गन्धर्वों को उत्पन्न किया। ये सभी स्थावर, जंगम, कश्यप जी की ही सन्तान हैं ॥ २४-२५ ॥

तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रसः।
एष मन्वन्तरे सर्गो ब्रह्मन् स्वारोचिषे स्मृतः ॥ २६ ॥
वैवस्वते च महति वारुणे वितते क्रतौ।
जुह्वानस्य ब्रह्मणो वै प्रजासर्ग इहोच्यते ॥ २७ ॥
पूर्व्वं यत्र तु सप्तर्षीनुत्पन्नान् सप्त मानसान्।
पुत्रत्वे कल्पयामास स्वयमेव पितामहः ॥ २८ ॥

इनके सैकड़ों हजारों पुत्र पौत्रादि हुए। हे ब्रह्मन्! यह स्वारोचिष-मन्वन्तर की सृष्टि कही गई है। और वैवस्वत मन्वन्तर में महान् वारुण नाम का यज्ञ हुआ, जिसमें स्वयं ब्रह्मा जी होता थे, उनके प्रजासर्ग को यहाँ कहता हूँ। पूर्व मन्वन्तर में

जो सप्तर्षिगण स्वयं ब्रह्माजी के मन से उत्पन्न हुए थे, उन्हीं को ब्रह्माजी ने इस कल्प में मानसपुत्ररूप से स्वीकार किया ॥ २६-२८ ॥

गन्धर्व्वभोगिदेवानां दानवानाञ्च सत्तम !
दितिर्व्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥ २९ ॥

तया चाराधितः सम्यक् कश्यपस्तपतां वरः ।
वरेण च्छन्दयामास सा च वव्रे ततो वरम् ॥ ३० ॥

पुत्रमिन्द्रवधार्थाय समर्थममितौजसम् ।
स च तस्मै वरं प्रादाद् भार्य्यायै मुनिसत्तम ॥ ३१ ॥

हे साधुश्रेष्ठ ! देव, दानव, गन्धर्व और नागों से अपने अनेकों पुत्रों को नष्ट हो जाने से दिति ने कश्यपमुनि को प्रसन्न किया । उसकी आराधना से सन्तुष्ट तपस्वियों में श्रेष्ठ कश्यपमुनि ने उसे वर मांगने के लिए कहा और उसने भी इन्द्र को वध करने में समर्थ अमित तेजस्वी पुत्र का वर माँगा । उन मुनिश्रेष्ठ ने भी अपनी भार्या दिति को यह वर दिया ॥ २९-३१ ॥

दत्त्वा च वरमत्युग्रं कश्यपस्तामुवाच ह ।
शक्रं पुत्रो निहन्ता ते यदि गर्भं शरच्छतम् ॥ ३२ ॥

समाहितातिप्रयता शुचिनी धारयिष्यसि ।
इत्येवमुक्तवा तां देवीं सङ्गतः कश्यपो मुनिः ॥ ३३ ॥

दधार सा च तं गर्भं सम्यक् शौचसमन्विता ।
गर्भमात्मवधार्थाय ज्ञात्वा तं मघवानपि ॥ ३४ ॥

शुश्रूषुस्तामथागच्छद् विनयादमराधिपः ।
तस्याश्चैवान्तरं प्रेप्सुरतिष्ठत् पाकशासनः ॥ ३५ ॥

ऊने वर्ष शते चास्या ददर्शान्तरमात्मना ।
अकृत्वा पादयोः शौचं दितिः शयनमाविशत् ॥ ३६ ॥

निद्राञ्चाहारयामास तस्याः कुक्षिं प्रविश्य सः ।
वज्रपाणिर्म्महागर्भं चिच्छेदाथ स सप्तथा ॥ ३७ ॥

किन्तु वर देते समय उससे कह दिया कि, यदि तुम समाहित होकर प्रयत्नपूर्वक पवित्रता के साथ अपने गर्भ को सौ वर्षों तक धारण करोगी, तब तुमसे इन्द्र का वध करने वाला पुत्र उत्पन्न होगा। ऐसी बात कहकर कश्यप मुनि ने उस देवी के साथ संगम किया और उसने भी सम्यक् प्रकार से पवित्रता पूर्वक रहती हुई उस गर्भ को धारण किया अपने वध के लिये उस गर्भ को जानकर देवराज इन्द्र भी नम्रता पूर्वक उसकी सेवा करने के लिये वहाँ आये। और उसके नियमों में कोई कमी हो जाय यही देखने की इच्छा से इन्द्र वही रहने लगे एवं सौ वर्षों में कुछ कम रहने पर इन्द्र ने कुछ अन्तर देखा। दिति अपने चरणों को पवित्र किये बिना ही सो गयी और निद्रा ने भी उसे आक्रान्त कर लिया, इसके बाद इन्द्र हाथ में वज्र लेकर उसकी कुक्षि में प्रवेश कर गये और गर्भ को काट कर सात खण्ड कर दिये ॥३२-३७॥

स पीड्यमानो वज्रेण प्ररुरोदातिदारुणम्।
मा रोदीरिति तं शक्रः पुनः पुनरभाषत ॥ ३८ ॥

सोऽभवत् सप्तधा गर्भस्तमिन्द्रः कुपितः पुनः।
एकैकं सप्तधा चक्रे वज्रेणारिविदारिणा ॥ ३९ ॥

मरुतो नाम देवास्ते बभूवुरतिवेगिनः।
यदुक्तं वै मघवता तेनैव मरुतोऽभवन्।
देवा एकोनपञ्चाशत् सहाया वज्रपाणिनः ॥ ४० ॥

किन्तु वज्रद्वारा पीड़ित होने पर वह गर्भ रोने लगा। 'मत रो' इस प्रकार के वचन इन्द्र ने उसे बार बार कहा किन्तु जब वह गर्भ सात टुकड़ों में विभक्त हो गया, तब क्रोधित होकर इन्द्र ने उन सात को भी अपने शत्रु को विनाश करने वाले वज्रद्वारा सात सात खण्ड कर दिये, वे सभी अमिततेजस्वी मरुत् नाम के देवगण हुए।

इन्द्र ने जो 'मा रोदी:' ऐसा वचन कहा था इसीसे सभी मरुत् हुए ये सभी उनचास देवगण इन्द्र के सहायक हुए ॥ ३८-४० ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

प्रथम अंश - बाईसवाँ अध्याय

(श्रीविष्णुभगवान् की चतुर्विध विभूति का वर्णन)

यदाभिषिक्तः स पृथुः पूर्व्वं राज्ये महर्षिभिः ।
ततः क्रमेण राज्यानि ददौ लोकपितामहः ॥ १ ॥

नक्षत्र-ग्रह-विप्राणां वीरुधाञ्चाप्यशेषतः ।
सोमं राज्येऽदधाद् ब्रह्मा यज्ञानां तपसामपि ॥ २ ॥

राज्ञां वैश्रवणं राज्ये जलानां वरुणं तथा ।
आदित्यानां पतिं विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ ३ ॥

प्रजापतीनां दक्षन्तु वासवं मरुतामपि ।
दैत्यानां दानवानाञ्च प्रह्लादमधिपं ददौ ॥ ४ ॥

पितृणां धर्म्मराजं तं यमं राज्येऽभ्यषेचयत् ।
ऐरावतं गजेन्द्राणाम् अशेषाणां पति ददौ ॥ ५ ॥

पतत्रिणाञ्च गरुड़ं देवानामपि वासवम् ।
उच्चैःश्रवसमश्वानां वृषभन्तु गवामपि ॥ ६ ॥

शेषन्तु नागराजानं मृगाणां सिंहमीश्वरम् ।
वनस्पतीनां राजानं प्लक्षमेवाभ्यषेचयत् ॥ ७ ॥

एवं विभज्य राज्यानि दिशां पालाननन्तरम् ।
प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा स्थापयामास सर्व्वतः ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले प्राचीन काल में जब महर्षियों ने पृथु का राज्यपदपर अभिषेक किया, तब लोक-पितामह ब्रह्माजी ने क्रमशः राज्यों को प्रदान किया ।

ब्रह्मा जी ने नक्षत्र, ग्रह, ब्राह्मण, समस्त वनस्पति, यज्ञ और तपस्या के राज्य पर चन्द्रमा को अभिषिक्त किया। विश्रवा के पुत्र कुबेर को राजाओं का, वरुण को जलों का, विष्णु को आदित्यों का, अग्नि को वसुओं का, दक्ष को प्रजापतियों का, इन्द्र को मरुतों का, दैत्य और दानवों का प्रह्लाद को अधिपति बनाया। पितृगण के अधिपति धर्मराज यम को बनाया और गजराजों का स्वामी ऐरावत को बनाया। अश्वों का अधिपति उच्चैःश्रवा को और गौओं का स्वामी वृषभ को, इसी प्रकार पक्षियों का स्वामी गरुड़ को तथा देवताओं का अधिपति इन्द्र को बनाया। सभी मृगों का स्वामी सिंह को और समस्त सर्पों का स्वामी शेषनाग को बनाया। तथा प्लक्ष को समस्त वनस्पतियों का राजा बनाया। इस प्रकार प्रजापति ब्रह्मा जी ने राज्यों का विभाजन करने के बाद दिक्पालों की व्यवस्था की ॥ १-८ ॥

पूर्व्वस्यां दिशि राजानं वैराजस्य प्रजापतेः ।
दिशः पालं सुधन्वानं सुतं वै सोऽभ्यषेचयत् ॥ ९ ॥

दक्षिणस्यां दिशि तथा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ।
पुत्रं शङ्खपदं नाम राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ १० ॥

पश्चिमस्यां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ।
केतुमन्तं महात्मानं राजानमभिषिक्तवान् ॥ ११ ॥

तथा हिरण्यरोमाणं पर्ज्जन्यस्य प्रजापतेः ।
उदीच्यां दिशि दुर्द्धर्षं राजानमभ्यषेचयत् ॥ १२ ॥

तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ।
यथाप्रदेशमद्यापि धर्म्मतः परिपाल्यते ॥ १३ ॥

वैराज प्रजापति के पुत्र सुधन्वा को पूर्वदिशा में दिक्पाल-पद पर स्थापित किया। कर्दम प्रजापति के पुत्र शंखपद को दक्षिण-दिशा में राजा के पद पर अभिषेक किया। और अपनी प्रतिज्ञा से कभी च्युत न होने वाले रजस के पुत्र केतुमान् को पश्चिम दिशा में राजा बनाया। इसी प्रकार पर्जन्य प्रजापति के पुत्र अत्यन्त दुर्द्धषहिरण्यरोमा को उत्तरदिशा में राजपद पर अभिषिक्त किया। ये सभी सात द्वीप एवं अनेकों नगरों से युक्त समस्त पृथिवीको यथा विभागानुसार धर्मपूर्वक पालन करते हैं ॥ ९-१३ ॥

एते सर्व्वे प्रवृत्तस्य स्थितौ विष्णोर्महात्मनः ।
विभूतिभूता राजानो ये चान्ये मुनि सत्तम ॥ १४ ॥
ये भविष्यन्ति ये भूताः सर्व्वे भूतेश्वरा द्विज ।
ते सर्व्वे सर्व्वभूतस्य विष्णोरंशा द्विजोत्तम ॥ १५ ॥

ये तु देवाधिपतयो ये च दैत्याधिपास्तथा ।
दानवानाञ्च ये नाथा ये नाथाः पिशिताशिनाम् ॥ १६ ॥

पशूनां ये च पतयः पतयो ये च पक्षिणाम् ।
मनुष्याणाञ्च सर्पाणां नागानाञ्चाधिपाश्च ये ॥ १७ ॥

वृक्षाणां पर्व्वतानाञ्च ग्रहाणाञ्चापि येऽधिपाः ।
अतीता वर्त्तमानाश्च ये भविष्यन्ति चापरे ॥ १८ ॥

ते सर्व्वे सर्व्वभूतस्य विष्णोरंशसमुद्भवाः ।
न हि पालनसामर्थ्यमृते सर्व्वेश्वरं हरिम् ॥ १९ ॥

स्थितौ स्थिरं महाप्राज्ञ भवत्यन्यस्य कस्यचित् ॥ २० ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! ये सभी तथा अन्य राजागण विश्वके पालन में प्रवृत्त श्रीविष्णुभगवान् के विभूतिस्वरूप हैं । हे विप्र ! जो जो भूताधिपति आगे होने वाले हैं, या पहले हुए हैं, वे सभी सर्वस्वरूप श्रीविष्णुभगवान् के ही अंश हैं । देवताओं, दैत्यों, दानवों और मांसभक्षकों के जो भी अधिपति हैं, पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों, सर्पों और नागों के जो भी अधिपति हैं तथा पर्वतों, ग्रहों के जो भी स्वामी हैं, इसी प्रकार भूत, भविष्यत् एवं वर्तमान कालीन जितने भी भूताधिपति हैं, वे सभी सर्वभूतमय भगवान् श्री विष्णु के ही अंशभूत हैं । पालनकार्य में समर्थ सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि के अतिरिक्त अन्य किसी में भी सृष्टि पालन की शक्ति नहीं है ॥ १४-२० ॥

सृजत्येष जगत्सृष्टौ स्थितौ पाति सनातनः ।
हन्ति चैवान्तकत्वे च रजः-सत्त्वादिसंश्रयः ॥ २१ ॥

चतुर्विभागः संसृष्टौ चतुर्धा संस्थितः स्थितौ ।
प्रलयञ्च करोत्यन्ते चतुर्भेदो जनार्दनः ॥ २२ ॥

एकेनांशेन ब्रह्मासौ भवत्यव्यक्तमूर्त्तिमान्।
मरीचिमिश्राः पतयः प्रजानामन्यभागतः ॥ २३ ॥

कालस्तृतीयस्तस्यांशः सर्व्वभूतानि चापरः ।
इत्थ चतुर्धा संसृष्टौ वर्त्ततेऽसौ रजोगुणः ॥ २४ ॥

एकांशेन स्थितौ विष्णुः करोति प्रतिपालनम् ।
मन्वादिरूपश्चान्येन कालरूपोऽपरेण च ॥ २५ ॥

सर्व्वभूतेषु चान्येन संस्थितः कुरुते रतिम् ।
सत्त्वं गुणं समाश्रित्य जगतः पुरुषोत्तमः ॥ २६ ॥

आश्रित्य तमसो वृत्तिमन्तकाले तथा पुनः ।
रुद्रस्वरूपो भगवानेकांशेन भवत्यजः ॥ २७ ॥

अग्न्यन्तकादिरूपेण भागेनान्येन वर्त्तते ।
कालस्वरूपो भागोऽन्यः सर्वभूतानि चापरः ॥ २८ ॥

रजोगुण और सत्त्वगुणादि के आश्रय से वे सनातन भगवान् जगत् के उत्पादन के समय उत्पत्ति, स्थिति के समय पालन और अन्त में कालरूप से इसका संहार भी करते हैं । वे जनार्दन भगवान् चार विभाग से सृष्टि के समय और चार विभाग से ही पालन के समय रहते हैं तथा चार रूप धारण करके अन्त में संहार भी करते हैं । अव्यक्त मूर्ति वे भगवान् एक अंश से ब्रह्मा, दूसरे अंश से मरीचि आदि प्रजापति होते हैं, और उनका तीसरा अंश काल और चतुर्थ अंश समस्त प्राणी हैं । इस प्रकार रजोगुणयुक्त वे भगवान् सृष्टि काल में चार रूप से स्थित रहते हैं । पुनः वे पुरुषोत्तम भगवान् जगत् की स्थिति के समय सत्त्वगुण का अवलम्बन करते हैं और उस समय भगवान् एक अंश से श्रीविष्णु होकर रक्षा करते हैं, दूसरे अंश से मनु आदि तीसरे अंश से काल और चौथे अंश से सभी प्राणियों में स्थित होते हैं । अन्तकाल में अजन्मा भगवान् तमोगुणवृत्तिका अवलम्बन करके एक अंश से रुद्रस्वरूप, दूसरे से अग्नि स्वरूप, तीसरे अंश से अन्तकादि स्वरूप, तथा चतुर्थ अंश से सर्वप्राणिस्वरूप होते हैं ॥ २१-२८ ॥

विनाशं कुर्वतस्तस्य चतुर्धैवं महात्मनः ।
विभागकल्पना ब्रह्मन् कथ्यते सार्वकालिकी ॥ २९ ॥

हे ब्रह्मन् ! विनाश के लिए महात्मा की यह चार प्रकार (अंश) विभाग की सार्वकालिक कल्पना की गयी है—ऐसा कहा जाता है ॥ २९ ॥

ब्रह्मा दक्षादयः कालस्तथैवाखिलजन्तवः ।
विभूतयो हरेरेता जगतः सृष्टिहेतवः ॥ ३० ॥
विष्णुर्म्मन्वादयः कालः सर्वभूतानि च द्विज ।
स्थितेर्निमित्तभूतस्य विष्णोरेता विभूतयः ॥ ३१ ॥
रुद्रकालान्तकाद्याश्च समस्ताश्चैव जन्तवः ।
चतुर्धा प्रलयायैता जनार्द्दनविभूतयः ॥ ३२ ॥
जगदादौ तथा मध्ये सृष्टिरा प्रलयाद् द्विज ।
धात्रा मरीचिमिश्रैश्च क्रियते जन्तुभिस्तथा ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा सृजत्यादिकाले मरीचिप्रमुखास्ततः ।
उत्पादयन्त्यपत्यानि जन्तवश्च प्रतिक्षणम् ॥ ३४ ॥

न कालेन विना ब्रह्मा सृष्टिनिष्पादको द्विज ।
न प्रजापतयः सर्वे न चैवाखिलजन्तवः ॥ ३५ ॥
एवमेव विभागोऽयं स्थितावप्युपदिश्यते ।
चतुर्धा देवदेवस्य मैत्रेय प्रलये तथा ॥ ३६ ॥
यत्किञ्चित् सृज्यते येन सत्त्वजातेन वै द्विज ।
तस्य सृज्यस्य संभूतौ तत् सर्वं वै हरेस्तनुः ॥ ३७ ॥

ब्रह्मा, दक्ष, आदि प्रजापतिगण, काल और समस्त प्राणी ये सभी भगवान् श्रीहरि की विभूतियाँ जगत् की उत्पत्ति की कारण हैं । हे विप्र ! श्रीविष्णु ही मनु आदि, काल और सम्पूर्ण प्राणिगण । ये सब जगत् की स्थिति के कारणस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु की विभूतियाँ हैं । इसी प्रकार रुद्र, काल, अन्तक आदि और समस्त प्राणी—ये जनार्दन भगवान् की चार विभूतियाँ प्रलय के कारण हैं । हे विप्र ! जगत्

के आदि, मध्य और प्रलयपर्यन्त ब्रह्मा, मरीचि आदि एवं अन्य प्रकार के जीवों से सृष्टि उत्पन्न होती है। सर्वप्रथम सृष्टि के आरम्भकाल में ब्रह्मा जी रचना करते हैं, पुन: मरीचि आदि प्रजापतिगण और उसके बाद प्रतिक्षण अन्य प्राणी सन्तान उत्पन्न करते हैं। हे द्विज ! काल के बिना ब्रह्मा और अन्य प्रजापतिगण अथवा दूसरा कोई भी प्राणी सृष्टि नहीं कर सकते (अतएव कालस्वरूप श्रीविष्णुभगवान् ही सृष्टि के कारण हैं)। इस प्रकार हे मैत्रेय ! जगत् की स्थिति और प्रलय में भी उन देवाधिदेव के चार विभाग कहे गये हैं। हे विप्र ! जिस किसी प्राणी द्वारा जो कुछ भी सृजन किया जाता है उस सृज्य (उत्पन्न) होने वाले जीव की उत्पत्ति में श्रीहरि का शरीर ही कारण है ॥ ३०-३७ ॥

हन्ति वा यत् क्वचित् किञ्चिद् भूतं स्थावरजंगमम्।
जनार्दनस्य तद् रौद्रं मैत्रेयान्तकरं वपु: ॥ ३८ ॥

एवमेव जगत्स्रष्टा जगत्पाता तथैव च।
जगद् भक्षयता चेशः समस्तस्य जनार्दनः ॥ ३९ ॥

सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधैवं सम्प्रवर्त्तते।
गुणप्रवृत्त्या परमं पदं तस्यागुणं महत् ॥ ४० ॥

तत्त्वज्ञानमयं वापि स्वसंवेद्यमनौपमम्।
चतुप्रकारं तदपि स्वरूपं परमात्मनः ॥ ४१ ॥

हे मैत्रेय ! जो कोई भी स्थावर, जंगम, प्राणियों में से किसी को नष्ट किया जाता है तो वह नाश करने वाला भी श्रीजनार्दन भगवान् का ही रौद्ररूप है। इस प्रकार जनार्दन भगवान् ही समस्त जगत् के उत्पादक, पालक एवं संहारक होते हुए स्वयं भी जगत् स्वरूप हैं। जगत् की उत्पत्ति, पालन और अन्त के समय भी वे जनार्दन भगवान् तीनों गुणों से प्रवृत्त होते हैं, तथापि उनका परमपद महानिर्गुण है। परमात्मा का वह स्वरूप ज्ञानमय, व्यापक, स्वसंवेद्य और अनुपम है तथा वह चार प्रकार का होता है ॥ ३८-४१ ॥

मैत्रेय उवाच।

चतु:प्रकारतां तस्य ब्रह्मभूतस्य वै मुने।
ममाचक्ष्व यथान्यायं यदुक्तं परमं पदम् ॥ ४२ ॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे मुने ! आपने जो भगवान् के परमपद का वर्णन किया वह चार प्रकार के कैसे है ? यह यथा योग्य मुझे कहिये ॥ ४२ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय कारणं प्रोक्तं साधनं सर्व्ववस्तुषु ।
साध्यञ्च वस्तवभिमत यत्साधयितुमात्मनः ॥ ४३ ॥

योगिनो मुक्तिकामस्य प्राणायामादिसाधनम् ।
साध्यञ्च परमहब्रह्म पुनर्नावर्त्तते यतः ॥ ४४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! सभी वस्तुओं का कारण ही उनका साधन है और जिस इच्छित वस्तु की सिद्धि की जाती है, वह साध्य कही जाती है । मुक्ति चाहने वाले योगियों का प्राणायाम साधन हैं और परमब्रह्म ही साध्य है, जहाँ से पुनः लौटना नहीं पड़ता ॥ ४३-४४ ॥

साधनालम्बनं ज्ञानं मुक्तये योगिनो हि यत् ।
स भेदः प्रथमस्तस्य ब्रह्मभूतस्य वै मुने ॥ ४५ ॥

युञ्जतः क्लेशमुक्तयर्थं साध्य यद् ब्रह्म योगिनः ।
तदालम्बनविज्ञानं द्वितीयोंऽशो महामुने ॥ ४६ ॥

उभयोस्त्वविभागेन साध्य-साधनयोर्हि यत् ।
विज्ञानमद्वैतमयं तद्भागोऽन्यो मयोदितः ॥ ४७ ॥

ज्ञानत्रयस्य चैतस्य विशेषो यो महामुने ।
तन्निराकरणद्वारा दर्शितात्मस्वरूपवत् ॥ ४८ ॥

निर्व्यापारमनाख्येयं व्याप्तिमात्रमनौपमम् ।
आत्मसम्बोधविषयं सत्तामात्रमलक्षणम् ॥ ४९ ॥

प्रशान्तमभयं शुद्धमविभाव्यमसंश्रितम् ।
विष्णोर्ज्ञानमयस्योक्तं तज्ज्ञानं परमं पदम् ॥ ५० ॥

हे मुने ! योगियों की मुक्ति के लिए जो कारण है वह 'साधनालम्बन ज्ञान' कहा जाता है और वही ब्रह्मभूत परम पद का प्रथम भेद है । क्लेश से मुक्त होने

के लिए योगाभ्यास में निरत योगी का जो ब्रह्म साध्य है, हे महामुने ! उनका ज्ञान ही 'आलम्बन विज्ञान' नामक दूसरा भेद है । इन दोनों साध्य-साधनों का अभेद पूर्वक जो अद्वैतमय ज्ञान है उसी को मैं तीसरा भेद कहता हूँ । हे महामुने ! इन तीनों प्रकार के ज्ञान की जो विशेषता है उसके निराकरण द्वारा अनुभव किये हुए आत्मस्वरूप के समान ज्ञानरूप भगवान् श्रीविष्णु का जो व्यापार-रहित अनिर्वचनीय, व्याप्तिमात्र, अलक्षण, भावनातीत, आश्रयरहित रूप है, वही ब्रह्मनामक ज्ञान है ॥ ४५-५० ॥

तत्रान्यज्ञानरोधेन योगिनो यान्ति ये लयम् ।
संसारकर्षणोप्तौ ते यान्ति निर्बीजतां द्विज ॥ ५१ ॥

एवम्प्रकारममलं नित्यं व्यापकमक्षयम् ।
समस्तभेदरहितं विष्ण्वाख्यं परमं पदम् ॥ ५२ ॥

तद् ब्रह्म परमं योगी यतो नावर्त्तते पुनः ।
अपुण्यपुण्योपरमे क्षीणक्लेशोऽतिनिर्म्मलः ॥ ५३ ॥

हे विप्र ! योगिजन अन्य ज्ञानों को निरोध के द्वारा इस चौथे भेद में लीन हो जाते हैं वे इस संसार रूपी क्षेत्र में बीजरोपण से रहित (वासनारहित) हो जाते हैं (यद्यपि वे लोकसंग्रह के लिए कर्म करते भी हैं तथापि उन्हें उन कमों का कोई पाप-पुण्यरूप फ़ल प्राप्त नहीं होता है) । इस प्रकार से वह निर्मल, नित्य, व्यापक, अविनाशी और सम्पूर्ण त्याज्य गुणों से विहीन विष्णुनामक परमपद है । पुण्यपापों से रहित, क्लेशों से निवृत्त अत्यन्त निर्मल योगी उस परमब्रह्म को प्राप्त करता है और प्राप्त होने के बाद वहाँ से लौटता नहीं ॥ ५१-५३ ॥

द्वे रूपे ब्रह्मणस्तस्य मूर्त्तञ्चामूर्त्तमेव च ।
क्षराक्षरस्वरूपे ते सर्व्वभूतेष्ववस्थिते ॥ ५४ ॥

अक्षरं तत् परं ब्रह्म क्षरं सर्व्वमिदं जगत् ।
एकदेशस्थितस्याग्नेर्ज्योत्स्ना विस्तारिणी यथा ॥ ५५ ॥

परस्य ब्रह्मणः शक्तिस्तदेतदखिलं जगत् ।
तत्राप्यासन्नदूरत्वाद् बहुत्वस्वल्पतामयः ॥
ज्योत्स्नाभेदोऽस्ति तच्छक्तेस्तद्वन्मैत्रेय विद्यते ॥ ५६ ॥

ब्रह्म-विष्णु-शिवा ब्रह्मन् प्रधाना ब्रह्मशक्तयः ।
ततश्च देवा मैत्रेय न्यूना दक्षादयस्ततः ॥ ५७ ॥

ततो मनुष्याः पशवो मृग-पक्षि-सरीसृपाः ।
न्यूना न्यूनतराश्चैव वृक्ष-गुल्मादयस्ततः ॥ ५८ ॥

तदेतदक्षरं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम् ।
आविर्भाव-तिरोभाव-जन्म-नाश-विकल्पवत् ॥ ५९ ॥

उस ब्रह्म के मूर्त और अमूर्त नामक दो रूप हैं, वे दोनों क्षर और अक्षर रूप से समस्त प्राणियों में स्थित रहते हैं। एक स्थान में स्थित अग्नि का प्रकाश जैसे सर्वत्र फैलता है, उसी प्रकार यह समस्त जगत् परमब्रह्म की ही शक्ति है। हे मैत्रेय ! सामीप्य और दूरत्व के भेद से अग्नि के प्रकाश में जैसे आधिक्य, न्यूनत्व (कमी बेसी) रहता है वैसे ही ब्रह्म की शक्ति में भी तारतम्य होता है। और हे मैत्रेय ! ब्रह्मा, विष्णु, और शिव ब्रह्मा की प्रधान शक्तियाँ हैं उनसे न्यून शक्तिसम्पन्न देवगण, तथा उनसे भी न्यूनशक्तिवाले दक्ष आदि प्रजापतिगण हैं। और उनसे न्यूनशक्तिवाले मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सरीसृर्प आदि, एवं वृक्ष गुल्म आदि उनसे भी अत्यन्त न्यून शक्तिवाले हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! आविर्भाव, तिरोभाव (उत्पन्न विनाश) जन्म और मृत्युवाला भी यह समस्त जगत् अविनाशी और नित्य है ॥ ५४-५९ ॥

सर्व्वशक्तिमयो विष्णुः स्वरूपं ब्रह्मणोऽपरम् ।
मूर्त्तं यद् योगिभिः पूर्व्वं योगारम्भेषु चिन्त्यते ॥ ६० ॥

सालम्बनो महायोगः सबीजो यत्र संस्थितः ।
मनस्यव्याहते सम्यग् युञ्जतां जायते मुने ॥ ६१ ॥

सर्वशक्तिमान् श्रीविष्णु भगवान् ब्रह्म के परमरूप तथा मूर्तस्वरूप हैं, जिसे योगिजन योग के प्रारम्भ में चिन्तन करते हैं ॥ ६० ॥

हे मुने ! जिनमें मनको सम्यक् प्रकार से सदा लगने वाले योगियों के आलम्बन से युक्त सम्प्रज्ञात महायोग की प्राप्ति होती है ॥ ६१ ॥

स परः सर्व्वशक्तीनां ब्रह्मणः समनन्तरः ।
मूर्त्तं ब्रह्म महाभाग सर्व्वब्रह्ममयो हरिः ॥ ६२ ॥

तत्र सर्व्वमिदं प्रोतमोतञ्चैवाखिलं जगत्।
ततो जगज्जगत् तस्मिन् स जगच्चाखिलं मुने ॥ ६३ ॥

क्षराक्षरमयो विष्णुर्विभर्त्त्यखिलमीश्वरः।
पुरुषाव्याकृतमयं भूषणास्त्रस्वरूपवत् ॥ ६४ ॥

हे महाभाग ! वह ब्रह्ममय श्रीविष्णुभगवान् समस्त पराशक्तियों में प्रधान और ब्रह्म के अत्यन्त समीपवर्ती मूर्त्तिमान् ब्रह्मस्वरूप हैं। हे मुने ! उन श्रीविष्णु भगवान् में ही यह समस्त जगत् ओतप्रोत है और उनसे ही उत्पन्न हुआ है, उनमें ही स्थित है तथा वे ही समस्त जगत्-स्वरूप हैं। इस प्रकार क्षर (कार्य) अक्षर (कारण) रूप ईश्वर श्रीविष्णुभगवान् ही पुरुष तथा प्रकृतिरूप होकर भूषण और आयुधरूप से समस्त जगत् को धारण करते हैं ॥ ६०-६४ ॥

मैत्रेय उवाच।

भूषणास्त्रस्वरूपस्थं यच्चैतदखिलं जगत्।
बिभर्ति भगवान् विष्णुस्तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ६५ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—श्रीविष्णु भगवान् भूषण और आयुधरूप से इस समस्त जगत् को कैसे धारण करते हैं, यह आप मुझे बतलाइये ॥ ६५ ॥

पराशर उवाच।

नमस्कृत्वाप्रमेयाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
कथयामि यथाख्यातं वशिष्ठेन ममाभवत् ॥ ६६ ॥

आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम्।
बिभर्त्ति कौस्तुभमणिस्वरूपं भगवान् हरिः ॥ ६७ ॥

श्रीवत्ससंस्थानधरमनन्ते च समाश्रितम्।
प्रधानं बुद्धिरप्यास्ते गदारूपेण माधवे ॥ ६८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—जगतपालक श्रीविष्णु को नमस्कार करके वशिष्ठ मुनि ने जैसा मुझसे कहा है, उसे अब मैं आपको कहता हूँ। निर्लेप और निर्गुण एवं निर्मल इस जगत् की आत्मा को श्रीहरि कौस्तुभमणि के रूप से धारण करते हैं।

और अनन्त ने प्रधान को श्रीवत्स रूप से आश्रय दिया है तथा बुद्धि श्रीमाधव जी में गदारूप से विराजमान हैं ॥ ६६-६८ ॥

भूतादिमिन्द्रियादिञ्च द्विधाहंकारमीश्वरः ।
बिभर्त्ति शङ्खरूपेण शाङ्‌र्गरूपेण च स्थितम् ॥ ६९ ॥

बलस्वरूपमत्यन्तजवेनान्तरितानिलम् ।
चक्रस्वरूपञ्च मनो धत्ते विष्णुः करे स्थितम् ॥ ७० ॥

पञ्चरूपा तु या माला वैजयन्ती गदाभृतः ।
सा भूतहेतुसंघातो भूतमाला च वै द्विज ॥ ७१ ॥

यानीन्द्रियाण्यशेषाणि बुद्धिधिकर्म्मात्मकानि वै ।
शररूपाण्यशेषाणि तानि धत्ते जनार्दनः ॥ ७२ ॥

बिभर्त्ति यच्चासिरत्नमच्युतोऽत्यन्तनिर्म्मलम् ।
विद्यामयन्तु तज्ज्ञानमविद्याकोशसंस्थितम् ॥ ७३ ॥

इत्थ पुमान् प्रधानञ्च बुद्ध्यहङ्कारमेव च ।
भूतानि च हृषीकेशे मनः सर्व्वेन्द्रियाणि च ।
विद्याविद्ये च मैत्रेय सर्व्वमेतत् समाश्रितम् ॥ ७४ ॥

अस्त्रभूषणसंस्थानस्वरूपं रूपवर्जितः ।
बिभर्त्ति मायारूपोऽसौ श्रेयसे प्राणिनां हरिः ॥ ७५ ॥

सविकारं प्रधानञ्च पुमांश्चैवाखिल जगत् ।
बिभर्त्ति पुण्डरीकाक्षस्तदेवं परमेश्वरः ॥ ७६ ॥

वे भूतों के आदि कारण और इन्द्रियों के आदि कारण तामस एवं राजस अहङ्कार को शंख और शाङ्‌र्गधनुष के रूप से धारण करते हैं । अपने वेग से वायुको भी पराजित करने वाला और अत्यन्त चञ्चल, सात्त्विक अहङ्काररूप मन भगवान् श्रीविष्णु के हाथ में विराजमान चक्र का रूप धारण करता है । और (मुक्ता, माणिक्य, मरकत, इन्द्रनील और हीरक युक्त) जो भगवान् गदाधर की पाँच रूपवाली माला है वह पञ्चतन्मात्राओं और पञ्च महाभूतों का ही समूह है । तथा श्री जनार्दन भगवान्

समस्त ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों को अपने बाणरूप से धारण करते हैं। भगवान् अच्युत अत्यन्त निर्मल जो खड्ग धारण करते हैं, वह अविद्यारूपी कोश में स्थित विद्यारूपी ज्ञान है। हे मैत्रेय ! इस प्रकार भगवान् श्रीहृषीकेश में पुरुष, प्रधान, बुद्धि, अहङ्कार, पञ्च महाभूत, मन, इन्द्रियाँ विद्या और अविद्या ये सभी विराजमान हैं। भगवान् श्रीहरि रूपरहित होने पर भी प्राणियों के कल्याण के लिये मायामयरूप धारण करके इन सभी को अस्त्र और आभूषण रूप से धारण करते हैं। इस प्रकार पुण्डरीकाक्ष परमेश्वर विकारसहित प्रधान पुरुष और समस्त जगत् को धारण करते हैं ॥ ६९-७६ ॥

या विद्या या तथाऽविद्या यत् सद् यच्चासदव्ययम्।
तत् सर्व्वं सर्व्वभूतेशे मैत्रेय मधुसूदने ॥ ७७ ॥

कला-काष्ठा-निमेषादि-दिनर्त्वयन-हायनैः।
कालस्वरूपो भगवानपरो हरिरव्ययः ॥ ७८ ॥

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोको मुनिसत्तम !
महर्जनस्तपः सत्यं सप्तलोका इमे विभुः ॥ ७९ ॥

लोकात्ममूर्त्तिः सर्व्वेषां पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजः।
आधारः सर्व्वविद्यानां स्वयमेव हरिः स्थितः ॥ ८० ॥

देव-मानुष-पश्वादिस्वरूपैर्बहुभिः स्थितः।
ततः सर्व्वेश्वरोऽनन्तो भूतमूर्त्तिरमूर्त्तिमान् ॥ ८१ ॥

ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्व्वणानि वै।
इतिहासोपवेदास्तु वेदान्तेषु तथोक्तयः ॥ ८२ ॥

वेदाङ्गानि समस्तानि मन्वादिगदितानि च।
शस्त्राण्यशेषाण्याख्यानान्यनुवाकाश्च ये क्वचित् ॥ ८३ ॥

काव्यालापाँश्च ये केचिद् गीतकान्यखिलानि च।
शब्दमूर्त्तिधरस्यैतद् वपुर्विष्णोर्म्महात्मनः ॥ ८४ ॥

हे मैत्रेय ! विद्या, अविद्या, सत्, असत्, अव्ययरूप आदि जो भी है, वे सभी सर्वभूतेश्वर भगवान् श्रीमधुसूदन में ही विराजमान है । कला, काष्ठा, निमेष, दिन ऋतु, अयन, तथा वर्ष रूप से वही कालस्वरूप, पापरहित अविनाशी भगवान् श्रीहरि विराजमान हैं । हे मुनिसत्तम ! वही व्यापक भगवान्, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, मह, जन, सत्य आदि सातलोक भी हैं । समस्त विद्याओं के आधार तथा सभी पूर्वजों के भी पूर्वज भगवान् श्रीहरि स्वयं लोकमयस्वरूप से अवस्थित हैं । निराकार और सर्वेश्वर अनन्त भगवान् ही भूतस्वरूप से देवता, मनुष्य, पशु आदि अनेकों रूपों में स्थित हैं । ऋक्, यजु, साम, अथर्व—ये चारों वेद, (महाभारतादि) इतिहास, (आयुर्वेद आदि) उपवेद, वेदान्त की उक्ति, सम्पूर्ण वेदाङ्ग, मनु आदि के समस्त धर्मशास्त्र तथा समस्त (पुराण आदि) शास्त्र सभी आख्यान, अनुवाक, अखिल काव्य चर्चा और सभी रागरागिनी आदि शब्द मूर्तिधारी महात्मा श्रीविष्णु भगवान् के ही शरीर हैं ॥ ७७-८४ ॥

यानि मूर्त्तान्यमूर्त्तानि यान्यत्रान्यत्र वा क्वचित् ।
सन्ति वै वस्तुजातानि तानि सर्व्वाणि तद्वपुः ॥ ८५ ॥
अहं हरिः सर्वमिदं जनार्द्दनो नान्यत् ततः कारणकार्य्यजातम् ।
ईदृङ्मनो यस्य न तस्य भूयो भवोद्भवा द्वन्द्वगदा भवन्ति ॥ ८६ ॥

इस लोक में अथवा और भी कहीं जितने भी मूर्त या अमूर्त पदार्थसमूह हैं वे सब उन्हीं (श्रीविष्णु) का ही शरीर हैं । मैं तथा यह समस्त जगत् जनार्दन ही हैं भगवान् के अतिरिक्त और कुछ भी कारण अथवा कार्य नहीं है,—इस प्रकार का विचार जिसके मन में स्थित है उसे पुनः देह से उत्पन्न रागादि द्वन्द्वरूप रोग नहीं होते ॥ ८५-८६ ॥

इत्येष तेऽशंः प्रथमः पुराणस्यास्य वै द्विज !
यथावत कथितो यस्मिन् श्रुते पापैः प्रमुच्यते ॥ ८७ ॥

कार्त्तिक्यां पुष्करस्नाने द्वादशाब्देन यत् फलम् ।
तदस्य श्रवणात् सर्वं मैत्रेयाप्नोति मानवः ॥ ८८ ॥

देवर्षिपितृगन्धर्वयक्षादीनाञ्च सम्भवम् ।
भवन्ति शृणवतः पुंसो देवाद्या वरदा मुने ॥ ८९ ॥

हे विप्र ! इस प्रकार इस पुराण का (विष्णुपुराण का) प्रथम अंश यथावत् कहा, गया, जिसके श्रवण करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । हे मैत्रेय ! बारह वर्षों तक कार्तिक मास में पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है, वह सब इस प्रथम अंश के श्रवण मात्र से मनुष्य को मिलता है । हे मुने ! देव, ऋषि, गन्धर्व, पितृ, यक्ष, आदि की उत्पत्ति का श्रवण करने वाले पुरुष को वे सभी देवता आदि वर दायक होते हैं ॥ ८७-८९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के प्रथम अंश में बाईसवाँ अध्याय समाप्त ।

(प्रथम अंश पूर्ण हुआ)

श्रीविष्णु महापुराण

द्वितीय अंश - पहला अध्याय

(प्रियव्रतवंश का वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

भगवन् सम्यगाख्यातं ममैतदखिलं त्वया ।
जगतः सर्गसम्बन्धि यत् पृष्टोऽसि गुरो मया ॥ १ ॥

योऽयमंशो जगत्सृष्टिसम्बद्धो गदितस्त्वया ।
तत्राहं श्रोतुमिच्छामि भूयोऽपि मुनिसत्तम ॥ २ ॥

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायम्भुवस्य यौ ।
तयोरुत्तानपादस्य ध्रुवः पुत्रस्त्वयोदितः ॥ ३ ॥

प्रियव्रतस्य नैवोक्ता भवता द्विज सन्ततिः ।
तामहं श्रोतुमिच्छामि प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेय जी बोले—हे गुरो ! जगत् की सृष्टि के विषय में मैंने जो आपसे पूछा था वह सब आपने सम्यक् प्रकार से कह दिया । हे मुनिश्रेष्ठ ! आपने जगत् की सृष्टि सम्बन्धी यह जो पहला अंश कहा उसमें और भी मैं सुनना चाहता हूं । आपने स्वायम्भुवमनु के जो प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र कहा उनमें उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव के विषय में तो आपने कहा । किन्तु हे द्विज ! प्रियव्रत की सन्तान के विषय में आपने नहीं कहा उसको मैं सुनना चाहता हूं प्रसन्नतापूर्वक मुझे सुनाइये ॥ १-४ ॥

पराशर उवाच ।

कद्दमस्यात्मजां कन्यामुपयेमे प्रियव्रतः ।
सम्राट् कुक्षी च तत्कन्ये दश पुत्रास्तथापरे ॥ ५ ॥

श्रीपराशर जी बोले—प्रियव्रत ने कर्दम की कन्या से विवाह किया और उससे सम्राट् तथा कुक्षीनाम की दो कन्याएँ एवं दश पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥

महाप्राज्ञा महावीर्य्या विनीता दयिताः पितुः ।
प्रियव्रतसुताः ख्यातास्तेषां नामानि मे श्रृणु ॥ ६ ॥

अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान् द्युतिमांस्तथा ।
मेधा मेधातिथिर्भव्यः सवनः पुत्र एव च ॥ ७ ॥

ज्योतिष्मान् दशमस्तेषां सत्यनामा सुतोऽभवत् ।
प्रियव्रतस्य पुत्राणां प्रख्यातो बलवीर्य्यतः ॥ ८ ॥

मेधाग्निबाहु-पुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः ।
जातिस्मरा महाभाग न राज्याय मनो दधुः ॥ ९ ॥

निर्म्ममाः सर्वकालन्तु समस्तार्थेषु वै मुने ।
चक्रुः क्रिया यथान्यायमफलाकाङ्क्षिणो हि ते ॥१० ॥

प्रियव्रत के पुत्र बड़े बुद्धिमान्, बलवान्, विनयसम्पन्न तथा अपने मातापिता के परमप्रिय थे, उनके नाम सुनो । आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, भव्य, सवन, पुत्र और यथार्थनामवाला ज्योतिष्मान् ये प्रियव्रत के दश पुत्र अपने बल और पराक्रम के कारण विख्यात तथा अपने पिता के प्रिय एवं नम्र स्वभाव वाले थे । उनमें मेधा, अग्निबाहु और पुत्र—ये तीन पुत्र महाभाग्य शाली पूर्वजन्म के वृतान्त को जाननेवाले थे । और योगपरायण उन लोगों ने राज्यभोगों का परित्याग कर दिया था । हे मुने ! वे सभी निर्मलचित्त समत्व बुद्धिवाले फल की आकांक्षा से रहित होकर सदा योगक्रिया सम्पन्न करते थे ॥ ६-१० ॥

प्रियव्रतो ददौ तेषां सप्तानां मुनिसत्तम !
विभज्य सप्त द्वीपानि मैत्रेय सुमहात्मनाम् ॥ ११ ॥

जम्बूद्वीपं महाभाग सोऽग्नीध्राय ददौ पिता।
मेधातिथेस्तथा प्रादात् प्लक्षद्वीपमथापरम्॥ १२॥

शाल्मले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान्।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः॥ १३॥

द्यु तिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्।
शाकद्वीपेश्वरञ्चापि भव्यञ्चक्रे च स प्रभुः॥ १४॥

सवनं पुष्करद्वीपे राजानं समकारयत्॥ १५॥

हे मैत्रेय! राजा प्रियव्रतने अपने सात महात्मा पुत्रोंको सातों द्वीप विभक्त करके बाँट दिये। हे महाभाग! पिता प्रियव्रतने आग्नीध्रको जम्बुद्वीप और मेधातिथिको प्लक्षद्वीप दिया। और शल्मलद्वीपमें वपुष्मान् को अभिषिक्त करके पिताने ज्योतिष्मान् को कुशद्वीपका राजा बनाया। पिताने द्युतिमान् को क्रौञ्चद्वीपमें राज्य करने का आदेश दिया तथा भव्यको शाक्तद्वीपका राज्य एवं सवनको पुष्करद्वीपका राज्य प्रदान किया॥ ११-१५॥

जम्बूद्वीपेश्वरो यस्तु अग्नीध्रो मुनिसत्तम।
तस्य पुत्रा बभुवुस्ते प्रजापतिसमा नव॥ १६॥

नाभिः किम्पुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः।
रम्यो हिरण्वान् षष्ठश्च कुरुर्भद्राश्व एव च॥ १७॥

केतुमालस्तथैवान्यः साधुचेष्टो नृपोऽभवत्।
जम्बुद्वीपविभागांश्च तेषां विप्र निशामय॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जम्बूद्वीप के अधिपति आग्नीध्र के प्रजापति के समान गुणवाले नौ पुत्र हुए। वे नाभि, किम्पुरुष, हरिवर्ष, इलावृत्त, रम्य, हिरण्वान् कुरु, भद्राश्व और साधुवृत्तिवाले केतुमाल थे। हे ब्राह्मण अब जम्बुद्वीप का विभाग सुनो॥ १६-१८॥

पित्रा दत्तं हिमाह्वन्तु वर्षं नाभेस्तु दक्षिणम्।
हेमकूटं तथा वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः॥ १९॥

तृतीयं नैषधं वर्षं हरिवर्षाय दत्तवान्।
इलावृताय प्रददौ मेरुर्यत्र तु मध्यगः ॥ २० ॥

नीलाचलाश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता।
श्वेतं तदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते ॥ २१ ॥

यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्ष तत् कुरवे ददौ।
मेरोः पूर्व्वेण यद् वर्षं भद्राश्वाय प्रदत्तवान् ॥ २२ ॥

गन्धमादनवर्षन्तु केतुमालाय दत्तवान्।
इत्येतानि ददौ तेभ्यः पुत्रेभ्यः स नरेश्वरः ॥ २३ ॥

पिता आग्नीध्र ने दक्षिण का हिमवर्ष नाभि को दिया और किम्पुरुष को हेमकूट तथा तीसरा निषध नामका वर्ष हरिवर्ष को दिया इसी प्रकार जिसके मध्यभाग में मेरुपर्वत है वह इलावृत्तवर्ष इलावृत्त को प्रदान किया। और पिता ने नीलाचल से सटा हुआ वर्ष रम्य को दिया। एवं उसके उत्तर में स्थित श्वेतवर्ष हिरण्यवान् को दिया और श्रृङ्गवान् पर्वतों के उत्तर में अवस्थित वर्ष कुरु को दिया। मेरुपर्वत के पूर्व में स्थित वर्ष भद्राश्व को देकर केतुमाल को गन्धमादनवर्ष दे दिया। इस प्रकार राजा आग्नीध्र ने अपने पुत्रों को ये सभी वर्ष दे दिये ॥ १९-२३ ॥

वर्षेष्वेतेषु तान् पुत्रानभिषिच्य स भूमिपः।
शालग्रामं महापुण्यं मैत्रेय तपसे ययौ ॥ २४ ॥

यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने।
तेषां स्वाभाविकी सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥ २५ ॥

विपर्य्ययो न तेष्वन्ति जरामृत्युभयं न च।
धर्म्मधर्म्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ॥ २६ ॥

न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वष्टासु सर्व्वदा।
हिमाह्विं यस्य वै वर्ष नाभेरासीन्महात्मनः ॥ २७ ॥

तथा पृथ्वीपालक राजा ने इन वर्षों में पुत्रों का अभिषेक करके स्वयं तपस्या करने के लिए महापवित्र शालग्राम क्षेत्र में चले गये। हे महामुने ! जो आठ किम्पुरुष

आदि वर्ष हैं, उनमें बिना प्रयत्न के स्वभाव से ही सुख सामग्री की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उनमें किसी प्रकार के परिवर्तन या बुढ़ापा मृत्यु आदि का भय भी नहीं हैं और उनमें धर्म, अधर्म, उत्तम, मध्यम, अधम, आदि का भेद नहीं हैं और उन आठों वर्षों में किसी प्रकार का युग परिवर्तन भी नहीं होता। जिन महात्मा नाभि के हिमनामक वर्ष था ॥ २४-२७ ॥

तस्यर्षभोऽभवत् पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः ।
ऋषभाद् भरतो जज्ञे ज्येष्ठः पुत्रशतस्य सः ॥ २८ ॥

कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण तथेष्ट्वा विविधान् मखान् ।
अभिषिच्य सुतं ज्येष्ठं भरतं पृथिवीपतिम् ॥ २९ ॥

तपसे स महाभागः पुलस्त्यस्याश्रमं ययौ ।
वानप्रस्थविधानेन तत्रापि कृतनिश्चयः ॥ ३० ॥

तपस्तेपे यथान्यायं यदा च सा महीपतिः ।
तपसा कर्शितोऽत्यर्थं कृशो धमनिसन्ततः ॥ ३१ ॥

नग्नो वीटां मुखे दत्त्वा वीराध्वानं ततो गतः ।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ॥ ३२ ॥

भरताय यतः पित्रा दत्तं प्रातिष्ठता वनम् ।
सुमतिर्भरतस्याभूत् पुत्रः परमधार्म्मिकः ॥ ३३ ॥

कृत्वा सम्यग् ददौ तस्मै राज्यमिष्टमखः पिता ।
पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु भरतः स महीपतिः ॥ ३४ ॥

योगाभ्यासरतः प्राणान् शालग्रामेऽत्यजन्मुने ।
अजायत च विप्रोऽसौ योगिनां प्रवरे कुले ॥ ३५ ॥

उनके मेरुदेवी नाम की स्त्री से महाकान्तिमान् ऋषभ-नामक पुत्र हुआ। ऋषभजी के सौ पुत्र हुए जिनमें सबसे ज्येष्ठ भरत थे। महामान्य भूपाल ऋषभदेवजी धर्मपूर्वक राज्य और अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करने के बाद अपने वीर पुत्र भरत को राज्याभिषेक करके तप करने के लिए पुलस्त्याश्रम को चले गये।

और आश्रम में भी वानप्रस्थविधि से रहते हुए निश्चय पूर्वक तप तथा यथायोग्य यज्ञ भी किये। तपस्या के कारण अत्यन्त क्षीण मात्र अवशेष ऋषभदेव जी ने नग्न होकर मुख में वाटिया रखके महाप्रस्थान किया। वन जाते समय पिता ऋषभदेवजी ने अपना राज्य भरतजी को दिया, अतएव उसी समय से यह हिमवर्ष इसलोक में भारतवर्ष के नाम से विख्यात हुआ। भरतजी के परमधार्मिक सुमति नामका पुत्र हुआ। भरतजी ने भी सम्यक्प्रकार से यज्ञपूर्वक राज्य भोगकर सुमति को दे दिया। अपने पुत्र को राज्यश्री देकर राजा भरत ने योगाभ्यास में निरत रहकर शालग्राम क्षेत्र में अपना प्राण छोड़ा। पुनः उन्होंने योगियों के श्रेष्ठ कुल में ब्राह्मणशरीर से जन्म ग्रहण किया॥ २८-३५॥

मैत्रेय ! तस्य चरितं कथयिष्यामि ते पुनः।
सुमतेस्तेजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो व्यजायत॥ ३६॥

परमेष्ठी ततस्तस्मात् प्रतिहारस्तदन्वयः।
प्रतिहर्त्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः॥ ३७॥

भुवस्तस्मात् तथोद्गीथः प्रस्तारस्तत्सुतो विभुः।
पृथुस्ततोऽभवन्नक्तो नक्तस्यापि गयः सुतः॥ ३८॥

नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रोऽभूद् विराट् ततः।
तस्य पुत्रो महावीर्य्यो धीमांस्तस्मादजायत॥ ३९॥

महान्तस्तत्सुतश्चाभून्मनस्युस्तस्य चात्मजः।
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्याप्यभूत् सुतः॥ ४०॥

शतजिद्रजसस्तस्य जज्ञे पुत्रशतं मुने !
विश्वग्ज्योतिःप्रधानास्ते यैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः॥ ४१॥

तैरिदं भारतं वर्षं नवभेदमलङ्कृतम।
तेषां वंशप्रसूतैश्च भुक्तेयं भारती पुरा॥ ४२॥

कृतत्रेतादिसर्गेण युगाख्या ह्येकसप्ततिः॥ ४३॥

एष स्वायम्भुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत्।
वाराहे तु मुने ! कल्पे पूर्वमन्वन्तराधिपः॥ ४४॥

हे मैत्रेयजी ! उनका चरित फिर आपको कहूँगा । बाद में सुमति के तेज से इन्द्रद्युम्ननामक पुत्र हुआ, और उसका पुत्र परमेष्ठी तथा परमेष्ठी का पुत्र प्रतिहार हुआ । प्रतिहार का विख्यात प्रतिहर्ता नामका पुत्र हुआ और प्रतिहर्ता का पुत्र भव, तथा भव का पुत्र उदीथ, इसी प्रकार उदीथ का पुत्र सामर्थ्यशाली प्रस्तार हुआ । प्रस्तार का पृथु, पृथु का नक्त, तथा नक्त का गय नामक पुत्र हुआ । गय का नर और उसका पुत्र विराट् नामका हुआ । उस विराट् का पुत्र महावीर्य से धीमान् का जन्म हुआ । धीमान् का पुत्र महान्त और महान्त पुत्र मनस्यु था । मनस्यु का पुत्र त्वष्टा, और त्वष्टा पुत्र विरज, तथा विरज का पुत्र रज हुआ । रज का पुत्र शतजित् और हे मुने ! शतजित् के सौ पुत्र थे । इन सौ पुत्रों में विष्वज्ज्योति प्रधान था । और उन सौ पुत्रों ने अपनी सन्तान बहुत बढ़ायी । तब उन्होंने भारतवर्ष को नौ भागों से अलङ्कृत किया (नौ भागों में बटवारा किया) । उनके वंश में उत्पन्न हुई सन्तानों ने कृत, त्रेता आदि क्रम से इकहत्तर युगों तक इस भारतवर्ष को भोग किया । हे मुने ! इस बाराहकल्प में यही सर्वप्रथम मन्वन्तराधिपति स्वायम्भुवमनुका वंश है, जो प्राचीनकाल में समस्त जगत् में फैला हुआ था ॥ ३६-४४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में पहला अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अंश - दूसरा अध्याय

(भूगोल-वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

कथितो भवता ब्रह्मन् ! सर्गः स्वायम्भुवश्च मे ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वत्तः सकलं मण्डलं भुवः ॥ १ ॥

यावन्तः सागरा द्वीपास्तथा वर्षाणि पर्व्वताः ।
वनानि सरितः पुर्य्यो देवादीनां तथा मुने ॥ २ ॥

यत्प्रमाणमिदं सर्व्वं यदाधारं यदात्मकम् ।
संस्थानमस्य च मुने ! यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

मैत्रेय जी बोले—हे ब्रह्मन् ! आपने स्वायम्भुव मनु के वंश का विस्तार कहा । अब आपसे समस्त भूमण्डल का विस्तार सुनना चाहता हूँ । और हे मुने ! जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदी और देवताओं की पुरियाँ हैं, उन सबका जितना परिमाण है, जो आधार है, जो कारण है, जैसा आकार है, ये सभी आप भलीभाँति कहिये ॥ १-३ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय श्रूयतामेतत् संक्षेपाद् गदतो मम ।
नास्य वर्षशतेनापि वक्तुं शक्यो हि विस्तरः ॥ ४ ॥

श्रीपराशर जी बोले—हे मैत्रेयजी ! सुनिये, मैं इन सभी विषयों का वर्णन संक्षेप रूप से करता हूँ, क्योंकि विस्तृत वर्णन तो सौ वर्षों में भी नहीं हो सकता ॥४ ॥

जम्बू-प्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलिश्चापरो द्विज ।
कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥ ५ ॥

एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ।
लवणेक्षु-सुरा-सर्पिर्दधि-दुग्ध-जलैः समम् ॥ ६ ॥

हे विप्र ! जम्बू, प्लक्ष, शाल्मली, कुश, क्रौञ्च, शाक और सातवाँ पुष्कर-ये सातों द्वीप क्षार जल (खारा पानी), इक्षुरस, मदिरा, घी, दधि, दूध, स्वादु जल (मीठा पानी) के सात समुद्रों द्वारा चारों ओर से घिरे हुये हैं ॥ ५-६ ॥

जम्बूद्वीपः समस्तानाम् एतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय ! मध्ये कनकपर्व्वतः ॥ ७ ॥

चतुराशीतिसाहस्रो योजनैरस्य चोच्छ्रयः ।
प्रविष्टः षोड़शाधस्ताद् द्वात्रिंशन्मूर्द्धिन विस्तृतः ॥ ८ ॥

मूले षोड़शसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्व्वशः ।
भूपद्मस्यास्य शैलेशः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ९ ॥

हे मैत्रेय ! इन समस्त द्वीपों के मध्यभाग में जम्बूद्वीप अवस्थित हैं और उसके मध्य में स्वर्णमय सुमेरुपर्वत विराजमान हैं । सुमेरुपर्वत चौरासी हजार योजन ऊँचा है और नीचे की ओर सोलह हजार योजन भूमि में धँसा है और ऊपरी भाग में यह बत्तीस हजार योजन विस्तृत है । और नीचे (तलैटी में) उसका सम्पूर्ण विस्तार सोलह हजार योजन है, इस प्रकार यह पर्वत पृथिवीरूपी कमल के कोश के समान विराजमान है ॥ ७-९ ॥

हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्ष पर्व्वताः ॥ १० ॥

लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्यौ दशहीनास्तथापरे ।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते ॥ ११ ॥

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥ १२ ॥

रम्यकञ्चोत्तरे वर्षं तस्यैवानु हिरणमयम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारतं तथा ॥ १३ ॥

नवसाहस्त्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तम !
इलावृतञ्च तन्मध्ये सौवर्णो मेरुरुच्छितः ॥ १४ ॥

मेरोश्चतुर्दिशं तत्तु नवसाहस्त्रविस्तृतम् ।
इलावृतं महाभाग ! चत्वारश्चात्र पर्व्वताः ॥ १५ ॥

हिमवान्, हेमकूट और निषध—ये तीन पर्वत इसके दक्षिण में तथा नील, श्वेत एवं श्रृङ्गी—ये तीन पर्वत इसके उत्तर में हैं जो वर्षपर्वत कहे गये हैं, (अर्थात् इन पर्वतों के द्वारा वर्षों का विभाग होता है, अतएव इनके नाम वर्ष पर्वत है । उन पर्वतों में बीच के दो पर्वत (निषध और नील) एक लाख योजनतक विस्तृत हैं (और इनके अतिरिक्त दूसरे पर्वत दश दश हजार योजन कम है अर्थात् हेमकूट और श्वेत नब्बे नब्बे हजार योजन और हिमवान् एवं श्रृङ्गी अस्सी अस्सी हजार योजन तक है), वे सभी पर्वत दो दो हजार योजन ऊँचे तथा उतने ही विस्तार वाले भी हैं । हे द्विज ! सुमेरुपर्वत के दक्षिण भाग में सर्वप्रथम भारतवर्ष, उसके बाद दूसरा किंपुरुषवर्ष और तीसरा हरिवर्ष हैं । इसी प्रकार सुमेरुपर्वत के उत्तरभाग में सर्वप्रथम रम्यक-वर्ष, उसके बाद हिरण्ययवर्ष और अनन्तर उत्तरकुरुवर्ष है जो भारतवर्ष के समान है (धनुषाकार है) । और हे विप्रश्रेष्ठ ! इन सभी वर्षो के मध्यभाग में इलावृत्त नाम का वर्ष है, जहाँ सुवर्णमय सुमेरुपर्वत विराजमान है । हे महाभाग ! यह इलावृत्तवर्ष सुमेरुपर्वत के चारों ओर नौ हजार योजनतक विस्तृत है । इसके चारों और चार पर्वत हैं ॥ १०-१५ ॥

विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिताः ॥ १६ ॥

पूर्व्वेण मन्दरी नाम दक्षिणो गन्धमादनः ।
विपुलः पश्चिमे पाश्र्वं सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ॥ १७ ॥

कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च ।
एकादशशतायामाः पादपा गिरिकेतवः ॥ १८ ॥

जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महामुने ।
महागजप्रमाणानि जम्ब्वास्तस्याः फलानि वै ॥ १९ ॥

पतन्ति भूभृतः पृष्ठे शीर्य्यमाणानि सर्वतः ।
रसेन तेषां प्रख्याता तत्र जम्बूनदीति वै ॥ २० ॥

सरित् प्रवर्त्तते सा च पीयते तन्निवासिभिः ।
न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षयः ॥ २१ ॥

तत्पानात् स्वच्छमनसां जनानां तत्र जायते ।
तीरमृत् तदूरसं प्राप्य सुखवायुविशेषिता ।
जाम्बुनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम् ॥ २२ ॥

दस हजार योजन ऊँचे ये चारों पर्वत सुमेरु पर्वत के चारों ओर बनाये गये कीलियाँ हैं (क्योंकि इनके बिना ऊपर से विस्तार और नीचे से संकुचित सुमेरु को गिरने का भय है) इनमें से पूर्व में मन्दराचल, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व है । पर्वतों की ध्वजाओं के समान कदम्ब, जम्बू , वट और पीपल के वृक्ष हैं ये क्रमशः ग्यारह हजार योजन ऊँचे हैं । हे महामुने ! इनमें जम्बू वृक्ष (जामुन) जम्बूद्वीप के नाम का कारण है । उस जम्बूवृक्ष के फल महागजराज के समान बड़े बड़े होते हैं और वे जब पर्वत के पृष्ठ पर गिरते हैं, तब फटकर के उनके रस सर्वत्र फैल जाते हैं । उस रस से जम्बू नदी निकलती है । जिसका जल वहाँ के निवासी लोग पान करते हैं । उसका पानकरने से स्वच्छ मनवाले वहाँ के निवासियों को पसीना, दुर्गन्धता, वृद्धता, इन्द्रियों का क्षय आदि नहीं होता । और उस नदी के तीर की मृत्तिका उस रस से मिलकर मन्द मन्द वायु से सुखने पर जाम्बूनद नामका सुवर्ण हो जाती है, जिसे सिद्धगण आभूषण के व्यवहार में लेते हैं ॥ १६-२२ ॥

भद्राश्वं पूर्व्वतो मेरोः केतुमालञ्च पश्चिमे ।
वर्षं द्वे तु मुनिश्रेष्ठ ! तयोर्म्मध्ये इलावृतम् ॥ २३ ॥

वनं चैत्ररथं पूर्व्वे दक्षिणे गन्धमादनम् ।
वैभ्राजं पश्चिमे तद्वदुत्तरे नन्दनं स्मृतम् ॥ २४ ॥

अरुणोदं महाभद्रमसितोदं समानसम् ।
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्व्वदा ॥ २५ ॥

सुमेरु के पूर्व में भद्राश्ववर्ष और पश्चिम में केतुमालवर्ष है, तथा हे मुनिश्रेष्ठ ! इन दोनों के मध्य में इलावृत्त वर्ष है । इसी प्रकार सुमेरु के पूर्व में चैत्ररथ, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में नन्दन नाम का वन है । तथा

आरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस—ये चार सरोवर देवताओं से सेवनीय हैं ॥ २३-२५ ॥

शीतान्तश्चक्रमुञ्जश्च कुररी माल्यवांस्तथा ।
वैकङ्कप्रमुखा मेरोः पूर्व्वतः केशराचलाः ।
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा ॥ २६ ॥

निषधाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्व्वताः ।
शिखिवासाः सवैदूर्य्यः कपिलो गन्धमादनः ।
जारुधिप्रमुखास्तद्वत् पश्चिमे केसराचलाः ॥ २७ ॥
मेरोरनन्तराङ्गेषु जठरादिष्ववस्थिताः ।
शङ्खकूटोऽथ ऋषभो हंसो नागस्तथापरः ।
कालञ्जराद्याश्च तथा उत्तरे केशराचलाः ॥ २८ ॥

शीताम्भ, चक्रमुञ्ज, कुररी, माल्यवान् और बैंकक आदि पर्वत सुमेरु के पूर्व दिशा के केशरभूत पर्वत हैं । त्रिकूट, शिशिर, पतङ्ग रुचक और निषदा आदि पर्वत सुमेरु के दक्षिण दिशा के केशरभूत पर्वत हैं । शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन और जारुधि, आदि उसके पश्चिम के केसरभूत । सुमेरु के अत्यन्त समीपस्थ जठरादि देशों में (तथा इलावृत्तवर्ष में) शंखकूट, ऋषभ, नाग, हंस तथा कालञ्जर आदि पर्वत उसके उत्तर दिशा केशर गिरि हैं ॥ २६-२८ ॥

चतुर्द्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी ।
मेरोरुपरि मैत्रेय ! ब्रह्मणः प्रथिता दिवि ॥ २९ ॥

तस्याः समन्ततश्चाष्टौ दिशासु विदिशासु च ।
इन्द्रादिलोकपालानां प्रख्याताः प्रवराः पुरः ॥ ३० ॥

हे मैत्रेय ! मेरु के ऊपर में चौदह हजार योजन विस्तार वाली ब्रह्मा जी की महापुरी है । और सुमेरु के चारों ओर दिशाओं तथा विदिशाओं में इन्द्रादि लोकपालों के विख्यात नगर हैं ॥ २९-३० ॥

विष्णुपादविनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम् ।
समन्ताद् ब्रह्मणः पुर्य्यां गङ्गा पतति वै दिवः ॥ ३१ ॥

सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्धा प्रतिपद्यते ।
सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च वै क्रमात् ॥ ३२ ॥

पूर्व्वेण शैलात् सीता तु शैलं यात्यन्तरिक्षगा ।
ततश्च पूर्व्ववर्षेण भद्राश्वेनैति सार्णवम् ॥ ३३ ॥

तथैवालकनन्दापि दक्षिणेनैत्य भारतम् ।
प्रयाति सागरं भूत्वा सप्तभेदा महामुने ॥ ३४ ॥

चक्षुश्च पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्ततः ।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वैति सागरम् ॥ ३५ ।

भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून् ।
अतीत्योत्तरमम्भोधिं समभ्येति महामुने ॥ ३६ ॥

श्री विष्णुभगवान् के चरणों से निकली हुई श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डल को आप्लावित करके स्वर्ण से ब्रह्मपुरी में गिरती हैं। वहाँ गिरकर श्रीगङ्गाजी सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा इन चारनामों से चारों दिशाओं में विभक्त हो जाती हैं। उनमें सीता पूर्व की ओर गगनमार्ग से एक पर्वत से दूसरे पर जाती हुई पूर्व दिशा में स्थित भद्राश्ववर्ष होकर समुद्र में मिलती है। हे महामुने ! अलकनन्दा दक्षिण की ओर भारतवर्ष में आकर तथा सात भागों में विभक्त होकर समुद्र में मिलती हैं। इसी प्रकार चक्षु पश्चिम के समस्त पर्वतों को पारकर समुद्र में मिल जाती हैं। हे महामुने ! भद्रानदी उत्तरदिशा के पर्वतों तथा उत्तरकुरुवर्ष को पारकर उत्तर समुद्र में गिरती हैं ॥ ३१-३६ ॥

आनीलनिषधायामौ माल्यवद्-गन्धमादनौ ।
तयोर्म्मध्यगतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः ॥ ३७ ॥

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा ।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्य्यादा शैलबाह्यतः ॥ ३८ ॥

जठरो देवकूटश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ ।
तौ दक्षिणोत्तरायामावानीलनिषधायतौ ॥ ३९ ॥

गन्धमादन-कैलासौ पूर्व्वपश्चायतावुभौ ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ४० ॥

निषधः पारिपात्रश्च मर्य्यादापर्व्वतावुभौ ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथा पूर्व्वौ तथा स्थितौ ॥ ४१ ॥

त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैव उत्तरौ वर्षपर्व्वतौ ।
पूर्व्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ४२ ॥

इत्येते मुनिवर्य्योक्ता मर्य्यादापर्व्वतास्तव ।
जठराद्याः स्थिता मेरोस्तेषां द्वौ द्वौ चतुर्दिशम् ॥ ४३ ॥

मेरोश्चतुर्दिशं ये तु प्रोक्ताः केसरपर्व्वताः ।
शीतान्ताद्या मुने ! तेषामतीव हि मनोरमाः ॥ ४४ ॥

शैलानामन्तरे द्रोण्यः सिद्धचारणसेविताः ।
सुरम्याणि तथा तासु काननानि पुराणि च ॥ ४५ ॥

माल्यवान् और गन्धमादन पर्वत उत्तर दक्षिण में नील तथा निषधपर्वतपर्यन्त फैले हुए हैं एवं उन दोनों के मध्यभाग में कर्णिकाकार मेरुपर्वतस्थित हैं ॥ ३७ ॥

हे मुने ! इस लोकपद्म के समान भारत, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष पर्वतों के बाह्यभाग में स्थित हैं। जठर तथा देवकूट ये दोनों मर्यादा पर्वत दक्षिण एवं उत्तर में नील और निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। गन्धमादन और कैलास पूर्व पश्चिम में विस्तृत तथा इनके विस्तार अस्सी योजन हैं और समुद्र के भीतर स्थित हैं। निषध और पारियात्र—ये दो मर्यादा पर्वत पूर्वके ही समान मेरुके पश्चिमभाग में स्थित हैं। त्रिश्रृङ्ग और जारुधि नामक दो वर्षपर्वत मेरु के उत्तर भाग में पूर्व और पश्चिम की ओर समुद्र में स्थित हैं। हे मुनिवर ! इस प्रकार आप से जठर आदि मर्यादा पर्वतों का वर्णन किया, जिनमें से मेरु की चारों दिशाओं में दो दो पर्वत स्थित हैं। हे मुने ! मेरु के चारों दिशाओं में विराजमान जिन, शीतान्त आदि केशर पर्वतों का वर्णन किया गया, उन पर्वतों के मध्य में अत्यन्त रमणीय तथा सिद्धचारणों से सेवित गुफाएँ हैं। और हे मुनिश्रेष्ठ ! उनमें सुन्दर उपवन तथा नगर हैं ॥ ३७-४५ ॥

लक्ष्मी-विष्णवग्निसूर्य्यादिदेवानां मुनिसत्तम ।
तास्वायतनवर्षाणि जुष्टानि वरकिन्नरैः ॥ ४६ ॥

गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि तथा दैतेयदानवाः ।
क्रीड़न्ति तासु सम्यासु शैलद्रोणीष्वहर्निशम् ॥ ४७ ॥

भौमा ह्येते स्मृताः स्वर्गा धर्म्मिणामालया मुने ।
नैतेषु पापकर्म्माणो यान्ति जन्मशतैरपि ॥ ४८ ॥

हे मुनिसत्तम ! उन गुफाओं में लक्ष्मी, विष्णु, अग्नि, सूर्य आदि देवताओं के श्रेष्ठ मन्दिर हैं, जो सदा श्रेष्ठ किन्नरों से सेवित हैं । तथा उन रमणीय पर्वत गुफाओं में दिन रात गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य और दानव क्रीड़ा करते हैं । हे मुने ! ये सभी सुन्दर स्थान पृथ्वी के स्वर्ग कहे गये हैं और धर्मात्माओं के निवास स्थान हैं । इनमें पापकर्म करने वाले पुरुष सौ जन्मों में भी नहीं जा सकते ॥ ४६-४८ ॥

भद्राश्वे भगवान् विष्णुरास्ते हयशिरा द्विज ।
वराहः केतुमाले तु भारते कूर्म्मरूपधृक् ॥ ४९ ॥

मत्स्यरूपश्च गोविन्दः कुरुष्वास्ते जनार्द्दनः ।
विश्वरूपेण सर्व्वत्र सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ॥ ५० ॥

सर्व्वस्याधारभूतोऽसौ मैत्रेयास्तेऽखिलात्मकः ।
यानि किम्पुरुषादीनि वर्षाण्यष्टौ महामुने ।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयादिकम् ॥ ५१ ॥

सुस्थाः प्रजा निरातङ्काः सर्व्वदुःखविवर्ज्जिताः ।
दशद्वादशवर्षाणां सहस्राणि स्थिरायुषः ॥ ५२ ॥

न तेषु वर्षते देवो भौमान्यम्भांसि तेषु वै ।
कृत-त्रेतादिका नैव तेषु स्थानेषु कल्पना ॥ ५३ ॥

हे विप्र ! भद्राश्ववर्ष में श्रीविष्णुभगवान् हयग्रीवरूप से एवं केतुमालवर्ष में वाराहरूप से, तथा भारतवर्ष में कूर्मरूप से निवास करते हैं । और जनार्दन भगवान् श्रीगोविन्द कुरुवर्ष में मत्स्यरूप से, तथा सर्वस्वरूप सर्वव्यापी श्रीहरि विश्वरूप से

सर्वत्र विराजमान रहते हैं। हे मैत्रेय ! वे सर्वात्मक सबके आधार भूत हैं। और हे महामुने ! जो किम्पुरुष आदि आठ वर्ष हैं उनमें शोक, परिश्रम, उद्वेग और क्षुधा आदि का भय नहीं है। वहाँ की प्रजा आतङ्करहित समस्त दुःखों से विहीन और दस-बारह हजार वर्षों की स्थिर आयुवाले होते हैं। उन वर्षों में वर्षा नहीं होतीं, केवल पार्थिव जल ही है और कृत, त्रेता, आदि युगों का विभाग भी नहीं है ॥४९-५३ ॥

सर्व्वष्वेतेषु वर्षेषु सप्त सप्त कुलाचलाः ।
नद्यश्च शतशस्तेभ्यः प्रसूता या द्विजोत्तम ॥ ५४ ।

हे द्विजश्रेष्ठ ! इन सभी वर्षों में सात सात कुलपर्वत हैं और उनसे निकली हुई सैकड़ों नदियाँ भी हैं ॥ ५४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में दूसरा अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अंश - तीसरा अध्याय

(भारत आदि नौ खण्डों का विभाग)

उत्तरं यत समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम् ।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ १ ॥

नवयोजनसाहस्रो विस्तारोऽस्य महामुने ।
कर्म्मभूमिरियं स्वर्गमपवर्गञ्च गच्छताम् ॥ २ ॥

श्रीपराशर जी बोले—समुद्र के उत्तर तथा हिमालय के दक्षिण में स्थित जो देश है, वह भारतवर्ष है। तथा उसमें भरत की सन्तान निवास करती है। इस भारतवर्ष का विस्तार नौ हजार योजन है और यह स्वर्ग तथा मोक्ष पाने के लिए कर्मभूमि है ॥ १-२ ॥

महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्व्वतः ।
विन्ध्यश्च पारिपात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ ३ ॥

यहाँ महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष् , विन्ध्य और पारिपात्र नाम के सात कुलपर्वत हैं ॥ ३ ॥

अतः सम्प्राप्यते स्वर्गो मुक्तिमस्मात् प्रयान्ति वै ।
तिर्य्यक्त्वं नरकञ्चापि यान्त्यतः पुरुषा मुने ॥ ४ ॥

इतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ।
न खल्वन्यत्र मर्त्त्यानां कर्म्म भूमौ विधीयते ॥ ५ ॥

हे मुने ! इसी देश में शुभ कर्म करने से मनुष्य स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त करते हैं, तथा (अशुभ कर्म करने से) तिर्यक्योनि एवं नरक में भी जाते हैं। यहीं से स्वर्ग, मोक्ष, अन्तरिक्ष अथवा पाताल आदि लोकों को (अपने

कर्मानुसार) प्राप्त करते हैं और भूमि में भारत से अन्यत्र कहीं भी मनुष्य के लिए कर्म का विधान नहीं है ॥ ४-५ ॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुमान् ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्व्वस्त्वथ वारुणः ॥ ६ ॥

अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।
योजनानां सहस्रन्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरात् ॥ ७ ॥

इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व वारुण और समुद्र से घिरा हुआ यह नवम द्वीप भारत इस प्रकार इस भारत के नौ भाग हैं। यह उत्तर से दक्षिण पर्यन्त सौ हजार योजन विस्तृत है ॥ ६-७ ॥

पूर्व्वे किराता यस्य स्युः पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ॥ ८ ॥

इज्या-युद्ध-वाणिज्याद्यैर्व्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः ।
शतद्रूचन्द्रभागाद्या हिमवत्पादनिर्गताः ॥ ९ ॥

सेद-स्मृतिमुखाद्याश्च पारिपात्रोद्भवा मुने ।
नर्मदा सुरसाद्याश्च नद्यो विन्ध्याद्रिनिर्गताः ॥ १० ॥

तापी-पयोष्णी-निर्व्विन्ध्याप्रमुखा ऋक्षसम्भवाः ।
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिकास्तथा ॥ ११ ॥

सह्यपादोद्भवा नद्यः स्मृताः पापभयापहाः ।
कृतमाला-ताम्रपर्णीप्रमुखा मलयोद्भवाः ॥ १२ ॥

त्रिसामाचार्य्यकुल्याद्या महेन्द्रप्रभवाः स्मृताः ।
ऋषिकुल्या-कुमार्य्याद्याः शुक्तिमत्पादसम्भवाः ॥ १३ ॥

आसां नद्यु पनद्यश्च सन्त्यन्याश्च सहस्रशः ।
तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः ॥ १४ ॥

पूर्व्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः ।
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दक्षिणात्याश्च सर्व्वशः ॥ १५ ॥

तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूरांभीरास्तथार्ब्बुदाः ।
कारूषा माल्यवांश्चैव पारिपात्रनिवासिनः ॥ १६ ॥

सौवीराः सैन्धवा हूणाः शाल्वाः शाकलवासिनः ।
मद्रारामास्तथाम्बष्ठाः पारसीकादयस्तथा ॥ १७ ॥

इसके पूर्वभाग में किरात और पश्चिमभाग में यवन बसे हैं । और इसके मध्यभाग में यज्ञ, शस्त्रधारण और व्यापार आदि अपने अपने कर्मों के अनुकूल व्यवस्थापूर्वक विभागानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र निवास करते हैं । हे मुने ! यहाँ हिमालय से निकली हुई शतद्रु, चन्द्रभागा आदि नदीयाँ हैं । पारिपात्र-पर्वत से निकली हुई वेद और स्मृति, आदि नदियाँ हैं । इसी प्रकार नर्मदा, सुरसा, आदि नदियाँ विन्ध्य-पर्वत से निकली हुई हैं । तथा ऋक्ष-पर्वत से निकली हुई तापी, पयोष्णी एवं निर्विन्ध्या आदि नदियाँ हैं । और गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी आदि नदियाँ सह्य-पर्वत से निकली हुई पाप तथा भय के विनाश करने वाली कही गयी हैं । मलयपर्वत से उत्पन्न कृतमाला, तथा ताम्रपर्णी आदि नदियाँ हैं । त्रिसामा, आर्यकुल्या आदि महेन्द्रपर्वत से निकली हैं । इसी प्रकार शुक्तिमान् पर्वत से उत्पन्न त्रिसामा, आर्यकुल्या, कुमारी आदि नदियाँ हैं । इन नदियों से निकली हुई हजारों नदियाँ और उपनिदयाँ हैं । इन नदियों के तीर पर कुरु, पाञ्चाल और मध्यदेश आदि के निवासीलोग एवं पूर्वदेश तथा काम रूप के निवासी पुण्ड, कलिङ्ग, मगध और दाक्षिणात्यलोग इसी प्रकार अपरान्त देश के रहने वाले सौराष्ट्रगण एवं शूर, आभीर, अर्वुदगण, कारुष, मालव एवं पारिपात्रवासी सौवीर, सैन्धव, हूण, साल्व तथा कोशलदेशवासी माद्र, आराम अम्बष्ठ और तथा पारसीगण निवास करते हैं ॥८-१७ ॥

आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा ।
समीपतो महाभागा हृष्टपुष्टजनाकुलाः ॥ १८ ॥

हे महाभाग ! वे लोग सदा एक साथ निवास करते हैं तथा इन नदियों का ही जल पीते हैं और इनके समीप होने से ये सभी हृष्ट पुष्ट भी रहते हैं ॥ १८ ॥

चत्वारि भारते वर्षे युगान्यत्र महामुने ।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित् ॥ १९ ॥

तपस्तप्यन्ति मुनयो जुह्वते चात्र यज्विनः ।
दानानि चात्र दीयन्ते परलोकार्थमादरात् ॥ २० ॥

पुरुषैर्यज्ञपुरुषो जम्बूद्वीपे सदेज्यते ।
यज्ञैर्यज्ञमयो विष्णुरन्यद्वीपेषु चान्यथा ॥ २१ ॥

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने ।
यतो हि कर्म्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः ॥ २२ ॥

अत्र जन्मसहस्राणां सहस्रैरपि सत्तम ।
कदाचिल्लभते जन्तुर्म्मानुष्यं पुण्यसञ्चयात् ॥ २३ ॥

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥ २४ ॥
कर्म्माण्यसङ्कल्पिततत्फलानि संन्यस्य विष्णौ परमात्मभूते ।
अवाप्य तां कर्म्ममहीमनन्ते तस्मिंल्लयं ये त्वमलाः प्रयान्ति ॥ २५ ॥

हे महामुने ! इस भारतवर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग नाम के चार युग होते हैं, जो अन्यत्र कहीं भी नहीं होते । परलोक की कामना से यहाँ पर मुनिगण तपस्या करते हैं, याज्ञिकगण यज्ञ करते हैं और दातालोग आदर पूर्वक दान देते हैं । मनुष्य यज्ञमय यज्ञपुरुष भगवान् श्रीविष्णु को जम्बूद्वीप में ही यज्ञों द्वारा सदा यजन करता है और अन्यद्वीपों में अन्य प्रकार से उनकी उपासना की जाती है । हे महामुने ! इस जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष ही श्रेष्ठ है, क्योंकि यह कर्मभूमि है और इसके अतिरिक्त देश भोगभूमि हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! जीव हजारों जन्मों के बाद पुण्य के सञ्चय से भारतवर्ष में मानवशरीर प्राप्त करता है । देवतागण भी गान करते हैं कि स्वर्ग और मोक्ष के मार्गस्वरूप भारत में जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है तथा जो इस कर्मभूमि को प्राप्त कर फल की कामना से रहित कर्मों को परमात्मभूत श्रीविष्णु गवान् को समर्पित करके निर्मल होकर उस अनन्त में ही लीन हो जाते हैं, वे पुरुष देवताओं से भी अधिक धन्य हैं ॥ १९-२५ ॥

जानीम नैतत् क्व वयं विलीने स्वर्गप्रदे कर्म्मणि देहबन्धम्।
प्राप्स्याम धन्याः खलु ते मनुष्या ये भारते नेन्द्रियविप्रहीणाः ॥ २६ ॥

स्वर्ग को प्रदान करने वाले कर्मको विनष्ट हो जाने पर पुनः कहाँ शरीर ग्रहण करेंगे—यह हमलोग नहीं जानते हैं किन्तु वे मनुष्य तो धन्य है, जो भारतवर्ष में जन्म लेकर इन्द्रियों की शक्ति से रहित नहीं हुए हैं ॥ २६ ॥

नववर्षं तु मैत्रेय ! जम्बूद्वीपमिदं मया।
लक्षयोजनविस्तारं संक्षेपात् कथितं तव ॥ २७ ॥

जम्बूद्वीपं समावृत्य लक्षयोजनविस्तरः।
मैत्रेय ! वलयाकारः स्थितः क्षारोदधिर्ब्बहिः ॥ २८ ॥

हे मैत्रेय ! एक-लाखयोजन विस्तृत एवं नववर्ष युक्त जम्बूद्वीप का वर्णन मैंने संक्षेप से किया। हे मैत्रेय ! जम्बूद्वीप के बाहर चारों ओर एक लाख योजन विस्तृत वलयाकार खारे पानी का समुद्र है ॥ २७-२८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में तीसरा अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - चौथा अध्याय

(प्लक्ष आदि द्वीपों का वर्णन)

पराशर उवाच।

क्षारोदेन यथा द्वीपो जम्बूसंज्ञोऽभिवेष्टितः।
संवेष्ट्य क्षारमुदधिं प्लक्षद्वीपस्तथा स्थितः ॥ १ ॥

जम्बूद्वीपस्य विस्तारः शतसाहस्रसम्मितः।
स एव द्विगुणो ब्रह्मन्! प्लक्षद्वीप उदाहृतः ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—जिस प्रकार खारे पानी के समुद्र से जम्बूद्वीप घिरा हुआ है, उसी प्रकार प्लक्षद्वीप क्षारसागर को घेरकर स्थित है। हे ब्रह्मन्! जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है और प्लक्षद्वीप उससे दुगुणा विस्तारवाला है ॥ १-२ ॥

सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य वै।
ज्येष्ठः शान्तभयो नाम शिशिरस्तदनन्तरम् ॥ ३ ॥

सुखोदयस्तथानन्दः शिवः क्षेमक एव च।
ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥ ४ ॥

पूर्व्वं शान्तभयं वर्षं शिशिरं सुखदं तथा।
आनन्दञ्च शिवञ्चैव क्षेमकं ध्रुवमेव च ॥ ५ ॥

मर्य्यादाकारकास्तेषां तथान्ये वर्षपर्व्वताः।
सप्तैव तेषां नामानि श्रृणुष्व मुनिसत्तमा ॥ ६ ॥

गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा।
सोमकः सुमनाश्चैव वैभ्राजश्चैव सप्तमः ॥ ७ ॥

वर्षाचलेषु रम्येषु सर्व्वेष्वेतेषु चानघाः ।
वसन्ति देवगन्धर्व्वसहिताः सततं प्रजाः ॥ ८ ॥

प्लक्षद्वीप के अधिपति मेधातिथि के सात पुत्र हुए । उनमें सबसे ज्येष्ठ शान्त हुए और उसके बाद शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और सातवाँ ध्रुव हुआ । ये सभी प्लक्षद्वीप के स्वामी थे । इन सातों के अधिकृत वर्षों में प्रथम शान्त वर्ष है, तदनन्तर शिशिरवर्ष, सुखोदयवर्ष, आनन्दवर्ष, शिववर्ष, क्षेमकवर्ष और ध्रुववर्ष है । उनकी मर्यादा को निश्चय करने वाले सात वर्षपर्वत भी हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! उनके नाम सुनो,—गोमेद-पर्वत, चन्द्र-पर्वत, नारद-पर्वत, दुन्दुभि-पर्वत, सोमक-पर्वत, सुमना-पर्वत और वैभ्राज पर्वत है । इन रमणीय वर्षपर्वतों और वर्षों में देवता और गन्धर्वों के सहित पापरहित प्रजागण निवास करते हैं ॥ ३-८ ॥

तेषु पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः ।
नाधयो व्याधयो वापि सर्व्वकालसुखं हि तत् ॥ ९ ॥

तेषां नद्यस्तु सप्तैव वर्षाणाञ्च समुद्रगाः ।
नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि श्रुताः पापं हरन्ति याः ॥ १० ॥

अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमुः ।
अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥ ११ ॥

एते शैलास्तथा नद्यः प्रधानाः कथितास्तव ।
क्षुद्रशैलास्तथा नद्यस्तत्र सन्ति सहस्रशः ॥ १२ ॥

ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्ज्जनपदास्तु ते ।
अपसर्पणी न तेषां वै न चैवोत्सर्पिणी द्विज ॥ १३ ॥

न त्वेवास्ति युगावस्था तेषु स्थानेषु सप्तसु ।
त्रेतायुगसमः कालः सर्व्वदैव महामते ॥ १४ ॥

प्लक्षद्वीपादिषु ब्रह्मन् ! शाकद्वीपान्तिकेषु वै ।
पञ्चवर्षसहस्राणि जना जीवन्त्यनामयाः ॥ १५ ॥

धर्म्माः पञ्च त्वथैतेषु वर्णाश्रमविभागजाः ।
वर्णाश्च तत्र चत्वारस्तान् निबोध वदामि ते ॥ १६ ॥

वहाँ के निवासी लोग पुण्यात्मा होते हैं और बहुत काल के बाद मृत्यु को प्राप्त करते हैं तथा उनको किसी प्रकार की आधि व्याधि नहीं होती और सदा सुखी रहते हैं । उन सात वर्षों की सात नदियाँ सागरगामिनी हैं । उनके नाम मैं कहता हूँ, जिनके नाम श्रवणमात्र से ही पाप को नष्ट करते हैं । वहाँ अनुतप्ता, शिखी विपाशा, त्रिदिवा, अक्लमा, अमृता और सुकृता निम्नदेश गामिनी ये सात नदियाँ हैं । ये प्रधान-प्रधान नदियाँ तुमसे कही और इनके अतिरिक्त वहाँ पर छोटी छोटी नदियाँ और पर्वत हजारों हैं । सदा प्रसन्न वहाँ के निवासीगण उन नदीयों के जल पीते हैं । और हे विप्र ! उन लोगों में ह्रास अथवा वृद्धि नहीं होती । और उन सातों वर्षों में किसी प्रकार की युगव्यवस्था भी नहीं है । हे महामुने ! वहाँ सदा त्रेता के समान समय रहता है । हे ब्रह्मन् ! प्लक्षद्वीप से आरम्भकर शाकद्वीपतक त्रेता के समान समय और रोगरहित प्रजा पाँच हजार वर्षों-तक जीवित रहती हैं । और इनमें वर्ण तथा आश्रम के विभाग से पाँचप्रकार के धर्म (अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह) रहते हैं । वहाँ जो चारवर्ण हैं, उनको तुम्हें सुनाता हूँ ॥ ९-१६ ॥

आर्य्यकाः कुरवश्चैव विविंशा भाविनश्च ये ।
विप्र-क्षत्रिय-वैश्यास्ते शूद्राश्च मुनिसत्तम ॥ १७ ॥

जम्बूवृक्षप्रमाणस्तु तन्मध्ये सुमहांस्तरुः ।
प्लक्षस्तन्नामसंज्ञोऽयं प्लक्षद्वीपो द्विजोत्तम ॥ १८ ॥

इज्यते तत्र भगवांस्तैर्वर्णैरार्य्यकादिभिः ।
सोमरूपी जगत्स्रष्टा सर्व्वः सर्व्वेश्वरो हरिः ॥ १९ ॥

प्लक्षद्वीपप्रमाणेन प्लक्षद्वीपः समावृतः ।
तथैवेक्षुरसोदेन परिवेशानुकारिणा ॥ २० ॥

इत्येवं तव मैत्रेय ! प्लक्षद्वीप उदाहृतः ।
संक्षेपेण मया भूयः शाल्मलं मे निशामय ॥ २१ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! वहाँ आर्यक, कुरु, विवंश और भावी नाम की जातियाँ ही क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। हे द्विजोत्तम ! जम्बूवृक्ष के ही परिमाणवाला वहाँ एक प्लक्ष (पाकर) वृक्ष है, जिसके नाम से ही इस द्वीप का नाम प्लक्षद्वीप हुआ। वहाँ पर आर्य आदि जातियों द्वारा जगत्स्रष्टा सर्वस्वरूप सर्वेश्वर भगवान् हरि सोमरूप से पूजित होते हैं। प्लक्षद्वीप अपने ही समान विस्तार वाले इक्षु (इख) रस के समुद्रद्वारा वृत्ताकाररूप से घिरा हुआ है। हे मैत्रेय ! इस प्रकार मैंने संक्षेप में प्लक्षद्वीप का वर्णन किया, अब शाल्मलद्वीप के विषय में सुनो ॥१७-२१ ॥

शाल्मलस्येश्वरो वीरो वपुष्मांस्तत्सुतान् शृणु।
तेषान्तु नामसंज्ञानि सप्त वर्षाणि तानि वै ॥ २२ ॥

श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस् तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभश्च महामुने ॥ २३ ॥

शाल्मलेन समुद्रोऽसौ द्वीपेनेक्षु रसोदकः।
विस्ताराद्द्विगुणेनाथ सर्व्वतः संवृतः स्थितः ॥ २४ ॥

तत्रापि पर्व्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः।
वर्षान्तव्यञ्जकाः ये तु तथा सप्त च निम्नगाः ॥ २५ ॥

कुमुदश्चोन्नतश्चैव तृतीयश्च बलाहकः।
द्रोणो यत्र महौषध्यः स चतुर्थो महीधरः ॥ २६ ॥

कङ्कस्तु पञ्चमः षष्ठो महिषः सप्तमस्तथा।
ककुद्मान् पर्व्वतवरः सरिन्नामानि मे शृणु ॥ २७ ॥

शाल्मलद्वीप के अधिपति वीरवर वपुष्मान् थे। उनके पुत्रों का नाम सुनो, जैसे—श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ ! हे महामुने ! उनके नामों से ही उनके सातवर्ष भी हैं। चारों ओर से अपने से दूने विस्तारवाले शाल्मलद्वीप से (प्लक्षद्वीप को आवृतकरने वाला) इक्षुरस का समुद्र घिरा हुआ है। वहाँ भी रत्नों के उद्‌भवस्थानस्वरूप सात पर्वत हैं, जो वहाँ को सातों द्वीपों के विभक्त करने वाले हैं तथा सात नदियाँ भी हैं। कुमुद, उन्नत, बलाहक, दोणाचल,

इसमें (द्रोणाचल में) महौषधियाँ हैं। पाँचवाँ पर्वत कङ्क, छठा महिष, सातवाँ ककुद्मान,—ये सातपर्वत हैं और नदियों का नाम मुझसे सुनो ॥ २२-२७ ॥

योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी।
निवृत्तिः सप्तमी तासां स्मृतास्ताः पापशान्तिदाः ॥ २८ ॥

श्वेतञ्च हरितञ्चैव वैद्युत मानसं तथा।
जीमूतरोहिते चैव सुप्रभञ्चातिशोभनम् ॥ २९ ॥

सप्तैतानि तु वर्षाणि चातुर्व्वर्ण्ययुतानि वै।
शाल्मले ये तु वर्णाश्च वसन्त्येते महामुने ॥ ३० ॥

कपिलाश्चारुणाः पीताः कृष्णाश्चैव पृथक् पृथक्।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चैव यजन्ति ते ॥ ३१ ॥

भगवन्तं समस्तस्य विष्णुमात्मानमव्ययम्।
वायुभूतं मखैः श्रेष्ठैर्यज्विनो यज्ञसंस्थितिम् ॥ ३२ ॥

देवानामत्र सान्निध्यमतीव सुमनोहरे।
शाल्मलिः सुमहान्वृक्षो नाम्ना निर्वृतिकारकः ॥ ३३ ॥

एष द्वीपः समुद्रेण सुरोदेन समावृतः।
विस्ताराच्छाल्मलस्येव समेन तु समन्ततः ॥ ३४ ॥

सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्व्वतः।
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणेन समन्ततः ॥ ३५ ॥

योनि, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला विमोचिनि और सातवी निवृत्ति नाम की नदी हैं—ये सभी नदियाँ पापों को शान्त करने वाली हैं। श्वेत, हरित वैद्युत, मानस, जीमूत, रोहित, सुप्रभ, शोभन—ये सातवर्ष चतुर्वर्णयुक्त हैं हे महामुने ! कपिल, अरुण, पीत और कृष्ण—ये चार वर्ण इस शाल्मलद्वीप में निवास करते हैं, जो पृथक् पृथक्, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। ये सभी यज्ञ-करने वाले सबके आत्मास्वरूप, अविनाशी, यज्ञ के आश्रयभूत, वायुरूप श्रीविष्णुभगवान् को श्रेष्ठ यज्ञों द्वारा यजन करते हैं। और इस मनोहरद्वीप में देवतागण का सान्निध्य भी रहता

है अर्थात् देवगण सदा विराजमान रहते हैं यहाँ एक शाल्मली (सेमल) का विशाल वृक्ष है, जो अपने नाम से ही शान्तिदायक हैं। और यह द्वीप चारों ओर से अपने समान विस्तारवाले सुरा समुद्र से घिरा हुआ है। तथा सुरासागर शाल्मलद्वीप से दोगुणे विस्तारवाले कुशद्वीप से घिरा हैं ॥ २८-३५ ॥

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान्।
उद्भिदो वेणुमांश्चैव वैरथो लम्बनो धृतिः ॥ ३६ ॥

प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्ष पद्धतिः।
तस्मिन् वसन्ति मनुजाः सह दैतेयदानवैः ॥ ३७ ॥

तथैव देव-गन्धर्व्व-यक्ष-किम्पुरुषादयः।
वर्णास्तत्रापि चत्वारो निजानुष्ठानतत्पराः ॥ ३८ ॥

दमिनः शुष्मिणः स्नेहा मन्देहाश्च महामुने।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ ३९ ॥

तथा उस कुशद्वीप के अधिपति ज्योतिष्मान् के पुत्रों का नाम सुनो। उद्भिद, वेणुमान्, वैरथ, लम्बन, धृति, प्रभाकर और कपिल—इन सात ज्योतिष्मान् के पुत्रों के नाम से ही वहाँ के सातवर्षों का नाम हुआ। उसमें दैत्य-दानवों के सहित देव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर और मनुष्य भी निवास करते हैं। हे महामुने! वहाँ अपने अपने कर्मानुष्ठान में तन्मय दमी, शुष्मी, स्नेह और मन्देहनामक चारवर्ण हैं। जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं ॥ ३६-३९ ॥

यथोक्तकर्मकर्तृत्वात् स्वाधिकारक्षयाय ते।
तत्रैव तं कुशद्वीपे ब्रह्मरूपं जनार्द्दनम् ॥
यजन्तः क्षपयन्त्युग्रमधिकारं फलप्रदम् ॥ ४० ॥

विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा।
कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः।
वर्षाचलास्तु तत्रैते सप्त द्वीपे महामुने ॥ ४१ ॥

नद्यस्तु सप्त तासान्तु शृणु नामान्यनुक्रमात्।
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा ॥ ४२ ॥

विद्युदम्भा मही चान्या सर्व्वपापहरास्त्विमाः ।
अन्याः सहस्त्रशस्तत्र क्षुद्रनद्यस्तथाचलाः ॥ ४३ ॥

और अपने प्रारब्धक्षय के निमित्त शास्त्रानुकूल कर्म करते हुए उसी कुशद्वीप में ब्रह्मस्वरूप जनार्दन भगवान् को यज्ञों द्वारा पूजते हैं तथा प्रारब्ध फल को देने वाले उग्र अहंकार को क्षय करते हैं । हे महामुने ! उस द्वीप में विद्रुम, हेमशैल, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मन्दराचल—ये सातवर्ष पर्वत हैं । और वहाँ सात नदियाँ हैं जिनके नाम क्रमशः सुनो । धूतपापा, शिवा, पवित्रा, सम्मति, विद्युत, अम्भा और मही—ये सात नदियाँ पाप को हरने वाली हैं । इनके अतिरिक्त और भी हजारों नदियाँ और पर्वत वहाँ हैं ॥ ४०-४३ ॥

कुशद्वीपे कुशस्तम्बः संज्ञया तस्य तत् स्मृतम् ।
ततप्रमाणेन स द्वीपो घृतोदेन समावृतः ॥ ४४ ॥

घृतोदश्च समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ।
क्रौञ्चद्वीपो महाभाग ! श्रूयताञ्चापरो महान् ॥ ४५ ॥

कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणो यस्य विस्तरः ।
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः ॥ ४६ ॥

तन्नामानि च वर्षाणि तेषां चक्रे महीपतिः ॥ ४७ ॥

कुशद्वीप में एक कुश की फाड़ी हैं, उसी के नाम से इस द्वीप का नाम कुशद्वीप पड़ा । यह द्वीप अपने समान विस्तृत घृतसमुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है और वह घृतसमुद्र क्रौञ्चद्वीप से घिरा हुआ है । हे महाभाग ! अब क्रौञ्चनामक महाद्वीप के विषय में सुनो, जिसका विस्तार कुशद्वीप से दो गुणा है । क्रोञ्चद्वीप में महात्मा द्युतिमान् के जो पुत्र हुए, उनके नामके अनुकूल ही पृथ्वीपति द्युतिमान् ने वर्षों का भी नाम रखा ॥ ४४-४७ ॥

कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽप्यन्धकारकः ।
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुता मुने ॥ ४८ ॥

तत्रापि देवगन्धर्व्वसेविताः सुमनोहराः ।
वर्षाचला महाबुद्धे ! तेषां नामानि मे श्रृणु । ४९ ॥

क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः ।
देवावृत् पञ्चमश्चात्र तथान्यः पुण्डरीकवान् ।
दुन्दुभिश्च महाशैलो द्विगुणास्ते परस्परम् ॥ ५० ॥

द्वीपा द्वीपेषु ये शैला यथा द्वीपानि ते तथा ॥ ५१ ॥

वर्षेष्वेतेषु रम्येषु तथा शैलवरेषु च ।
निवसन्ति निरातङ्काः सह देवगणैः प्रजाः ॥ ५२ ॥

पुष्कराः पुष्कला धन्यास्तिष्याख्याश्च महामुने ।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चानुक्रमोदिताः ॥ ५३ ॥

ते तत्र नदी मैत्रेय ! याः पिबन्ति शृणुष्व ताः ।
सप्तप्रधाना शतशस्तत्रान्याः क्षुद्रनिम्नगाः ॥ ५४ ॥

गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ।
क्षान्तिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ॥ ५५ ॥

तत्रापि विष्णुर्भगवान् पुष्कराद्यैर्ज्जनादर्द्दनः ।
यागै रुद्रस्वरूपश्च इज्यते यज्ञसन्निधौ ॥ ५६ ॥

क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन च ।
आवृतः सर्व्वतः क्रौञ्चद्वीपतुल्येन मानतः ॥ ५७ ॥

हे मुने ! कुशल, मन्दग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि—ये सात उनके पुत्र थे । हे महाबुद्धे ! वहाँ पर भी देवता और गन्धर्वों से सेवित अत्यन्त रमणीय सात वर्ष पर्वत हैं । उनके नाम सुनो । उनमें पहला क्रौञ्च, दूसरा वामन, तीसरा अन्धकारक, चौथा घोड़े के मुख के समान रत्नसम्पन्न स्वाहिनी, पाँचवाँ देवावृत्, छठा पुण्डरीकवान् और सातवाँ महापर्वत दुन्दुभि । ये सभी द्वीप एक दूसरे से दो गुणे हैं । तथा उनके ही समान उनके पर्वत भी एकको अपेक्षा अन्य दो गुणे बड़े हैं और इन रमनीय वर्षों में देवताओं के साथ प्रजा निर्भय होकर निवास करती है । हे महामुने ! पुष्कर, पुष्कल, धन्य और तिष्य नामक वहाँ चारवर्ण निवास करते हैं ? जो क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र हैं । हे मैत्रेय ! वहाँ जिन नदियों का जल पान किया जाता है उनके विषय में सुनो । उनमें सात प्रधान और सैकड़ों छोटी

छोटी नदियाँ हैं। गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, मनोजवा, रात्रि, क्षान्ति और पुण्डरीका—ये सात वर्ष नदियाँ हैं। वहाँ भी पुष्कर आदि जातियों द्वारा रुद्रस्वरूप भगवान् जनार्दन यज्ञों से पूजित होते हैं। यह क्रौञ्चद्वीप अपने समान विस्तारवाले दधिमण्ड (मट्ठे) के समुद्रद्वारा सभी ओर से घिरा हुआ है ॥ ४८-५७

दधिमण्डोदकश्चापि शाकद्वीपेन संवृतः ।
क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन महामुने ॥ ५८ ॥

और हे महामुने ! दधिमण्डका समुद्र भी क्रौञ्चद्वीप से द्विगुण विस्तार वाले शाकद्वीप से घिरा हुआ है ॥ ५८ ॥

शाकद्वीपेश्वरस्यापि भव्यस्य सुमहात्मनः ।
सप्तैव तनयास्तेषां ददौ वर्षाणि सप्त सः ॥ ५९ ॥

जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मनीचकः ।
कुसुमोदश्च मौदाकिः सप्तमश्च महाद्रुमः ॥ ६० ॥

तत्संज्ञान्येव तत्रापि सप्त वर्षाण्यनुक्रमात् ।
तत्रापि पर्व्वताः सप्त वर्षविच्छेदकारिणः ॥ ६१ ॥

पूर्व्वस्तत्रोदयगिरिर्ज्जलाधारस्तथापरः ।
तथा रैवतकः श्यामस्तथैवास्तो गिरिर्द्विजः ॥ ६२ ॥

आम्बिकेयस्तथा रम्यः केसरी पर्व्वतोत्तमः ।
शाकस्तत्र महावृक्षः सिद्ध-गन्धर्व्वसेवितः ॥ ६३ ॥

यत्रत्यवातसंस्पर्शादाह्लादो जायते परः ।
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्व्वर्ण्यसमन्विताः ॥ ६४ ॥

नद्यश्चात्र महापुण्याः सर्व्वपापभयापहाः ।
सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या ॥ ६५ ॥

इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ।
अन्यास्त्वयुतशस्तत्र क्षुद्रनद्यो महामुने ॥ ६६ ॥

शाकद्वीप के अधिपति महात्मा भव्य के सात पुत्र थे। उनको भी भव्य ने सात वर्ष पृथक् पृथक् दिये। जलद, कुमार, सुकुमार, मरीचक, कुसुमोद, मौदाकि और सातवाँ महाद्रुम—ये सात भव्य के पुत्र थे। और क्रमशः उन्हीं के नामों से सात वर्ष हैं और वर्ष विभाग करने वाले सात पर्वत भी हैं। हे द्विज ! वहाँ प्रथम उदयगिरि, दूसरा जलाधार और अन्य रैवतक, श्वाम, अस्तगिरि, आम्बिकेय, रम्य, तथा श्रेष्ठ पर्वत केशरी हैं, और वहाँ पर सिद्ध गन्धर्वों से सेवित शाक का एक विशाल वृक्ष है। जिस शाक के वायु को सेवन करने से अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। और वहाँ चार वर्णों से युक्त जनपद अत्यन्त पवित्र है। हे महामुने ! परमपवित्र एवं समस्त पाप तथा भय को विनाश करने वाली सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, धेनुका, इक्षु, वेणुका और सातवी गभस्ति नाम की नदियाँ हैं। और इनके अतिरिक्त सैकड़ों हजारों छोटी छोटी नदियाँ भी हैं। ५९-६६ ॥

महीधरास्तथा सन्ति शतशोऽथ सहस्त्रशः।
ताः पिबन्ति मुदा युक्ता जलदादिषु ये स्थिताः ॥ ६७ ॥

वर्षेषु ते जनपदाः स्वर्गादभ्येत्य मेदिनीम्।
धर्म्महानिर्न तेष्वस्ति न संघर्षः परस्परम् ॥ ६८ ॥

मर्यादाव्युत्क्रमो नास्ति तेषु देशेषु सप्तसु।
मृगाश्च मागधाश्चैव मानसामन्दगास्तथा ॥ ६९ ॥

मृगा ब्राह्मणभूयिष्ठा मागधाः क्षत्रियास्तथा।
वैश्यास्तु मानसास्तेषां शूद्रास्तेषान्तु मन्दगाः ॥ ७० ॥

उस शाकद्वीप में हजारों पर्वत हैं। स्वर्गीय आनन्द भोगने के बाद जो भूतल में आकर जलद आदि वर्षों में जन्म ग्रहण करते हैं वे लोग प्रसन्नतापूर्वक उन नदियों का जल पान करते हैं। उनमें धर्म की हानि और परस्पर में संघर्ष तथा मर्यादा का उल्लंघन नहीं होता। वङ्ग, मागध, मानस और मन्दग—ये चार वर्ण वहाँ निवास करते हैं। इनमें वङ्ग ब्राह्मण, मागध क्षत्रिय, मानस वैश्य और मन्दग शूद्र कहे जाते हैं ॥ ६७-७० ॥

शाकद्वीपे तु तैर्विष्णुः सूर्य्यरूपधरो मुने।
यथोक्तैरिज्यते सम्यक् कर्म्मभिर्नियतात्मभिः ॥ ७१ ॥

शाकद्वीपस्तु मैत्रेय ! क्षीरोदेन समन्ततः ।
शाकद्वीपप्रमाणेन बलयेनेव वेष्टितः ॥ ७२ ॥

हे मुने ! शाकद्वीप में वहाँ के निवासीलोग सूर्य-रूपधारी श्रीविष्णुभगवान् को संयत मन से शास्त्रीय विधान-पूर्वक सम्यक् प्रकार से यजन करते हैं । हे मैत्रेय ! शाकद्वीप अपने बराबर विस्तारवाले बलयाकार क्षीर (दुग्ध) समुद्र से घिरा हुआ है ॥ ७१-७२ ॥

क्षीराब्धिः सर्व्वतो ब्रह्मन् ! पुष्कराख्येन वेष्टितः ।
द्वीपेन शाकद्वीपात्तु द्विगुणेन समन्ततः ॥ ७३ ॥

पुष्करे सबलस्यापि महावीरोऽभवत् सुतः ।
धातकिश्च तयोस्तत्र द्वे वर्षे नामचिह्निते ॥ ७४ ॥

महावीरं तथैवान्यं धातकीखण्डसंज्ञितम् ।
एकश्चात्र महाभाग प्रख्यातो वर्षपर्व्वतः ॥ ७५ ॥

मानसोत्तरसंज्ञो वै मध्यतो बलयाकृतिः ।
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः ॥ ७६ ॥

तावदेव च विस्तीर्णः सर्व्वतः परिमण्डलः ।
पुष्करद्वीपबलयं मध्येन विभजन्निव ॥ ७७ ॥

स्थितोऽसौ तेन विच्छिन्नं जातं तद्वर्षकद्वयम् ।
बलयाकारमेकैकं तयोर्व्वर्षं तथा गिरिः ॥ ७८ ॥

तथा हे ब्रह्मन् ! क्षीर सागर भी शाकद्वीप से द्विगुण प्रमाण वाले पुष्करद्वीप से घिरा हुआ है । पुष्करद्वीप के अधिपति सवन के महावीर और धातकि नाम के दो पुत्र हुए । और उन दोनों के नाम से उस द्वीप में महावीर और धातकीनाम के दो खण्ड (वर्ष) हुए ! हे महाभाग ! इसके मध्यभाग में वलयाकार मासोत्तर नाम का प्रसिद्ध वर्षपर्वत हैं जो पचास हजार योजन ऊँचा और उतने ही योजन मण्डलाकार पुष्करद्वीप रूपी गोले को मध्यभाग से विभक्त करते हुए के समान विराजमान है । और इसी से विभक्त होकर वहाँ दो वर्ष भी बन गये हैं तथा वे दोनों वर्ष एवं यह पर्वत वलयाकार ही है ॥ ७३-७८ ॥

दशवर्ष सहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ।
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषादिवर्ज्जिताः ॥ ७९ ॥

अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां न वध्यवधकौ द्विज ।
नेर्ष्यासूया भयं द्वेषो दोषो लोभादिको न च ॥ ८० ॥

महावीरं बहिर्व्वर्षं धातकीखण्डमन्त्रतः ।
मानसोत्तरशैलस्य देवदैत्यादिसेवितम् ॥ ८१ ॥

सत्यानृते न तत्रास्तां द्वीपे पुष्करसंज्ञिते ।
न तत्र नद्यः शैला वा द्वीपे वर्षद्वयान्विते ॥ ८२ ॥

तुल्यवेशास्तु मनुजा देवास्तत्रैकरूपिणः ।
वर्णाश्रमाचारहीनं धर्म्माहरणवर्ज्जितम् ॥ ८३ ॥

त्रयीवार्त्तादण्डनीतिशुश्रूषारहितञ्च तत् ।
वर्षद्वयन्तु मैत्रेय ! भौमस्वर्गोऽयमुत्तमः ॥ ८४ ॥

सर्व्वस्य सुखदः कालो जरारोगादिवर्ज्जितः ।
धातकीखण्डसंज्ञेऽथ महावीरे च वै मुने ॥ ८५ ॥

न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
तस्मिन्निवसति ब्रह्मा पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ ८६ ॥

वहाँ के निवासी मानव रोग, शोक और राग द्वेष से विहीन होकर दस हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं । हे विप्र ! उस पुष्करद्वीप में नीच, ऊँच, वध्य-वधक आदि भाव नहीं हैं तथा उनमें ईर्ष्या, असूया, भय, द्वेष, तथा लोभ आदि दोषों का भी अभाव है । मानसोत्तर पर्वत के बाहर में महावीरवर्ष और भीतर में धातकीखण्ड है इन दोनों में देव, दैत्य आदि निवास करते हैं । दो वर्षो से युक्त पुष्करद्वीप में सत्य अथवा असत्य का व्यवहार नहीं है और वहाँ न नदी है, न पर्वत है । वहाँ के मनुष्य और देवता एक समान वेष और एक समान रूप वाले होते हैं । हे मैत्रेय ! वर्ण एवं आश्रम के विभाग से रहित, धर्माचारविहीन, तीन वेद, दण्डनीति और शुश्रूषा आदि से भी वर्जित ये दोनों महावीर तथा धातकीखण्ड पृथिवी का उत्तम स्वर्ग ही हैं । हे मुने ! उन महावीर एवं धातकीखण्डनामक दोनों वर्षो का समय समस्त ऋतुओं में सुख

देनेवाला और जरा (बूढ़ापा), रोग आदि से विहीन रहता है। उस पुष्कर द्वीप में ब्रह्मा जी के निवासभूत एक वट का वृक्ष है जहाँ देव, दानव से पूजित श्रीब्रह्माजी निवास करते हैं ॥ ७९-८६ ॥

स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः।
समेन पुष्करस्यैव विस्तारान्मण्डलं तथा
एवं द्वीपाः समुद्रैश्च सप्त सप्तभिरावृताः ॥ ८७ ॥

पुष्करद्वीप चारों ओर से अपने ही समान विस्तारवाले मीठे जल के समुद्र से मण्डलाकार घिरा हुआ हैइस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं ।। ८७ ॥

द्वीपश्चैव समुद्रैश्च समानौ द्विगुणौ परौ ॥ ८८ ॥

पयांसि सर्व्वदा सर्व्व-समुद्रेषु समानि वै।
न्यूनातिरिक्तता तेषां कदाचिन्नैव जायते ॥ ८९ ॥

स्थालीस्थमग्निसंयोगादुद्रेकि सलिलं यथा।
तथेन्दुवृद्धौ सलिलमम्भोधौ मुनिसत्तम ॥ ९० ॥

न न्यूना नातिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च।
उदयास्तमयेष्विन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ९१ ॥

और द्वीप एवं समुद्र आपस में समान किन्तु उत्तरोत्तर द्विगुण होते गये हैं। और समस्त समुद्रों के जल भी सदा एक समान ही रहता है कमी वेशी नहीं होती। हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस प्रकार पात्र में स्थित जल अग्नि के संयोग से उबलता है उसी प्रकार समुद्र का जल भी चन्द्रमा की वृद्धि से बढ़ता है। शुक्ल एवं कृष्णपक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त से न्यूनाधिक न होने वाला भी सागरजल घटता बढ़ता है ॥ ८८-९१ ॥

दशोत्तराणि पञ्चैव अन्दुलानां शतानि वै।
अपां वृद्धिक्षयौ दृष्टौ सामुद्रीणां महामुने ॥ ९२ ॥

हे महामुने ! समुद्र का जल पाँच सौ दस अंगुलतक बढ़ता घटता है ऐसा देखा गया है ॥ ९२ ॥

भोजनं पुष्करद्वीपे तत्र स्वयमुपस्थितम्।
षड् रसं भुञ्जते विप्र ! प्रजाः सर्व्वाः सदैव हि ॥ ९३ ॥

स्वादूदकस्य परतो दृश्यतेऽलोकसंस्थितिः ।
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्व्वजन्तुविवर्जिता ॥ ९४ ॥

लोकालोकस्तथा शैलो योजनायुतविस्तृतः ।
उच्छ्रायेणापि तावन्ति सहस्राण्यचलो हि सः ॥ ९५ ॥

ततस्तमः समावृत्य तं शैलं सर्व्वतः स्थितम्।
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात् परिवेष्टितम्॥ ९६ ॥

हे विप्र ! पुष्करद्वीप में समस्त प्रजागण सदा बिना प्रयत्न के अपने आप उपस्थित षड रसवाले भोजन ग्रहण करते हैं। मीठे पानी के समुद्र के सभी ओर लोक (लोग) के निवास से रहित तथा सभी प्राणियों से वर्जित दूनी सुवर्णमयी पृथ्वी दिखायी देती है। वहाँ दस हजार योजन विस्तारवाला लोकालोक पर्वत है। वह पर्वत ऊँचाई में भी दस हजार योजन ही है। उसके बाद सभी ओर से पर्वत को घेरकर घोर अन्धकार छाया है, और वह अन्धकार चारों ओर से ब्रह्माण्डकटाह-द्वारा घिरा हुआ है ॥ ९३-९६ ॥

पञ्चाशत्कोटिविस्तारा सेयमुर्व्वी महामुने !
सहैवाण्डकटाहेन सद्वीपाब्धिमहीधरा ॥ ९७ ॥

सेयं धात्री विधात्री च सर्व्वभूतगुणाधिका।
आधारभूता सर्व्वेषां मैत्रेय ! जगतामिति ॥ ९८ ॥

हे महामुने ! इस प्रकार अण्डकटाहके सहित द्वीप, समुद्र एवं पर्वतों से युक्त यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तारवाली है। हे मैत्रेय ! आकाश आदि समस्त भूतों से अधिक गुणवाली सम्पूर्ण जगत् की आधाररूपिणी यह पृथिवी उत्पन्न और पालन करने वाली भी है ॥ ९७-९८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में चौथा अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - पाँचवाँ अध्याय

(पाताल आदि सात लोकों का वर्णन)

पराशर उवाच।

विस्तार एष कथितः पृथिव्या भवतो मया।
सप्ततिस्तु सहस्राणि द्विजोच्छ्रायोऽपि कथ्यते ॥ १ ॥

दशसाहस्त्रमेकैकं पातालं मुनिसत्तम !
अतलं वितलञ्चैव नितलञ्च गभस्तिमत्।
महाख्यं सुतलञ्चाग्रयं पातालञ्चापि सप्तमम् ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र ! यह मैंने आपको पृथिवी का विस्तार कहा, और इसकी ऊँचाई सत्तर हजार योजन कही जाती है। हे मुनिश्रेष्ठ ! अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल—ये सात पृथिवी का तल प्रदेश प्रत्येक दस दस हजार योजन की दूरी पर है ॥ १-२ ॥

शुक्ला कृष्णारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चनाः।
भूमयो यत्र मैत्रेय ! वरप्रासादमण्डिताः ॥ ३ ॥

तेषु दानवदैतेया यक्षाश्च शतशस्तथा।
निवसन्ति महानागजातयश्च महामुने ॥ ४ ॥

स्वर्लोकादपि रम्याणि पातालानीति नारदः।
प्राह स्वर्गसदां मध्ये पातालेभ्यो गतो दिवि ॥ ५ ॥

आह्लादकारिणः शुभ्रा मणयो यत्र सुप्रभाः।
नागैराभ्रियमाणासु पातालं केन तत् समम् ॥ ६ ॥

दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्च शोभिते ।
पाताले कस्य न प्रीतिर्विमुक्तस्यापि जायते ॥ ७ ॥

दिवार्करश्मयो यत्र प्रभां तन्वन्ति नातपम् ।
शशिनश्च न शीताय निशि द्योताय केवलम् ॥ ८ ॥

भक्ष्यभोज्यमहापानमुदितैरतिभोगिभिः ।
यत्र न ज्ञायते कालो गतोऽपि दनुजादिभिः ॥ ९ ॥

वनानि नद्यो रम्याणि सरांसि कमलाकराः ।
पुंस्कोकिलाभिलापाश्च मनोज्ञान्यपराणि च ॥ १० ॥

हे मैत्रेय ! श्रेष्ठ महलों से सुशोभित वहाँ की भूमि श्वेत, पीत, कृष्ण, अरुण, कँकरीली, प्रस्तरमयी और सुवर्ण की बनी है । उनमें दानव, दैत्य, यक्ष और बड़े बड़े सर्पो की सैकड़ों जातियाँ निवास करती हैं । एक समय नारदजी ने पातालों से स्वर्ग में पहुंचकर वहाँ के निवासियों से कहा कि स्वर्ग से भी पाताल अधिक सुन्दर हैं । जहाँ नागों के आभूषणों में सुन्दरकान्तिवाली आनन्द देने वाली स्वच्छ मणियाँ जड़ी हुई हैं उस पाताल को किसके बराबर कहा जाए । यत्र तत्र घूमनेवाली दैत्य और दानवकन्याओं से सुशोभित पाताललोक में कौन ऐसा मुक्त पुरुष है जिसका प्रेम न होगा । जहाँ दिन में सूर्य की किरण केवल प्रकाश करती है घाम नहीं करती, और रात में चन्द्रमा की किरण केवल चाँदनी ही विस्तार करती है शीतलता नहीं । तथा भक्ष्य, भोज्य और महापान को उपभोग करने वाले अति आनन्दयुक्त सर्पों तथा दैत्य—दानवों को बीता हुआ समय मालूम नहीं पड़ता । जहाँ रमणीय वन नदियाँ, सुन्दर सरोवर एवं कमलों का वन हैं, तथा पुरुष कोकिलों की सुमधुर कूक शब्द है और मन को हरण करने वाला आकाश है ॥ ३-१० ॥

भूषणान्यतिरम्याणि गन्धाढ्यञ्चानुलेपनम् ।
वीणावेणुमृदङ्गानां स्वनास्तूर्य्याणि च द्विज ॥ ११ ॥

एतान्यन्यानि चोदारभाग्यभोग्यानि दानवैः ।
दैत्योरगैश्च भुज्यन्ते पातालान्तरगोचरैः ॥ १२ ॥

हे द्विज ! जिस पाताल के निवासी दैत्य, दानव एवं सर्पगण अत्यन्त स्वच्छ आभूषण, सुगन्धयुक्त अनुलेपन, वीणा, वेणु और मृदंग आदि के स्वर तथा तूर्य—ये सभी एवं उत्तमभाग्यवानों के भोगने योग्य और भी अनेक भोग भोगते हैं ॥ ११-१२ ॥

पातालानामधश्चास्ते विष्णोर्य्या तामसी तनुः ।
शेषाख्या यद्गुणान् वक्तुं न शक्ता दैत्यदानवाः ॥ १३ ॥

योऽनन्तः पठ्यते सिद्धैर्देवी देवर्षिपूजितः ।
स सहस्रशिरा व्यक्तस्वस्तिकामलभूषणः ॥ १४ ॥

और पातालों के नीचे शेषनामक श्रीविष्णुभगवान का तमोगुणयुक्त शरीर है जिसके गुण का वर्णन दैत्य, दानव आदि कोई भी नहीं कर सकते । देवता एवं ऋषियों से पूजित जिन देव का वर्णन सिद्धगण 'अनन्त' कहकर करते हैं वे स्पष्ट स्वस्तिक चिन्ह से विभूषित एवं हजार शिरवाले हैं ॥ १३-१४ ॥

फणामणिसहस्रेण यः स विद्योतयन् दिशः ।
सर्व्वान् करोति निर्वीर्य्यान् हिताय जगतोऽसुरान् ॥ १५ ॥

मदाघूर्णितनेत्रोऽसौ यः सदैवैककुण्डलः ।
किरीटी स्रग्धरो भाति साग्निः श्वेत इवाचलः ॥ १६ ॥

नीलवासा मदोत्सिक्तः श्वेतहारोपशोभितः ।
साभ्रगङ्गाप्रवाहोऽसौ कैलासाद्रिरिवोन्नतः ॥ १७ ॥

लाङ्गलासक्तहस्ताग्रो बिभ्रन्मुषलमुत्तमम् ।
उपास्यते स्वयं कान्त्या यो वारुण्या च मूर्त्तया ॥ १८ ॥

कल्पान्ते यस्य वक्त्रेभ्यो विषानलशिखोज्ज्वलः ।
सङ्कर्षणात्मको रुद्रो निष्क्रम्यात्ति जगत्त्रयम् ॥ १९ ॥

जो हजार फणों की हजार मणियों द्वारा दिशाओं को प्रकाशित करते हुए जगत् के कल्याण के लिए असुरों को पराक्रमहीन करते हैं । मदसे अरुण नेत्रवाले सदा एक कुण्डल धारण करने वाले किरीट एवं माला से विभूषित जो (शेष भगवान्) अग्निसहित श्वेतपर्वत के समान सुशोभित होते हैं । मद से उन्मत्त नीलवस्त्रधारी

श्वेतहारों से सुशोभित जो मेघ एवं गंगाकी धारा से युक्त दूसरे कैलास पर्वत के समान स्थित हैं। जो अपने हाथों में हल और मूसल लिये हैं और जिनकी उपासना स्वयं मूर्तिमती बनकर कान्ति और वारुणीदेवी करती हैं। तथा कल्प के अन्त में जिनके मुखों से विषरूपी अग्निशिखा के समान प्रज्वलित संकर्षणनामक रुद्र निकलकर तीनों लोकों का भक्षण करता है ॥ १५-१९ ॥

स बिभ्रच्छेखरीभूतम क्षितिमण्डलम्।
आस्ते पातालमूलस्थः शेषोऽशेषसुरार्चितः ॥ २० ॥

तस्य वीर्य्यं प्रभावञ्च स्वरूपं रूपमेव च।
न हि वर्णयितुं शक्यं ज्ञातुं वा त्रिदशैरपि ॥ २१ ॥

यस्यैषा सकला पृथ्वी फणामणिशिखारुणा।
आस्ते कुसुममालेव कस्तद्वीर्य्यं वदिष्यति ॥ २२ ॥

समस्त देवताओं से पूजित वही शेषभगवान् मुकुट के समान समस्त भूमण्डल को धारण करते हुए पाताल-तल में विराजमान हैं। उनका पराक्रम, प्रभाव, स्वरूप (तत्त्व) तथा रूप, देवताओं द्वारा भी वर्णित नहीं हो सकता तथा जाना नहीं जा सकता। जिन के फणों की मणियों की प्रभा से लालवर्ण हुई यह समस्त पृथिवी पुष्पमाला के समान सुशोभित होती है उनका प्रभाव कौन कह सकता है? ॥ २०-२२ ॥

यदा विजृम्भतेऽनन्ता मदाघूर्णितलोचनः।
तदा चलति भूरेषा साद्रितोयाब्धिकानना ॥ २३ ॥

गन्धर्व्वाप्सरसः सिद्धाः किन्नरोरगचारणाः।
नान्तं गुणानां गच्छन्ति तेनानन्तोऽयमव्ययः ॥ २४ ॥

यस्य नागवधूहस्तैर्लेगितं हरिचन्दनम्।
मुहुः श्वासानिलापास्तं याति दिक्षूदवासताम् ॥ २५ ॥

जिस समय मद से मत्तनेत्र वाले भगवान् अनन्त जमुहाई लेते हैं उस समय समुद्र और वन के साथ समस्त पृथ्वी कम्पित हो जाती हैं। गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, किन्नर, सर्प और चारण आदि कोई भी अन्त नहीं पा सकते। अतएव वे अविनाशी

देव 'अनन्त' कहे जाते हैं। नागवधुओं के हाथ से लेपन किया गया जिनका हरि चन्दन बार बार श्वास वायु से छूटकर दिशाओं को सुवासित करता है ॥ २३-२५ ॥

यमाराध्य पुराणर्षिर्गर्गो ज्योतींषि तत्त्वतः ।
ज्ञातवान् सकलञ्चैव निमित्तपठितं फलम् ॥ २६ ॥

जिनकी आराधना करके प्राचीन कालीन ऋषि गर्ग ने समस्त ग्रहनक्षत्रादि एवं (शकुन अपशकुन आदि) नैमित्तिक फलों का भी ज्ञान प्राप्त किया था ॥ २६ ॥

तेनेयं नागवर्य्येण शिरसा विधृता मही ।
बिभर्त्ति मालां लोकानां सदेवासुरमानुषाम् ॥ २७ ॥

वही नागश्रेष्ठ शेषभगवान् अपने शिर के ऊपर इस पृथ्वी को धारण किये हैं, जो पृथ्वी, देव, दानव, मनुष्य सहित समस्त लोकमाला को धारण किये हुए है ॥२७ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में पाँचवाँ अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - छठा अध्याय

(नरक वर्णन एवं हरिमाहात्म्य कथन)

पराशर उवाच ।

ततश्च नरकान् विप्र ! भुवोऽधः सलिलस्य च ।
पापिनो येषु पात्यन्ते तान् श्रृणुष्व महामुने ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे विप्र ! इसके बाद पृथ्वी एवं जल के नीचे अनेक नरक हैं । हे महामुने ! अब उनके विषय में सुनो ॥ १ ॥

रौरवः शूकरो रोधस्तालो विशसनस्तथा ।
महाज्वालस्तप्तकुम्भः श्वसनोऽथ विमोहनः ॥ २ ॥

रुधिरान्धो वैतरणी क्रिमीशः क्रिमिभोजनः ।
असिपत्रवनं कृष्णो लालभक्षश्च दारुणः ॥ ३ ॥

तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालो ह्यधः शिराः ।
सन्दंशः कालसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च ॥ ४ ॥

श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठश्चावीचिश्च तथापरः ।
इत्येवमादयश्चान्ये नरका भृशदारुणाः ॥ ५ ॥

रौरव, सूकर, रोध, ताल, विशसन, महाज्वाल, तप्तकुम्भ, लवण, विलोहित, रुधिराम्भ, वैतरणी, कृमीश, कृमिभोजन, असिपत्रवन, कृष्ण, लालाभक्ष, दारुण, पूयवह, पाप, वह्निज्वाल, अधःशिरा, सन्दश, कालसूत्र, तमस्, आवीचि, श्वभोजन, अप्रतिष्ठ, तथा अप्राचि—ये सब और इनके अतिरिक्त दूसरे भी महाभयङ्कर अनेकों नरक हैं ॥ २-५ ॥

यमस्य विषये घोराः शस्त्राग्निभयदायिनः ।
पतन्ति येषु पुरुषाः पापकर्म्मरतास्तु ये ॥ ६ ॥

ये समस्त नरक यमराज के आधीन हैं, तथा ये सभी शस्त्र एवं अग्नि के भय देने वाले हैं और इनमें पापी लोग ही गिरते हैं ॥ ६ ॥

कूटसाक्षी तथा सम्यक् पक्षपातेन यो वदेत् ।
यश्चान्यदनृतं वक्ति स नरो याति रौरवम् ॥ ७ ॥

भ्रूणहा पुरहर्त्ता च गोघ्नश्च मुनिसत्तम ! ।
यान्ति ते नरकं रोधं यश्चोच्छ्वासनिरोधकः ॥ ८ ॥

सुरापो ब्रह्महा स्तेयी सुवर्णस्य च शूकरे ।
प्रयाति नरके यश्च तैः संसर्गमुपैति वै ॥ ९ ॥

राजन्यवैश्यहा ताले तथैव गुरुतल्पगः ।
तप्तकुण्डे स्वसृगामी हन्ति राजभटांश्च यः ॥ १० ॥

साध्वीविक्रयकृद्वद् बद्धपालः केशरिविक्रयी ।
तप्तलोहे पतन्त्येते यश्च भक्तं परित्यजेत् ॥ ११ ॥

जो झूठी गवाही देता है, जो पक्षपात से बोलता है और जो अन्य प्रकार का मिथ्या भाषण करता है—ये सभी रौरव नरक में जाते हैं । हे मुनिसत्तम ! गर्भ को नष्ट करने वाले, गाँव को नष्ट करने वाले, गोहत्या करने वाले रोधनामक नरक में जाते हैं । जो श्वास को रोकनेवाले है मद्य-पीनेवाला, ब्रह्महत्या करने वाला, सुवर्ण की चोरी करने वाला—ये सभी और इनका संसर्ग करने वाला सूकर नामक नरक में जाते हैं । क्षत्रिय या वैश्य का वध करने वाला, गुरुपत्नी के साथ गमन करने वाला, तालनामक नरक में गिरते हैं और भगिनी के साथ गमन करने वाला, राजपुरुषों का वध करने वाला तप्तकुण्डनामक नरक में जाते हैं । सती स्त्री को बेचनेवाला, कारागार के रक्षक, घोड़े को बेचनेवाला, भक्त का परित्याग करने वाला—ये सभी तप्तलोह नामक नरक में गिरते हैं ॥ ७-११ ॥

स्नुषां सुताञ्चापि गत्वा महाज्वाले निपात्यते ।
अवमन्ता गुरूणां यो यश्चाक्रोष्टा नराधमः ॥ १२ ॥

वेददूषयिता यश्च वेदविक्रयिकश्च यः ।
अगम्यगामी यश्च स्यात् ते यान्ति लवणं द्विज ॥ १३ ॥

पुत्रवधु, तथा अपनी कन्या के साथ गमन करने वाला मनुष्य महाज्वालनरक में गिराया जाता है, और जो नीच मनुष्य गुरु का अपमान करने वाला तथा उनको कटुवचन बोलनेवाला, वेद की निन्दा करने वाला, वेद बेचने वाला और अगम्या स्त्री के साथ जो गमन करने वाला है ये सभी लवणनरक में जाते हैं ॥ १२-१३ ॥

चौरो विमोहे पतति मर्य्यादादूषकस्तथा ।
देवद्विजपितृद्वेष्टा रत्नदूषयिता च यः ।
स याति क्रिमिभक्षे वै क्रिमीशे च दुरिष्टकृत् ॥ १४ ॥

पितृदेवातिथीन् यश्च पर्य्यश्नाति नराधमः ।
लालभक्षे स यात्युग्रे शरकर्त्ता च वेधके ॥ १५ ॥

करोति कर्णिनो यश्च यश्च खड्गादिकृन्नरः ।
प्रयान्त्येते विशसने नरके भृशदारुणे ॥ १६ ॥

असत्प्रतिग्रहीता तु नरके यात्यधोमुखे ।
अयाज्ययाजकश्चैव तथा नक्षत्रसूचकः ॥ १७ ॥

क्रिमिपूयवहश्चैको याति मिष्टान्नभुङ् नरः ।
लाक्षा-मांस-रसानाञ्च तिलानां लवणस्य च ।
विक्रेता ब्राह्मणो याति तमेव नरकं द्विज ॥ १८ ॥

मार्ज्जार-कुक्कुटच्छाग-श्व-वराह-विहङ्गमान् ।
पोषयन्नरकं याति तमेव द्विजसत्तम् ॥ १९ ॥

चोर तथा मर्यादा को दूषित करने वाला विमोहनामक नरक में जाते हैं, देवता, ब्राह्मण और पितृगण से द्वेष करने वाला, और रत्न को दूषित करने वाला कृमिभक्षनरक में जाता है, तथा दुष्टयज्ञ करने वाला क्रिमीशनरक में गिरता है । जो नीच पुरुष पितृ देवता और अतिथि को त्याग कर उनसे पहले भोजन कर लेता है वह लालाभक्षनामक नरक में जाता है और शर (बाण) बनाने वाले वेध नरक में

पड़ता है जो मनुष्य कर्णी नामक बाण बनाता है, तथा जो खड्ग आदि शस्त्र बनाता है,—ये सभी अत्यन्त भयङ्कर विशसन नरक में गिरते हैं। असत्-प्रतिग्रह करनेवाले, अयाज्य याजक, तथा नक्षत्रविद्या से जीविका चलाने वाले—ये सभी अधोमुखनरक में पड़ते हैं, निष्ठुर कर्म करने वाला पूयवहनरक में गिरता है, और जो मनुष्य अपने बन्धुबर्ग को वञ्चित करके अकेले मिठा पदार्थ भोजन करता है, तथा लाख, मांस, रस, तिल तथा लवण आदि बेचने-वाला ब्राह्मण पूयवहनामक नरक में ही गिरता है। हे द्विजसत्तम ! बिलाव, कुक्कुट, छाग (बकरा), कुत्ता, शूकर, तथा (जीविका के लिए) पक्षियों का पालन करने वाले पुरुष पूयवह नामक नरक में जाते हैं ॥ १४-१९ ॥

रङ्गोपजीवी कैवर्त्तः कुण्डाशी गरदस्तथा
सूची माहिषिकश्चैव पर्व्वकारी च यो द्विजः ॥ २० ॥

आगारदाही मित्रघ्नः शाकुनिर्ग्रामयाजकः ।
रुधिरान्धे पतन्त्येते सोमं विक्रीणते च ये ॥ २१ ॥

मधुहा ग्रामहन्ता च याति वैतरणीं नरः !
रेतःपातादिकर्त्तारो मर्य्यादाभेदिनो हि ये ।
ते कृष्णे यान्त्यशौचाश्च कुहकाजीविनश्च ये ॥ २२ ॥

असिपत्रवनं याति वनच्छेदी वृथैव यः ।
औरभ्रिका मृगव्याधा वह्निज्वाले पतन्ति वै ॥ २३ ॥

यान्त्येते द्विज ! तत्रैव ये चापाकेषु वह्निदाः ।
व्रतानां लोपको यश्च स्वाश्रमाद् विच्युतश्च यः ॥ २४ ॥

सन्दंशयातनामध्ये पततस्तावुभावपि ।
दिवास्वप्ने च स्कन्दन्ते ये नरा ब्रह्मचारिणः ।
पुत्रैरध्यापिता ये च ते पतन्ति श्वभोजने ॥ २५ ॥

नट या मल्लवृत्ति से अपनी जीविका चलाने वाला, धीवर की वृत्ति करने वाला, कुण्डका (उपपति से उत्पन्न सन्तान का) अन्न भोजन करने वाला, विष देने वाला, चुगली करने वाला, माहिषिक (महिष से अपनी जीविका चलाने वाला या

महिषी भार्या का नाम है उसके द्वारा असद्वृत्ति से उपार्जित धन से जीविका चलाने वाला) अमावस्या आदि पर्व के दिन भी काम करने वाला, ब्राह्मण घर में आग लगाने वाला, मित्र की हत्या करने वाला, शकुन आदि बताने वाला, गाँव का पुरोहित और मदिरा बेचनेवाला—ये सभी रुधिरान्धनरक में जाते हैं। यज्ञ को और गाँव को नष्ट करने वाला मनुष्य वैतरणी-नरक में जाता है, तथा वीर्यपात आदि करने वाले, खेतों के बाँध काटनेवाले, अपवित्रता और धूर्तता से जीविका चलाने वाले कृष्णनरक में जाते हैं इसी प्रकार वृथा जो वनको काटता है वह असिपत्रनाम के नरक में गिरता है। मेष (भेड़) से अपनी जीविका चलाने वाले और व्याधगण वह्निज्वाल नरक में पड़ते हैं। तथा हे ब्राह्मण ! जो मनुष्य कच्चे घड़े आदि को पकाने के लिए उनमें आग डालते हैं वह भी वह्निज्वाल नामवाले नरक में गिरते हैं। व्रत को लोप करने वाला और अपने व्रत से च्युत होने वाला—ये दोनों सन्दंशनाम के नरक में गिरते हैं। जिन ब्रह्मचारियों को दिन में सोते समय वीर्यपात हो जाता है अथवा जो मनुष्य अपने पुत्र से ही अध्ययन करते हैं वे श्वभोजननामवाले नरक में पड़ते हैं॥ २०-२५॥

एते चान्ये च नरकाः शतशोऽथ सहस्रशः।
येषु दुष्कृतकर्म्माणः पच्यन्ते यातनागताः॥ २६॥

यथैव पापान्येतानि तथान्यानि सहस्रशः।
भुज्यन्ते यानि पुरुषैर्नरकान्तरगौचरैः॥ २७॥

वर्णाश्रमविरुद्धञ्च कर्म्म कुर्व्वन्ति ये नराः।
कर्म्मणा मनसा वाचा निरयेषु पतन्ति ते॥ २८॥

ये सभी और इनके अतिरिक्त भी सैकड़ों हजारों नरक हैं जिनमें दुष्कर्म करने वाले नाना प्रकार की यातनाएँ भोगते हैं। उपरोक्त इन पापों के अतिरिक्त भी अन्य प्रकार के हजारों पाप हैं उन सभी के फल पुरुष नाना प्रकार के नरक में भोगते हैं। जो पुरुष कर्म से, मन से, वचन से अपने वर्ण तथा आश्रम विरुद्ध कर्म करते हैं वे सभी नरक में ही जाते हैं॥ २६-२८॥

अधःशिरोभिर्दृश्यन्ते नारकैर्दिवि देवताः।
देवाश्चाधोमुखान् सर्व्वानधः पश्यन्ति नारकान्॥ २९॥

स्थावराः क्रिमयोऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।
धार्म्मिकास्त्रिदशास्तद्वन्मोक्षिणश्च यथाक्रमम् ॥ ३० ॥

सहस्त्रभागाः प्रथमा द्वितीयानुक्रमास्तथा ।
सर्वे ह्येते महाभाग ! यावन्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ ३१ ॥

अधोमुखनरक वासियों को (स्वर्गलोक) देवगण दिखायी देते हैं और देवगण अधोभागस्थित नरक निवासियों को देखते हैं । पापी लोग नरक के दुःख भोगने के बाद क्रमशः स्थावर, कृमि, जलचर पक्षी, पशु और धार्मिक मनुष्य होकर मुमुक्षु भी होते हैं । हे महाभाग ! मुमुक्षुकालतक इनमें दूसरों की अपेक्षा प्रथमप्राणी (संख्या में) हजार गुणा अधिक हैं ॥ २९-३१ ॥

यावन्तो जन्तवः स्वर्गे तावन्तो नरकौकसः ।
पापकृद् याति नरकं प्रायश्चित्तपराङ्मुखः ॥ ३२ ॥

और जितने प्राणी स्वर्ग में हैं उतने ही प्राणी नरक में भी हैं अपने पाप के प्रायश्चित नहीं करने वाले पापीलोग नरक में जाते हैं ॥ ३२ ॥

पापानामनुरूपाणि प्रायश्चित्तानि यद् यथा ।
तथा तथैव संस्मृत्य प्रोक्तानि परमर्षिभिः ॥ ३३ ॥

पापे गुरूणि गुरुणि स्वल्पान्यल्पे च तद्विदः ।
प्रायश्चित्तानि मैत्रेय ! जगुः स्वायम्भुवादयः ॥ ३४ ॥

प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपः कर्म्मात्मकानि वै ।
यानि तेषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ ३५ ॥

कृते पापेऽनुतापो वै यस्य पुंसः प्रजायते ॥
प्रायश्चित्तन्तु तस्यैकं हरिसंस्मरणं परम् ॥ ३६ ॥

प्रातर्निशि तथा सन्ध्या-मध्याह्नादिषु संस्मरन् ।
नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः ॥ ३७ ॥

विभिन्न पापों के अनुकूल जो प्रायश्चित हैं उनको ही महर्षियों ने याद करके कहा है । और हे मैत्रेय ! स्वायम्भुवमनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने महान् पापों के लिए महान् और अल्पपापों के लिए अल्प-प्रायश्चित कहे हैं । किन्तु तपस्यास्वरूप

अथवा कर्मस्वरूप जितने भी प्रायश्चित हैं उनमें श्रीकृष्ण का स्मरण सर्वश्रेष्ठ है । और पाप करने के बाद जिस पुरुष के मन में पश्चात्ताप होता है उसके लिये केवल श्रीहरि का स्मरण ही प्रायश्चित्त है । प्रातःकाल, सायंकाल, रात्रिमें, तथा मध्याह्न आदि के समय भगवान् का स्मरण करने से पाप क्षीण हो जाने पर पुरुष श्रीनारायण को प्राप्त करता ह ॥ ३३-३७ ॥

विष्णुसंस्मरणात् क्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयः ।
मुक्तिं प्रयाति स्वर्गाप्तिस्तस्य विघ्नोऽनुमीयते ॥ ३८ ॥

वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्च्चनादिषु ।
तस्यान्तरायो मैत्रेय ! देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥ ३९ ॥

क्व नाकपृष्ठगमनं पुनरावृत्तिलक्षणम् ।
क्व जपो वासुदेवेति मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥ ४० ॥

तस्मादहर्निशं विष्णुं संस्मरन् पुरुषो मुने !
न याति नरकं मर्त्यः संक्षीणाखिलपातकः ॥ ४१ ॥

श्रीविष्णु के स्मरण से समस्त क्लेश के क्षीण हो जाने से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है स्वर्ग प्राप्ति तो उसके लिए विघ्नस्वरूप है । हे मैत्रेय ! जिसका मन जप, होम तथा पूजनादि कर्म करते हुए भी श्रीवासुदेव में ही लगा रहता है उसके लिये इन्द्रपद आदि की प्राप्तिरूप फल भी विघ्न ही होते हैं । पुनर्जन्म आदि के चक्र में डालने वाली कहाँ तो स्वर्गादि की प्राप्ति और कहाँ मोक्ष का सर्वोत्तम बीजरूप 'वासुदेव' नाम का जप (इनकी तुलना कदापि नहीं हो सकती) । अतएव हे मुने ! दिनरात श्रीविष्णुभगवान् के स्मरण करने से समस्त पाप क्षीण हो जाने के बाद मनुष्य नरक में नहीं जाता ॥ ३८-४१ ॥

मनःप्रीतिकरः स्वर्गो नरकस्तद्विपर्य्ययः ।
नरक-स्वर्गसंज्ञे वै पापपुण्ये द्विजोत्तम ॥ ४२ ॥

चित्त को प्रसन्न करने वाला स्वर्ग, तथा चित्त को अप्रसन्न करने वाला नरक है । किन्तु हे द्विजोत्तम ! पाप और पुण्य का दूसरा नाम ही नरक और स्वर्ग हैं ॥४२ ॥

वस्त्वेकमेव दुःखाय सुखायेर्ष्योद्भवाय च।
कोपाय च यतस्तस्माद् वस्तु वस्त्वात्मकं कुतः ॥ ४३ ॥

जब एक ही वस्तु सुख, दुःख और क्रोध एवं ईर्ष्या आदि का कारण होती है तब वस्तु का वस्तुत्व कहाँ रहा ॥ ४३ ॥

तदेव प्रीतये भूत्वा पुनर्दुःखाय जायते।
तदेव कोपाय ततः प्रसादाय च जायते ॥ ४४ ॥

तस्माद् दुःखात्मकं नास्ति न च किञ्चित् सुखात्मकम्।
मनसः परिणामोऽयं सुखदुःखादिलक्षणः ॥ ४५ ॥

ज्ञानमेव परं ब्रह्म ज्ञानं बन्धाय चेष्यते।
ज्ञानात्मकमिदं विश्वं न ज्ञानाद् विद्यते परम्।
विद्याविद्येति मैत्रेय ! ज्ञानमेवावधारय ॥ ४६ ॥

क्योंकि एक ही वस्तु एक काल में प्रीतिका कारण होकर दूसरे समय में दुःख का भी कारण हो जाती है तो कभी प्रसन्नता का भी कारण बनती हैं इस प्रकार विचार करने से कोई भी वस्तु सुखात्मक नहीं है न कोई दुःखात्मक है सुख और दुःख केवल मनके ही विकार हैं। ज्ञान ही परम ब्रह्म है किन्तु अविद्यायुक्तज्ञान बन्धन का कारण भी होता है समस्त विश्व ही ज्ञानमय है ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हे मैत्रेय ! विद्या और अविद्या को भी तुम ज्ञान ही समझो ॥ ४४-४६ ॥

एवमेतन्मया ख्यातं भवतो मण्डलं भुवः।
पातालानि च सर्व्वाणि तथैव नरका द्विज ॥ ४७ ॥

समुद्राः पर्व्वताश्चैव द्वीपवर्षाणि निम्नगाः।
सङ्क्षेपात् सर्व्वमाख्यातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ४८ ॥

हे द्विज ! इस प्रकार मैंने तुमको पृथ्वीमण्डल समस्त, पाताललोक तथा नरकों के विषय में कहा। तथा समुद्र, पर्वत, द्वीप, वर्ष, नदी, आदि सभी के विषय में संक्षेप से कहा, अब क्या सुनना चाहते हो ॥ ४७-४८ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में छठा अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - सातवाँ अध्याय

(सूर्यादिग्रहों और सात लोकों की स्थिति का वर्णन)

मैत्रेय उवाच !

कथितं भूतलं ब्रह्मन् ममैतदखिलं त्वया ।
भुवर्लोकादिकान् लोकान् श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने ॥ १ ॥

तथैव ग्रहसंस्थानं प्रमाणानि यथा तथा ।
समाचक्ष्व महाभाग मह्यं त्वं परिपृच्छते ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे ब्रह्मन् ! आपने मुझ से समस्त भूमण्डल का वर्णन किया । हे मुने ! अब मैं भुवर्लोक आदि समस्त लोकों का वर्णन सुनना चाहता हूँ । और हे महाभाग ! ग्रहों की स्थिति उनका परिमाण आदि जिज्ञासु मुझ से यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १-२ ॥

पराशर-उवाच ।

रवि-चन्द्रमसोर्यावन्मयूखैरवभासते ।
ससमुद्रसरिच्छैला तावती पृथिवी स्मृता ॥ ३ ॥

यावत्प्रमाणा पृथिवी विस्तारपरिमण्डलात् ।
नभस्तावत्प्रमाणं वै व्यासमण्डलतो द्विज ॥ ४ ॥

भूमेर्य्योजनलक्षे तु सौरं मैत्रेय ! मण्डलम् ।
लक्षाद् दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्थितम् ॥ ५ ॥

पूर्णे शतसहस्रे तु योजनानां निशाकरात् ।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नमुपरिष्टात् प्रकाशते ॥ ६ ॥

द्वे लक्षे चोपरि ब्रह्मन् बुधो नक्षत्रमण्डलात् ।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशना स्थितः ॥ ७ ॥

अङ्गारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः ।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः ॥ ८ ॥

सौरिर्बृहस्पतेश्चोर्ध्वं द्विलक्षे सम्यगास्थितः ।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमेकं द्विजोत्तम ॥ ९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से जितनी दूरतक प्रकाशित होता है समुद्र, नदी और पर्वतों से युक्त उतना प्रदेश पृथ्वी कहा जाता है ।हे विप्र ! पृथिवी का जितना विस्तार तथा घेरा है भुवर्लोक भी उतना विस्तार और परिमण्डल वाला है । हे मैत्रेय ! पृथिवी से एकलाख योजन की दूरीपर सूर्यमण्डल है और सूर्यमण्डल से एक लाख योजन की दूरी पर चन्द्रमा का मण्डल है । तथा चन्द्रमण्डल से पूरे एक लाख योजन ऊपर समस्त नक्षत्रों का मण्डल प्रकाशित होता है । हे ब्रह्मन् ! नक्षत्रमण्डल से दो लाख योजन की दूरी पर बुध और बुध से भी दो लाख योजन ऊँचाई पर शुक्र हैं । तथा शुक्र से इतनी ही दूरी पर मंगल और मंगल से भी दो लाख योजन ऊपर देवपुरोहित बृहस्पति हैं । हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर शनि स्थित हैं और उससे एकलाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल हैं ॥ ३-९ ॥

ऋषिभ्यस्तु सहस्राणां शतादूर्ध्वं व्यवस्थितः ।
मेधीभूतः समस्तस्य ज्योतिश्चक्रस्य वै ध्रुवः ॥ १० ॥

इसी प्रकार सप्तर्षियों से एक लाख योजन की दूरी पर ज्योतिश्चक्र का नाभिभूत ध्रुव मण्डल है ॥ १० ॥

त्रैलोक्यमेतत् कथितमुत्सेधेन महामुने !
इज्याफलस्य भूरेषा इज्या चात्र व्यवस्थिता ॥ ११ ॥

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोको यत्र ते कल्पवासिनः ।
एकयोजनकोटिस्तु यत्र ते कल्पवासिनः ॥ १२ ॥

द्वे कोट्यौ तु जनो लोको यत्र ते ब्रह्मणः सुताः ।
सनन्दनाद्याः कथिता मैत्रेयामलचेतसः ॥ १३ ॥

चतुर्गुणोत्तरे चोर्द्ध्वं जनलोकात् तपः स्मृतम् ।
वैराजा यत्र ते देवाः स्थिता दाहविवर्ज्जिताः ॥ १४ ॥

षड् गुणेन तपोलोकात सत्यलोको विराजते ।
अपुनर्म्मारका यत्र ब्रह्मलोको हि स स्मृतः ॥ १५ ॥

हे महामुने ! आपसे यह त्रिलोकी की उच्चता के विषय में कहा, और यह त्रिलोकी यज्ञफल की भोगभूमि है तथा यज्ञ की स्थिति इस भारतदेश में ही हैं । ध्रुव से एक करोड़ योजन ऊपर महर्लोक है जहाँ कल्पजीवित रहने वाले सिद्धगण निवास करते हैं । और महर्लोक से भी दो करोड़ योजन ऊपर जनलोक है । हे मैत्रेय ! वहाँ ब्रह्माजी के विख्यात पुत्र निर्मलचित्त वाले सनन्दन आदि निवास करते हैं । जनलोक से आठ करोड़ योजन ऊपर तपलोक है, जहाँ दाह से वर्जित वैराजनामक देवगण निवास करते हैं । और तपलोक से बारह करोड़ योजन ऊपर सत्यलोक है । जहाँ पुनः नही मरने वाले अमरगण निवास करते हैं और इसी को ब्रह्मलोक कहा जाता है ॥ ११-१५ ॥

पादगम्यन्तु यत्किञ्चित् वस्त्वस्ति पृथिवीमयम् ।
स भूर्लोकः समाख्यातो विस्तारोऽस्य मयोदितः ॥ १६ ॥

भूमिसूर्य्यान्तरं यत्तु सिद्धादिमुनिसेवितम् ।
भुवर्लोकस्तु सोऽप्युक्तो द्वितीयो मुनिसत्तम ॥ १७ ॥

पाँव से जाने योग्य जो कुछ भी है वह पार्थिव भूर्लोक है जिसका विस्तार मैंने कह दिया । हे मुनिश्रेष्ठ ! पृथिवी और सूर्य के मध्यका स्थान जो सिद्ध आदि से सेवित है वह दूसरा भुवर्लोक भी मैंने कहा ॥ १६-१७ ॥

ध्रुवसूर्य्यान्तरं यच्च नियुतानि चतुर्द्दश ।
स्वर्लोकः सोऽपि गदितो लोकसंस्थानचिन्तकैः ॥ १८ ॥

त्रैलोक्यमेतत् कृतकं मैत्रेय ! परिपठ्यते ।
जनस्तपस्तथा सत्यमिति चाकृतकं त्रयम् ॥ १९ ॥

कृतकाकृतयोर्म्मध्ये महर्लोक इति स्मृतः ।
शून्यो भवति कल्पान्ते योऽत्यन्तं न विनश्यति ॥ २० ॥

एते सप्त मया लोका मैत्रेय ! कथितास्तव ।
पातालानि च सप्तैव ब्रह्माण्डस्यैव विस्तरः ॥ २१ ॥

ध्रुव तथा सूर्य के मध्य का जो चौदह लक्ष योजन का अन्तर है उसे लोक संस्थान के विचारकों ने स्वर्लोक कहा है । हे मैत्रेय ! ये 'कृतक' (भूः भुवः स्वः) त्रैलोक्य कहा जाता है और जन, तप एवं सत्य-ये तीनों लोक 'अकृतक' कहे जाते हैं । और इन दोनों कृतक तथा अकृतक के मध्य में महर्लोक है, जो कल्प के अन्त में जनशून्य होता है किन्तु उसका अत्यन्त विनाश नहीं होता । हे मैत्रेय ! इस प्रकार से मैंने सात लोक और सात पाताल कहे । इस ब्रह्माण्ड का इतना ही विस्तार है ॥ १८-२१ ॥

एतदण्डकटाहेन तिर्य्यक् चोर्द्ध्वमधस्तथा ।
कपित्थस्य यथा बीजं सर्व्वतो वै समावृतम् ॥ २२ ॥

दशोत्तरेण पयसा मैत्रेयाण्डञ्च तद् वृतम् ।
सर्व्वोऽम्बुपरिधानोऽसौ वह्निना वेष्टितो बहिः ॥ २३ ॥

वह्निश्च वायुना वायुर्मैत्रेय ! नभसा वृतः ।
भूतादिना नभः सोऽपि महता परिवेष्टितः ॥ २४ ॥

यह ब्रह्माण्ड कपित्थ के बीज के समान ऊपर-नीचे और सभी ओर से अण्डकटाह द्वारा घिरा है । हे मैत्रेय ! यह अण्ड अपने से दशगुने जल से घिरा है, जल का आवरण अग्नि से । वायु से अग्नि, वायु आकाश से, आकाश भूतों के कारण तामस अहंकार से घिरा है तथा तामस अहंकार महत्तत्व से घिरा है ॥ २२-२४ ॥

दशोत्तराण्यशेषाणि मैत्रेयैतानि सप्त वै ।
महान्तञ्च समावृत्य प्रधानं समवस्थितम् ॥ २५ ॥

अनन्तस्य न तस्यान्तः संख्यानञ्चापि विद्यते ।
तदनन्तमसंख्यातप्रमाणं व्यापि वै यतः ॥ २६ ॥

हेतुभूतमशेषस्य प्रकृतिः सा परा मुने !
अण्डानान्तु सहस्राणां सहस्राण्ययुतानि च।
ईदृशानां तथा तत्र कोटिकोटिशतानि च ॥ २७ ॥

दारुण्यग्निर्यथा तैलं तिले तद्वत् पुमानपि।
प्रधानेऽवस्थितो व्यापी चेतनात्मात्मवेदनः ॥ २८ ॥

प्रधानञ्च पुमांश्चैव सर्व्वभूतात्मभूतया।
विष्णुशक्तया महाबुद्धे ! वृतौ संश्रयधर्म्मिणौ ॥ २९ ॥

तयोः सैव पृथग्भावकारणं संश्रयस्य च।
क्षोभकारणभूता च सर्गकाले महामते ॥ ३० ॥

यथा शैत्यं जले वातो बिभर्त्ति कणिकाशतम्।
जगच्छक्तिस्तथा विष्णोः प्रधानपुरुषात्मिका ॥ ३१ ॥

यथा च पादपो मूलस्कन्धशाखादिसंयुतः।
आदिबीजात् प्रभवति बीजान्यन्यानि वै ततः ॥ ३२ ॥

प्रभवन्ति ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यपरे द्रुमाः।
तेऽपि तल्लक्षणद्रव्यकारणानुगता मुने ॥ ३३ ॥

हे मैत्रेय ! ये सातों उत्तरोत्तर एक दूसरे से दसगुने हैं। और महत्तत्त्व को भी चारों ओर से आवृत करके प्रधान अवस्थित हैं। उस अनन्त का कभी अन्त नहीं होता और उसकी कोई संख्या भी नहीं है, क्योंकि हे मुने ! वह अनन्त है, असंख्येय, अपरिमेय है, और समस्त जगत् का कारण है तथा वही पराप्रकृति है। उसमें लाखों हज़ारों तथा सैकड़ों करोड़ इस प्रकार के ब्रह्माण्ड हैं। जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि तथा तिल में तैल रहता है उसी प्रकार चेतनात्मा सर्वव्यापी स्वप्रकाश पुरुष प्रधान में विराजमान है। हे महाबुद्धे ! ये परस्पर में मिले हुए प्रधान और समस्त भूतों के आत्मभूत विष्णु की शक्ति से आवृत हैं। हे महामते ! वह विष्णुशक्ति ही प्रलयकाल में उन दोनों के पृथग्भाव और स्थिति के समय सम्मेलन के कारण है। तथा सृष्टि के आरम्भकाल में वही वैष्णवी शक्ति उनके क्षोभ का कारण भी है। जिस प्रकार वायु जल के संसर्ग से सैकड़ों जलकलों को धारण करता है उसी प्रकार

विष्णु की शक्ति भी प्रधानपुरुषमय जगत् को धारण करती है। जिस प्रकार आदि बीज से मूल, स्कन्ध, शाखा, प्रशाखा आदि युक्त वृक्ष उत्पन्न होता है और उसके बाद उससे अन्यान्य बीज भी उत्पन्न होते हैं और उनसे भी दूसरे वृक्ष उत्पन्न होते हैं ॥ २५-३३ ॥

एवमव्याकृतात् पूर्व्वं जायन्ते महदादयः।
विशेषान्तास्ततस्तेभ्यः सम्भवन्त्यसुरादयः ॥ ३४ ॥

तेभ्यश्च पुत्रास्तेषाञ्च पुत्राणामपरे सुताः।
बीजाद् वृक्षप्ररोहेण यथा नापचयस्तरोः।
भूतानां भूतसर्गेण नैवास्त्यपचयस्तथा ॥ ३५ ॥

सन्निधानाद् यथाकाशकालाद्याः कारणं तरोः।
तथैव परिणामेन विश्वस्य भगवान् हरिः ॥ ३६ ॥

और वे उत्पन्न हुए वृक्ष भी लक्षण और द्रव्य से युक्त होते हैं। उसी प्रकार अव्याकृत (प्रधान) से महत्तत्त्व आदि पञ्च महाभूत पर्यन्त समस्त विकार उत्पन्न होते हैं। तथा उनसे देव, असुर आदि की उत्पत्ति होती है इसी प्रकार पुनः उनके पुत्र पौत्रादि होते जाते हैं। जैसे अपने बीज से अन्य वृक्ष को उत्पन्न होने पर वृक्ष की कोई क्षती नहीं होती, वैसे ही एक प्राणि से अन्य प्राणी के उत्पन्न होने पर कोई हानि नहीं होती। आकाश आदि जिस प्रकार सामीप्य से ही वृक्ष के हेतु हैं उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि भी परिणाम के बिना ही जगत् के कारण हैं ॥ ३४-३६ ॥

ब्रीहिबीजे यथा मूलं नालं पत्राङ्कुरौ तथा।
काण्डं कोषस्तथा पुष्पं क्षीरं तद्वच्च तण्डुलाः ॥ ३७ ॥

तुषाः कणाश्च सन्तो वै यान्त्याविर्भावमात्मनः।
प्ररोहहेतुसामग्रीमासाद्य मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥

तथा कर्म्मस्वनेकेषु देवाद्याः समवस्थिताः।
विष्णुशक्तिं समासाद्य प्ररोहमुपयान्ति वै ॥ ३९ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जैसे धान के बीज में मूल, नाल, पल, अंकुर, तना, पुष्प क्षीर, तण्डुल, भूसी तथा कण सभी रहते हैं तथा अंकुर के हेतुभूत सामग्री (भूमि

आदि) प्राप्त होने पर वे स्वयं प्रगट होते हैं उसी प्रकार अनेक प्रकार के अपने कर्मों में स्थित देवता आदि श्रीविष्णुभगवान् की शक्ति को प्राप्त करके उत्पन्न हो जाते हैं ॥३७-३९ ॥

स च विष्णुः परं ब्रह्म यतः सर्व्वमिदं जगत् ।
जगच्च यो यत्र चेदं यस्मिंश्च लयमेष्यति ॥ ४० ॥

तद् ब्रह्म तत् परं धाम सदसत् परमं पदम् ।
यस्य सर्व्वमभेदेन यतश्चैतच्चराचरम् ॥ ४१ ॥

स एव मूलप्रकृतिर्व्यक्तरूपी जगच्च सः ।
तस्मिन्नेव लयं सर्व्वं याति तत्र च तिष्ठति ॥ ४२ ॥

कर्त्ता क्रियाणां स च इज्यते क्रतुः स एव तत् कर्म्मफलञ्च तस्य तत् ।
स्रुगादि यत् साधनमप्यशेषतो हरेर्न किञ्चिद् व्यतिरिक्तमस्ति वै ॥ ४३ ॥

वह विष्णु भगवान् ही परम ब्रह्म है, जिनसे यह समस्त जगत् उत्पन्न हुआ। जो जगत् स्वरूप हैं और जिनमें समस्त जगत् लय को भी प्राप्त करता है। वही ब्रह्म हैं, वही (श्रीविष्णुका) परमधाम हैं, और वह पद सत् और असत् दोनों से विलक्षण हैं, तथा जिसके अभेद रूप से यह समस्त चराचर जगत् उत्पन्न हैं। वही अव्यक्त मूल प्रकृति है, और वही व्यक्त जगत् स्वरूप भी है, तथा उन्हीं में सम्पूर्ण जगत् लीन हो जाता है एवं उन्हीं में स्थित है। वही समस्त यज्ञों के कर्ता है, उन्हीं का यज्ञों द्वारा पूजन किया जाता है, यज्ञादि के फल भी वही है, इसी प्रकार यज्ञादि के साधन भूत स्रुवा आदि भी श्रीहरि से अतिरक्त और कुछ भी नहीं हैं ॥४०-४३ ।।

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में सातवाँ अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - आठवाँ अध्याय

(कालनिरूपण और गंगा आविर्भाव का वर्णन)

पराशर उवाच।

व्याख्यातमेतद् ब्रह्माण्डसंस्थानं तव सुव्रत !
ततः प्रमाणसंस्थाने सूर्य्यादीनां शृणुष्व मे ॥ १ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे सुव्रत ! इस प्रकार मैंने तुम से ब्रह्माण्ड की स्थिति का वर्णन किया, इसके बाद सूर्य आदि ग्रहों की स्थिति और उनके परिमाण आदि के विषय में भी सुनो ॥ १ ॥

योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव।
ईषादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो मुनिसत्तम ॥ २ ॥

सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि वै।
योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥

त्रिनाभिमति पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके।
संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥ ४ ॥

हे मुनिवर ! भगवान् सूर्य का रथ नौ हजार योजन विस्तृत है, और उसका जूआ और रथ का मध्यभाग उससे दो गुना है। और उस रथ का धुरा एक करोड़ सत्तावन लाख योजन लम्बा है उसमें चक्र (पहिया) लगा है। (पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न) तीन उसकी नाभि, (परिवत्सर आदि) उसके पाँच अरे और (छः ऋतु) छः उसकी नेमि है इस प्रकार अक्षयस्वरूप संवत्सरात्मक उस चक्र में समस्त कालचक्र अवस्थित है ॥ २-४ ॥

चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः ।
पञ्चान्यानि तु सार्द्धानि स्यन्दनस्य महामते ॥ ५ ॥

अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः ।
ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारो रथस्य वै ।
द्वितीयेऽक्षो तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले ॥ ६ ॥

हयाश्च सप्त च्छन्दांसि तेषां नामानि मे शृणु ।
गायत्री स बृहत्युष्णिग् जगती त्रिष्टुबेव च ।
अनुष्टुप् पंक्तिरित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो रवेः ॥ ७ ॥

हे महामते ! भगवान् सूर्य के रथ का दूसरा धुरा साढ़े पैंतालिस हजार योजन लम्बा है, और धुरों के बराबर ही प्रमाण वाले उसके दोनों जूए भी हैं । इनमें से छोटा धुरा उस रथ के एक जुए के साथ ध्रुव के आधार पर स्थित है और दूसरे धुरे का चक्र मानसोत्तरपर्वत पर स्थित है । और उस सूर्य रथ के सात छन्द ही सात घोड़े हैं, उनके नाम सुनो—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति—ये सात छन्द ही सूर्य के सात घोड़े कहे गये हैं ॥ ५-७ ॥

मानसोत्तरशैले तु पूर्व्वतो वासवी पुरी ।
दक्षिणेन यमस्यान्या प्रतीच्यां वरुणस्य च ।
उत्तरेण च सोमस्य तासां नामानि मे शृण ॥ ८ ॥

वस्वौकसारा शक्रस्य याम्या संयमनी तथा ।
पुरी सुखा जलेशस्य सोमस्य च विभावरी ॥ ९ ॥

मानसोत्तरपर्वत के पूर्व में इन्द्र की पुरी, दक्षिण में यम की, पश्चिम में वरुण की और उत्तर में चन्द्रमा की पुरी है । इन चारों पुरियों का नाम सुनो । इन्द्र की वस्वौकसारा पुरी, यम की संयमनी पुरी है, वरुण की सुखा नाम की पुरी और चन्द्रमा की पुरी विभावरी नाम की है ॥ ८-९ ॥

काष्ठां गतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ।
मैत्रेय ! भगवान् भानुर्ज्योतिषां चक्रसंयुतः ॥ १० ॥

अहोरात्रव्यवस्थानकारणं भगवान् रविः ।
देवयानः परः पन्था योगिनां क्लेशसंक्षये ॥ ११ ॥

दिवसस्य रविर्म्मध्ये सर्व्वकालं व्यवस्थितः ।
सर्व्वद्वीपेषु मैत्रेय ! निशार्द्धस्य च सम्मुखः ॥ १२ ॥

उदयास्तमने चैव सर्व्वकालन्तु सम्मुखे ।
विदिशासु त्वशेषासु तथा ब्रह्मन् ! दिशासु च ॥ १३ ॥

यैर्यत्र दृश्यते भास्वान् स तेषामुदयः स्मृतः ।
तिरोभावञ्च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः ॥ १४ ॥

नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्व्वदा सतः ।
उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः ॥ १५ ॥

हे मैत्रेय ! ज्योतिश्चक्र के साथ भगवान् सूर्य दक्षिण दिशा में पहुंचकर छोड़े हुए बाण के समान तेजी से चलते हैं । और भगवान् सूर्य ही दिन तथा रात की व्यवस्था के कारण हैं क्लेशों के क्षय हो जाने पर योगियों के लिए वही सर्वश्रेष्ठ देवयान नामक मार्ग है । हे मैत्रेय ! समस्त द्वीपों में सदा मध्यान्ह और मध्यरात्रि में भगवान् भास्कर आकाश के बीच में ठीक सामने की ओर रहते हैं (अर्थात् जिस द्वीप में या जिस खण्ड में सूर्य भगवान् मध्याह्न के समय सामने पड़ते हैं उसकी समान रेखा पर दूसरी ओर स्थित दूसरे द्वीप में वे ठीक उसी प्रकार आधी रात के समय रहते हैं) हे मैत्रेय ! इसी प्रकार उदय और अस्त भी सर्वदा एक से दूसरे के सामने होते हैं । हे ब्रह्मन् ! समस्त दिशा और विदिशाओं में जहाँ के निवासी भगवान् सूर्य का जिस स्थान पर दर्शन करते हैं उनके यहाँ सूर्योदय होता है और जहाँ पर दिन के अन्त में सूर्य का तिरोभाव होता है वहीं उसका अस्त कहा जाता है । वस्तुतः सदा एक रूप से विराजमान सूर्यभगवान् का न तो उदय होता है और न अस्त, केवल सूर्य का अवलोकन होना और न होना यही उनका उदय एवं अस्त है ॥ १०-१५ ॥

शक्रादीनां पुरे तिष्ठन् स्पृशत्येष पुरत्रयम् ।
विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन् कोणान्द्वे पुरे तथा ॥ १६ ॥

उदितो वर्द्धमानाभिरा मध्याह्नात् तपन् रविः।
ततः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं नियच्छति ॥ १७ ॥

मध्याह्न समय में इन्द्र आदि में से किसी की पुरी में प्रकाशित होते हुए भगवान् भास्कर तीन पुरियों और दो कोणों को प्रकाशित करते हैं। इसी प्रकार अग्नि आदि कोणों में से किसी एक कोण में प्रकाशित होने पर तीन कोणों और दो पुरियों को प्रकाशित करते हैं। उदय होने पर भगवान् भास्कर अपनी बढ़ती हुई किरणों से मध्याह्न पर्यन्त तपते हैं इसके बाद क्षीण होती हुई अपनी किरणों के साथ अस्त हो जाते हैं ॥ १६-१७ ॥

उदयास्तमनाभ्याञ्च स्मृते पूर्व्वापरे दिशौ।
यावत् पुरस्तात् तपति तावत् पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥ १८ ॥

ऋतेऽमरगिरेर्मेरोरुपरि ब्रह्मणः सभाम्।
ये ये मरीचयोऽर्कस्य प्रयान्ति ब्रह्मणः सभाम्।
ते ते निरस्तास्तद्भासा प्रतीपमुपयान्ति वै ॥ १९ ॥

तस्माद्दिश्युत्तरस्यां वै दिवारात्रिः सदैव हि।
सर्व्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतो यतः ॥ २० ॥

सूर्य के उदय एवं अस्त होने के कारण से ही पूर्व तथा पश्चिम दिशा का विभाग हुआ है। जिस प्रकार भगवान् सूर्य पूर्व दिशा में अपना प्रकाश फैलाते हैं उसी प्रकार पश्चिम दिशा और दोनों पार्श्व में (उत्तर और दक्षिण में) अपना प्रकाश फैलाते हैं। भगवान् भास्कर देवपर्वत तथा सुमेरुपर्वत के ऊपर स्थित श्रीब्रह्माजी की सभा के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानों को प्रकाशित करते हैं। सूर्यभगवान् की जो किरणें श्रीब्रह्माजी की सभा में प्रवेश करती हैं वे सभी ब्रह्मा जी के तेज से निरस्त होकर उलटी ही लौट आती हैं। सभी द्वीप और वर्षों के उत्तर में सुमेरुपर्वत है अतएव उत्तर दिशा (मेरुपर्वतपर) में सदैव एक ओर दिन ओर एक ओर रात रहते हैं ॥ १८-२० ॥

प्रभा विवस्वतो रात्रावस्तं गच्छति भास्करे।
विशत्यग्निमतो रात्रौ वह्निर्दूरात् प्रकाशते ॥ २१ ॥

वह्निपादस्तथा भान्तं दिनेष्वाविंशति द्विज !
अतीव वह्निसंयोगादतः सूर्य्यः प्रकाशते ॥ २२ ॥

तेजसी भास्कराग्नेये प्रकाशोष्णस्वरूपिणी ।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥ २३ ॥

दक्षिणोत्तरभूम्यर्द्धे समुत्तिष्ठति भास्करे ।
अहोरात्रं विशत्यम्भस्तमः प्राकाश्यशीलवत् ॥ २४ ॥

आताम्रा हि भवन्त्यापो दिवा नक्तप्रवेशनात् ।
दिनं विशति चैवाम्भो भास्करेऽस्तमुपेयुषि ।
तस्माच्छुक्लीभवन्त्यापो नक्तमम्भःप्रवेशनात् ॥ २५ ॥

और रात में सूर्य के अस्त हो जाने पर सूर्य की प्रभा अग्नि में प्रवेश कर जाती है अत एव रात में अग्नि दूर से ही प्रकाशित होता है । हे द्विज ! इसी प्रकार दिन में अग्नि की प्रभा सूर्य में प्रवेश करती है अत एव दिन में सूर्यभगवान् अत्यन्त तेज किरणों से प्रकाशित होते हैं । इस प्रकार सूर्य और अग्नि के प्रकाश और उष्णतायुक्त तेज आपस में मिलकर दिन एवं रात में बढ़ते रहते हैं । (सुमेरु के) दक्षिणी और उत्तरी भूम्यर्ध में सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्धमय रात और प्रकाशमय दिन दोनों क्रमशः जल में प्रवेश कर जाते हैं । दिन के समय रात्रि के जल में प्रवेश कर जाने पर जल कुछ ताम्रवर्ण दिखायी देता है, और सूर्य के अस्त होने पर उसमें दिन का प्रवेश होता है इसी कारण से दिन के प्रवेश करने पर रात में जल श्वेतवर्ण का दीखता है ॥ २०-२५ ॥

एव पुष्करमध्ये तु यदा याति दिवाकरः ।
त्रिशद्भागन्तु मेदिन्यास्तदा मौहूर्त्तिकी गतिः ॥ २६ ॥

कुलालचक्रपर्य्यन्तो भ्रमन्नेष दिवाकरः ।
करोत्यहस्तथा रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनीं द्विज ॥ २७ ॥

इस प्रकार जब सूर्य पुष्कर द्वीप के मध्यभाग में पहुंचते हैं तब पृथ्वी का तीसवाँ भाग पार कर लेते हैं वह उनकी गति एक मुहूर्त कही जाती है (अर्थात् पृथ्वी के तीसवाँ भाग को पार करने से जितना समय लगता है वह एक मुहूर्त कहा जाता

है)। हे द्विज ! कुम्हार के चाक पर घूमते हुए जीव की गति के समान भ्रमण करते हुए श्रीसूर्य भगवान् भी एक दिन रात में पृथिवी के तीसों भागों को पार करते हैं ॥ २६-२७ ॥

अयनस्योत्तरस्यादौ मकरं याति भास्करः ।
ततः कुम्भञ्च मीनञ्च राशे राश्यन्तरं द्विज ॥ २८ ॥

त्रिष्वेतेष्वथ भुक्तेषु ततो वैषुवतीं गतिम् ।
प्रयाति सविता कुर्व्वन्नहोरात्रं ततः समम् ।
ततो रात्रिः क्षयं याति वर्द्धतेऽनुदिनं दिनम् ॥ २९ ॥

ततश्च मिथुनस्यान्त्ये पराकाष्ठामुपागतः ।
राशं कर्कटकं प्राप्य कुरुते दक्षिणायनम् ॥ ३० ॥

कुलालचक्रपर्य्यन्तो यथा शीघ्रं प्रवर्त्तते ।
दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यस्तथा शीघ्रं प्रवर्त्तते ॥ ३१ ॥

अतिवेगितया कालं वायुवेगबलाच्चलन् ।
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिन्तु कालेनाल्पेन गच्छति ॥ ३२ ॥

सूर्य्यो द्वादशभिः शैघ्र्यान् मुहूर्त्तैर्दक्षिणायने ।
त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्ना तु चरति द्विज ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥ ३३ ॥

कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति ।
तथोदगयने सूर्य्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥ ३४ ॥

तस्माद् दीर्घेण कालेन भूमिमल्पान्तु गच्छति ।
अष्टादशमुहूर्त्तं यदुत्तरायणपश्चिमम् ।
अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥ ३५ ॥

हे द्विज ! उत्तरायण के आरम्भ में सर्वप्रथम सूर्य मकरराशि पर जाते हैं, इसके बाद कुम्भ और मीन राशि पर पहुंचते हैं। इस प्रकार इन तीन राशियों को भोग लेने के बाद सूर्यनारायण दिन और रात को समान करते हुए वैषुवगति का

अवलम्बन करते हैं अर्थात् उस समय सूर्य भूमध्यरेखा पर पहुंच जाते हैं इसके बाद रात छोटी और दिन बड़ा होने लगता है। पुन: मिथुनराशि के अन्त में उत्तरायण की अन्तिम सीमा पर पहुंचने के बाद सूर्यभगवान् कर्कराशि को प्राप्तकर दक्षिणायन गति आरम्भ करते हैं। जिस प्रकार कुम्हार के चाक पर स्थित जीव अति शीघ्रता से चलते हैं उसी प्रकार दक्षिणायन गति समाप्त करने के लिए सूर्य भी अत्यन्त शीघ्रता से चलते हैं। अत: वायु के समान वेग से शीघ्रतापूर्वक चलते हुए सूर्यनारायण उत्कृष्टमार्ग को भी थोड़े ही समय में पार कर जाते हैं। हे द्विज ! सूर्य भगवान् दक्षिणायन में दिन के समय शीघ्रतापूर्वक चलने के कारण साढ़े तेरह नक्षत्रों को बारह मुहूर्तों में ही पार कर लेते हैं। किन्तु मन्दगति होने से रात्रि के समय उतने ही नक्षत्रों को अठारह मुहूर्तों में पार करते हैं। कुलालचक्र के मध्य में स्थित जीव जिस प्रकार मन्दगति से चलता है उसी प्रकार उत्तरायण के समय सूर्य भगवान् थोड़े मार्ग को भी ज्यादा देर में पार करते हैं। उत्तरायण के अन्तिम दिन भी सूर्य भगवान् अति मन्दगति से ही गमन करते हैं अतएव वह दिन भी अठारह मुहूर्त का होता है ॥ २८-३५ ॥

त्रयोदशार्द्धमह्ना तु ऋक्षाणां चरते रविः ।
मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन् ॥ ३६ ॥

अथो मन्दतरं नाभ्यां चक्रं भ्रमति वै यथा ।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै तथा ॥ ३७ ॥

कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते ।
ध्रुवस्तथा हि मैत्रेय ! तत्रैव परिवर्त्तते ॥ ३८ ॥

और ज्योतिश्चक्रार्ध के साढ़े तेरह नक्षत्रों को एक दिन में पार करते हैं किन्तु रात्रि में उतने ही नक्षत्रों को बारह मुहूर्तों में ही पार कर जाते हैं। अत एव नाभिदेश में जिस प्रकार चाक के मन्द मन्द घूमने से वहाँ का हृत्पिण्ड भी मन्द भाव से ही घूमता है, उसी प्रकार ज्योतिश्चक्र के मध्य में विराजमान ध्रुव भी मन्द गति से ही भ्रमण करता है। हे मैत्रेय ! जिस प्रकार कुम्हार के चाक की नाभि अपने स्थान पर ही भ्रमण करती है उसी प्रकार ध्रुव भी अपने स्थान पर ही भ्रमण करता है ॥ ३६-३८ ॥

उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ।
दिवा नक्तञ्च सूर्य्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥ ३९ ॥

मन्दाह्नि यस्मिन्नयने शीघ्रा नक्तं तदा गतिः ।
शीघ्रा निशि यदा चास्य तदा मन्दा दिवा गतिः ॥ ४० ॥

एकप्रमाणमेवैष मार्गं याति दिवाकरः ।
अहोरात्रेण यो भुङ्क्ते समस्ता राशयो द्विज ॥ ४१ ॥

षडेव राशयो भुङ्क्ते रात्रावन्यांश्च षड् दिवा ।
राशिप्रमाणजनिता दीर्घह्रस्वात्मता दिने ।
तथा निशायां राशीनां प्रमाणैर्लघुदीर्घता ॥ ४२ ॥

दिनादेर्दीर्घह्रस्वत्वं तद्भोगेनैव जायते ।
उत्तरे प्रक्रमे शीघ्रा निशि मन्दा गतिर्दिवा ।
दक्षिणे त्वयने चैव विपरीता विवस्वतः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार (उत्तर तथा दक्षिण) दोनों सीमाओं में मण्डलाकार भ्रमण करने से सूर्य की गति दिन अथवा रात्रि में मन्द अथवा शीघ्र होती है । जिस अयन में दिन के समय सूर्य की गति मन्द होती है उस अयन में रात्रि के समय शीघ्र होती है, और जब रात में मन्द गति होती है तब दिन में शीघ्र हो जाती है । हे द्विज ! ये भगवान् भास्कर सदा एक समान ही मार्ग को पार करते हैं, और दिन रात में ही समस्त राशियों का भोग कर लेते हैं । सूर्यभगवान् छः राशियों को दिन में और छः राशियों को रात में भोगते हैं । और दिन का घटना बढ़ना राशियों के परिमाण से ही होता है । और रात्रि का भी घटना बढ़ना राशियों के प्रमाणानुसार ही होता है । तथा राशियों के भोग के अनुसार ही दिन अथवा रात्रि में छोटे बड़े होते हैं, उत्तरायण में सूर्यभगवान् की गति रात में मन्द और दिन में शीघ्र होती है । और दक्षिणायन में सूर्य की गति दिन में तेज और रात में मन्द हो जाती है ॥ ३९-४३ ॥

उषा रात्रिः समाख्याता व्युष्टिश्चाप्युच्यते दिनम् ।
प्रोच्यते च तथा सन्ध्या उषा-व्युष्ट्योर्यदन्तरम् ॥ ४४ ॥

सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते रौद्रे परमदारुण ।
मन्देहा राक्षसा घोराः सूर्य्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥ ४५ ॥

प्रजापतिकृतः शापस्तेषां मैत्रेय ! रक्षसाम् ।
अक्षयत्वं शरीराणां मरणञ्च दिने दिने ॥ ४६ ॥

ततः सूर्य्यस्य तैर्युद्धं भवत्यत्यन्तदारुणम् ।
ततो द्विजोत्तमास्तोयं यत् क्षिपन्ति महामुने ॥ ४७ ॥

ओङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
तेन दह्यन्ति ते पापा वज्रभूतेन वारिणा ॥ ४८ ॥

अग्निहोत्रे हूयते या समन्त्रा प्रथमाहुतिः ।
सूर्य्यो ज्योतिःसहस्रांशुस्तया दीप्यति भास्करः ॥ ४९ ॥

उषा रात्रि कहलाती है और व्युष्टि (प्रभात) दिन कहलाता है, उषा और प्रभात के बीच का जो काल है उसे 'सन्ध्या' कहते हैं। अत्यन्त, दारुण और भयङ्कर सन्ध्याकाल होने पर मन्देहा नामक राक्षसगण सूर्य को खाना चाहते हैं। हे मैत्रेय ! उन राक्षसों को प्रजापति का दिया हुआ यह शाप है कि उनका शरीर अक्षय होने पर भी प्रतिदिन उनकी मृत्यु होती है। अतएव सन्ध्या के समय उन मन्देहा नामक राक्षसों का सूर्य के साथ अत्यन्त भयानक युद्ध होता है। और हे महामुने ! उस समय उत्तम द्विजगण ओंकार युक्त गायत्री-मन्त्र से अभिमन्त्रित जल छोड़ते हैं और वज्रसमान उस जल से वे पापी राक्षसगण भस्म हो जाते हैं। और अग्निहोत्र में मन्त्र के (सूर्योज्योतिः) साथ जो पहली आहुति दी जाती है उससे सूर्यभगवान् देदीप्यमान होते हैं ॥ ४४-४९ ॥

ओङ्कारो भगवान् विष्णुस्त्रिधामा वचसां पतिः ।
तदुच्चारणतस्ते तु विनाशं यान्ति राक्षसाः ॥ ५० ॥

वैष्णवोंऽशः परं सूर्य्यो योऽन्तर्ज्योतिरसंप्लवम् ।
अभिधायक ओङ्कारस्तस्य तत्प्रेरकः परः ॥ ५१ ॥

तेन सम्प्रेरितं ज्योतिरोङ्कारेणाथ दीप्तिमत् ।
दहत्यशेषरक्षांसि मन्देहाख्यानि तानि वै ॥ ५२ ॥

तस्मान्नोल्लङ्घनं कार्य्यं सन्ध्योपासनकर्म्मणः ।
स हन्ति सूर्य्यं सन्ध्यायां नोपास्तिं कुरुते तु यः ॥ ५३ ॥

ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैरभिरक्षितः ।
बालखिल्यादिभिश्चैव जगतः पालनोद्यतः ॥ ५४ ॥

ओंकार स्वरूप त्रिधामा (जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिरूप) समस्त वाणियों के अधिपति भगवान् श्रीविष्णु हैं, उनके उच्चारणमात्र से सभी राक्षस विनष्ट हो जाते हैं। सूर्यभगवान् विष्णुभगवान् के विकाररहित ज्योतिः स्वरूप अत्यन्त श्रेष्ठ अंश हैं। और ओंकार उनका (श्रीसूर्य का) वाचक है वह उसे उन राक्षसों के वध में प्रेरित करता है। उस ओंकार से प्रेरित और अत्यन्त प्रदीप्त वह ज्योति उन मन्देहा नामक पापी राक्षसों को भस्म कर देती है। अतएव सन्ध्योपासनकर्म का कदापि परित्याग नहीं करना चाहिए। जो मानव (द्विज) सन्ध्योपासन नहीं करता वह सूर्य का हनन करता है। (उन राक्षसों का विनाश करने के बाद) सूर्य भगवान् संसार के पालन के लिए उद्यत होकर बालखिल्य आदि ब्राह्मणों से अभिरक्षित होकर आगे गमन करते हैं ॥ ५१-५४ ॥

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव। त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलाञ्च।
त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्त स्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥ ५५ ॥
ह्रासवृद्धी त्वहर्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम्।
सन्ध्या मुहूर्त्तमात्रा वै ह्रासवृद्धौ समा स्मृता ॥ ५६ ॥

पन्द्रह निमेश की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला गिनी जाती है। तीस कलाओं का एक मुहूर्त्त और तीस मुहूर्त्ते के एक दिन रात होते हैं। दिनों का ह्रास और वृद्धि यथाक्रम दिवस के भागों (प्रातः काल मध्याह्नकाल आदि) के कारण होते हैं, किन्तु (दिनों के घट बढ़ होने पर भी) सन्ध्या सदा समभाव से एक मुहूर्त्त की ही होती है ॥ ५५-५६ ॥

लेखात् प्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तगते तु वै।
प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागश्चाह्नः स पञ्चमः ॥ ५७ ॥

ततः प्रातस्तनात् कालात् त्रिमुहूर्त्तस्तु सङ्गवः।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तस्तु तस्मात् कालात् तु सङ्गवात् ॥ ५८ ॥

तस्मान्माध्याह्निकात् कालादपराहण इति स्मृतः।
त्रय एव मुहूर्तास्तु कालभागः स्मृतो बुधैः।
अपराहणे व्यतीते तु कालः सायाह्न एव च ॥ ५९ ॥

दशपञ्चमुहूर्त्ताहि मुहूर्त्तास्त्रय एव च ।
दशपञ्चमुहूर्त्त वै अहर्वैषुवतं स्मृतम् ॥ ६० ॥

वर्द्धतेऽहो ह्रसेच्चैवाप्ययने दक्षिणोत्तरे ।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिर्ग्रसति वासरम् ॥ ६१ ॥

शरद्वसन्तयोर्म्मध्ये विषुवन्तु विभाव्यते ।
तुलामेषगते भानौ समरात्रिदिनन्तु तत् ॥ ६२ ॥

कर्कटावस्थिते भानौ दक्षिणायनमुच्यते ।
उत्तरायणमप्युक्तं मकरस्थे दिवाकरे ॥ ६३ ॥

उदयकाल से आरम्भ करके सूर्य की तीन मुहूर्त की गति के समय को प्रातःकाल कहा जाता है, वह काल दिन का पाँचवाँ भाग है । उस प्रातःकाल से आरम्भ कर तीन मुहूर्त्ततक काल 'सङ्गव' काल कहा जाता है, उस सङ्गवकाल से तीन मुहर्त्तकाल मध्याह्नकाल कहा जाता है । और उस मध्याह्नकाल से बाद का काल 'अपराह्न' कहा जाता है । बुधजन इस कालभाग को भी तीन मुहूर्त का ही कहते हैं । अपराह्न के बीत जाने पर सायाह्नकाल होता है । इस प्रकार (समस्त दिन में) पन्द्रह मुहूर्त और (प्रत्येक दिन भाग में) तीन मुहूर्त होते हैं । वैषुवत दिन पन्द्रह मुहूर्त का होता है । किन्तु उत्तरायण और दक्षिणायन में क्रमशः वृद्धि और ह्रास होते हैं । इस प्रकार उत्तरायणसूर्य में दिन रात को ग्रास करना आरम्भ करता है, दक्षिणायन में रात्रि दिन को ग्रास करती हैं । शरद् और बसन्त ऋतु के मध्य में सूर्य को तुला अथवा मेषराशिपर जाने से 'विषुव' होता है । एवं उस समय रात और दिन बराबर होते हैं । जब सूर्य कर्कराशि पर जाते हैं तब दक्षिणायन, और जब मकरराशि पर जाते हैं तब उत्तरायण आरम्भ होता हैं ॥ ५७-६३ ॥

त्रिंशन्मुहूर्त्तं कथितमहोरात्रन्तु यन्मया ।
तानि पञ्चदश ब्रह्मन् ! पक्ष इत्यभिधीयते ॥ ६४ ॥

मासः पक्षद्वयेनोक्तो द्वौ मासौ चार्कजावृतुः ।
ऋतुत्रयञ्चाप्ययनं द्वेऽयने वर्षसंज्ञितम् ॥ ६५ ॥

संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मासविकल्पिताः ।
निश्चयः सर्व्वकालस्य युगमित्यभिधीयते ॥ ६६ ॥

संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ।
इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ।
वत्सरः पञ्चमश्चात्र कालोऽयं युगसंज्ञितः ॥ ६७ ॥

हे ब्रह्मन् ! मैंने जो तीस मुहूर्त का एक रातदिन कहा, इस प्रकार के पन्द्रह रात और पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है दो पक्षों का एक मास, और दो सौरमास की एक ऋतु, एवं तीन ऋतुओं का एक अयन, तथा दो अयन का एक वर्ष होता है । चार प्रकार के मासों के अनुसार संवत्सर आदि पाँच प्रकार की वर्षकल्पना होती हैं । युग ही सर्वप्रकार के काल निश्चय का कारण माना जाता है । पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर, चौथा अनुवत्सर तथा पाँचवाँ वत्सर है । यह काल युग के नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ ६४-६७ ॥

यः श्वेतस्योत्तरः शैलः शृङ्गवानिति विश्रुतः ।
त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणिं यैरसौ श्रृङ्गवान् स्मृतः ॥ ६८ ॥

दक्षिणश्चोत्तरश्चैव मध्यं वैषुवतं तथा ।
शरद्वसन्तयोर्म्मध्ये तद्भानुः प्रतिपद्यते ॥ ६९ ॥

मेषादौ च तुलादौ च मैत्रेय ! विषुवत् स्थितः ।
तदा तुल्यमहोरात्रं करोति तिमिरापहः ।
दशपञ्चमुहूर्त्तं वै तदेतदुभयं स्मृतम् ॥ ७० ॥

प्रथमे कृत्तिकाभागे यदा भास्वांस्तथा शशी ।
विशाखानां चतुर्थेंऽशे मुने ! तिष्ठत्यसंशयम् ॥ ७१ ॥

विशाखानां यदा सूर्य्यर्चश्चत्यंशं तृतीयकम् ।
तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ॥ ७२ ॥

तदैव विषुवाख्यो वै कालः पुण्योऽभिधीयते ।
तदा दानानि देयानि देवेभ्यः प्रयतात्मभिः ॥ ७३ ॥

ब्राह्मणेभ्यः पितृभ्यश्च मुखमेतत् तु दानजम् ।
दत्तदानस्तु विषुवे कृतकृत्योऽभिजायते ॥ ७४ ॥

अहोरात्राधिमासौ तु कलाकाष्ठाक्षणास्तथा।

श्वेत वर्ष के उत्तर में श्रृङ्गवान् नाम का जो पर्वत है उसके तीन श्रृङ्ग हैं अतएव उसका नाम श्रृङ्गवान् हुआ। उन तीनों श्रृङ्गों में एक श्रृङ्ग उत्तर में, एक दक्षिण में और एक मध्य में हैं। मध्यश्रृङ्ग ही वैषुवत कहा जाता है। तथा शरद् और वसन्त के मध्य श्रीसूर्यभगवान् इस वैषुवत श्रृङ्ग पर आते हैं। अतएव हे मैत्रेय !मेष और तुलाराशि के आरम्भ में अन्धकार को हरण करने वाले भगवान्, श्रीसूर्यदेव विषुवत् पर स्थित होकर दिन और रात को बराबर करते हैं। उस समय रात और दिन पन्द्रह पन्द्रह मुहूर्त के होते हैं। हे मुने ! जब सूर्य कृत्तिकानक्षत्र के प्रथमभाग (अर्थात् मेषराशि के अन्त) में और चन्द्रमा निश्चयपूर्वक विशाखा-नक्षत्र के चतुर्थ अंश में हों, (अर्थात् वृश्चिकराशि के आरम्भ में हों) अथवा जिस समय सूर्य विशाखानक्षत्र के तृतीय भाग में (तुलाराशि के अन्तिम अंश में) हों और चन्द्रमा कृतिकानक्षत्र के प्रथमभाग (मेष के अन्त में) पहुंच जायें, तब यह 'विषुव' नामक का पवित्र काल कहा जाता है। इस पवित्रकाल में देवता, ब्राह्मण और पितरों के उद्देश्य से संयतचित्त होकर दान देना चाहिये। यह दान के लिए खुले हुए मुख के समान हैं। विषुवत् में दान देनेवाला मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। दिन, रात्रि, पक्ष, कला, काष्ठा और क्षण आदि यज्ञादि में अच्छीप्रकार से जानना चाहिए ॥ ६८-७४ ॥

पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावस्या तथैव च।
सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥ ७५ ॥

राका और अनुमति के भेद से पौर्णमासी दो प्रकार की होती है, तथा सिनीवाली और कुहू के भेद से अमावस्या भी दो प्रकार की होती है ॥ (पूर्णचन्द्र-वाली पूर्णिमा 'राका', और एक कलाहीन चन्द्रवाली पूर्णिमा 'अनुमति' कही जाती है। इसी प्रकार चन्द्र दीखनेवाली अमावस्या 'सिनीवाली' और चन्द्र न दीखने वाली 'कुहू' कही जाती है) ॥ ७५ ॥

तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात्।
नभो नभस्योऽथ इषश्च सोर्ज्जः सहः सहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥ ७६ ॥

माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़—ये छः मास उत्तरायण, और श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्त्तिक मार्गशीर्ष और पौष—ये छः मास दक्षिणायन कहे जाते हैं ॥ ७६ ॥

लोकालोकश्च यः शैलः प्रागुक्तो भवतो मया।
लोकपालास्तु चत्वारस्तत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः ॥ ७७ ॥

सुधामा शङ्खपाच्चैव कर्द्दमस्यात्मजो द्विज।
हिरण्यरोमा चैवान्यश्चतुर्थः केतुमानपि ॥ ७८ ॥

निर्द्वन्द्वा निरभिमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः।
लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥ ७९ ॥

मैंने पहले जो लोकालोकपर्वत का वर्णन किया, उस पर व्रतशील पर लोकपाल निवास करते हैं। हे विप्र! कर्दम के पुत्र सुधामा, शंखपाद, हिरण्यरोमा तथा केतुमान—ये चारों लोकालोकपर्वत के चारों दिशाओं में निर्द्वन्द्व निरभिमान, निरालस्य और लोकपालगण (निष्परिग्रह) होकर निवास करते हैं ॥ ७७-७९ ॥

उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम्।
पितृयानः स वै पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥ ८० ॥

तत्रासते महात्मान ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः।
भूतारम्भकृतं ब्रह्म शंसन्त ऋत्विगुद्यताः ॥ ८१ ॥

प्रारभन्ते तु ये लोकास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः।
चलितं ते पुनर्ब्रह्म स्थापयन्ति युगे युगे ॥ ८२ ॥

सन्तत्या तपसा चैव मर्य्यादाभिः श्रुतेन च।
जायमानास्तु पूर्व्वे च पश्चिमानां गृहेषु वै ॥ ८३ ॥

पश्चिमाश्चैव पूर्व्वेषां जायते निधनेष्विह।
एवमावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्ति नियतव्रताः।
सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ॥ ८४ ॥

अगस्त्य के उत्तर अजवीथि के दक्षिण जो वैश्वानरमार्ग से भिन्न (मृगवीथि) मार्ग है वही पितृयानमार्ग कहा गया है। वहाँ वही महात्मा ऋषिगण निवास करते हैं जो अग्निहोत्री बनकर प्राणियों की उत्पत्ति आरम्भक वेद की स्तुति करते हुए यज्ञ के लिए उद्यत होकर कर्म का आरम्भ करते हैं वह पितृयान उन लोगों का दक्षिणमार्ग

है । वे ऋषिगण युग में विच्छिन्न ब्रह्म वैदिक धर्म की सन्तान, तपस्या, मर्यादा और विविध शास्त्रों द्वारा पुनः स्थापना करते हैं । पूर्वकालीन धर्मप्रवर्तक ही अपने पश्चात्कालीन सन्तान के यहाँ उत्पन्न होते हैं, पुनः पश्चात्कालीन धर्म-प्रवर्तक अपने यहाँ सन्तानरूप से अपने पितरों के कुल में ही जन्म लेते हैं । इस प्रकार वे सभी नियत व्रतवाले महात्मागण चन्द्रमा तथा तारागण की स्थितितक सूर्य के दक्षिणमार्ग में बारम्बार आते जाते रहते हैं ॥ ८०-८४ ॥

नागवीथ्युत्तरं यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ।
उत्तरः सवितुः पन्था देवयानश्च स स्मृतः ॥ ८५ ॥

तत्र ते वशिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ।
सन्ततिं ते जुगुप्सन्ति तस्मान्मृत्युर्जितश्च तैः ॥ ८६ ॥

अष्टाशीतिसहस्राणां मुनीनामूर्ध्वरेतसाम् ।
उदक्पन्थानमर्य्यमृणः स्थिता ह्याभूतसंप्लवम् ॥ ८७ ॥

नागवीथि के उत्तर और सप्तर्षियों से दक्षिण जो सूर्य का उत्तरीयमार्ग है वही देवयान हैं । वहाँ पर वे निर्मल स्वभाववाले जितेन्द्रिय ब्रह्मचारीगण निवास करते हैं, जो सदा सन्तान की निन्दा करते हैं । अतएव उन लोगों ने मृत्यु को जीत लिया है । अस्सी हजार ऊर्ध्वरिता मुनिगण सूर्य के उत्तरीयमार्ग में प्रलयपर्यन्त निवास करते हैं ॥ ८५-८७ ॥

तेऽसंप्रयोगाल्लोभस्य मैथुनस्य च वजनात् ।
इच्छाद्वेषाप्रवृत्त्या च भूतारम्भविवर्ज्जनात् ॥ ८८ ॥

पुनश्चाकामसंयोगाच्छब्दादेर्दोषदर्शनात् ।
इत्येभिः कारणैः शुद्धास्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ॥ ८९ ॥

आभूतसंप्लवं स्थानममृतत्वं हि भाव्यते ।
त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्म्मार उच्चते ॥ ९० ॥

ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतो विधिः ।
आभूतसंप्लवं स्थान फलमुक्तं तयोर्द्विज ॥ ९१ ॥

यावन्मात्रे प्रदेशे तु मैत्रेयावस्थितो ध्रुवः ।
क्षयमायाति तावत् तु भूमेराभूतसंप्लवे ॥ ९२ ॥

उन सभी मुनियों ने लोभ के असंयोग, मैथुन के त्याग, इच्छा और द्वेष का अभाव, कर्मानुष्ठान के वर्जन, कामवासना के परित्याग और शब्द आदि में दोष दर्शन आदि कारणों से निर्मल होकर अमरत्व प्राप्त कर लिया हैं । प्रलयपर्यन्त स्थिति को अमरत्व कहा जाता है, और त्रिलोक की स्थिति तक के इस काल को अपुनर्मार कहा गया है । हे द्विज ! ब्रह्महत्या और अश्वमेध से जो पाप और पुण्य होते हैं उनका फल प्रलयकालतक रहता है । हे मैत्रेय ! यावन्मात्रप्रदेश में ध्रुव स्थित है, भूमि से लेकर उस प्रदेशतक का समस्त स्थान प्रलय में नष्ट हो जाता है ॥ ८८-९२ ॥

ऊर्द्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्र व्यवस्थितः ।
एतद् विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥ ९३ ॥

निर्धूतदोषपङ्कानां यतीनां संयतात्मनाम् ।
स्थानं तत् परमं विप्र पुण्यपापपरिक्षये ॥ ९४ ॥

सप्तर्षियों से ऊपर उत्तरदिशा में जहाँ ध्रुव विराजमान है वह अति भास्वर स्थान आकाश में श्रीविष्णुभगवान् का तीसरा दिव्यस्थान है । हे विप्र ! पाप एवं पुण्य के नष्ट हो जाने पर दोषरूपी पंक से रहित संयमी योगियों का यही परमपद है ॥ ९३-९४ ॥

अपुण्यपुण्योपरमे क्षीणाशेषार्त्तिहेतवः ।
यत्र गत्वा न शोचन्ति तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ९५ ॥

धर्म्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाक्षिणः ।
तत्साङ्ख्योत्पन्नयोगेऽङ्गस्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ९६ ॥

यत्रोतमेतत् प्रोतञ्च यद्भूतं सचराचरम् ।
भव्यञ्च विश्वं मैत्रेय तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ९७ ॥

दिवीव चक्षुराततं योगिनां तन्मयात्मनाम् ।
विवेकज्ञानदृष्टञ्च तद् विष्णोः परमं पदम् ॥ ९८ ॥

यस्मिन् प्रतिष्ठितो भास्वान् मेधीभूतः स्वयं ध्रुवः ।
ध्रुवे च सर्व्वज्योतींषि ज्योतिष्वम्भोमुचो द्विज ॥ ९९ ॥

मेघेषु सन्तता वृष्टिर्वृष्टेश्चापोऽथ पोषणम् ।
आप्यायनञ्च सर्व्वेषां देवादीनां महामुने ॥ १०० ॥

ततश्चाज्याहुतिद्वारा पोषितास्ते हविर्भुजः ।
वृष्टेः कारणतां यान्ति भूतानां स्थितये पुनः ॥ १०१ ॥

पाप, पुण्य दोनों के ही समाप्त हो जाने पर एवं अन्य शरीर प्राप्ति के समस्त कारणों के भी नष्ट हो जाने पर जीव जिस स्थान में जाकर पुनः शोक नहीं करता वही श्रीविष्णु का परमपद है । जहाँ परमात्मा के समान प्राप्त हुए योगद्वारा तेजस्वी होकर धर्म तथा ध्रुव आदि लोकसाक्षीगण निवास करते हैं वही श्रीविष्णुभगवान् का परमपद है । हे मैत्रेय ! जिसमें यह भूत, भविष्यत्, वर्तमान्, चराचर जगत् ओतप्रोत हो रहा है वही श्रीविष्णुभगवान् का परमपद हैं । जो तल्लीन योगियों को आकाश में प्रकाशमानसूर्य के समान सबके प्रकाशस्वरूप से प्रतीत होता है वही श्रीविष्णुभगवान् का परमपद है । हे विप्र ! उस विष्णुभगवान् के परमपद में सबके आधार भूत परम तेजस्वी ध्रुव विराजमान हैं, तथा ध्रुव में समस्त नक्षत्र और नक्षत्रों में मेघ एवं मेघों में वृष्टि आश्रित हैं । हे महामुने ! उस वृष्टि से ही समस्त जगत् का पोषण और सभी देवता आदि की पुष्टि भी होती है । अनन्तर गौ आदि प्राणियों से उत्पन्न घृत आदि की आहुतिद्वारा पुष्ट अग्निदेव वृष्टि के कारण होकर प्राणियों के पोषण के कारण होते हैं ॥ ९५-१०१ ॥

आधारभूतं लोकानां त्रयाणां वृष्टिकारणम् ।
एवमेतत् पदं विष्णोस्तृतीयममलात्मकम् ॥ १०२ ॥

ततः प्रवर्त्तते ब्रह्मन् सर्व्वपापहरा सरित् ।
गङ्गा देवाङ्गनाङ्गनामनुलेपनपिञ्जरा ॥ १०३ ॥

इस प्रकार यह श्रीविष्णुभगवान् का तीसरा निर्मल स्थान जहाँ ध्रुव निवास करता है तीनों लोकों का आधारभूत और वर्षा आदि का कारण हैं । हे ब्रह्मन् ! इसी

विष्णुभगवान् के परमस्थान से देववधुओं के अंगराग से पाण्डुरवर्ण के समान हुई समस्त पापों को दूर करने वाली श्रीगङ्गाजी निकली हैं ॥ १०२-१०३ ॥

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्त्रोतोविनिर्गता ।
विष्णोर्बिभर्त्ति या भक्तया शिरसाऽहर्निशं ध्रुवः ॥ १०४ ॥

ततः सप्तर्षयो यस्याः प्राणायामपरायणाः ।
तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुह्यमानजटा जले ॥ १०५ ॥

वार्य्योघैः सन्ततैर्यस्याः प्लावितं शशिमण्डलम् ।
भूयोऽधिकतमां कान्तिं वहत्येतदुपक्षयम् ॥ १०६ ॥

मेरुपृष्ठे पतत्युच्चैर्निष्क्रान्ता शशिमण्डलात् ।
जगतः पवनार्थाय या प्रयाति चतुर्द्दिशम् ॥ १०७ ॥

सीता चालकनन्दा च चक्षुर्भद्रा च संस्थिता ।
एकैव या चतुर्भेदा दिग्भेदगतिलक्षणा ॥ १०८ ॥

भेदश्चालकनन्दाख्यं यस्याः सर्व्वोऽपि दक्षिणम् ।
दधार शिरसा प्रीत्या वर्षाणामधिकं शतम् ॥ १०९ ॥

शम्भोर्जटाकलापाच्च विनिष्क्रान्तास्थिशर्कराः ।
प्लावयित्वा दिवं निन्ये पापाढ्यान् सगरात्मजान् ॥ ११० ॥

स्नातस्य सलिले यस्याः सद्यः पापं प्रणश्यति ।
अपूर्व्वपुण्यप्राप्तिश्च सद्यो मैत्रेय जायते ॥ १११ ॥

श्रीविष्णुभगवान् के वामपाद के अँगूठे के नखरूपस्त्रोत से निकली हुई श्रीगङ्गाजी को ध्रुव सदैव अपने शिर पर धारण करता है । उसके बाद जिस गङ्गाजी के जल में (खड़े होकर) प्रणायाम में संलग्न और तरङ्गमाला से कम्पित होते हुए जटावाले सप्तर्षिगण अघमर्षणमन्त्र का जप करते हैं और जिनके जलसमूह से प्लावित चन्द्रमण्डल कला क्षीण होने के बाद पहले से अधिक कान्ति को धारण करता है, वह श्रीगङ्गाजी चन्द्रमण्डल से निकल कर मेरुपर्वत पर गिरती है, और वहाँ से जगत् को पवित्र करने के लिए चारों दिशाओं में जाती है । और वह एक ही

श्रीगङ्गाजी चारों दिशाओं में जाने से सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा—ये चार भेदवाली हो गयी हैं। जिसके अलकनन्दा नामक दक्षिणीय भाग को श्रीशङ्करजी ने सौ वर्षों से अधिककाल तक अपने शिरपर धारण किया था। और जिस श्री गङ्गाजी ने श्रीशङ्कर जी के जटासमूह से निकलकर सगर राजा के पापी पुत्रों के अस्थि (हड्डी) चूर्ण को आप्लावित करके स्वर्ग में पहुंचा दिया। और हे मैत्रेय ! जिस श्री गङ्गाजी के जल में स्नान करने से मनुष्य का पाप सद्य: नष्ट हो जाता है तथा अपूर्व पुण्य की प्राप्ति भी होती है ॥ १०४-१११ ॥

दत्ताः पितृभ्यो यत्रापस्तनयैः श्रद्धयान्वितैः।
समात्रयं प्रयच्छन्ति तृप्तिं मैत्रेय दुर्लभाम्॥ ११२ ॥

यस्यामिष्ट्वा महायज्ञैर्यज्ञेशं पुरुषोत्तमम्।
द्विजभूताः परामृद्धिमवापुर्दिवि चेह च॥ ११३ ॥

स्नानाद्विधूतपापाश्च यज्जले यतयस्तथा।
केशवासक्तमनसः प्राप्ता निर्वाणमुत्तमम्॥ ११४ ॥

श्रुताऽभिलषिता दृष्टा स्पृष्टा पीताऽवगाहिता।
या पावयति भूतानि कीर्तिता च दिने दिने॥ ११५ ॥

गङ्गा गङ्गेति यैर्नाम योजनानां शतेष्वपि।
स्थितैरुच्चरितं हन्ति पापं जन्मत्रयार्जितम्॥ ११६ ॥

यतः सा पावनायालं त्रयाणां जगतामपि।
समुद्भूता परं तत्तु तृतीयं भगवत्पदम्॥ ११७ ॥

जिस गङ्गाजी के जलप्रवाह में श्रद्धालु पुत्रों द्वारा दिया गया पितरों के निमित्त जल सौ वर्षों तक दुर्लभ तृप्तिप्रदान करता है। हे द्विज ! जिसके तीर पर राजाओं ने महायज्ञों के द्वारा पुरुषोत्तम भगवान् यज्ञेश का यजन करके इस लोक और स्वर्ग में भी परम सिद्धि को प्राप्त किया हैं। जिस श्री गङ्गाजी के जल में स्नान करने से नष्ट हुए पापवाले यतियों ने भगवान् श्रीकेशव में चित्त लगाकर अति उत्तम निर्वाणपद को प्राप्त किया है। जो श्रवण, इच्छा, दर्शन, स्पर्श, स्नान, तथा यशः कीर्तनमात्र करने से प्रतिदिन प्राणियों को पवित्र करती हैं सौ योजन की दूरी पर

स्थित मनुष्य यदि गङ्गा गङ्गा ऐसा नाम भी उच्चारण करे तो उसके तीन जन्मों का किया हुआ पाप दूर हो जाता है। तीनों लोकों को पवित्र करने में समर्थ श्रीगङ्गाजी जिससे प्रगट हुई हैं वही श्रीविष्णुभगवान् का तीसरा परमपद है ॥ ११२-११७ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में आठवाँ अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - नवाँ अध्याय

(ज्योतिश्चक्र तथा शिशुमारचक्र का विचार)

पराशर उवाच ।

तारामयं भगवतः शिशुमाराकृति प्रभोः ।
दिवि रूपं हरेर्यत्तु तस्य पुच्छे स्थितो ध्रुवः ॥ १ ॥

सैष भ्रमन् भ्रामयति चन्द्रादित्यादिकान् ग्रहान् ।
भ्रमन्तमनु तं यान्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—आकाश में श्रीविष्णुभगवान् का जो शिशुमार (गोधा) के समान आकृतिवाला तारामय रूप देखा जाता है उसके पूंछपर ध्रुव स्थित है । वही ध्रुव स्वयं घूमता हुआ चन्द्रमा, सूर्य आदि समस्त ग्रहों को घूमाता है, और घूमते हुए उसके साथ नक्षत्रमण्डल भी चक्र के समान घूमते हैं ॥ १-२ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥ ३ ॥

शिशुमाराकृति प्रोक्तं यद्रूपं ज्योतिषां दिवि ।
नारायणः परं धाम्नां तस्याधारः स्वयं हृदि ॥ ४ ॥

उत्तानपादपुत्रस्तु तमाराध्य प्रजापतिम् ।
स ताराशिशुमारस्य ध्रुवः पुच्छे व्यवस्थितः ॥ ५ ॥

आधारः शिशुमारश्च सर्वाध्यक्षो जनार्दनः ।
ध्रुवस्य शिशुमारश्च ध्रुवे भानुर्व्यवस्थितः ॥ ६ ॥

तदाधारं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम् ।
येन विप्र ! विधानेन तन्ममैकमनाः शृणु ॥ ७ ॥

सूर्य, चन्द्रमा, तारे और समस्त ग्रहों के साथ नक्षत्रगण वायुमण्डलरूपी रस्सी के बन्धन से ध्रुव में बँधे हुए हैं। मैंने आकाश में ग्रहों के साथ जिस शिशुमार का वर्णन किया, उस अनन्त तेज के आधार स्वयं भगवान् नारायण ही उसके हृदय में विराजमान आधार हैं। राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने उन जगदीश्वर की आराधना करके तारामय शिशुमार के पुच्छ के ऊपर स्थान प्राप्त किया। शिशुमार के आधार सर्वेश्वर श्रीजनार्दन भगवान् हैं, और ध्रुव का आधार शिशुमार है एवं ध्रुव में श्रीसूर्यनारायण स्थित हैं। और हे ब्राह्मण! जिस प्रकार देवता, असुर, मनुष्य आदि के साथ यह समस्त जगत् सूर्य के आधार पर आश्रित है, वह मुझ से सावधान होकर सुनो ॥ ३-७ ॥

विवस्वानष्टभिर्मासैरादायापो रसात्मिकाः।
वर्षत्यम्बु ततश्चान्नमन्नादप्यखिलं जगत् ॥ ८ ॥

विवस्वानंशुभिस्तीक्ष्णैरादाय जगतो जलम्।
सोमं पुष्यत्यथेन्दुश्च वायुनाड़ीमयैर्दिवि ॥ ९ ॥

नालैर्विक्षिपतेऽभ्रेषु धूमाग्न्यनिलमूर्त्तिषु।
न भ्रश्यन्ति यतस्तेभ्यो जलान्यभ्राणि तान्यतः ॥ १० ॥

अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः।
संस्कारं कालजनितं मैत्रेयासाद्य निर्मलाः ॥ ११ ॥

सरित्समुद्रभौमास्तु तथापः प्राणिसम्भवाः।
चतुःप्रकारा भगवानादत्ते सविता मुने ॥ १२ ॥

आकाशगङ्गासलिलं तदादाय गभस्तिमान्।
अनभ्रगतमेवोर्व्यां सद्यः क्षिपति रश्मिभिः ॥ १३ ॥

तस्य संस्पर्शनिर्धूतपापपङ्को द्विजोत्तम।
न याति नरकं मर्त्यो दिव्यस्नानं हि तत् स्मृतम् ॥ १४ ॥

दृष्टसूर्यं हि यद्वारि पतत्यभ्रैर्विना दिवः।
आकाशगङ्गासलिलं तद्गोभिः क्षिप्यते रवेः ॥ १५ ॥

कृत्तिकादिषु ऋक्षेषु विषमेष्वम्बु यद्दिवः ।
दृष्टार्के पतति ज्ञेयं तद् गाङ्गं दिग्गजोज्झितम् ॥ १६ ॥

भगवान् श्रीसूर्यनारायण (आठ मास में) रस स्वरूप जल को ग्रहण करके (चार मासमें) उस जल को बरसा देते हैं, उससे अन्न की उत्पत्ति होती है और अन्न से ही समस्त जगत् पोषित होता है । श्रीसूर्यभगवान् अपनी तीक्ष्ण किरणों से संसार का जल ग्रहण करके चन्द्रमा को पुष्ट करते हैं और चन्द्रमा वायुमयी नाड़ियों से उसको धूम, अग्नि और वायुमय मेघों में पहुंचा देता है, तथा इस चन्द्रमाद्वारा प्राप्त हुए जल मेघों से शीघ्र नहीं गिरता अतएव मेघों का नाम 'अभ्र' है । हे मैत्रेय ! अभ्र में स्थित जल वायु की प्रेरणा से कालजनित संस्कार प्राप्त होने पर निर्मल होकर पृथ्वी पर बरसते हैं । हे मुने ! भगवान् श्रीसूर्यनारायण नदी, समुद्र, पृथ्वी और प्राणियों से उत्पन्न—इन चार प्रकार के जलों को आकृष्ट करते हैं । वे अंशुमान् भगवान् सूर्य आकाशगङ्गा से जल ग्रहण करके बिना बादल के ही शीघ्र पृथ्वी पर गिरा देते हैं हे विप्रवर ! उस आकाशगङ्गा के जल के स्पर्शमात्र से धुले हुए पापरूपीपङ्कवाला मनुष्यन रक में नहीं जाता । अत एव वह दिव्य स्नान कहा गया है । सूर्य के दिखायी पड़ते हुए जो जल बादलों के बिना ही आकाश से गिरता है वह आकाश गङ्गा का ही जल है । जिसे सूर्यभगवान् अपनी किरणों से गिराते हैं । कृत्तिका आदि विषम नक्षत्रों में आकाश से सूर्य को दृष्ट रहते हुए जो जल गिरता है वह आकाशगङ्गा का जल दिग्गजों द्वारा गिराया जाता है ॥ ८-१६ ॥

युग्मर्क्षेषु च यत्तोयं पतत्यर्कोज्झितं दिवः ।
तत् सूर्यरश्मिभिः सद्यः समादाय निरस्यते ॥ १७ ॥

उभयं पुण्यमत्यर्थं नृणां पापापहं द्विज !
आकाशगङ्गासलिलं दिव्यस्नानं महामुने ॥ १८ ॥

रोहिणी आदि समसंख्या वाले नक्षत्रों में जो जल आकाश से सूर्यद्वारा गिराया जाता है, वह (आकाशगङ्गा से) सूर्यकिरणों द्वारा ही ग्रहण करके गिराया जाता है । हे महामुने ! ये दोनों प्रकार का आकाशगङ्गा का जल अत्यन्त पवित्र एवं मनुष्यों के पापभयको दूर करने वाला हैं तथा इसमें किया गया स्नान दिव्यस्नान कहा गया है ॥ १७-१८ ॥

यत्तु मेघैः समुत्सृष्टं वारि तत् प्राणिनां द्विज !
पुष्णात्योषधयः सर्वा जीवनायामृतं हि तत् ॥ १९ ॥

तेन वृद्धिं परां नीतः सलिलेनौषधीगणः ।
साधकः फलपाकान्तः प्रजानां द्विज ! जायते ॥ २० ॥

तेन यज्ञान–यथाप्रोक्तान् मानवाः शास्त्रचक्षुषः ।
कुर्वन्त्यहरहस्तैश्च देवानाप्याययन्ति ते ॥ २१ ॥

एवं यज्ञाश्च वेदाश्च वर्णाश्च द्विजपूर्वकाः ।
सर्वे देवनिकायाश्च पशुभूतगणाश्च ये ॥ २२ ॥

वृष्ट्या धृतमिदं सर्वमन्नं निष्पाद्यते यथा ।
सापि निष्पाद्यते वृष्टिः सवित्रा मुनिसत्तम ॥ २३ ॥

आधारभूतः सवितुर्ध्रुवो मुनिवरोत्तम !
ध्रुवस्य शिशुमारोऽसौ सोऽपि नारायणाश्रयः ॥ २४ ॥

हृदि नारायणस्तस्य शिशुमारस्य संस्थितः ।
बिभर्त्ता सर्वभूतानामादिभूतः सनातनः ॥ २५ ॥

हे द्विज ! जो जल मेघों द्वारा बरसाया जाता है वह प्राणियों के जीवन के लिए अमृत के समान है और औषधियों का पोषण करता है । हे विप्र ! उस वर्षा के जल से उत्तम वृद्धि को प्राप्त हुए औषधिगण और फल पकने पर (गोधूम, यव आदि) प्रजाओं के (पोषण के) साधक होते हैं । उन अन्नोंके द्वारा शास्त्रज्ञ मनीषीगण प्रतिदिन शास्त्रानुकूल यज्ञ करते हैं और उन यज्ञों से देवताओं को तृप्त करते हैं । इस प्रकार यज्ञ, वेद (ब्राह्मण आदि) वर्ण समस्त देवता और प्राणीवर्ग सभी वृष्टि के ही आश्रय में हैं । हे मुनिसत्तम ! जिस वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है वही वृष्टि इन सबकी धारण करती है और वह वृष्टि सूर्य के द्वारा उत्पन्न होती है । हे मुनिवरश्रेष्ठ ! सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का आधार शिशुमार और शिशुमार का भी भगवान् श्रीनारायण हैं । उस शिशुमार के हृदय में श्रीनारायण विराजमान हैं जो सभी प्राणियों के पालक तथा आदिभूत सनातन पुरुष हैं ॥ १९-२५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में नवाँ अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अंश - दसवाँ अध्याय

(सूर्यरथ के अधिकारी देवताओं का वर्णन)

पराशर उवाच ।

साशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरन्तरं द्वयोः ।
आरोहणावरोहाभ्यां भानोरब्देन या गतिः ॥ १ ॥

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणी-सर्प-राक्षसैः ॥ २ ॥

धाता क्रतुस्थला चैव पुलस्त्यो वासुकिस्तथा ।
रथकृद्ग्रामणीर्हेतिस्तुम्बुरुश्चैव सप्तमः ॥ ३ ॥

एते वसन्ति वै चैत्रे मधुमासे सदैव हि ।
मैत्रेय स्यन्दने भानोः सप्त मासाधिकारिणः ॥ ४ ॥

अर्यमा पुलहश्चैव रथौजाः पुञ्जिकस्थला ।
प्रहेतिः कच्छनीरश्च नारदश्च रथे रवेः ।
माधवे निवसन्त्येते शुचिसंज्ञे निबोध मे ॥ ५ ॥

उत्तरायण में प्रतिदिन एक एक मण्डल में प्रवेश करने पर सूर्यरथ का आरोहण (ऊपर चढ़ना) होता है । और दक्षिणायन में उन्हीं मण्डलों में प्रतिलोमभाव से उल्टे (होकर) जब सूर्यरथ का प्रवेश होता है तो उसे अवरोहण (नीचे उतरना) कहा जाता है । इस प्रकार उत्तर और दक्षिण दोनों दिशाओं के मध्य में आरोहण एवं अवरोहणक्रम से सूर्य की एक वर्ष में जो गति होती है, उसमें सब मिलाकर एक सौ अस्सी मण्डल होते हैं । श्री सूर्यभगवान् का रथ (प्रतिमास में) अलग अलग आदित्य, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, सर्प और राक्षसगणों से अधिष्ठित रहता है ।

हे मुने ! मधुमास चैत्रमहिने में सूर्य के रथ में धाता (सूर्य) क्रतुस्थला, पुलस्त्य, वासुकि, यक्ष, राक्षस और तुम्बुरु नामक गन्धर्व—ये सात मास के अधिकारीगण रहते हैं। अर्यमा, पुलह नामक ऋषि, रथौजा यक्ष, पुञ्जिकस्थला, अप्सरा प्रहेति राक्षस, कच्छवीर, नारद—ये सात वैशाखमास में सूर्य के रथपर रहते हैं. और हे मैत्रेय ! सूर्य के रथ पर ज्येष्ठमास में निवास करने वालों का नाम सुनो ॥ १-५ ॥

मित्रोऽत्रिस्तक्षको रक्षः पौरुषेयोऽथ मेनका।
हाहा रथस्वनश्चैव मैत्रेयैते वसन्ति वै ॥ ६ ॥

वरुणो वशिष्ठो रम्भा जहजन्या हूहूर्बुधः।
रथचित्रस्तथा शुक्रे वसन्त्याषाढसंज्ञके ॥ ७ ॥

इन्द्रो विश्वावसुः स्रोत एलापत्रस्तथाङ्गिराः।
प्रम्लोचा च नभस्येते सर्पश्चार्के वसन्ति वै ॥ ८ ॥

विवस्वानुग्रसेनश्च भृगुश्चापूरणस्तथा।
अनुम्लोचा शङ्खपालो व्याघ्रो भाद्रपदे तथा ॥ ९ ॥

पूषा च सुरुचिर्धाता गौतमोऽथ धनञ्जयः।
सुषेणोऽन्यो घृताची च वसन्त्याश्वयुजे रवौ ॥ १० ॥

विभावसुभरद्वाजौ पर्जन्यैरावतौ तथा।
विश्वाची-सेनजित्संज्ञौ कार्तिके चाधिकारिणः ॥ ११ ॥

अंशुकाश्यपताक्ष्यास्तु महापद्मस्तथोर्वशी।
चित्रसेनस्तथा विद्युन्मार्गशीर्षाधिकारिणः ॥ १२ ॥

क्रतुर्भगस्तथोर्णायुः स्फूर्जः कर्कोटकस्तथा।
अरिष्टनेमिश्चैवान्या पूर्वचित्तिर्वराप्सराः ॥ १३ ॥

पौषमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले।
लोकप्रकाशनार्थाय विप्रवर्याधिकारिणः ॥ १४ ॥

मित्र (आदित्य), अत्रि (ऋषि), तक्षक (सर्प), पौरुषेय (राक्षस), मेनका नामकी अप्सरा, हाहा नाम का गन्धर्व, रथस्वन नाम के यक्ष—ये सभी ज्येष्ठमास में

सूर्यरथपर निवास करते हैं। वरुण नामका आदित्य, वशिष्ठ ऋषि, नाग, सहजन्यानाम की अप्सरा, हूहू गन्धर्व, रथ (राक्षस) और चित्ररथ यक्ष—ये सभी आषाढ़ में सूर्य के रथ पर निवास करते हैं। इन्द्र नामक आदित्य, विश्वावसु नामक गन्धर्व, स्रोत यक्ष, एलापुत्र सर्प, अङ्गिरा ऋषि, प्रम्लोचा अप्सरा, सर्पि नाम का राक्षस—ये सब श्रावणमास में सूर्य के रथ पर निवास करते हैं। भाद्रपदमास में विवस्वान् नामका आदित्य, उग्रसेन गन्धर्व, भृगु नामक ऋषि, आपूरण नाम का यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा, शंखपाल नाम का सर्प, व्याघ्र नाम वाला राक्षस ये सब उस सूर्य रथ में निवास करते हैं। और आश्विनमास में सूर्य के रथ में पूषा नाम का आदित्य, वसुरुचि नाम का गन्धर्व, वात नाम का राक्षस, गौतम ऋषि, धनञ्जय सर्प, सुषेण नामक गन्धर्व, घृताची नाम की अप्सरा ये सब निवास करते हैं। विश्ववासु गन्धर्व, भरद्वाज ऋषि, पर्यन्य नामका का आदित्य, ऐरावत, सर्प, विश्वाची नाम की अप्सरा, सेन जित् नामक पक्ष, आप नामक राक्षस—ये सभी कार्तिक मास में सूर्य के रथ में निवास करते हैं। अंश नाम का आदित्य, काश्यप ऋषि, तार्क्ष्य नाम का यक्ष, पद्मनाभ सर्प, उर्वशी अप्सरा, चित्रसेन गन्धर्व, विधुत् नामवाला राक्षस,—ये सब मास में सूर्यरथ के अधिकारी होते हैं। हे श्रेष्ठविप्र ! क्रतु नामक ऋषि, भग आदित्य, उर्णायु गन्धर्व, स्फूर्ज राक्षस, कर्कोट नाग, अरिष्टनेमि यक्ष और पूर्वचित्ति नाम की अप्सरा इतने पौषमास में सूर्य भगवान् के मण्डल में संसार को प्रकाशित करने के लिए निवास करते हैं॥ ६-१४॥

त्वष्टाथ जमदग्निश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा।
ब्रह्मपेतोऽथ ऋतजिद् धृतराष्ट्रोऽथ सप्तमः॥ १५॥

माघमासे वसन्त्येते सप्त मैत्रय ! भास्करे।
श्रुयन्ताञ्चापरे सूर्ये फाल्गुने निवसन्ति ये॥ १६॥

विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्यवर्चाथ सत्यजित्।
विश्वामित्रस्तथा रक्षो यज्ञापेतो महामुने॥ १७॥

हे मैत्रेय ! त्वष्टा नामक आदित्य, जमदग्नि ऋषि, कम्बल सर्प, तिलोत्तमा अप्सरा, ब्रह्मोपेत राक्षस, ऋतजित् नामक यक्ष, धृतराष्ट्र नाम का गन्धर्व—ये सात माघमास में सूर्यमण्डल में निवास करते हैं। और जो दूसरे फाल्गुनमास में सूर्यमण्डल में रहते हैं उनके नाम सुनो। हे महामुने ! विष्णु नामक आदित्य, अश्वतर

सर्प, रम्भा अप्सरा, सूर्यवर्चा गन्धर्व, सत्यजित् और विश्वामित्र ऋषि, तथा यज्ञोपेत राक्षस—ये सात फाल्गुनमास में सूर्यमण्डल के निवासी होते हैं ॥ १५-१७ ॥

मासेष्वेतेषु मैत्रेय ! वसन्त्येते तु सप्तकाः ।
सवितुर्मण्डले ब्रह्मन् ! विष्णुशक्त्युपबृंहिताः ॥ १८ ॥

स्तुवन्ति मुनयः सूर्य्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः ।
नृत्यन्त्योऽप्सरसो यान्ति सूर्यस्यानु निशाचराः ॥ १९ ॥

वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसंग्रहः ।
बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य्य समासते ॥ २० ॥

सोऽयं सप्तगणः सूर्यमण्डले मुनिसत्तम !
हिमोष्ण-वारिवृष्टीनां हेतुत्वे समयं गतः ॥ २१ ॥

हे मैत्रेय ! श्रीविष्णु की शक्ति से सम्पन्न—ये सात गण चैत्र आदि एक एक मास सूर्यमण्डल में निवास करते हैं। मुनिलोग सूर्य की स्तुति करते हैं और गन्धर्वगण सामने होकर उनका गुणगान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं, राक्षसगण सूर्य के पीछे से चलते हैं, सर्पगण वहन करने के लिये रथ को तैयार करते हैं, यक्षगण रथ का रश्मि संयोजन करते हैं बालखिल्य ऋषिगण इसे सभी ओर घेरे रहते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! ये सात सात गण अपने समयपर सूर्य-मण्डल में उपस्थित होकर शीत, उष्णता और जलवर्षण आदि के कारण होते हैं ॥ १८-२१ ॥

श्रीविष्णुपुराण द्वितीय अंश में दसवाँ अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - ग्यारहवाँ अध्याय

(सूर्यरथ में स्थित वैष्णवी शक्ति का वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

यदेतद्भगवानाह गणः सप्तविधो रवेः ।
मण्डले हिम-तापादेः कारणं तन्मया श्रुतम् ॥ १ ॥

व्यापाराश्चापि कथिता गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
ऋषीणां बालखिल्यानां तथैवाप्सरसां गुरो ! ॥ २ ॥

यक्षाणाञ्च रथे भानोर्विष्णुशक्तिधृतात्मनाम् ।
किन्त्वादित्यस्य यत् कर्म्म तन्नात्रोक्तं त्वया मुने ॥ ३ ॥

यदि सप्तगणो वारि हिममुष्णं च वर्षते ।
तत् किमत्र रवेर्येन वृष्टिः सूर्यादितीर्यते ॥ ४ ॥

विवस्वानुदितो मध्ये यात्यस्तमिति किं जनाः ।
ब्रवीत्येतत् समं कर्म यदि सप्तगणस्य तत् ॥ ५ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन् ! सूर्यमण्डल में स्थित सात प्रकार के गण शीत और ताप के कारण हैं, यह जो आपने कहा सो मैंने सुना । हे गुरो ! आपने सूर्य के रथ में स्थित श्रीविष्णुशक्ति से सम्पन्न गन्धर्व, सर्प, राक्षस, बालखिल्य ऋषिगण, अप्सरागण और यक्षों के भी पृथक् २ व्यापार कहे । किन्तु हे मुने ! सूर्यभगवान् का क्या कार्य है ? यह नहीं कहा । यदि सूर्यमण्डल में स्थित सातों गण ही शीत, ग्रीष्म, तथा वर्षा करने वाले हैं तब यहाँ पर यह कैसे माना जाय कि सूर्य से ही वर्षा होती है । और यदि सातों गणों का वृष्टि आदि समान कार्य है तो

सूर्य उदय हुआ, सूर्य मध्य में हैं और सूर्य अस्त होता हैं—ऐसा मनुष्य क्यों कहते हैं ? ॥ १-५ ॥

पराशर उवाच ।

मैत्रेय ! श्रूयतामेतद् यद्भवान् परिपृच्छति ।
यथा सप्तगणेऽप्येकः प्राधान्येनाधिको रविः ॥ ६ ॥

सर्वा शक्तिः परा विष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता ।
सैषा त्रयी तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या ॥ ७ ॥

सैव विष्णुः स्थितः स्थित्यां जगतः पालनोद्यतः ।
ऋग्यजुःसामभूतोऽन्तः सवितुर्द्विज ! तिष्ठति ॥ ८ ॥

मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा ।
त्रयीमयी विष्णुशक्तिरवस्थानं करोति वै ॥ ९ ॥

ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूंषि वै ।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्नः क्षये रवौ ॥ १० ॥

अङ्गमेषा त्रयी विष्णोर्ऋग्यजुःसामसंज्ञिता ।
विष्णुशक्तिरवस्थानं सदादित्ये करोति सा ॥ ११ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! जो आप पूछते हैं उसका उत्तर सुनिये । सूर्यभगवान् सात गणों में से ही एक हैं किन्तु प्रधान होने से उनकी विशेषता है । श्री विष्णुभगवान् की सर्वशक्तिसम्पन्ना ऋक, यजुः, साम स्वरूपिणी जो परा शक्ति है वही शक्तित्रयी सूर्यरूप से तपती है और उपासना करने पर पाप को भी विनाश करती हैं । हे विप्र ! जगत् की स्थिति और पालन के लिए श्रीविष्णु भगवान् ऋक्, यजु, तथा सामरूप से सूर्य के भीतर विराजमान हैं । प्रत्येक मास में पृथक् पृथक् जो जो सूर्य होता है उसी में वेदत्रयीस्वरूपिणी श्रीविष्णुभगवान् की पराशक्ति निवास करती है । प्रातःकाल में ऋग्वेद, मध्याह्न में यजुर्वेद और सायाह्न में बृहद्रथन्तरादि सामवेद सूर्यभगवान् की स्तुति करते हैं । ऋक्, यजुः साम नामवाली यह वेदत्रयी श्रीविष्णु भगवान् का ही अङ्ग है । इस प्रकार श्रीविष्णुभगवान् की शक्ति सदैव सूर्य में रहती है ॥ ६-११ ॥

न केवलं रवौ शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी ।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम् ॥ १२ ॥

सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्रः साममयोऽन्ताय तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ १३ ॥

यह वैष्णवीशक्ति वेदत्रयी केवल श्रीसूर्य में ही नहीं निवास करती किन्तु ब्रह्मा, विष्णु, तथा शिव भी त्रयीमय ही हैं । सृष्टि के आरम्भ में ऋग्वेदमय ब्रह्मा हैं, उस सृष्टि की स्थिति के समय यजुर्वेदमय विष्णु, तथा संहार के समय सामवेदमय शिव हैं । अतएव सामवेद की ध्वनि अपवित्र मानी जाती है ॥ १२-१३ ॥

एवं सा सात्त्विकी शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी ।
आत्मसप्तगणस्थं तं भास्वन्तमधितिष्ठति ॥ १४ ॥

तया चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभिः ।
तमः समस्तजगतां नाशं नयति चाखिलम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार वेदत्रयीमयी श्रीविष्णुभगवान् की सात्त्विकी शक्ति अपने सात गणों में स्थित अतिशय भास्वर श्रीसूर्य में स्थित है और उस वैष्णवी शक्ति से अधिष्ठित वे सूर्यभगवान् भी अपनी किरणों से जाज्वल्यमान होते हैं एवं समस्त जगत् के सम्पूर्ण अन्धकार को नाश करते हैं ॥ १४-१५ ॥

स्तुवन्ति तं वै मुनयो गन्धर्वैर्गीयते पुरः ।
नृत्यन्त्योऽप्सरसो यान्ति तस्य चानु निशाचराः ॥ १६ ॥

वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसंग्रहः ।
बालखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य्य समासते ॥ १७ ॥

नोदेता नास्तमेता च कदाचिच्छक्तिरूपधृक् ।
विष्णुर्विष्णोः पृथक् तस्य गणः सप्तमयोऽप्ययम् ॥ १८ ॥

स्तम्भस्थदर्पणस्येव योऽयमासन्नतां गतः ।
छायादर्शनसंयोगं स तं प्राप्नोत्यथात्मनः ॥ १९ ॥

एवं सा वैष्णवी शक्तिर्नैवापैति ततो द्विज !
मासानुमासं भास्वन्तमध्यास्ते तत्र संस्थितम् ॥ २० ॥

मुनिगण उन सूर्यदेव की स्तुति करते हैं, गन्धर्वगण उनके सामने गान करते हैं, अप्सराएँ नृत्य करती हैं और निशाचरगण उनके पीछे चलते हैं । सर्पगण रथ को सुसज्जित करते हैं, यक्ष घोड़ों की रस्सी संभालते हैं । बालखिल्य मुनिगण रथ के चारों ओर रहते हैं । त्रयीशक्तिसम्पन्न (सूर्यस्वरूप) भगवान् श्रीविष्णु न कभी उदय होते और न कभी उनका अस्त होता है । और यह सात प्रकार के गण उनसे पृथक् हैं । स्तम्भ में स्थित दर्पण के समान जो कोई उनके समीप जाता है वही अपनी छाया का दर्शन करता है । हे द्विज ! इस प्रकार वह वैष्णवी शक्ति उस सूर्य के रथ से कभी नहीं अलग होती किन्तु प्रतिमास में सूर्य के उसमें स्थित होने पर उसकी अधिष्ठात्री हो जाती है ॥ १६-२० ॥

पितृ-देव-मनुष्यादीन् स सदाप्याययन् प्रभुः ।
परिवर्त्तत्यहोरात्रकारणं सविता द्विज ॥ २१ ॥

सूर्य्यरश्मिः सुषुम्णो यस्तर्पितस्तेन चन्द्रमाः ।
कृष्णपक्षेऽमरैः शश्वत् पीयते वै सुधामयः ॥ २२ ॥

पीतं तद्द्विकलं सोमं कृष्णपक्षक्षये द्विज ।
पिबन्ति पितरः शेषं भास्करात् तर्पणं तथा ॥ २३ ॥

हे विप्र ! रात्रि एवं दिन के कारणभूत भगवान् भास्कर पितृगण, देवता और मनुष्य आदि को सदा आप्यायित करते हुए भ्रमण करते हैं । जो सूर्य की सुषुम्ना नाम की किरण है, उससे (शुक्लपक्ष में) चन्द्रमा पुष्ट होता है और कृष्णपक्ष में उस अमृतमय चन्द्रमा को एक एक कला करके देवगण सदा पी जाते हैं । हे द्विज ! कृष्णपक्ष की समाप्ति पर (चतुर्दशी के बाद) पान करने के बाद शेष दो कलावाले चन्द्रमा को पितृगण पान करते हैं । इस प्रकार सूर्य के द्वारा पितरों की तृप्ति होती है ॥ २१-२३ ॥

आदत्ते रश्मिभिर्यत्तु क्षितिसंस्थ रसं रविः ।
तमुत्सृजति भूतानां पुष्ट्यर्थं शस्यवृद्धये ॥ २४ ॥

तेन प्रीणात्यशेषाणि भूतानि भगवान् रविः ।
पितृ-देव-मनुष्यादीनेवमाप्याययत्यसौ । २५ ॥

पक्षतृप्तिन्तु देवानां पित्तृणाञ्चैव मासिकीम् ।
शश्वत्तृप्तिञ्च मर्त्यानां मैत्रेयार्कः प्रयच्छति ॥ २६ ॥

सूर्यभगवान् अपनी किरणों द्वारा पृथिवी का जितना जल ग्रहण करते हैं उन सबको प्राणियों की पुष्टि और सस्यकी वृद्धि के लिये पुनः बरसा देते हैं । इस प्रकार भगवान् श्रीसूर्य उस जल से समस्त प्राणियों को पुष्ट करते हैं तथा इसी प्रकार पितृ देव, मनुष्य आदि का भी पोषण करते हैं । हे मैत्रेय ! सूर्यभगवान् इस प्रकार से देवताओं को पाक्षिक, पितरों को मासिक एवं मनुष्यों को निरन्तर तृप्ति प्रदान करते हैं ॥ २४-२६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अंश - बारहवाँ अध्याय

(चन्द्रादि ग्रहों के वर्णन)

पराशर उवाच ।

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः ।
वाम-दक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ॥ १ ॥

वीथ्याश्रयाणि ऋक्षाणि ध्रुवाधारेण वेगिना ।
ह्रासवृद्धिक्रमस्तस्य रश्मीनां सवितुर्यथा ॥ २ ॥

अर्कस्येव हि तस्याश्वाः सकृद्युक्ता वहन्ति ते ।
कल्पमेकं मुनिश्रेष्ठ ! वारिगर्भसमुद्भवाः ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—चन्द्रमा का रथ तीन चक्रवाला है, और उसमें बाये, दाहिने भाग में कुन्दपुष्पक समान श्वेतवर्ण वाले दस घोड़े लगे हैं । उसी रथ से चन्द्रमा भ्रमण करते हैं । तथा नागवीथि के आश्रित अश्विनी आदि नक्षत्रों का भोग करते हैं । और सूर्यकिरण के समान ही चन्द्रकिरण में भी घटने बढ़ने का क्रम है । हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् श्रीसूर्य के समान ही समुद्र के गर्भ से उत्पन्न हुए चन्द्रमा के घोड़े भी एक बार जोत देने पर एक कल्पतक उनका वहन करते हैं अर्थात् रथ को खींचते रहते हैं ॥ १-३ ॥

क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्याययति दीप्तिमान् ।
मैत्रेयैककलं सन्तं रश्मिनैकेन भास्करः ॥ ४ ॥

क्रमेण येन पीतोऽसौ देवैस्तेन निशाकरम् ।
आप्याययत्यनुदिनं भास्करो वारितस्करः ॥ ५ ॥

सम्भृताञ्चार्द्धमासेन तत्सोमस्थं सुधामृतम् ।
पिबन्ति देवा मैत्रेय ! सुधाहारा यतोऽमराः ॥ ६ ॥

त्रयस्त्रिंशत्सहस्त्राणि त्रयस्त्रिंशच्छतानि च ।
त्रयस्त्रिंशत् तथा देवाः पिबन्ति क्षणदाकरम् ॥ ७ ॥

कलाद्वयावशिष्टस्तु प्रविष्टः सूर्य्यमण्डलम् ।
अमाख्यरश्मौ वसति अमावास्या ततः स्मृता ॥ ८ ॥

अप्सु तस्मिन्नहोरात्रे पूर्व्वं वसति चन्द्रमाः ।
ततो वीरुत्सु वसति प्रयात्यर्क ततः क्रमात् ॥ ९ ॥

छिनत्ति वीरुधो यस्तु वीरुत्संस्थे निशाकरे ।
पत्रं वा पातयत्येकं ब्रह्महत्यां स विन्दति ॥ १० ॥

शेषे पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ।
अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्य्युपासते ॥ ११ ॥

पिबन्ति द्विकलाकारं शिष्टा तस्य कला तु या ।
सुधामृतमयी पुण्या तामिन्दोः पितरो मुने ॥ १२ ॥

और हे मैत्रेय ! देवताओं द्वारा पान करने के पश्चात् क्षीण कलावाले चन्द्रमा को प्रकाशवान् भगवान् भास्कर अपनी एक किरण से ही पुष्ट कर देते हैं । जिस क्रम से देवगण चन्द्रमा को पान करते हैं, उसी प्रकार जल को अपहरण करने वाले भगवान् सूर्य प्रतिदिन उसे बढ़ाते हैं । हे मैत्रेय ! आधे मास में एकत्रित हुए चन्द्रमा में स्थित अमृत को पुनः देवगण पानकर जाते हैं । क्योंकि उनका आहार अमृत ही हैं । इस प्रकार तैंतीस हजार, तैंतीस सौ, तैंतीस देवगण चन्द्रस्थित अमृत का पान करते हैं । जिस काल में दो कलामात्रशेष चन्द्रमा सूर्यमण्डल में प्रवेश करके अमा नामक सूर्यकिरण में निवास करता है, वह काल 'अमावस्या' कहा जाता है । उस दिन रात्रि के समय चन्द्रमा सर्वप्रथम जल में प्रवेश करता है इसके बाद लता, वनस्पतियों में, अनन्तर सूर्य में प्रवेश कर जाता है । अतएव वृक्ष, लता आदि में चन्द्रमा की स्थिति के समय (अर्थात् अमावस्या को) जो वृक्ष, लता आदि को काटता है अथवा एक पत्ता भी तोड़ता है उसको ब्राह्मण हत्या का पाप लगता है । पन्द्रहवाँ

कलारूपी किञ्चित् भाग के अवशिष्ट रहने पर उस चन्द्रमा को अपराह्न में पितृगण सभी ओर से घेर लेते हैं। हे मुने ! उस समय दो कलावाले चन्द्रमा की सुधामयी एक कला का पितृगण पान करते हैं॥ ४-१२॥

निःसृतं तदमावस्यां गभस्तिभ्यः सुधामृतम्।
मासं तृप्तिमवाप्याग्रयां पितरः सन्ति निर्वृताः।
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा॥ १३॥

एवं देवान् सिते पक्षे कृष्णपक्षे तथा पितॄन्।
वीरुधश्चामृतमयैः शीतैरप्परमाणुभिः॥ १४॥

वीरुधोषधिनिष्पत्त्या मनुष्य-पशु-कीटकान।
आप्याययति शीतांशुः प्रकाशाह्लादनेन तु॥ १५॥

अमावस्या के दिन चन्द्रमा की किरणों से निकले हुए उस सुधामृत को पी करके परमतृप्ति को प्राप्त किये हुए सौम्य, बर्हिषद और अग्निष्वात्त नामक तीन प्रकार के पितृगण एक मास तक सन्तुष्ट रहते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा शुक्लपक्ष में देवताओं को और कृष्ण पक्ष में पितरों को पोषित करते हैं, तथा अमृतमय शीतल जलबिन्दुओं से वृक्ष लता आदि को भी पुष्ट करते हैं। चन्द्रमा लता, वृक्ष, औषधि को उत्पादन करके तथा अपनी किरणों के आनन्दद्वारा मनुष्य, पशु, कीट, पतङ्ग आदि की वृद्धि करते हैं, पोषण करते हैं॥ १३-१५॥

वाय्वग्निद्रवसंभूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च।
पिषङ्गैस्तुरगैयुक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः॥ १६॥

सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूसम्भवैर्हयैः।
सोपासङ्गपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान्॥ १७॥

अष्टास्त्रिः काञ्चनः श्रीमान् भौमस्यापि रथो महान्।
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः॥ १८॥

अष्टाभिः पाण्डरैर्युक्तो वाजिभिः काञ्चनो रथः।
तस्मिंस्तिष्ठति वर्षान्ते राशौ राशौ बृहस्पतिः॥ १९॥

आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैः स्यन्दनं युतम्।
तमारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः ॥ २० ॥

स्वर्भानोस्तुरगा ह्यष्टौ भृङ्गाभा धूसरं रथम्।
सकृद्युक्तास्तु मैत्रेय ! वहन्त्यविरतं सदा ॥ २१ ॥

आदित्यान्निःसृतो राहुः सोम गच्छति पर्व्वसु।
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्व्वसु ॥ २२ ॥

तथा केतुरथस्याश्वा अप्यष्टौ वातरंहसः।
पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणाः ॥ २३ ॥

चन्द्रपुत्र बुध का रथ वायु एवं अग्नियुक्तद्रव्य से बना है, और उसमें वायु के समानवेगवाले आठ कपिलवर्णवाले घोड़े लगे रहते हैं।वरुथ (रथ के लिए बना लौह आवरण) अनुकर्ष (रथ का अधोभाग) उपासङ्ग (शस्त्र रखने का स्थान) ध्वजा एवं भूमि से उत्पन्न घोड़ों से युक्त शुक्र का रथ है। मंगलका अग्नि से उत्पन्न पद्मरागमणि के समानवर्ण वाले आठ घोड़ों से युक्त सुवर्ण का महान् रथ है। पाण्डुरवर्णवाले आठ घोड़ों से युक्त सुवर्ण के रथ पर वर्ष के अन्त में प्रत्येक राशि में बृहस्पतिजी आसीन होते हैं। आकाश से उत्पन्न विचित्रवर्णवाले घोड़ों से युक्त रथपर चढ़कर मन्दगामी शनैश्चरजी धीरे धीरे चलते हैं। हे मैत्रेय ! भ्रमर के समान काले रंग के आठ घोड़ों से युक्त धूसरवर्णवाला राहु का रथ है, जिसमें एकबार जुते हुए घोड़े सदैव चलते रहते हैं। यह राहु चन्द्रपर्वों अर्थात् पूर्णिमा को सूर्य से निकलकर चन्द्रमा के समीप और सौ पर्वों (अमावस्या) को चन्द्रमा से निकलकर सूर्य के समीप जाता है। और केतु के रथ के वायु के समान वेगवाले आठ घोड़े पुआल के धूमके समान कान्तिवाले तथा लाख के समान लाल रंग के हैं ॥१६-२३ ॥

एते मया ग्रहाणां वै तवाख्याता रथा नव।
सर्व्वे ध्रुवे महाभाग ! प्रबद्धा वायुरश्मिभिः ॥ २४ ॥

ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः।
भ्रमन्त्युचितचारेण मैत्रेयानिलरश्मिभिः ॥ २५ ॥

यावत्यश्चैव तारास्तास्तावन्तो वातरश्मयः ।
सर्व्वे ध्रुवे निबद्धास्ते भ्रमन्तो भ्रामयन्ति तम् ॥ २६ ॥

तैलापीड़ा यथा चक्रं भ्रमन्तो भ्रामयन्ति वै ।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वाताविद्धानि सर्व्वशः ॥ २७ ॥

अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितानि तु ।
यस्माज्ज्योतींषि वहति प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥ २८ ॥

हे महाभाग ! इस प्रकार मैंने नौ ग्रहों के नौ रथों का वर्णन किया, ये सभी रथ वायुरूपी रस्सी से ध्रुव में बँधे हुए हैं । हे मैत्रेय ! समस्त ग्रह, नक्षत्र, तारागण वायुरूपी रस्सी से ध्रुव के साथ बंधे हुए उचितगति से भ्रमण करते हैं । जितने तारें हैं उतनी ही वायुमयी रस्सीयाँ हैं, इस प्रकार उन रस्सियों से ध्रुव में बँधकर स्वयं घूमते हैं और ध्रुव को भी घुमाते हैं । जिस प्रकार तेली लोग अपने घूमते हुए कोल्हू को भी घुमाते हैं उसी प्रकार वायु से बँधे हुए समस्त तारामण्डल स्वयं घूमते हैं । वायु चक्र से प्रेरित समस्त ग्रहमण्डल अलातचक्र के समान सदा घूमता है, अतएव यह 'प्रवह' कहा गया है ॥ २४-२८ ॥

शिशुमारस्तु यः प्रोक्तः स ध्रुवो यत्र तिष्ठति ।
सन्निवेशञ्च तस्यापि श्रृणुष्व मुनिसत्तम ॥ २९ ॥

यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुच्यते ।
यावत्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ।
तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवत्यभ्यधिकानि च ॥ ३० ॥

शिशुमार के विषय में मैंने पहले कह दिया है, जहाँ पर ध्रुव विराजमान है अब हे मुनिश्रेष्ठ ! उसका सन्निवेश स्थिति भी सुनो । दिन में जो कुछ भी पाप किया जाता है वह रात्रि में उस शिशुमार के दर्शन करने से समाप्त हो जाता है, और जितने भी तारायें शिशुमारके आश्रित होकर आकाश में हैं उतने ही अधिक वर्षों तक मनुष्य जीवित रहता है ॥ २९-३० ॥

उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयोह्युत्तरो हनुः ।
यज्ञोऽधरश्च विज्ञेयो धर्म्मो मूर्द्धानमाश्रितः ॥ ३१ ॥

हृदि नारायणश्चास्ते अश्विनौ पूर्व्वपादयोः ।
वरुणश्चार्य्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी ॥ ३२ ॥

शिश्नः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपानं समाश्रितः ।
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च कश्यपोऽथ ततो ध्रुवः ।
तारकाशिशुमारस्य नास्तमेति चतुष्टयम् ॥ ३३ ॥

उत्तानपाद इसकी ऊपर की ठोड़ी है । इस शिशुमार चक्र के नीचे की ओर यज्ञ ने अधिकार किया है, और मस्तकपर धर्म आश्रित है, हृदय में श्रीनारायण भगवान् एवं दोनों चरणों में अश्विनीकुमारद्वय विराजमान हैं । जंघाओं में वरुण और अर्यमा है, तथा संवत्सर उसका शिश्न है एवं मित्र उसके अपान में आश्रित है, उसके पुच्छ भाग में अग्नि, महेन्द्र, कश्यप और ध्रुव हैं । इस प्रकार शिशुमार चक्र के पुच्छ में स्थित अग्नि आदि चार तारें कभी अस्त नहीं होते ॥ ३१-३३ ॥

इत्येष सन्निवेशोऽयं पृथिव्या ज्योतिषां तथा ।
द्वीपानामुदधीनाञ्च पर्व्वतानाञ्च कीर्त्तितः ॥ ३४ ॥

वर्षाणाञ्च नदीनाञ्च ये च तेषु वसन्ति वै ।
तेषां स्वरूपमाख्यातं संक्षेपः श्रूयतां पुनः ॥ ३५ ॥

एवं प्रकार से पृथिवी, तारे, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष, नदी आदि का सन्निवेश (स्थिति) और वहाँ जो जो निवास करते हैं उनके स्वरूप का वर्णन भी किया गया । अब इस विषय को संक्षेप में पुनः श्रवण करो ॥ ३४-३५ ॥

यदम्बु वैष्णवः कायस्ततो विप्र ! वसुन्धरा ।
पद्माकारा समुद्भूता पर्व्वताब्ध्यादिसंयुता ॥ ३६ ॥

ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च ।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्व्वं यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य्य ॥ ३७ ॥

ज्ञानस्वरूपो भगवान् यतोऽसावशेषमूर्त्तिर्न च वस्तुभूतः ।
ततो हि शैलाब्धिधरादिभेदानुजानीहि विज्ञानविजृम्भितानि ॥ ३८ ॥

यदा तु शुद्धं निजरूपि सर्व्वं कर्म्मक्षये ज्ञानमपास्तदोषम ।
तदा हि संकल्पतरोः फलानि भवन्ति नो वस्तुषु वस्तुभेदाः ॥ ३९ ॥

वस्त्वस्ति किं कुत्रचिदादिमध्य पर्य्यन्तहीनं सततैकरूपम्।
यच्चान्यथात्वं द्विज ! याति भूयो न तत्तथा कुत्र कुतो हि तत्त्वम्॥ ४०॥
मही घटत्वं घटतः कपालिका कपालिका चूर्ण-रजस्यतोऽणुः।
जनैः स्वकर्म्मस्तिमितात्मनिश्चयैः रालक्ष्यते ब्रूहि किमत्र वस्तु॥ ४१॥
तस्मान्न विज्ञानमृतेऽस्ति किञ्चित् क्वचित् कदाचिद् द्विज ! वस्तुजातम्।
विज्ञानमेकं निजकर्म्मभेद विभिन्नचित्तैर्बहुधाऽभ्युपेतम्॥ ४२॥
ज्ञानं विशुद्धं विमलं विशोकमशेषशोकादिनिरस्तसङ्गम्।
एवं सदैकं परमः परेशः स वासुदेवो न यतोऽन्यदस्ति॥ ४३॥

हे विप्र ! श्रीविष्णु भगवान् का जो जलरूपी शरीर हैं उससे पर्वत, समुद्र आदि से युक्त कमल के समान आकारवाली पृथ्वी उत्पन्न हुई। हे विप्रवर्य ! समस्त ताराएँ विष्णु भगवान् का ही मूर्त रूप हैं। तीनों भुवन भी विष्णुस्वरूप ही हैं। तथा पर्वत, दिशाएँ, नदियाँ सभी समुद्र, भगवान् विष्णु ही हैं। तथा जो कुछ है, या जो कुछ नहीं है, वह सब श्रीविष्णु ही हैं। क्योंकि भगवान् श्रीविष्णु ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिए परिच्छिन्न पदार्थस्वरूप नहीं हैं। अतएव पर्वत, समुद्र, पृथ्वी आदि भेदों को एकमात्र विज्ञान की ही लीला समझो। जब जीव आत्मज्ञान के द्वारा दोषविहीन होकर कर्मक्षय हो जाने से अपने शुद्धस्वरूप में स्थित होता है, तब वस्तुओं में संकल्पवृक्ष के फलस्वरूप वस्तुभेद प्रतीत नहीं होता। हे विप्र ! (घटादि) वस्तु है कहाँ ! आदि मध्य और अन्त से हीन सदा एकरूप ही सर्वत्र विद्यमान है। जो वस्तु बारम्बार परिवर्तित होती है उसमें तत्त्व (वास्तविकता) है कहाँ ?। जरा विचारो, मृतिका से घट बनता है और घट से कपाल, कपाल से चूर्णरज तथा रज से (वही मृत्तिका) अणुरूप हो जाती है। पुनः यह कहो कि अपने कर्मों के वश में हुए मानवगण आत्मस्वरूप को भूलकर इससे कौन सी सत्यवस्तु देखते हैं। हे ब्राह्मण ! विज्ञान के अतिरिक्त कभी कहीं पर कोई भी वस्तु नहीं है। अपने कर्मों के भेद से विभिन्न चित्तों द्वारा एक ही विज्ञान नाना रूपों से ग्रहण किया जाता है। यह विज्ञान अत्यन्त शुद्ध, निर्मल, शोक, रहित, लोभ आदि समस्त दोषों से विहीन है। और वही एक सत्स्वरूप परम परमेश्वर वासुदेव भगवान् है, जिनसे अतिरिक्त कोई वस्तु नहीं है॥ ३६-४३॥

सद्भाव एषो भवतो मयोक्तो ज्ञानं यथा सत्यमसत्यमन्यत्।
एतत्तु यत् संव्यवहारभूतं तत्रापि चोक्तं भुवनाश्रितं ते॥ ४४॥

यज्ञः पशुर्वह्निरशेष ऋत्विक् सोमः सुराः स्वर्गमयश्च कामः ।
इत्यादिकर्म्माश्रितमार्गदृष्टं भूरादिभोगाश्च फलानि तेषाम ॥ ४५ ॥
यच्चैतद्भुवनगतं मया तवोक्तं सर्व्वत्र व्रजति हि तत्र कर्म्मवश्यः ।
ज्ञात्वैवं ध्रुवमचलं सदैकरूपं तत् कुर्य्याद्विशति हि येन वासुदेवम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार मैंने यह सद्भावका (परमार्थ का) वर्णन किया, एकमात्र ज्ञान ही सत्य, और सभी वस्तु असत्य है । और तीनों भुवनों में आश्रित जो व्यवहार की वस्तु हैं उन समस्त विषयों का भी वर्णन किया गया । कर्ममार्ग से सम्बन्धित यज्ञ, पशु, अग्नि, सम्पूर्ण ऋत्विक्, सोम, देवगण तथा स्वर्गमयी कामना आदि को संक्षेप में कह दिया । इन समस्त कर्मों के फल भूर्लोकादि की सम्पूर्ण भोगप्राप्ति ही है । यह जो मैंने त्रिभुवन का वर्णन किया इनमें ही जीव अपने कर्म के वशीभूत होकर भ्रमण करता है इस विषय को समझकर मनुष्यों को चाहिये कि इनसे विरक्त होकर ऐसा कर्मकरे जिससे ध्रुव, अचल एवं सदा एकरूप वासुदेव भगवान् में लीन हो जाय ॥ ४४-४६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अंश - तेरहवाँ अध्याय

(जडभरतका उपाख्यान)

श्रीमैत्रेय उवाच ।

भगवन् ! सम्यगाख्यातं यत् पृष्टोऽसि मयाखिलम् ।
भूसमुद्रादिसरितां संस्थानं ग्रहसंस्थितिम् ॥ १ ॥

विष्ण्वाधारं तथा चैतत् त्रैलोक्यं समवस्थितम् ।
परमार्थस्तु तेनोक्तो यथाज्ञानं प्रधानतः ॥ २ ॥

यत्त्वेतद्भगवानाह भरतस्य महीपतेः ।
कथयिष्यामि चरितं तन्ममाख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवान् ! मैंने जो प्रश्न किया था पृथिवी, समुद्र, नदियों एवं ग्रहमण्डल आदि की स्थिति के विषय में वह सब आपने कहा । तथा आपने जैसे यह समस्त त्रिलोकी श्रीविष्णु-भगवान् के ही आधार पर स्थित है और किस प्रकार परमार्थस्वरूप ज्ञान ही सर्वप्रधान है यह भी कहा । किन्तु आपने जिनके विषय में पहले चर्चा की उन राजा भरत का चरित्र मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १-३ ॥

भरतः स महीपालः शालग्रामेऽवसत् किल
योगयुक्तः समाधाय वासुदेवे सदा मनः ॥ ४ ॥

पुण्यदेशप्रभावेण ध्यायतश्च सदा हरिम् ।
कथन्तु नाभवन्मुक्तिर्यदभूत् स द्विजः पुनः ॥ ५ ॥

विप्रत्वे च कृतं तेन यद्भूयः सुमहात्मना ।
भरतेन मुनिश्रेष्ठ ! तत् सर्व्वं वक्तुमर्हसि ॥ ६ ॥

वह राजा भरत सदा योगयुक्त होकर निरन्तर वासुदेव भगवान् में चित्तको स्थिरकर शालग्राम क्षैत्र में निवास करता था। परन्तु पुण्यदेश के प्रभाव और सदा भगवान् के चिन्तन से भी उनकी मुक्ति क्यों नहीं हुई, जिससे उनको ब्राह्मण कुल में जन्म लेना पड़ा। हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्राह्मणशरीर धारणकर महात्मा भरतजी ने फिर क्या किया, वे सभी विषय कृपा करके मुझे कहिये ॥ ४-६ ॥

पराशर उवाच।

शालग्रामे महाभागो भगवन्न्यस्तमानसः।
स उवास चिरं कालं मैत्रेय ! पृथिवीपतिः ॥ ७ ॥

अहिंसादिष्वशेषेषु गुणेषु गुणिनां वरः।
अवाप परमां काष्ठां मनसश्चापि संयमे ॥ ८ ॥

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव !
कृष्ण विष्णो हृषीकेशेत्याह राजा स केवलम् ॥ ९ ॥

नान्यज्जगाद मैत्रेय ! किञ्चित् स्वप्नान्तरेऽपि च।
एतत्परं तदर्थञ्च विना नान्यदचिन्तयत् ॥ १० ॥

समित्-पुष्प-कुशादानं चक्रे देवक्रियाकृते।
नान्यानि चक्र कर्म्माणि निःसङ्गो योगतापसः ॥ ११ ॥

श्रीपराशरजी बोले—महाभाग पृथिवीपति भरतजी ने भगवान् में मन लगाकर बहुत समयतक शालग्रामक्षेत्र में निवास किया। गुणवान् पुरुषों में श्रेष्ठ भरतजी ने अहिंसा आदि समस्त गुणों में और मनके संयम में परम उन्नति प्राप्त कर ली। हे यज्ञेश ! हे अच्युत ! हे गोविन्द ! हे माधव ! हे अनन्त ! हे केशव ! हे कृष्ण ! हे विष्णो ! हे हृषिकेश ! हे वासुदेव ! आपको नमस्कार है। इस प्रकार राजा भरत केवल भगवान् का ही नाम किया करते थे। हे मैत्रेय ! और कोई दूसरा शब्द अथवा अर्थ स्वप्न में भी उच्चारण नहीं करते थे। निःसङ्ग, योगी एवं तपस्वी राजा भरत भगवान् की पूजा के लिये समिध, कुश और पुष्प का ही सञ्चय करते थे। इसके अतिरिक्त और कोई काम नहीं करते थे ॥ ७-११ ॥

जगाम सोऽभिषेकार्थमेकदा तु महानदीम्।
सस्नौ तत्र तदा चक्रे स्नानस्यानन्तरक्रियाः ॥ १२ ॥

अथाजगाम तत्तीर्थं जलं पातुं पिपासिता ।
आसन्नप्रसवा ब्रह्मन्नेकैव हरिणी वनात् ॥ १३ ॥

ततः समभवत्तत्र पीतप्राये जले तया ।
सिंहस्य नादः सुमहान् सर्व्वप्राणिभयङ्करः ॥ १४ ॥

ततः सा सहसा त्रासादाप्लुता निम्नगातटम् ।
अत्युच्चारोहणेनास्या नद्यां गर्भः पपात सः ॥ १५ ॥

तमुह्यमानं वेगेन वीचिमालापरिप्लुतम् ।
जग्राह स नृपो गर्भात् पतितं मृगपोतकम् ॥ १६ ॥

गर्भप्रच्युतिदोषेण प्रोत्तुङ्गाक्रमणेन च ।
मैत्रेय ! सापि हरिणी पपात च ममार च ॥ १७ ॥

हरिणीं तां विलोक्याथ विपन्नां नृपतापसः ।
मृगपोतं समादाय निजमाश्रममागतः ॥ १८ ॥

चकारानुदिनञ्चासौ मृगपोतस्य वै नृपः ।
पोषणं पुष्यमाणश्च स तेन ववृधे मुने ॥ १९ ॥

चचाराश्रमपर्य्यन्तं तृणानि गहनेषु सः ।
दूरं गत्वा च शार्द्दूलत्रासादभ्याययौ पुनः ॥ २० ॥

एक दिन वे स्नान के लिए महानदी के तटपर गये और स्नान करके स्नान के बाद की क्रिया करने लगे । हे ब्रह्मन् ! इसी समय एक प्यासी हुई आसन्नप्रसवा हरिणी वन में जल पीने के लिए आयी । इसके बाद उसके प्रायः जल पी लेने के पश्चात् सभी प्राणियों को भयभीत करने वाली सिंह की गर्जना हुई । अनन्तर वह सहसा भय से उछलकर नदी के तटपर चढ़ गयी और अत्यन्त उच्च स्थानपर चढ़ने के कारण उसका गर्भ नदी में गिर गया । नदी की तरङ्गमालाओं में गिरकर नदी के वेग में बहते हुए उस गर्भपातिन मृग शिशु को राजा भरत ने ग्रहण कर लिया । और हे मैत्रेय ! गर्भपात के दोष और ऊँचे स्थान पर उछलने के कारण वह हरिणी भी गिरकर मर गयी । उस हरिणी को मरी हुई देखकर तपस्वी राजा भरत उस मृगबालकको लेकर अपने आश्रमें आ गये । और राजा भरत उस मृगशावक का

प्रतिदिन पालन करने लगे, तथा उनसे पालित होकर वह भी बढ़ने लगा। वह मृगबालक आश्रम के समीपवाले वन में घास चरता था और कभी कभी दूर चले जाने पर पुन: सिंह के भय से लौट आता था ॥ १२-२० ॥

प्रातर्गत्वातिदूरञ्च सायमायाद् यथाश्रमम्।
पुनश्च भरतस्याभूदाश्रमस्योटजाजिरे ॥ २१ ॥

प्रातःकाल में बहुत दूर जाकर भी सायंकाल लौट आता था और भरतजी के आश्रम के प्राङ्गण में पड़ा रहता था ॥ २१ ॥

तस्य तस्मिन्मृगे दूर-समीपपरिवर्त्तिनि।
आसीच्चेतः समायुक्तं न ययावन्यतो द्विज ॥ २२ ॥

विमुक्तराज्यतनयः प्रोज्झिताशेषबान्धवः।
ममत्वं स चकारोच्चैस्तस्मिन् हरिणबालके ॥ २३ ॥

किं वृकैर्भक्षितो व्याघ्रैः किं सिंहेन निपातितः।
चिरायमाणे निष्क्रान्ते तस्यासीदिति मानसम् ॥ २४ ॥

एषा वसुमती तस्य खुराग्रक्षतकर्वुरा।
प्रीतये मम जातोऽसौ क्व ममैणकबालकः ॥ २५ ॥

विषाणाग्रेण मद्बाहुकण्डूयनपरो हि सः।
क्षेमेणाभ्यागतोऽरण्यादपि मां सुखयिष्यति ॥ २६ ॥

एते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोद्गतैः।
कुशाः काशा विराजन्ते वटवः सामगा इव ॥ २७ ॥

इत्थं चिरगते तस्मिन् स चक्रे मानसं मुनिः।
प्रीतिप्रसन्नवदनः पार्श्वस्थे चाभवन्मृगे ॥ २८ ॥

हे द्विज ! इस प्रकार कभी समीप और कभी दूर रहने वाले उस मृगशिशु में भरतजी का मन सदा लगा रहता था और कहीं दूसरी ओर नहीं जाता था। समस्त राज्य और पुत्र को त्यागने वाले और समस्त बान्धवों का भी परित्याग करने वाले भरतजी उस मृग-बालक में ममता करने लगे। बाहर जाने के बाद जब उसको आने

में देर होती थी तब भरतजी अपने मन में मृगबालक को किसी भेड़िये ने तो नहीं भक्षण कर लिया, किसी व्याघ्र ने तो नहीं खा लिया अथवा किसी सिंह ने तो नहीं मार दिया ऐसा विचार करते थे। यह देखो उसके खुरों के अग्रभाग से चिन्हित यह पृथ्वी चित्रित हो रही है, मेरी प्रसन्नता के लिए ही वह मृगबालक उत्पन्न हुआ है। आज कहाँ चला गया ? । क्या वह कुशलपूर्वक वन से लौट कर अपनी सींग के अग्रभाग से मेरी भुजा को खुजलाता हुआ मुझे आनन्दित करेगा ? । यह देखो उसके नवीन दाँतों से कटी हुई शिखा (अग्रभाग) वाले कुश और काश, सामगान करने वाले ब्रह्मचारियों के समान विराजित हो रहे हैं। इस प्रकार चिरकाल तक बाहर गये हुए मृगबालक के लिए भरतमुनि चिन्तित होते थे और उसके अपने समीप में आ जाने पर प्रसन्नता से उनका मुख विकसित हो जाता था ॥ २२-२८ ॥

समाधिभङ्गस्तस्यासीत् तन्ममत्वादृतात्मनः ।
सन्त्यक्तराज्यभोगर्द्धिस्वजनस्यापि भूपतेः ॥ २९ ॥

चपलं चपले तस्मिन् दूरगं दूरगामिनि ।
मृगपोतेऽभवच्चित्तं स्थैर्य्यवत्तस्य भूपतेः ॥ ३० ॥

कालेन गच्छता सोऽथ कालञ्चक्रे महीपतिः ।
पितेव सास्त्रं पुत्रेण मृगपोतेन वीक्षितः ॥ ३१ ॥

मृगमेव तदाद्राक्षीत् त्यजन् प्राणानसावपि ।
तन्मयत्वेन मैत्रेय ! नान्यत् किञ्चिदचिन्तयत् ॥ ३२ ॥

राज्य, भोग और समृद्धि का परित्याग करने वाले, किन्तु उस मृगशिशु में तन्मय रहने वाले उस राजा भरत की समाधि भङ्ग हो जाती थी। उस राजा का स्थिरचित्त उस मृगशावक के चञ्चल होने पर चञ्चल हो जाता था और उसके दूर चले जाने पर दूर चला जाता था। समय बीतने पर सजलनेत्र वाले पुत्रसे देखे जाते हुए पिता के समान् सजलनेत्र उस मृगबालकद्वारा देखे जाते हुए राजा भरत ने अपना प्राणत्याग किया। हे मैत्रैय ! राजा भरत भी अपने प्राणत्याग के समय केवल मृग को ही देखते रहे, तथा उसी में तन्मय होने के कारण और दूसरा चिन्तन नहीं किया ॥ २९-३२ ॥

ततश्च तत्कालकृतां भावनां प्राप्य तादृशीम् ।
जम्बूमार्गे महारण्ये जातो जातिस्मरो मृगः ॥ ३३ ॥

जातिस्मरत्वादुद्विग्नः संसारस्य द्विजोत्तम !
विहाय मातरं भूयः शालग्राममुपाययौ ॥ ३४ ॥

शुष्कैस्तृणैस्तथा पर्णैः स कुर्व्वन्नात्मपोषणम् ।
मृगत्वहतुभूतस्य कर्म्मणो निष्कृति ययौ ॥ ३५ ॥

तत्र चोत्सृष्टदेहोऽसौ जज्ञे जातिस्मरो द्विजः ।
सदाचारवतां शुद्धे योगिनां प्रवरे कुले ॥ ३६ ॥

सर्व्वविज्ञानसम्पन्नः सर्व्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
अपश्यत् स च मैत्रेय ! आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥ ३७ ॥

उसके बाद उस समय (मृत्यु के समय) की सुदृढ़ भावना के कारण जम्बूमार्ग नामक घोर वन में पूर्वजन्म की स्मृति से सम्पन्न मृग हुए। हे द्विजश्रेष्ठ ! वे अपने पूर्वजन्म के वृत्तान्त के स्मरण के कारण संसार से उद्विग्न होकर अपनी माता का परित्याग करके पुनः शालग्रामक्षेत्र में ही आ गये। वहाँ सूखे हुए घास और पत्तों से अपने शरीर का पोषण करते हुए मृगशरीर के कारणभूत अपने कर्मों की निष्कृति (निराकरण) करते थे। पुनः अपने शरीर का परित्याग करके सदाचारियों के शुद्धकुल में पूर्वजन्म स्मरणयुक्त ब्राह्मण हुए। हे मैत्रेय ! समस्त विज्ञानों से युक्त और समस्त शास्त्रों के रहस्य को जानने वाले भरतजी अपनी आत्मा को प्रकृति से परे देखते थे ॥ ३३-३७ ॥

आत्मनोऽधिगतज्ञानो देवादीनि महामुने !
सर्व्वभूतान्यभेदेन स ददर्श महामतिः ॥ ३८ ॥

न पपाठ गुरुप्रोक्तं कृतोपनयनः श्रुतिम् ।
न ददर्श च कर्माणि शास्त्राणि जगृहे न च ॥ ३९ ॥

उक्तोऽपि बहुशः किञ्चिज्जड़वाक्यमभाषत ।
तदप्यसंस्कारगुणं ग्राम्यवाक्योक्तिसंश्रितम् ॥ ४० ॥

अपध्वस्तवपुः सोऽपि मलिनाम्बरधृग् द्विजः ।
क्लिन्नदन्तान्तरः सर्वैः परिभूतः स नागरैः ॥ ४१ ॥

सम्मानना परां हानिं योगर्द्धेः कुरुते यतः ।
जनेनावमतो योगी योगसिद्धिञ्च विन्दति ॥ ४२ ॥

तस्माच्चरेत वै योगी सतां मार्गमदूषयन् ।
जना यथावमन्येरन् गच्छेयुर्नैव सङ्गतिम् ॥ ४३ ॥

हिरण्यगर्भवचनं विचिन्त्येत्थं महामतिः ।
आत्मानं दर्शयामास जडोन्मत्ताकृतिं जने ॥ ४४ ॥

भुङ्क्ते कुल्माषव्रीह्यादिशाकं वन्यं फलं कणान् ।
यद् यदाप्नोति सुबहु तदत्ते कालसंयमम् ॥ ४५ ॥

हे महामुने ! आत्मज्ञानयुक्त भरतजी देवता आदि समस्त प्राणियों को अपने से अभिन्न मानते थे । उन्होंने यज्ञोपवीतसंस्कार हो जाने के बाद गुरु के द्वारा पढ़ाने पर भी वेदाध्ययन नहीं किया तथा ब्राह्मणोचित कोई कर्म की ओर ध्यान नहीं दिया और शास्त्रों का अभ्यास नहीं किया । बहुत कहने पर जड़ के समान असंस्कृत और ग्राम्यगुणों से युक्त कुछ कह देते थे । सदा मलिन शरीरवाले, मैले कुचैले वस्त्र को धारण करने वाले और अपरिमार्जित दाँतवाले, वे नागरिकजनों से अपमानित होते थे । सम्मान योगश्री को बहुत हानि करता है, क्योंकि लोगों से अपमानित योगी ही योगसिद्धि को प्राप्त करता है । अतएव योगियों को ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे धर्म दूषित नहीं हो, और लोग अपमान न करें तथा लोगों की संगति में न पड़ें । हिरण्यगर्भ के इन वचनों को विचार करके महामति भरतजी अपने को लोगों में जड़ और उन्मत्त के समान ही प्रकट करते थे । कुल्माष (जौ आदि), धान, शाक वन में उत्पन्न हुए फल, कण आदि जो कुछ भी मिल जाता था उसी को कालक्षेपके लिये बहुत आदर के साथ भोजन करते थे ॥ ३८-४५ ॥

पितर्युपरते सोऽथ भ्रातृ-भ्रातृव्य-बान्धवैः ।
कारितः क्षेत्रकर्मादि कदन्नाहारपोषितः ॥ ४६ ॥

स तूक्षपीनावयवो जड़कारी च कर्मणि ।
सर्वलोकोपकरणं बभूवाहारवेतनः ॥ ४७ ॥

और अपने पिता की मृत्यु के बाद भाई और भतीजे आदि द्वारा कदन्न (गले सड़े अन्न) द्वारा पोषित होते हुए भरतजी खेती के काम में लगाये गये। बैल के समान मोटे शरीरवाले और काम में ज़डके समान चेष्टाहीन, भोजन मात्र से ही वे सब लोगों के काम करने वाला यन्त्र बन जाते थे अर्थात् उनको भोजनमात्र देकर लोग अपना काम करा लेते थे। ४६-४७ ॥

तं तादृशमसंस्कारं विप्राकृतिविचेष्टितम्।
क्षत्ता पृषतराजस्य काल्यै पशुमकल्पयत् ॥ ४८ ॥

रात्रौ तं समंलङ्क्रृत्य वैशसस्य विधानतः।
अधिष्ठितं महाकाली ज्ञात्वा योगेश्वरं तथा ॥ ४९ ॥

ततः खड्गं समादाय निशितं निशि सा तथा।
क्षत्तारं क्रूरकर्माणमच्छिनत् कण्ठमूलतः।
स्वपार्षदयुता देवी पपौ रुधिरमुल्वणम् ॥ ५० ॥

ततः सौवीरराजस्य प्रयातस्य महात्मनः।
विष्टिकर्ताथ मन्येत विष्टियोग्योऽयमित्यपि ॥ ५१ ॥

इस प्रकार संस्कारहीन और ब्राह्मणवेष के विरुद्ध देखकर पृषतराज के सेवकों ने रात्रि में बलि के विधान से उनको अलंकृत करके महाकाली के लिये बलि पशु बनाया। किन्तु महायोगीश्वर को बलि के लिये उपस्थित जानकर महाकाली ने तेज तलवार लेकर उस क्रूरकर्मी राजसेवक का गला काट दिया और अपने पार्षदों के साथ रक्तपान किया। इसके बाद मार्ग में जाते हुए सौवीरराज के सेवकों ने यह भी बेगार करने योग्य है ऐसा समझा ॥ ४८-५१ ॥

तं तादृशं महात्मानं भस्मच्छन्नमिवानलम्।
तं तादृशमसंस्कारं विप्राकृतिविचेष्टितम्।
क्षत्ता सौवीरराजस्य विष्टियोग्यममन्यत ॥ ५२ ॥

और राजा के सेवकों ने भी भस्म से आच्छादित अग्नि के समान तेजस्वी उस प्रकार की आकृतिवाले उन महात्मा को देखकर बेगार के योग्य ही समझा ॥ ५२ ॥

स राजा शिवाकारूढो गन्तुं कृतमतिर्द्विज !
बभूवेक्षुमतीतीरे कपिलर्षेर्वराश्रमम् ॥ ५३ ॥
श्रेयः किमत्र संसारे दुःखप्राये नृणामिति ।
प्रष्टुं तं मोक्षधर्मज्ञं कपिलाख्यं महामुनिम् ॥ ५४ ॥

हे द्विज ! उस सौवीर नरेश ने मोक्षधर्म को जानने वाले महामुनि कपिल से इस दुःखमय संसार में मनुष्यों का कल्याण किस काम को करने से होता है इस विषय को पूछने के लिए पालकी पर चढ़कर इक्षुमती नदी के तीर पर महर्षि कपिल के आश्रम में जाने का विचार किया था ॥ ५३-५४ ॥

उवाह शिविकां तस्य क्षत्तुर्वचनचोदितः ।
नृणां विष्टिगृहीतानामन्येषां सोऽपि मध्यगः ॥ ५५ ॥

गृहीतो विष्टिना विप्रः सर्वज्ञानैकभाजनम् ।
जातिस्मरोऽसौ पापस्य क्षयकाम उवाह ताम् ॥ ५६ ॥

ययौ जड़गतिः सोऽथ युगमात्रावलोकनः ।
कुर्वन् मतिमतां श्रेष्ठस्तदन्ये त्वरितं ययुः ॥ ५७ ॥

विलोक्य नृपतिः सोऽथ विषमां शिबिकागतिम् ।
किमेतदित्याह समं गम्यतां शिबिकावहाः ॥ ५८ ॥

पुनस्तथैव शिबिकां विलोक्य विषमां हि सः ।
नृपः किमेतदित्याह भवद्भिर्गम्यतेऽन्यथा ॥ ५९ ॥

भूपतेर्वदतस्तस्य श्रुत्वेत्थं बहुशो वचः ।
शिबिकावाहकाः प्रोचुरयं यातीत्यसत्वरम् ॥ ६० ॥

किं श्रान्तोऽस्यल्पमध्वानं त्वयोढा शिबिका मम ।
किमायाससहो न त्वं पीवानसि निरीक्ष्यसे ॥ ६१ ॥

राजा के अनुचरों से प्रेरित होकर भरतजी भी अन्य बेगारों के बीच में लगकर राजा की पालकी ढोने लगे । समस्त ज्ञानों के एकमात्र आश्रय और पूर्वजन्म के ज्ञाता भरतजी बेगारों द्वारा पकड़ा जाकर अपने पाप के विनाश की कामना से ही

पालकी ढोने लगे। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ भरतजी आगे की चार हाथ भूमिको अवलोकन करते हुए मन्दगति से चलने लगे किन्तु उसके और साथी शीघ्र चलते थे। राजा ने अपनी पालकी के चालको विषम देखकर अरे पालकी को वहन करने वाले! यह क्या करते हो? समान गति से चलो ऐसा कहा। किन्तु फिर पालकी की गति को उसी प्रकार विषम देखकर राजा ने कहा यह क्या इस प्रकार तुमलोग विषम भाव से क्यों चलते हो?। राजा के इस प्रकार का वचन बारम्बार सुनकर पालकी वहन करने वालों ने कहा कि यही (भरतजी) मन्द चलता है। राजा बोला-अरे क्या तुम थक गये हो अभी तो तुमने मेरी शिबिका को थोड़ी ही दूर वहन किया है, तुम तो मोटे दिखायी पड़ते हो पुनः क्या तुमसे इतना भी परिश्रम नहीं सहन होता? ॥५५-६१॥

नाहं पीवान्न चैवोढा शिबिका भवतो मया।
न श्रान्तोऽस्मि न चायासः सोढव्योऽस्ति महीपते ॥ ६२ ॥

प्रत्यक्षं दृश्यसे पीवानद्यापि शिबिका त्वयि।
श्रमश्च भारोद्वहने भवत्येव हि देहिनाम् ॥ ६३ ॥

प्रत्यक्ष भवता भूप! यद् दृष्ट मम तद्वद।
बलवानबलश्चेति वाच्यं पश्चाद् विशेषणम् ॥ ६४ ॥

त्वयोढा शिबिका चेति त्वय्यद्यापि च संस्थिता।
मिथ्यैतदत्र तु भवाञ्छृणोतु वचनं मम ॥ ६५ ॥

भूमौ पादयुगस्यास्था जङ्घे पादद्वये स्थिते।
ऊरू जङ्घाद्वयावस्थौ तदाधारं तथोदरम् ॥ ६६ ॥

वक्षःस्थलं तथा बाहू स्कन्धौ चोदरसंस्थितौ।
स्कन्धाश्रितेयं शिबिका मम भारोऽत्र किंकृतः ॥ ६७ ॥

शिबिकायां स्थितं चेदं वपुस्त्वदुपलक्षितम्।
तत्र त्वमहमप्यत्र प्रोच्यते चेदमन्यथा ॥ ६८ ॥

अहं त्वञ्च तथान्ये च भूतैरुह्याम पार्थिव।
गुणप्रवाहपतितो भूतवर्गोऽपि यात्ययम् ॥ ६९ ॥

ब्राह्मण बोला—हे राजन् मैं न तो मोटा हूं और न आपकी पालकी ही ढोने वाला हूँ, और मैं न थका हूँ और न मुझे परिश्रम सहने की आवश्यकता है। राजा बोला—अरे तु तो मोटा सामने ही दीख रहा है और अभी भी मेरी पालकी तेरे ऊपर है और शरीर धारण करने वालों को बोझा ढोने में परिश्रम भी होता ही है। ब्राह्मण बोला—हे राजन्! मुझे सर्वप्रथम यही बताओ कि तुमको प्रत्यक्ष में क्या दिखायी दे रहा है, और बलवान् अथवा अबलवान् इत्यादि विशेषणों की बात तो पीछे कहना। तूने मेरी पालकी का वहन किया और अभी भी तेरे ऊपर ही रखी हुई है यह तुम्हारा कथन सर्वथा असत्य है इस विषय में मेरी बात सुनो। जरा विचार करो भूमि के ऊपर तो दोनों पाँव हैं, और दोनों पावों के ऊपर दोनों जंघे हैं, और दोनों जंघों के ऊपर दोनों ऊरू, तथा उनके ऊपर उदर है। इसी भांति उदर के ऊपर छाती, बाहु एवं स्कन्धों की स्थिति है और इन स्कन्धों पर पालकी रखी है, तब इसमें मेरे ऊपर किस प्रकार भार है? और इस पालकी के भीतर तुम्हारा कहा जाने वाला यह शरीर स्थित है वास्तव में तुम नहीं स्थित हो एवं क्रम से वास्तविक विषय तो यह है कि तुम वहाँ (पालकी में) और मैं यहाँ (भूमिपर) स्थित हूँ यह कहना सर्वथा असत्य है। (सत्य बात तो यह है कि) तुम, मैं और अन्य समस्त प्राणी भी पञ्च महाभूतों के द्वारा वहन किये जाते हैं। और ये पञ्च महाभूत भी (सत्त्वादि) गुणों के प्रवाह में पड़ कर बह रहे हैं॥ ६२-६९॥

कर्मवश्या गुणाश्चैते सत्त्वाद्याः पृथिवीपते!
अविद्यासञ्चितं कर्म्म तच्चशेषेषु जन्तुषु॥ ७०॥

आत्मा शुद्धोऽक्षरः शान्तो निर्गुणः प्रकृतेः परः।
प्रवृद्ध्यपचयौ नास्य एकस्याखिलजन्तुषु॥ ७१॥

यदा नोपचयस्तस्य न चैवापचयो नृप!
तदा पीवानसीतीत्थं कया युक्तया त्वयेरितम्॥ ७२॥

भू-पाद-जङ्घा-कट्यू रु-जठरादिषु संस्थिते।
शिबिकेयं यथा स्कन्धे तथा भारः समस्त्वया॥ ७३॥

तदान्यैर्जन्तुभिर्भूप! शिबिकोढा न केवलम्।
शैल-द्रुम-गृहोत्थोऽपि पृथिवीससम्भवोऽपि वा॥ ७४॥

यदा पुंसः पृथग्भावः प्राकृतैः कारणैर्नृप !
सोढव्यस्तु तदायासः कथं वा नृपते ! मया ॥ ७५ ॥

यद्द्रव्या शिबिका चेयं तद्द्रव्यो भूतसंग्रहः ।
भवतो मेऽखिलस्यास्य ममत्वेनोपबृंहितः ॥ ७६ ॥

और हे मुनिश्वर ! ये सत्त्वादि गुण भी कर्मों के अधीन हैं, तथा समस्त प्राणियों में कर्म अविद्या से ही उत्पन्न हुआ है । आत्मा तो शुद्ध, अविनाशी, शान्त, निर्गुण, प्रकृति से परे है और समस्त प्राणियों में एक रूप से विराजमान है, इसलिए उसके वृद्धि अथवा ह्रास भी नहीं होते । हे राजन् ! जब उस (आत्मा) के वृद्ध अथवा ह्रास नहीं होते तब तुम मोटे हो यह बात तुमने किस युक्ति से कही । और यदि पृथिवी, पाँव, जंघा, कमर, उरु और उदर पर स्थित कन्धों पर रखी हुई यह पालकी जिस प्रकार मेरे लिये बोझ हो सकती है उसी प्रकार तुम्हारे लिये भी बोझ हो सकती है (क्योंकि पृथिवी आदि जैसे तुमसे अलग हैं उसी प्रकार मेरी आत्मा से भी अलग ही हैं । हे भूप ! इस प्रकार के तात्त्विक विचार से तो अन्य जीवों द्वारा केवल पालकी ही नहीं, किन्तु पर्वत, वृक्ष, गृह और पृथिवी का भार भी वहन हो रहा है । हे नरेश ! जब पुरुष प्रकृति से उत्पन्न समस्त कारणों से अलग है तब उसका परिश्रम मुझे किस प्रकार हो सकता है । और जिन द्रव्यों से आपकी यह पालकी बनी है, उन्हीं द्रव्यों से मेरा एवं समस्त प्राणियों का शरीर बना है । और उस शरीर में ममत्व का आरोप है ॥ ७०-७६ ॥

एवमुक्त्वाभवन्मौनी स वहञ्छिबिकां द्विज !
सोऽपि राजावतीर्य्योर्व्यां तत्पादौ जगृहे त्वरन् ॥ ७७ ॥

श्रीपराशर जी बोले—इतनी बातें कह कर पालकी को धारण किया हुआ वह ब्राह्मण मौन हो गया और राजा ने भी शीघ्रतापूर्वक भूमिपर उतरकर उसके ब्राह्मण के चरण पकड़ लिये ॥ ७७ ॥

भो भो विसृज्य शिबिकां प्रसादं कुरु मे द्विज !
कथ्यतां को भवानत्र जाल्मरूपधरः स्थितः ॥ ७८ ॥

यो भवान् यन्निमित्तं वा यदागमनकारणम् ।
तत्सर्वं कथ्यतां विद्वन् ! मह्यं शुश्रूषवे त्वया ॥ ७९ ॥

श्रूयतां कोऽहमित्येतद्वक्तुं भूप ! न शक्यते ।
उपभोगनिमित्तञ्च सर्वत्र गमनक्रिया ॥ ८० ॥

सुखदुःखोपभोगौ तु तौ देहाद्यु पपादकौ ।
धर्माधर्मोद्भवौ भोक्तुं जन्तुर्देहादिमृच्छति ॥ ८१ ॥

सर्वस्यैव हि भूपाल ! जन्तोः सर्वत्र कारणम् ।
धर्माधर्मौ यतः कस्मात् कारणं पृच्छ्यते त्वया ॥ ८२ ॥

धर्माधर्मा न सन्देहः सर्वकार्य्येषु कारणम् ।
उपभोगनिमित्तञ्च देहाद्देहान्तरागमः ॥ ८३ ॥

यत्त्वेतद् भवता प्रोक्त कोऽहमित्येतदात्मनः ।
वक्तुं न शक्यते श्रोतुं तन्ममेच्छा प्रवर्त्तते ॥ ८४ ॥

योऽस्ति सोऽहमिति ब्रह्मन् ! कथं वक्तुं न शक्यते ।
आत्मन्येष न दोषाय शब्दोऽहपिति यो द्विज ॥ ८५ ॥

शब्दोऽहमिति दोषाय आत्मन्येष तथैव तत् ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं शब्दो वा भ्रान्तिलक्षणः ॥ ८६ ॥

राजा बोला—अहो द्विजश्रेष्ठ ! आप इस पालकी को छोड़ दीजिये और मेरे ऊपर कृपा कीजिये आप कहिये कि जड़रूप धारण किये आप कौन हैं ? । हे विद्वन् ! आप जिस जाति के हैं और जिस निमित्त से आपका यहाँ आगमन हुआ सो सब सुनने की इच्छावाले मुझसे कहिये । ब्राह्मण बोला—हे राजन ! मैं कौन हूँ यह बात कही नहीं जा सकती और अपने कर्मफलों के भोग के निमित्त ही सर्वत्र आने जाने की क्रियाएँ होती हैं (आप कौन हैं किस निमित्त आना हुआ, और आने का कारण क्या है, राजा के इन तीनों प्रश्नों का उत्तर हो गया) । सुख दुःख का उपभोग ही शरीर आदि को प्राप्त कराने वाला है, और जीव धर्म एवं अधर्म से उत्पन्न सुख दुःख को भोगने के लिये शरीर धारण करता है । हे भूपाल ! धर्म और अधर्म ही समस्त जीवों की समस्त अवस्थाओं के कारण हैं, पुनः तुम मेरे आगमन का कारण क्यों पूछते हो ? । राजा बोला—समस्त कार्यों में धर्म, तथा अधर्म ही कारण हैं इसमें सन्देह नहीं, और उपभोग के निमित्त ही एक देह से दूसरे देह में

जाना भी होता है। किन्तु आपने जो यह कहा कि मैं कौन हूँ यह कहा नहीं जा सकता, इसी बातको मुझे सुनने की इच्छा हो रही है। हे ब्रह्मन् ! सत्तारूप से विद्यमान जो (आत्मा) है यही मैं हूं ऐसा क्यों नहीं कहा जा सकता ? हे द्विज ! यह 'अहं'-शब्द अपनी आत्मा में प्रयोग करने पर किसी प्रकार का दोष नहीं होता। ब्राह्मण बोला—आत्मा में प्रयुक्त 'अहं'-शब्द किसी प्रकार के दोषलायक नहीं होता, किन्तु अनात्मा में आत्मज्ञान का बोध करानेवाला भ्रान्त 'अहं' शब्द दोष का ही कारण होता है ॥ ७८-८६ ॥

जिह्वा ब्रवीत्यहमिति दन्तोष्ठौ तालुक नृप !
एते नाहं यतः सर्वे वाङ्निष्पादनहेतवः ॥ ८७ ॥

किं हेतुभिर्वदत्येषा वागेवाहमिति स्वयम् ।
तथापि वाग् नाहमेतद् वक्तुमित्थं न युज्यते ॥ ८८ ॥

पिण्डः पृथग् यतः पुंसः शिरःपाण्यादिलक्षणः ।
ततोऽहमिति कुत्रैतां संज्ञां राजन ! करोम्यहम् ॥ ८९ ॥

यद्यन्योऽस्ति परः कोऽपि मत्तः पार्थिवसत्तम !
तदैषोऽहमयञ्चान्यो वक्तुमेवमपीष्यते ॥ ९० ॥

यदा समस्तदेहेषु पुमानेको व्यवस्थितः ।
तदा हि को भवान् कोऽहमित्येतद् विफलं वचः ॥ ९१ ॥

त्वं राजा शिबिका चेयमिमे वाहाः पुरः सराः ।
अयञ्च भवतो लोको न सदेतन्नृपोच्यते ॥ ९२ ॥

वृक्षाद् दारु ततश्चेयं शिबिका त्वदधिष्ठिता ।
किं वृक्षसंज्ञा वास्याः स्याद्दारुसंज्ञाथवा नृप ॥ ९३ ॥

वृक्षारूढो महाराजो नायं वदति ते जनः ।
न च दारुणि सर्वस्त्वां ब्रवीति शिबिकागतम् ॥ ९४ ॥

जिह्वा, दन्त, ओष्ठ और तालु—ये सभी 'अहं शब्द का उच्चारण करते हैं, किन्तु ये सब तो अहं नहीं है, ये तो केवल मात्र उस (अहं) के उच्चारण के कारण

हैं। तब क्या जिह्वादि कारणों द्वारा वाणी स्वयं अपने को-ही 'अहं' कहती है? नहीं। अत एव तुम मोटे हो ऐसा कहना उचित नहीं। शिर एवं हाथ, पाँव आदि स्वरूपवाला (शरीररूपी) पिण्ड भी आत्मा से भिन्न है, अत एव हे राजन्! 'अहं' शब्द का कहाँ प्रयोग करूं? । हे राजश्रेष्ठ! यदि मुझसे पृथक् कोई और भी आत्मा हो तब तो यह मैं हूँ, यह अन्य है ऐसा कहा जा सकता है। जब समस्त शरीरों में एक ही पुरुष (आत्मा) स्थित है तब आप कौन हैं और मैं वह हूँ, यह कथन निष्फल हैं। हे नृप! आप राजा हैं, यह पालकी है, ये आगे पालकी ढोने वाले हैं यह समस्त लोक आपका है, इनमें कोई बात भी यथार्थतः सत्य नहीं है। हे नृप! वृक्ष से काष्ठ, उससे पालकी बनी, जिस पर आप स्थित हैं, तो आप ही कहें कि इसका नाम काष्ठ या वृक्ष होगा? 'महाराज वृक्ष पर विराजमान हैं'ऐसा कोई मनुष्य नहीं कहता और न कोई कहता कि महाराज काष्ठपर बैठे हैं। किन्तु यही कहता है कि महाराज पालकी में है ॥ ८८-९४ ॥

शिबिका दारुसङ्घातो रचनास्थितिसंस्थितिः ।
आन्वष्यतां नृपश्रेष्ठ ! तद्भेदे शिबिका त्वया ॥ ९५ ॥

एवं छत्रशलाकानां पृथग्भागे विमृश्यताम् ।
क्व यातं छत्रमित्येष न्यायस्त्वयि तथा मयि ॥ ९६ ॥

पुमान् स्त्री गौरजो वाजी कुञ्जरो विहगस्तरुः ।
देहेषु लोकसंज्ञेयं विज्ञेया कर्म्महेतुषु ॥ ९७ ॥

पुमान्न देवो न नरो न पशुर्न च पादपः ।
शरीराकृतिभेदास्तु भूपैते कर्म्मयोनयः ॥ ९८ ॥

वस्तु राजेति यल्लोके यच्च राजभटात्मकम् ।
तथान्यच्च नृपेत्थं तन्न सत्सङ्कल्पनामयम् ॥ ९९ ॥

यत्तु कालान्तरेणापि नान्यां संज्ञामुपैति वै ।
परिणामादिसम्भूतां तद्वस्तु नृप ! तच्च किम् ॥ १०० ॥

त्वं राजा सर्व्वलोकस्य पितुः पुत्रो रिपो रिपुः ।
पत्न्याः पतिः पिता सूनोः किं त्वां भूप ! वदाम्यहम् ॥ १०१ ॥

त्वं किमेतच्छिरः किं नु ग्रीवा तव तथोदरम् ।
किमु पादादिकं त्वं वा तवैतत् किं महीपते ॥ १०२ ॥

समस्तावयवेभ्यस्त्वं पृथग् भूप ! व्यवस्थितः ।
कोऽहमित्यत्र निपुणो भूत्वा चिन्तय पार्थिव ॥ १०३ ॥

एवं व्यवस्थिते तत्त्वे मयाहमिति भाषितुम् ।
पृथक् करणनिष्पाद्यं शक्यते नृपते ! कथम् ॥ १०४ ॥

रचना की विशेषता से स्थित काष्ठ समूह ही तो पालकी है । और यदि उससे भिन्न कोई वस्तु है तो उसको तुम काष्ठ में अन्वेषण करो । इसी प्रकार छत्र की शलाकाओं को पृथक् करके विचार कीजिये कि आपका छत्र कहां गया । यही न्याय तुम में और मेरे में भी लगता है । पुरुष, स्त्री गौ, बकरा, घोड़ा, हाथी, पक्षी और वृक्ष आदि लोक की संज्ञा कर्म कारणभूत शरीर में ही जानना चाहिये । हे भूप ! पुरुष (जीव) देवता, मनुष्य, पशु, वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है । ये सब केवल कर्म योनिवाले शरीरों की आकृतियों के भेद हैं । संसार में राजा, राजा के भट (योद्धा) तथा और जो भी वस्तु है, हे राजन् ! ये सभी यथार्थ में सत्य नहीं हैं, किन्तु केवल कल्पना मात्र हैं । जो वस्तु कालान्तर में भी परिणामादि से उत्पन्न कोई दूसरी संज्ञा नहीं धारण करती, वही यथार्थ वस्तु है । वह क्या है ? । हे राजन् ! आप स्वयं भी विचार करें आप समस्त प्रजा के राजा हैं, पिता के पुत्र हैं, शत्रु के शत्रु, पत्नी के पति, पुत्र के पिता हैं, अब आपको मैं क्या कहूँ । हे महीपाल ! तुम क्या यह शिर हो ? अथवा गला, पेट या पाँव आदि में से कोई हो ? और ये शिर आदि भी तुम्हारे क्या हैं ? । हे पार्थिव ! तुम इन समस्त अवयवों से पृथक् होकर स्थित हो, अतएव सावधान होकर विचारों कि मैं कौन हूँ । हे नृपते ! इस प्रकार तत्त्व को (आत्मतत्त्व को) स्थित होने पर उनसे अलग करके ही बताया जा सकता है । पुनः मैं 'अहं' शब्द से उसका व्यवहार कैसे करूँ ॥ ९५-१०४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में तेरहवाँ अध्याय समाप्त ।

द्वितीय अंश - चौदहवाँ अध्याय

(सौवीर राजा का प्रश्न और भरत का उत्तर)

पराशर उवाच।

निशम्य तस्येति वचः परमार्थसमन्वितम्।
प्रश्रयावनतो भूत्वा तमाह नृपतिर्द्विजम्॥ १॥

भगवन्! यत्त्वया प्रोक्तं परमार्थमयं वचः।
श्रुते तस्मिन् भ्रमन्तीव मनसो मम वृत्तयः॥ २॥

एतद्विवेकविज्ञानं यदशेषेषु जन्तुषु।
भवता दर्शितं विप्र! तत्परं प्रकृतेर्महत्॥ ३॥

नाहं वहामि शिबिकां शिबिका न मयि स्थिता।
शरीरमन्यदस्मत्तो येनेयं शिबिका धृता॥ ४॥

गुणप्रवृत्त्या भूतानां प्रवृत्तिः कर्म्मचोदिता।
प्रवर्त्तन्ते गुणा ह्येते किं ममेति त्वयोदितम्॥ ५॥

श्रीपराशरजी बोले—परमार्थयुक्त उनके वचन सुनकर राजा ने विनय से नम्र होकर ब्राह्मण से कहा। राजा बोला—हे भगवन्! आपने जो परमार्थयुक्त वचन कहा, उसको सुनकर मेरी मनोवृत्तियाँ भ्रान्त के समान हो रही हैं। हे विप्र! आपने समस्त प्राणियों में स्थित जो यह विवेक का विज्ञान बताया वह प्रकृति से परे ब्रह्म ही है। किन्तु आपने जो यह कहा कि मैं पालकी नहीं वहन करता हूँ, और मेरे ऊपर यह यह पालकी नहीं है, वह शरीर मुझसे अलग है जिसने यह पालकी उठायी है। तथा जीवों की प्रवृत्ति (सत्य, रज, तम) गुणों की प्रेरणा से होती है और

गुण कर्मों के अधीन होकर ही प्रवृत्त होते हैं इसमें मेरा कर्तृत्व किस प्रकार माना जाय ॥ १-५ ॥

एतस्मिन् परमार्थज्ञ ! मम श्रोत्रपथं गते ।
मनो विह्वलतामेति परमार्थार्थितां गतम् ॥ ६ ॥

पूर्वमेव महाभागं कपिलर्षिमहं द्विज !
प्रष्टुमभ्युद्यतो गत्वा श्रेयः किं त्वत्र शंस मे ॥ ७ ॥

तदन्तरे च भवता तदेतद्वाक्यमीरितम् ।
तेनैव परमार्थार्थं त्वयि चेतः प्रधावति ॥ ८ ॥

कपिलर्षिर्भगवतः सर्व्वभूतस्य वै द्विज !
विष्णोरंशो जगन्मोहनाशायोर्वीमुपागतः ॥ ९ ॥

स एव भगवान् नूनमस्माकं हितकाम्यया ।
प्रत्यक्षतामत्र गतो यथैतद् भवतोच्यते ॥ १० ॥

तन्मह्यं प्रणताय त्वं यच्छ्रेयः परमं द्विज !
तद्वदाखिलविज्ञानजलवीच्युदधिर्भवान् ॥ ११ ॥

भूप ! पृच्छसि किं श्रेयः परमार्थं नु पृच्छसि ।
श्रेयांसि परमार्थानि अशेषाणि च भूपते ॥ १२ ॥

देवताराधनं कृत्वा धनसम्पदमिच्छति ।
पुत्रानिच्छति राज्यञ्च श्रेयस्तस्यैव तन्नृप ॥ १३ ॥

हे परमार्थज्ञ ! यह विषय श्रवण गोचर होते ही मेरा मन परमार्थ को जानने की इच्छा से अत्यन्त व्याकुल हो रहा है । हे ब्राह्मण ! मैं तो पहले ही महाभाग कपिलमुनि के समीप जाकर इस संसार में कल्याण किसमें है, इस विषय को पूछने के लिये उद्यत था । किन्तु इसी बीच में आपने जो यह वाक्य कहा उससे परमार्थ जानने के लिये मेरा चित्त आप में लग गया है । हे द्विज ! कपिलमुनि तो सर्वभूतमय भगवान् श्रीविष्णु के ही अंश हैं, और संसार के अज्ञान को दूर करने के लिए पृथिवीपर आये हैं । किन्तु आप जो इस प्रकार कह रहे हैं, इससे निश्चय ही मेरे

हित की कामना से वही कपिलमुनि यहाँ (आपके रूप में) प्रत्यक्ष हो गये हैं । अतएव हे द्विज ! जो अत्यन्त कल्याणकारक हो वह मुझसे कहिये । आप तो समस्त विज्ञानरूपी तरङ्गों के समुद्र ही हैं । ब्राह्मण बोला—हे भूमिपाल ! तुम श्रेय पूछते हो या परमार्थ पूछते हो ? क्योंकि हे राजन् ! समस्त श्रेय परमार्थ हीन ही हैं । हे नृप ! देवता की आराधना करके मनुष्य धन, सम्पत्ति, पुत्र और राज्य की कामना करता है उनके लिये वे परम श्रेय हैं ॥ ६-१३ ॥

कर्म्म यज्ञात्मकं श्रेयः स्वर्लोकफलदायि च ।
श्रेयः प्रधानञ्च फले तदेवानभिसंहिते ॥ १४ ॥

आत्मा ध्येयः सदा भूप ! योगयुक्तैस्तथापरम् ।
श्रेयस्तस्यैव संयोगः श्रेयो यः परमात्मना ॥ १५ ॥

श्रेयांस्येवमनेकानि शतशोऽथ सहस्रशः ।
सन्त्यत्र परमार्थस्तु तत्त्वतः श्रयूतां च मे ॥ १६ ॥

धर्म्माय त्यज्यते किन्तु परमार्थो धनं यदि ।
व्ययश्च क्रियते कस्मात् कामप्राप्त्युपलक्षणः ॥ १७ ॥

पुत्रश्चेत् परमार्थः स्यात सोऽप्यन्यस्य नरेश्वर !
परमार्थभूतः सोऽन्यस्य परमार्थो हि तत्पिता ॥ १८ ॥

एवं न परमार्थोऽस्ति जगत्यस्मिंश्चराचरे ।
परमार्थो हि कार्याणि कारणानामशेषतः ॥ १९ ॥

राज्यादिप्राप्तिरत्रोक्ता परमार्थतया यदि ।
परमार्था भवन्त्यत्र न भवन्ति च वै ततः ॥ २० ॥

ऋग्-यजुः-सामनिष्पाद्यं यज्ञकर्म्म मतं तव ।
परमार्थभूतं तत्रापि श्रूयतां गदतो मम ॥ २१ ॥

यत्तु निष्पाद्यते कार्य्यं मृदा कारणभूतया ।
तत् कारणानुगमनाज्जायते नृप ! मृन्मयम् ॥ २२ ॥

यज्ञात्मक कर्म भी श्रेय ही होता है जिसका फल स्वर्ग-प्राप्ति है, किन्तु प्रधान श्रेय तो उस कर्मफल की अनिच्छा ही है । हे भूप ! योगयुक्त पुरुषों (प्रकृति से) परे आत्मा का ही ध्यान करें, क्योंकि उस परमात्मा का संयोगरूपी श्रेय ही वास्तविक श्रेय है । इस प्रकार सैकड़ों प्रकार के बहुत श्रेय हैं, किन्तु ये पारमार्थिक श्रेय नहीं है, जो पारमार्थिक श्रेय है वह मुझसे श्रवण करो । यदि धन परमार्थ है तो उसे धर्मकार्य में क्यों त्याग किया जाता है और अपनी कामना की पूर्ति के लिये क्यों उसका व्यय किया जाता है ? हे नरेश ! यदि पुत्र परमार्थ है तो वह अपने पिता का परमार्थ है, वह भी (दूसरे का पुत्र होने के कारण) दूसरे का (अपने पिता का) परमार्थ है । अतएव पिता का कार्यरूप पुत्र भी इस चराचर जगत् में परमार्थ नहीं कहा जा सकता । और यदि इस प्रकार का परमार्थ माना जाय तब समस्त कारणों का कार्य परमार्थ हो जायगा । और यदि संसार में राज्यादि की प्राप्ति परमार्थ माना जाय तो परमार्थ वस्तु सदा स्थिर रहती है, किन्तु राज्य कभी किसी के पास इस प्रकार सदा स्थिर नहीं रहते । अतएव वह भी परमार्थ नहीं है । ऋक्, यजु: और साम इन तीनों वेदों के मन्त्रों से निष्पन्न होने वाले यज्ञादि कर्म को यदि तुम परमार्थ मानते हो तो उस विषय में भी मेरा विचार सुनो । हे नृप ! कारणभूता मृतिका से जो कार्य होता है वह कारण के अनुगामी होने से मृत्तिकामय ही माना जाता है ॥ १४-२२ ॥

एवं विनाशिभिर्द्रव्यैः समिदाज्य-कुशादिभिः ।
निष्पाद्यते क्रिया या तु सा भवित्री विनाशिनी ॥ २३ ॥

अनाशी परमार्थस्तु प्राज्ञैरभ्युपगम्यते ।
तत्तु नाशि न सन्देहो नाशिद्रव्योपपादितम् ॥ २४ ॥

तदेवाफलदं कर्म्म परमार्थो मतस्तव ।
मुक्तिसाधनभूतत्वात् परमार्थो न साधनम् ॥ २५ ॥

ध्यानं चैवात्मनो भूप ! परमार्थार्थशब्दितम् ।
भेदकारि परेभ्यस्तु परमार्थो न भेदवान् ॥ २६ ॥

परमात्मात्मनोर्योगः परमार्थ इतीर्य्यते ।
मिथ्यैतदन्यद् द्रव्यं हि नैति तद्द्रव्यतां यतः ॥ २७ ॥

तस्माच्छ्रेयांस्यशेषाणि नृपैतानि न संशयः ।
परमार्थस्तु भूपाल ! सङ्क्षेपाच्छ्रूयतां मम ॥ २८ ॥

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्व्वगतोऽव्ययः ॥ २९ ॥

इसी प्रकार विनाशशील समिध, घृत और कुश आदि द्रव्यों द्वारा जो (यज्ञादि) क्रिया सम्पन्न होगी वह भी विनाशशील ही होगी । विद्वान्लोग परमार्थ को अविनाशी कहते हैं किन्तु विनाशवान् द्रव्यों से सम्पन्न यज्ञादि क्रिया और उनके फल (स्वर्गादि) सभी विनाशयुक्त हैं, इसमें सन्देह नहीं है । यदि फल को आशा से रहित (निष्काम) कर्म को तुम परमार्थ मानते हो तो वह मुक्ति के साधनभूत होने से साधन मात्र है परमार्थ नहीं । और हे राजन् ! (देहादिद्वारा) आत्मा को पृथक् मानकर उसका ध्यान यदि परमार्थ माना जाय तो वह केवल अनात्मा से आत्मा का भेद बतलाने वाला है और परमार्थ भेद रहित है (अतएव वह भी परमार्थ नहीं है) । यदि परमात्मा और आत्मा को संयोग ही को परमार्थ मानते हो तो वह भी सर्वथा असत्य ही है, क्योंकि अन्य द्रव्य से अन्य द्रव्य का एकत्व हो नहीं सकता (आत्मा एवं परमात्मा यदि भिन्न है तो गो तथा अश्व के समान उनकी एकता कभी नहीं हो सकती और यदि बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है तब तो केवल उपाधि के निराकरण के अतिरिक्त उनका संयोग ही क्या होगा ?) अतएव हे राजन् ! निश्चय ही ये समस्त कर्म श्रेय ही हैं, परमार्थ नहीं । अब संक्षेप से मैं परमार्थ कहता हूँ सुनो । एकस्वरूप, सर्वव्यापी, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे आत्मा, जन्म, वृद्धि, आदि से रहित सर्वव्यापी और अव्यय है ॥ २३-२९ ॥

परज्ञानमयोऽसद्भिर्नामजात्यादिभिर्विभुः ।
न योगवान्न युक्तोऽभून्नैव पार्थिव ! योज्यते ॥ ३० ॥

तस्यात्मपरदेहेषु सतोऽप्येकमयं हि यत् ।
विज्ञानं परमार्थोऽसौ द्वैतिनोऽतत्त्वदर्शिनः ॥ ३१ ॥

वेणुरन्ध्रप्रभेदेन भेदः षड्जादिसंज्ञितः ।
अभेदव्यापिनो वायोस्तथा तस्य महात्मनः ॥ ३२ ॥

एकत्वं रूपभेदश्च ब्राह्यकर्म्मप्रवृत्तिजः ।
देवादिभेदेऽपध्वस्ते नास्त्येवावरणे हि सः ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! वह आत्मा परम ज्ञानमय और व्यापक है, उसका कभी किसी से न तो संयोग हुआ है, न है और आगे भी कभी नहीं होगा। अपने और दूसरों के शरीर में वर्तमान वह आत्मा एक है यही विशेष ज्ञान परमार्थ है, और द्वैत (भिन्न) विचार वाले पुरुष तो अपरमार्थदर्शी हैं। जिस प्रकार अभिन्न रूप से सर्वव्यापी एक ही वायु के बाँसुरी के छेद के भेद से षड्ज आदि अनेक भेद होते हैं उसी प्रकार एक ही परमात्मा के (शरीर आदि के उपाधियों से देवता, मनुष्य आदि) अनेक भेद होते हैं। एक रूपवाले आत्मा के जो अनेक भेद हैं वे बाहरी (देहादि की) कर्मप्रवृत्ति के कारण से ही उत्पन्न हुए हैं। और देवादि शरीरों के भेद का विनाश हो जाने पर वह (बाहरी भेद) नहीं रहता। वह तो केवल अविद्या के आवरण तक ही रहता है ॥ ३०-३३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - पन्द्रहवाँ अध्याय

(ऋभु और निदाघ का संवाद)

पराशर उवाच ।

इत्युक्ते मौनिनं भूयश्चिन्तयानं महीपतिम् ।
प्रत्युवाचाथ विप्रोऽसावद्वैतान्तर्गतां कथाम् ॥ १ ॥

श्रूयतां नृपशार्दूल ! यद्गीतमृभुणा पुरा ।
अवबोधं जनयता निदाघस्य महात्मनः ॥ २ ॥

ऋभुर्नामाभवत् पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
विज्ञाततत्त्वसद्भावो निसर्गादिव भूपते ॥ ३ ॥

तस्य शिष्यो निदाघोऽभूत् पुलस्त्यतनयः पुरा ।
प्रादादशेषविज्ञानं स तस्मै परया मुदा ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इतने विषय कहने के बाद मौन होकर विचार करते हुए राजा को देखकर ब्राह्मण ने पुनः अद्वैत सम्बन्धी कथा सुनाना आरम्भ किया । ब्राह्मण बोले—हे राजशार्दूल ! प्राचीन समय में महात्मा निदाघ को ज्ञानोपदेश करते हुए महर्षि ऋभु ने जो कुछ कहा था वह सुनो । हे भूपते ! परमेष्ठी श्री ब्रह्मा जी का ऋभुनामक एक पुत्र था जो स्वभाव से ही परमार्थ तत्त्व का ज्ञाता था। और प्राचीनकाल में पुलस्त्यका पुत्र निदाघ उनका शिष्य था, जिसे उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक तत्त्वज्ञान का उपदेश दिया था ॥ १-४ ॥

अवाप्तज्ञानतत्त्वस्य न तस्याद्वैतवासनाम् ।
स ऋभुस्तर्कयामास निदाघस्य नरेश्वर ॥ ५ ॥

हे नरेश्वर ! ऋभु ने देखा कि ज्ञानतन्त्र के विज्ञाता निदाघ को अद्वैत में श्रद्धा नहीं है ॥ ५ ॥

देविकायास्तटे वीरनगरं नाम वै पुरम्।
समृद्धमतिरम्यं च पुलस्त्येन निवेशितम् ॥ ६ ॥

रम्योपवनपर्य्यन्ते स तस्मिन् पार्थिवोत्तम।
निदाघो नाम योगज्ञ ऋभुशिष्योऽवसत् पुरा ॥ ७ ॥

दिव्ये वर्षसहस्रे तु समतीतेऽस्य तत्पुरम्।
जगाम स ऋभुः शिष्यं निदाघमवलोककः ॥ ८ ॥

स तस्य वैश्वदेवान्ते द्वारालोकनगोचरे।
स्थितंस्तेन गृहीतार्घ्यो निजवेश्म प्रवेशितः ॥ ९ ॥

प्रक्षालिताङ्घ्रिपाणिं च कृतासनपरिग्रहम्।
उवाच स द्विजश्रेष्ठो भुज्यतामिति सादरम् ॥ १० ॥

उस समय देविकानदी के तीर पर पुलस्त्यमुनिका बसाया हुआ परम रमणीय और अत्यन्त समृद्धिशाली वीरनगर नामका नगर था। हे राजश्रेष्ठ ! सुन्दर उपवन सम्पन्न उस नगर में प्राचीनकाल में ऋभु का शिष्य योगज्ञाता निदाघ निवास करता था। महात्मा ऋभु एक हजार दिव्यवर्ष बीतने पर अपने शिष्य निदाघ को देखनें के लिए उसके नगर में गये। बलिवैश्वदेव के बाद निदाघ को (अतिथि की प्रतीक्षा में) द्वार पर स्थित रहते समय उससे ऋभु महर्षि देखे गये और वह उनको अर्घ्यदानपूर्वक अपने घर में ले गया। उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ने उन मुनि के हाथ, पाँव प्रक्षालित कराकर आसन पर विराजमान किया और आदरपूर्वक कहा कि भोजन कीजिये ॥ ६-१० ॥

ऋभुरुवाच।

भो विप्रवर्य्य ! भोक्तव्यं यदन्नं भवतो गृहे।
तत् कथ्यतां कदन्नेषु न प्रीतिः सततं मम ॥ ११ ॥

ऋभु बोले—हे ब्राह्मणोत्तम ! आपके घर में क्या भोजन करना होगा उसे कहिये, क्योंकि कदन्न में मेरा प्रेम नहीं रहता ॥ ११ ॥

निदाघ उवाच।

भक्त-यावक-वाट्यानामपूपानाञ्च मे गृहे।
यद् रोचते द्विजश्रेष्ठ ! तत् त्वं भुङ्क्ष्व यथेच्छया ॥ १२ ॥

निदाघ बोला—हे विप्रवर ! मेरे घर में सत्तू, जौ की लप्सी, वाटी और पूए तैयार हैं। इनमें आपकी जो रुचि हो उसे यथेच्छ भोजन करें ॥ १२ ॥

ऋभुरुवाच।

कदन्नानि द्विजैतानि मृष्टमन्नं प्रयच्छ मे।
संयाव-पायसादीनि द्रप्स्यफाणितवन्ति च। १३ ॥

ऋभु बोले—हे विप्र ! ये सभी तो कदन्न हैं, हलुआ क्षीर, मट्ठा और खाँड़ से बने पदार्थ आदि स्वादिष्ट भोजन कराओ ॥ १३ ॥

निदाघ उवाच।

हे हे शालिनि मद्गेहे यत् किञ्चिदीशोभनम्।
भक्ष्योपसाधनं मृष्टं तेनास्यान्नं प्रसाधय ॥ १४ ॥

इसके बाद निदाघ (अपनी स्त्री से) बोला—अयि शोभने ! हमारे घर में जो कुछ भी अच्छी से अच्छी वस्तु हो उसी से इनके लिये अति स्वादिष्ट और मीठा भोजन तैयार करो ॥ १४ ॥

ब्राह्मण उवाच।

इत्युक्ता तेन सा पत्नी मृष्टमन्नं द्विजस्य यत्।
प्रसाधितवती तद् वै भर्त्तुर्वचनगौरवात् ॥ १५ ॥

तं भुक्तवन्तमिच्छातो मृष्टमन्नं महामुनिम्।
निदाघः प्राह भूपाल ! प्रश्रयावनतः स्थितः ॥ १६ ॥

जड़भरत ने कहा—निदाघ के ऐसा कहने पर उसकी पत्नी ने अपने पति के वचन को आदर करके उस ब्राह्मण के लिए मीठा, भोजन तैयार कर दिया। हे भूपाल ! इच्छानुसार उन ऋभु को भोजन कर लेने पर निदाघ विनीत भाव से महामुनि से बोला ॥ १५-१६ ॥

निदाघ उवाच ।

अपि ते परमा तृप्तिरुत्पन्ना तुष्टिरेव च ।
अपि ते मानसं स्वस्थमाहारेण कृतं द्विज ॥ १७ ॥

क्व निवासो भवान् विप्र ! क्व च गन्तुं समुद्यतः ।
आगम्यते च भवता यतस्तच्च द्विजोच्यताम् ॥ १८ ॥

निदाघ बोला—हे द्विज ! भोजन करने से आपको तृप्ति और सन्तोष तो हुआ न ? तथा आपका मन स्वस्थ तो हुआ न ? हे विप्र ! आपका निवास कहाँ है ? और कहाँ जाने के लिए तैयार हैं ? तथा हे द्विज ! आप कहाँ से आ रहे हैं—ये सभी विषय मुझसे कहिये ॥ १७-१८ ॥

ऋभुरुवाच ।

क्षुद् यस्य तस्य भुक्तेऽन्ने तृप्तिर्ब्राह्मण ! जायते ।
न मे क्षुन्नाभवत् तृप्तिः कस्मान्मां परिपृच्छसि ॥ १९ ॥

वह्निना पार्थिवे धातौ क्षयिते क्षुत्समुद्भवः ।
भवत्यम्भसि च क्षीणे नृणां तृडपि जायते ॥ २० ॥

ऋभु बोले—हे ब्राह्मण ! जिसको भूख रहती है उसे भोजन करने पर तृप्ति होती ही है, किन्तु मुझे तो कभी भूख हुई नहीं मुझे क्यों पूछते हो ? । जठराग्निद्वारा पार्थिव धातु को क्षीण होने पर भूख लगती है और जल के क्षीण होने पर मनुष्यों को प्यास भी लगती है ॥ १९-२० ॥

क्षुत्तृषौ देहधर्म्माख्ये न ममेते यतो द्विज !
ततः क्षुत्सम्भवाभावात् तृप्तिरस्त्येव मे सदा ॥ २१ ॥

मनसः स्वस्थता तुष्टिश्चित्तधर्म्माविमौ द्विज !
चेतसो यस्य तत् पृच्छ पुमानेभिर्न युज्यते ॥ २२ ॥

क्व निवासस्तवेत्युक्तं क्व गन्तासि स यत् त्वया ।
कुतश्चागम्यते तत्र त्रितयेऽपि निबोध मे ॥ २३ ॥

पुमान् सर्व्वगतो व्यापी आकाशवदयं यतः ।
कुतः कुत्र क्व गन्तासीत्येतदप्यर्थवत् कथम् ॥ २४ ॥

नाहं गन्ता न चागन्ता नैकदेशनिकेतनः ।
त्वं चान्ये च न च त्वं त्वं नान्ये नैवाहमप्यहम् ॥ २५ ॥

मृष्टं न मृष्टमप्येषा जिज्ञासा मे कृता तव ।
किं वक्ष्यसीति तत्रापि श्रूयतां द्विजसत्तम ॥ २६ ॥

किमस्वाद्वथवा मृष्टं भुञ्जतोऽन्नं द्विजोत्तम ।
मृष्टमेव यदामृष्टं तदैवोद्वेगकारकम् ॥ २७ ॥

अमृष्टं जायते मृष्टं मृष्टादुद्विजते जनः ।
आदिमध्यावसानेषु किमन्नं रुचिकारकम् ॥ २८ ॥

मृन्मयं हि गृहं यद्वन्मृदा लिप्तं स्थिरं भवेत् ।
पार्थिवोऽयं तथा देहः पार्थिवैः परमाणुभिः ॥ २९ ॥

हे विप्र ! भूख और प्यास तो देह के धर्म हैं, मेरे नहीं, अतएव भूख नहीं रहने से मैं सदैव तृप्त रहता हूँ । और हे द्विज ! स्वस्थता और तुष्टि मन से उत्पन्न होने के कारण ये दोनों चित्त के धर्म हैं, पुरुष इनसे लिप्त नहीं होता । अतएव जिस चित्त के ये धर्म हैं उन्हीं से इस विषय में पूछो । और तुमने जो पूछा कि आप कहाँ निवास करते हैं ? और कहाँ जाने वाले हैं ? कहाँ से आये हैं इन तीनों के विषय में सुनो । आकाश के समान सर्वव्यापी होने के कारण आत्मा सर्वगत है, अतएव आप कहाँ से आते हैं, कहाँ निवास करते हैं और कहाँ जायेंगे यह प्रश्न भी व्यर्थ है । मैं न कहीं जाता हूँ, न कहीं से आता हूँ और न मैं किसी एक स्थान पर निवास करता हूँ । तुम तुम नहीं, अन्य अन्य नहीं, मैं मैं नहीं तुम, मैं और अन्य पुरुष केवल देहादि के कारण ही अलग अलग दिखायी देते हैं वास्तव में ऐसी बात नहीं हैं । हे विप्रवर ! मधुर भी वास्तव में मधुर नहीं है, और मैंने जो तुमसे जिज्ञासा (मधुर की याचना) की वह याचना तुम क्या कहते हो इसी लिये थी, (इस विषय में भी) सुनो । हे द्विजोत्तम ! भोजन करने वाले के लिए स्वादिष्ट अथवा अस्वादिष्ट क्या है ? क्योंकि मधुर पदार्थ भी जब अस्वादु हो जाता है तो वह हानिकारक ही बन जाता है । और जब मनुष्य मधुर से उद्विग्न हो जाता है तब मधुर पदार्थ भी अरुचिकर होता है भला

ऐसा कौन अन्न है जो आदि, मध्य और अन्त में भी रुचिकर ही मालूम पड़े। और जैसे मिट्टी का बना घर मिट्टी से लीपने पर सुदृढ़ बन जाता है, वैसे ही यह पार्थिव शरीर भी पार्थिव अन्न के परमाणुओं से पुष्ट हो जाता है ॥ २१-२९ ॥

यव-गोधूम-मुद्गादि घृतं तैलं पयो दधि।
गुडं फलादीनि तथा पार्थिवाः परमाणवः ॥ ३० ॥

तदेतद् भवता ज्ञात्वा मृष्टामृष्टविचारि यत्।
तन्मनः समतालम्बि कार्य्यं साम्यं हि मुक्तये ॥ ३१ ॥

जौ, गोधूम, मूँग, घृत, तेल, दूध, दही, गुड़ और फल आदि सभी पार्थिव परमाणु हैं। अत एव ऐसा जानकर तुम्हें मधुर और अमधुर का विचार करने वाले मन को समानदर्शी करना चाहिये, क्योंकि समानता ही मोक्ष का कारण है ॥ ३०-३१ ॥

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य परमार्थाश्रितं नृप !
प्रणिपत्य महाभागो निदाघो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

प्रसीद मद्धितार्थाय कथ्यतां यस्त्वमागतः।
नष्टो मोहस्तवाकर्ण्य वचांस्येतानि मे द्विज ॥ २३ ॥

ऋभुरस्मि तवाचार्य्यः प्रज्ञादानाय ते द्विज !
इहागतोऽहं यास्यामि परमार्थस्तवोदितः ॥ ३४ ॥

एवमेकमिदं विद्धि न भेदि सकलं जगत्।
वासुदेवाभिधेयस्य स्वरूपं परमात्मनः ॥ ३५ ॥

तथेत्युक्त्वा निदाघेन प्रणिपातपुरःसरम्।
पूजितः परया भक्तया इच्छातः प्रययावृभुः ॥ ३६ ॥

ब्राह्मण (जड़भरतजी) बोले—हे राजन् ! इस प्रकार उनके परमार्थयुक्त वचन सुनकर महाभाग निदाघ उनको प्रणाम करके बोला। हे विप्र ! आप प्रसन्न होइये ! और यह कहिये कि मेरी कल्याणकामना से आप कौन यहाँ आये हैं ? हे महात्मन् ! आपके इन वचनों को सुनकर मेरा मोह दूर हो गया। ऋभु बोले—हे विप्र मैं तेरा आचार्य ऋभु हुँ और तुझे सत् असत् को विचार करने वाली बुद्धि देने

के लिए यहाँ आया हूँ। और अब मैं जाऊँगा, मैंने तुमको परमार्थ कह दिया। इस परमार्थ को विचार करता हुआ तूम इस समस्त जगत् को वासुदेव नामक परमात्मा का स्वरूप जाने, इसमें कोई भेदभाव नहीं है। ब्राह्मण (जड़भरतजी) बोले—इसके बाद 'बहुत अच्छा' ऐसा कहकर निदाघ ने प्रणामपूर्वक भक्ति भाव से उनकी पूजा की और ऋभु ने स्वेच्छानुसार प्रस्थान किया ॥ ३२-३६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त।

द्वितीय अंश - सोलहवाँ अध्याय

(आत्मतत्त्व का उपदेश)

ऋभुर्वर्षसहस्रे तु समतीते नरेश्वर !
निदाघज्ञानदानाय तदेव नगरं ययौ ॥ १ ॥

ब्राह्मण बोले—हे नरेश्वर ! अनन्तर हजार वर्ष बीत जाने पर ऋभु पुनः निदाघ को ज्ञानोपदेश करने के लिए उसी नगर में गये ॥ १ ॥

नगरस्य बहिः सोऽथ निदाघं ददृशे मुनिः ।
महाबलपरीवारे पुरं विशति पार्थिवे ॥ २ ॥

दूरे स्थितं महाभागं जनसम्मदर्दवर्ज्जकम् ।
क्षुत्क्षामकण्ठमायान्तमरण्यात् ससमित्कुशम् ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा निदाघं स ऋभुरुपगम्याभिवाद्य च ।
उवाच कस्मादेकान्ते स्थीयते भवता द्विज ॥ ४ ॥

भो विप्र ! जनसम्मर्दो महानेष जनेश्वरे ।
प्रविविक्षौ पुरं रम्यं तेनात्र स्थीयते मया ॥ ५ ॥

नराधिपोऽत्र कतमः कतमश्चेतरो जनः ।
कथ्यतां मे द्विजश्रेष्ठ ! त्वमभिज्ञो मतो मम ॥ ६ ॥

योऽयं गजेन्द्रमुन्मत्तमद्रिशृङ्गसमुच्छ्रितम् ।
अधिरूढो नरेन्द्रोऽयं परलोकस्तथेतरः ॥ ७ ॥

एतौ हि गज-राजानौ युगपद् दर्शितौ मम ।
भवता न विशेषेण पृथक्चिह्नोपलक्षणौ ॥ ८ ॥

तत् कथ्यतां महाभाग ! विशेषी भवतानयोः ।
ज्ञातुमिच्छाम्यहं कोऽत्र गजः को वा नराधिपः ॥ ९ ॥

गजो योऽयमधो ब्रह्मन् ! उपर्य्यस्यैष भूपतिः ।
वाह्य-वाहकसम्बन्धं को न जानाति वै द्विज ॥ १० ॥

वहाँ जाकर मुनि ने देखा कि विशाल सेना आदि के साथ वहाँ का राजा नगर में प्रवेश कर रहा है तथा वनसे समिध और कुशा लेकर आया हुआ भूखा प्यासा महाभाग निदाघ जनसमूह से अलग खड़ा है । निदाघ को देखकर ऋभु उसके पास पहुंचे और अभिवादन करके बोले—हे द्विज ! किस कारण से आप एकान्त में खड़े हैं । निदाघ बोला—हे विप्र ! राजा इस सुन्दर नगर में प्रवेश करना चाहता है, अतएव रास्ते में बहुत भीड़ हो रही है इस लिए मैं यहाँ पर खड़ा हूँ । ऋभु बोले—हे विप्रवर ! यहाँ राजा कौन है ? और अन्यलोग कौन हैं ! यह कहिये, क्योंकि आप इन सबों के जानकार मालूम पड़ते हैं । निदाघ बोला—यह जो पर्वत के समान ऊँचे और उन्मत्त गजराज पर विराजमान हैं वही राजा है, तथा और सभी परिजन हैं । ऋभु बोले—आपने राजा और गजराज, इन दोनों को एक ही बार दिखाये, किन्तु अलग अलग चिन्ह और लक्षण नहीं बतलाये । अतएव हे महाभाग ? इन दोनों में क्या विशेषताएँ हैं वह कहिये, मैं जानना चाहता हूँ कि इनमें गजराज कौन है और राजा कौन है । निदाघ बोला—अधो भागवाला गज है और उसके ऊपर राजा विराजमान है, इस प्रकार के वाह्य वाहक सम्बन्ध को कौन नहीं जानता ॥ २-१० ॥

जानाम्यहं यथा ब्रह्मस्तथा मामवबोधय ।
अधः शब्दनिगद्यं किं किञ्चोद्धर्वमभिधीयते ॥ ११ ॥

इत्युक्तः सहसारुह्य निदाघः प्राह त ऋभुम् ।
श्रूयतां कथयाम्येष यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १२ ॥

उपर्य्यहं यथा राजा त्वमधः कुञ्जरो यथा ।
अवबोधायः ते ब्रह्मन् ! दृष्टान्तो दर्शितो मया ॥ १३ ॥

त्वं राजेव द्विजश्रेष्ठ ! स्थितोऽहं गजवद् यदि ।
तदेतत् त्वं समाचक्ष्व कतमस्त्वमहं तथा ॥ १४ ॥

ऋभु बोले—हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार मैं समझ सकूँ उस प्रकार से मुझे समझाइये। आप कहिये कि इससे 'अध:' (नीचे शब्द का अर्थ क्या है? 'ऊर्ध्व' (ऊपर) किसको कहते हैं? ॥ ब्राह्मण (जड़भरतजी) बोले—इस प्रकार ऋभुद्वारा कहे जाने पर निदाघ सहसा उनके ऊपर चढ़कर बोला—आप मुझसे पूछते हैं वह कहता हूँ सुनिये। इस समय राजा के समान ऊपर मैं हूँ और गज के समान नीचे आप हैं। हे ब्राह्मण! आपके समझाने के लिए मैंने यह उदाहरण दिखाया। ऋभु बोले—हे ब्राह्मणोत्तम! तुम राजा के समान और मैं यदि गजराज के समान स्थित हूँ तब यह तुम बताओ कि तुम कौन हो? और मैं कौन हूं? ११-१४ ॥

इत्युक्त: सत्वरं तस्य प्रगृह्य चरणावुभौ।
निदाघ: प्राह भगवानाचार्य्यस्त्वमृभुर्ध्रुवम्॥ १५ ॥

नान्यस्याद्वैतसंस्कारसंस्कृतं मानसं तथा।
यथाचार्य्यस्य तन त्वां मन्ये प्राप्तमहं गुरुम्॥ १६ ॥

तवोपदेशदानाय पूर्व्वशुश्रूषणादृत:।
गुरुस्तेऽहमृभुर्नाम्ना निदाघ! समुपागत: ॥ १७ ॥

तदेतदुपदिष्टं ते सङ्क्षेपेण महामते!
परमार्थसारभूतं यदद्वैतमशेषत: ॥ १८ ॥

ब्राह्मण (जड़भरत) बोला—ऋभु के द्वारा ऐसा कहे जाने पर शीघ्र ही उनके चरण पकड़कर निदाघ बोला—आप निश्चय ही मेरे आचार्य ऋभु हैं। मेरे आचार्य के समान किसी दूसरे का मन अद्वैत संस्कार से संस्कृत नहीं है, अत: आप मेरे गुरुजी ही यहाँ उपस्थित हैं। ऋभु बोले—पहले तुमने जो मेरी शुश्रूषा करके पूर्ण आदर किया था, अतएव तुम्हारे प्रेमवश हे निदाघ! ऋभु नामका तुम्हारा गुरु ही तुम को उपदेश देने के लिए यहाँ उपस्थित हूँ। हे महामते! समस्त विषयों में अद्वैतबुद्धि रखना ही समस्त परमार्थों का सार है वह मैंने संक्षेप में तुम्हें बता दिया ॥ १५-१७ ॥

एवमुक्तवा ययौ विद्वान् निदाघं स ऋभुर्गुरु:।
निदाघोऽप्युपदेशेन तेनाद्वैतपरोऽभवत्॥ १९ ॥

सर्व्वभूतान्यभेदेन ददृशे स तदात्मन:।
यथा ब्रह्मपरो मुक्तिमवाप परमां द्विज॥ २० ॥

तथा त्वमपि धर्म्मज्ञ ! तुल्यात्मरिपुबान्धवः ।
भव सर्व्वगतं जानन्नात्मानमवनीपते ॥ २१ ॥

ब्राह्मण (जड़भरतजी) बोले—निदाघ को ऐसा उपदेश देकर परम विद्वान् गुरु ऋभु महर्षि चले गये और निदाघ भी उनके उपदेश से अद्वैत में तत्पर हो गये । और समस्त प्राणियों के अपनी आत्मा से अभिन्न समझने लगे । इस प्रकार ब्रह्मविचार में परायण वह ब्राह्मण ने परम मुक्ति को प्राप्त किया, उसी प्रकार हे धर्मज्ञ ! तुम भी अपनी आत्मा शत्रु और बन्धु बान्धवों में समान भाव रखते हुए हे महीपते ! अपने को सर्वव्यापी समझते हुए मुक्ति प्राप्त करो ॥ १९-२१ ॥

सितनीलादिभेदेन यथैकः दृश्यते नभः ।
भ्रान्तिदृष्टिभिरात्मापि तथैकं सन् पृथक् पृथक् ॥ २२ ॥

एकः समस्तं यदिहास्ति किञ्चित्
तदच्युतो नास्ति परं ततोऽन्यत् ।
सोऽहं स च त्वं स च सर्व्वमेत-
दात्मस्वरूपं त्यज भेदमोहम् ॥ २३ ॥

जैसे एक ही आकाश श्वेत और नील भेदों वाला दिखायी देता है, उसी प्रकार भ्रान्तदृष्टिवालों को भी एक ही आत्मा भिन्न भिन्न रूप से दिखायी देती है । इस संसार में जो कुछ हैं वह एक ही है और यह एक अविनाशी आत्मा ही है, उससे अलग और कुछ भी नहीं है । वही आत्मस्वरूप तुम, मैं, और अन्य सब कुछ हैं, अतएव भेदज्ञानरूपी अपने मोह का परित्याग कर दो ॥ २२-२३ ॥

पराशर उवाच ।

इतीरितस्तेन स राजवर्य्य-
स्तत्याज भेदं परमार्थदृष्टिः ।
स चापि जातिस्मरणाप्तबोध-
स्तत्रैव जन्मन्यपवर्गमाप ॥ २४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार उन ब्राह्मण जड़भरतजी द्वारा उपदेश देने पर परमार्थ दृष्टिवाले उस राजर्षि सौवीरनरेश ने भेदबुद्धि का परित्याग कर दिया ।

और वे पूर्वजन्म को स्मरण रखने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ जड़भरतजी भी ज्ञान सम्पन्न होने से उसी जन्म में मुक्त हो गये ॥ २४ ॥

इति भरत-नरेन्द्रसारवृत्तं
कथयति यश्च शृणोति भक्तियुक्तः ।
स विमलमतिरेति नात्ममोहं
भवति च संसरणेषु मुक्तियोग्यः ॥ २५ ॥

॥ द्वितीयांशः सम्पूर्णः ॥

इस प्रकार नरेश भरत के सारभूत वृतान्त को जो कोई मनुष्य भक्ति पूर्वक कहता अथवा सुनता है निर्मल-बुद्धिवाला वह आत्मा मोह को कभी नहीं प्राप्त करता और जन्म जन्मान्तर में मुक्ति के योग्य बन जाता है ॥ २५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के द्वितीय अंश में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

श्रीविष्णु महापुराण

तृतीय अंश - पहला अध्याय

(मन्वन्तरों का वर्णन)

मैत्रेय उवाच ।

कथिता गुरुणा सम्यग् भूसमुद्रादिसंस्थितिः
सूर्यादीनाञ्च संस्थानं ज्योतिषामपि विस्तरात् ॥ १ ॥

देवादीनां तथा सृष्टिर्ऋषीणामपि वर्णिता ।
चातुर्वर्ण्यस्य चोत्पत्तिस्तिर्य्यग्योनिगतस्य च ॥ २ ॥

ध्रुवप्रह्लादचरितं विस्तराच्च त्वयोदितम् ।
मन्वन्तराण्यशेषाणि श्रोतुमिच्छाम्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

मन्वन्तराधिपांश्चैव शक्रदेवपुरोगमान् ।
भवता कथितानेतान् श्रोतुमिच्छाम्यहं गुरो ॥ ४ ॥

मैत्रेयजी बोले—हे गुरो ! आपने पृथिवी, समुद्र आदि की स्थिति और सूर्य आदि ग्रहों का संस्थान भी विस्तार पूर्वक कहा । आपने देवता आदि ऋषियों की सृष्टि और चारों वर्णों की एवं तिर्यग्योनि के जीवों की उत्पत्ति का भी वर्णन किया । ध्रुव एवं प्रह्लाद का चरित भी आपने विस्तार से कहा । हे गुरो ! मन्वन्तर तथा इन्द्र एवं देवताओं के साथ मन्वन्तरों के अधिपति मनुओं की कथा सुनना चाहता हूँ ॥ १-४ ॥

पराशर उवाच ।

अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै ।
तान्यहं भवते सम्यक् कथयामि यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

श्रीपराशर जी बोले—पहले जितने मन्वन्तर हो चुके हैं । और जितने होने वाले है, मैं उन सबको क्रमशः कहूँगा ॥ ५ ॥

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वो मनुः स्वारोचिषस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ ६ ॥

षडेते मनवोऽतीताः साम्प्रतन्तु रवेः सुतः ।
वैवस्वतोऽयं यस्यैतत् सप्तमं वर्त्ततेऽन्तरम् ॥ ७ ॥

सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुए । अनन्तर, क्रमशः स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष मनु हुए । इन छः मन्वन्तरों का काल पहले समाप्त हो गया है । अभी सूर्यपुत्र वैवस्वत मनु का काल बीत रहा है जो सातवाँ मन्वन्तर कहा जाता है ॥ ६-७ ॥

स्वायम्भुवन्तु कथितं कल्पादावन्तरं मया ।
देवाः सप्तर्षयश्चैव यथावत् कथिता मया ॥ ८ ॥

अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि मनोः स्वारोचिषस्य तु ।
मन्वन्तराधिपान् सम्यग् देवर्षीस्तत्सुतांस्तथा ॥ ९ ॥

पारावताः सतुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे ।
विपश्चिच्चैव देवेन्द्रा मैत्रेयासीन्महाबलः ॥ १० ॥

ऊर्ज्जः स्तम्बस्तथा प्राणो दत्तोलिर्ऋषभस्तथा
निश्वरश्चोर्वरीवांश्च तत्र सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ११ ॥

कल्प के प्रारम्भ में जो स्वायम्भुवमनु के विषय में कहा उनके देवता और सप्तर्षियों का वर्णन भी हो चुका है । इसके बाद के स्वारोचिषमनुके मन्वन्तर-अधिकारी देवता, ऋषि और मनुपुत्रों के विषय में कहूँगा । हे मैत्रेय ! स्वारोचिषम-न्वन्तर में पारावत और तुषित नाम के देवगण थे, और महाबलशाली विपश्चित्

नामक उसमें इन्द्र हुए। ऊर्ज्ज, स्तम्भ, प्राण, वात पृषभ, निरय और परीवान्—ये उस मन्वन्तर में सप्तर्षिगण थे ॥ ८-११ ॥

चैत्र-किम्पुरुषाद्याश्च सुताः स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतत् कथितमन्तरं शृणु चोत्तमम् ॥ १२ ॥

और स्वारोचिषमनुके चैत्र तथा किम्पुरुष आदि पुत्र थे। इस प्रकार द्वितीय मनुका वर्णन हुआ। अब उत्तम मनुका विवरण सुनो ॥ १२ ॥

तृतीये त्वन्तरे ब्रह्मन् ! औत्तमिर्नाम यो मनुः।
सुशान्तिर्नाम देवेन्द्रो मैत्रेयासीत् सुरेश्वर ॥ १३ ॥

हे ब्रह्मन् ! तृतीय मन्वन्तर में उत्तम नाम के मनु थे और हे मैत्रेय ! उस समय सुशान्ति नामक देवाधीश इन्द्र थे ॥ १३ ॥

सुधामानस्तथा सत्याः शिवाश्चासन् प्रतर्दनाः।
वशवर्तिनश्च पञ्चैते गणा द्वादशकाः स्मृताः ॥ १४ ॥

वसिष्ठतनयास्तत्र सप्त सप्तर्षयोऽभवन्।
अजः परशुदिव्याद्यास्तस्योत्तमिमनोः सुताः ॥ १५ ॥

और उस काल में सुधाम, सत्य, जय, प्रतर्दन और वशवर्ती—ये सभी बारह बारह देवताओं के पाँच गण थे। वशिष्ठ जी के सात पुत्र उस समय सप्तर्षि थे और अज परशु, तथा दीप्त आदि उत्तममनु के पुत्र थे ॥ १४-१५ ॥

तामसस्यान्तरे देवाः सुरूपा हरयस्तथा।
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः ॥ १६ ॥

शिबिरन्द्रस्तथा चासीच्छतयज्ञोपलक्षणः।
सप्तर्षयश्च ये तेषां तत्र नामानि मे शृणु ॥ १७ ॥

तामसमन्वन्तर में सुपार, सत्य, हरि एवं सुधि—ये चार देववर्ग थे और इन प्रत्येक में सत्ताईस सत्ताईस देवता थे। और सौ अश्वमे यज्ञ करने वाला शिवि नामक राजा इन्द्र था एवं उस समय के सप्तर्षियों के नाम सुनो ॥ १६-१७ ॥

ज्योतिर्धामा पृथुः काव्यश्चैत्रोऽग्निर्वनकस्तथा।
पीवरश्चर्षयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे ॥ १८ ॥

नरः ख्यातिः शान्तहयो जानुजङ्घादयस्तथा ।

पुत्रास्तु तामसस्यासन् राजानः सुमहाबलाः ॥ १९ ॥

ज्योतिर्धामा, पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, वनक, पीवर—ये सात उस काल के सप्तर्षि थे । तथा तामसमनु के नर, ख्याति, केतुरूप, जानुजङ्घ आदि महाबली पुत्र ही तत्कालीन राजा थे ॥ १८-१९ ॥

पञ्चमे चापि मैत्रेय ! रैवतो नाम नामतः ।

मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो देवांश्चैवान्तरे शृणु ॥ २० ॥

अमिताभा भूतरजोवैकुण्ठाः ससुमेधसः ।

एते देवगणास्तत्र चदुर्दश चतुर्दश ॥ २१ ॥

हे मैत्रेय ! पाँचवें मन्वन्तर में रैवत नामक मनु थे और उस समय के इन्द्र का नाम विभु था, तथा उस समय के देवताओं का नाम सुनो । अमिताभ, भूतस्य, वैकुण्ठ और सुमेधा—ये प्रत्येक चौदह चौदह देवताओं के गण थे ॥ २०-२१ ॥

हिरण्यरोमा वेदश्रीरूद्ध्र्वबाहुस्तथापरः ।

वेदबाहुः सुधामा च पर्जन्यश्च महामुनिः ।

एते सप्तर्षयो विप्र ! तत्रासन् रैवतेऽन्तरे ॥ २२ ॥

बलबन्धुः सुसम्भारुः सत्यकाद्याश्च तत्सुताः ।

नरेन्द्राः सुमहावीर्य्या बभूवुर्मुनिसत्तम ॥ २३ ॥

और हे विप्र ! हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुधामा, पर्जन्य, तथा महामुनि—ये सात उस मन्वन्तर के सप्तर्षि थे । हे मुनिश्रेष्ठ ! बलबन्धु, सम्भाव्य, सत्यक आदि उस रैवतमनु के महापराक्रमी पुत्र तत्कालीन राजा थे ॥ २२-२३ ॥

स्वारोचिषश्चौत्तमिश्च तामसो रैवतस्तथा ।

प्रियव्रतान्वया ह्येते चत्वारो मनवस्तथा ॥ २४ ॥

विष्णुमाराध्य तपसा स राजर्षिः प्रियव्रतः ।

मन्वन्तराधिपानेतान् लब्धवानात्मवंशजान् ॥ २५ ॥

स्वारोचिष उत्तम, तामस और रैवत—ये चारों मनु प्रियव्रत राजा के वंशज कहे जाते हैं। राजर्षि प्रियव्रत ने तपस्या से श्रीविष्णु की आराधना करके अपने वंश में उत्पन्न इन चार मन्वन्तराधीश्वरों को प्राप्त किया था ॥ २४-२५ ॥

षष्ठे मन्वन्तरे चासीच्चाक्षुषाख्यस्तथा मनुः ।
मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवानपि निबोध मे ॥ २६ ॥

छठे मन्वन्तर में चाक्षुषनाम के मनु थे, तथा उस समय के इन्द्र मनोज व नामक थे और उस समय के देव गणों का नाम सुनो ॥ २६ ॥

आद्याः प्रसूता भव्याश्च पृथुगाश्च दिवौकसः ।
महानुभावा लेखाश्च पञ्चैतेऽप्यष्टका गणाः ॥ २७ ॥

सुमेधा विरजाश्चैव हविष्मानुत्तमो मधुः ।
अतिनामा सहिष्णुश्च सप्तासन्निति चर्षयः ॥ २८ ॥

ऊरुः पुरुः शतद्युम्नप्रमुखाः सुमहाबलाः ।
चाक्षुषस्य मनोः पुत्राः पृथिवीपतयोऽभवन् ॥ २९ ॥

आद्य, प्रसूत, भव्य, पृथुक और लेख—ये पाँच देवगण थे, तथा इन प्रत्येक में आठ आठ देवता थे। और उस समय सुमेधा, विरज, हविष्मान्, उत्तम, मधु, अतिनामा और सहिष्णु—ये सप्तर्षि थे। उरु, पुरु और शतद्युम्न आदि चाक्षुष मनु के महाबली पुत्र तत्कालीन राज्याधिकारी थे ॥ २७-२९ ॥

विवस्वतः सुतो विप्र ! श्राद्धदेवो महाद्युतिः ।
मनुः संवर्त्तते धीमान् साम्प्रत सप्तमेऽन्तरे ॥ ३० ॥

आदित्य-वसु-रुद्राद्या देवाश्चात्र महामुने !
पुरन्दरस्तथैवात्र मैत्रेय ! त्रिदशेश्वरः ॥ ३१ ॥

वशिष्ठः काश्यपोऽथात्रिर्जमदग्निः सगौतमः ।
विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन् ॥ ३२ ॥

इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ।
नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभ उद्दिष्ट एव च ॥ ३३ ॥

करूशश्च पृषध्रश्च वसुमान् लोकविश्रुतः ।
मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राश्च धार्मिकाः ॥ ३४ ॥

हे विप्र ! वर्तमान काल में सातवाँ मन्वन्तर है इसमें सूर्य के पुत्र महा-तेजस्वी और बुद्धिमान् श्राद्धदेव मनु हैं । हे महामुने ! इस वैवस्वतमनुके काल में आदित्य, वसु और रुद्रगण देवता हैं । और हे मैत्रेय ! देवताओं के अधिपति पुरन्दर नामक इन्द्र हैं । वशिष्ठ, कश्यप अत्रि, जममग्नि, गौतम, विश्वामित्र और भरद्वाज—ये सभी इस मन्वन्तर में सप्तर्षि हैं । इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभ, करूष, पृषध्र और लोकप्रसिद्ध वसुमान्—ये नौ उन मनु के परम धार्मिक पुत्र हुए ॥ ३०-३४ ॥

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थितौ स्थिता ।
मन्वन्तरेष्वशेषेषु देवत्वेनाधितिष्ठति ॥ ३५ ॥

अंशेन तस्य जज्ञेऽसौ यज्ञः स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
आकूत्यां मानसो देव उत्पन्नः प्रथमेऽन्तरे ॥ ३६ ॥

ततः पुनः स वै देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे ।
तुषितायां समुत्पन्नो ह्यजितस्तुषितैः सह ॥ ३७ ॥

जो विष्णुशक्ति उपमारहित सत्त्वगुणसम्पन्न लोकरक्षा में स्थित रहती है और समस्त मन्वन्तरों में वही वैष्णवी शक्ति विराजमान भी रहती है । और प्रथम स्वाम्भुवमन्वन्तर में आकूति के गर्भ से यज्ञमय विष्णु के अंश से मानसदेव उत्पन्न हुआ था । इसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषिता के गर्व से अजित, मानस, देव नामसे तुषितगणों के साथ उत्पन्न हुए ॥ ३५-३७ ॥

औत्तमे त्वन्तरे चैव तुषितस्तु पुनः स वै ।
सत्यायामभवत् सत्यः सत्यः सह सुरोत्तमैः ॥ ३८ ॥

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि ।
हर्य्यायां हरिभिः सार्धं हरिरेव बभूव ह ॥ ३९ ॥

रैवतेऽप्यन्तरे देवः सम्भूत्यां मानसोऽभवत् ।
सम्भूतो रैवतैः सार्द्धं देवैर्देववरो हरिः ॥ ४० ॥

चाक्षुषे चान्तरे देवो वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः !
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्देवतैः सह ॥ ४१ ॥

मन्वन्तरे तु सम्प्राप्ते तथा वैवस्वते द्विज !
वामनः कश्यपाद् विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह ॥ ४२ ॥

त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना ।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम् ॥ ४३ ॥

इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वतरेषु वै ।
सप्ताथवाभवन् विप्र ! याभिः संवर्द्धिताः प्रजाः ॥ ४४ ॥

पुनः उत्तम मन्वन्तर के काल में वही तुषित सत्या के गर्भ से सत्यरूप से देवश्रेष्ठ सत्यगण के साथ उत्पन्न हुए । पुनः तामस मन्वन्तर में हर्या के गर्भ से हरि नामक देवताओं के साथ हरिरूप से उत्पन्न हुए। उसके बाद भगवान् हरि रैवतमन्वन्तर में तत्कालीन देवगण के साथ सम्भूति के उदर से प्रकट होकर मानस नाम से विख्यात हुए । चाषुष मन्वन्तर में पुरुषोत्तम भगवान् वैकुण्ठ नामक देवताओं के साथ वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध होते हुए विकुण्ठा के गर्भ से उत्पन्न हुए । और इस वैवस्वत मन्वन्तर में कश्यपमुनि के द्वारा अदिति में वामन नाम से उत्पन्न हुए । जिन महात्मा वामन ने तीन पाँव से तीनों भुवन को जीतकर निष्कण्टक तीनों लोकों का राज्य पुरन्दर को दे दिया । हे विप्र ! सातों मन्वन्तरों में श्रीविष्णु भगवान् ने सात मूर्तियों में प्रकट होकर प्रजागण की रक्षा की ॥ ३८-४४ ॥

यस्माद् विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः ।
तस्मात् स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥ ४५ ॥

सर्वे च देवा मनवः समस्ताः सप्तर्षयो ये मनुसूनवश्च ।
इन्द्रश्च योऽयं त्रिदशेशभूतो विष्णोरशेषास्तु विभूतयस्ताः ॥ ४६ ॥

उसी महात्मा नारायण की शक्ति से यह समस्त विश्व उत्पन्न हुआ और उन्हीं की शक्ति निखिल विश्व में व्याप्त है, अतएव वे विष्णु नाम से प्रसिद्ध हैं । प्रवेशार्थक विश धातु से विष्णु शब्द सिद्ध होता है । समस्त देवगण, समस्त मनु, सभी सप्तर्षि, अशेष मनुपुत्र और सम्पूर्ण देवराज (इन्द्र) ये सभी उसी श्रीविष्णु भगवान् की विभूतियाँ हैं ॥ ४५-४६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में प्रथम अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - दूसरा अध्याय

(सावर्णि आदि मनुओं का विवरण)

मैत्रेय उवाच ।

प्रोक्तान्येतानि भवता सप्तमन्वन्तराणि वै ।
भविष्याण्यपि विप्रर्षे ! ममाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले—हे विप्रवर ! आपने अतीत सात मन्वन्तरों की कथा मुझे सुनायी । अब भविष्य में होने वाले मन्वन्तरों की कथा कहिये ॥ १ ॥

पराशर उवाच ।

सूर्यस्य पत्नी संज्ञाभूत्तनया विश्वकर्मणः
मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने ॥ २ ॥

असहन्ती तु सा भर्तुस्तेजश्छायां युयोज वै ।
भर्त्तुः शुश्रूषणेऽरण्यं स्वयं च तपसे ययौ ॥ ३ ॥

संज्ञेयमित्यथार्कश्च छायायामात्मजत्रयम् ।
शनैश्चरं मनुञ्चान्यं तपतीञ्चाप्यजीजनत् ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने ! विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा सूर्य की पत्नी थी । उस संज्ञा के गर्भ से मनु, यम और यमी नाम की तीन सन्तानें उत्पन्न हुई । किन्तु अपने पति सूर्य के तेज को नहीं सहन करती हुई संज्ञा छाया नामकी एक कन्या को सूर्य की सेवा में नियुक्त करके स्वयं वन में तपस्या करने चली गई । सूर्यदेव ने इस छाया नामकी कन्या को संज्ञा समझकर उसके गर्भ में शनैश्चर तथा (सावर्णि) मनु—ये दो पुत्र, तथा तपती नाम की एक कन्या उत्पन्न की ॥ २-४ ॥

छायासंज्ञा ददौ शापं यमाय कुपिता यदा ।
तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद् यम-सूर्ययोः ॥ ५ ॥

ततो बिवस्वानख्याते तयेवारण्यसंस्थिताम् ।
समाधिदृष्ट्या ददृशे तामश्वां तपसि स्थिताम् ॥ ६ ॥

वाजिरूपधरः सोऽथ तस्यां देवावथाश्विनौ ।
जनयामास रेवन्तं रेतसोऽन्ते च भास्करः ॥ ७ ॥

आनिन्ये च पुनः संज्ञां स्वस्थानं भगवान् रविः ।
तेजसः शमनञ्चास्य विश्वकर्मा चकार ह ॥ ८ ॥

भ्रमिमारोप्य सूर्यन्तु तस्य तेजोविशातनम् ।
कृतवानष्टमं भागं न व्यशातयताव्ययम् ॥ ९ ॥

यत् सूर्याद् वैष्णवं तेजः शातितं विश्वकर्मणा ।
जाज्वल्यमानपतत्तद्भूमौ मुनिसत्तम ॥ १० ॥

त्वष्टैव तेजसा तेन विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ।
त्रिशूलञ्चैव रुद्रस्य शिविकां धनदस्य च ॥ ११ ॥

शक्तिं गुहस्य देवानामन्येषाञ्च यदायुधम् ।
तत्सर्वं तेजसा तेन विश्वकर्मा व्यवर्द्धयत् ॥ १२ ॥

एक दिन जब छाया ने क्रोधित होकर यम को शाप दिया तब यम और सूर्य समझे कि यह तो कोई दूसरी ही है । तब उसी छाया से (सारा रहस्य) कहे जाने पर सूर्य ने समाधि में स्थित होकर देखा कि संज्ञा घोड़ी के रूप को धारणकर तपस्या कर रही हैं । पुनः अश्वरूप धारण करके श्रीसूर्यदेव ने भी उस (अश्वा रूपवाली संज्ञा) से अश्विनीकुमारद्वय को उत्पन्न किया तथा रेतः स्राव के बाद बही रेवन्तनामका, एक पुत्र और उत्पन्न किया । पुनः सूर्य भगवान् संज्ञा को अपने स्थान में ले आये और विश्वकर्मा ने उनके तेज को शान्त किया। उन्होंने सूर्य को भ्रमियन्त्रपर चढ़ा कर उनका तेज छाट दिया । किन्तु सूर्य तेज का अक्षय आठवें भाग को छाट नहीं सके । हे मुनिसत्तम ! विश्वकर्मा ने जिस वैष्णव तेज को छाँटा था वह जाज्वल्यमान तेज पृथ्वी पर गिर गया । उस समय विश्वकर्मा ने पृथ्वी पर

गिरे हुए उस सूर्यतेज से विष्णु का चक्र, शिव का त्रिशूल, कुबेर की पालकी और कार्तिकेयकी शक्ति बना दी, तथा अन्य देवताओं के अस्त्रों को भी उस तेज से पुष्ट किया ॥ ५-१२ ॥

छायासंज्ञासुतो योऽसौ द्वितीयः कथितो मनुः ।
पूर्वजस्य सवर्णोऽसौ सावर्णिस्तेन चोच्यते ॥ १३ ॥

तस्य मन्वन्तरं ह्येतत् सावर्णिकमथाष्टमम् ।
तच्छृणुष्व महाभाग ! भविष्यं कथयामि ते ॥ १४ ॥

सावर्णिस्तु मनुर्योऽसौ मैत्रेय ! भविता ततः ।
सुतपाश्चामिताभाश्च मुख्याश्चापि तदा सुराः ॥ १५ ॥

तेषां गणस्तु देवानामेकैकी विंशकः स्मृतः ।
सप्तर्षीनपि वक्ष्यामि भविष्यान् मुनिसत्तम ॥ १६ ॥

दीप्तिमान् गालवी रामः कृपा द्रौणिस्तथा परः ।
मत्पुत्रस्तु तथा व्यास ऋष्यश्रृङ्गश्च सप्तमः ॥ १७ ॥

विष्णुप्रसादादनघः पातालान्तरगोचरः ।
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १८ ॥

छाया संज्ञा के जिस दूसरे पुत्र मनुका पहले नाम आया है वह अपने अग्रज मनुका सवर्ण होने से सावर्णि मनु कहलाये । उनका जो आठवाँ मन्वन्तर आगे आने वाला है । हे महाभाग ! उस भावी मन्वन्तर का विवरण मैं कहता हूँ श्रवण करो । हे मैत्रेय ! यह सावर्णि उस आठवें मन्वन्तर के मनु होंगे और सुतपा, अमिताभ एवं मुख्यगण देवता होंगे । उन देवताओं का प्रत्येक गण बीस बीस का समूह है । हे मुनिसत्तम ! आगे के सप्तर्षियों का विवरण अब कहता हूँ, श्रवण करो । दीप्तिमान्, गालव, राम, कृप, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, मेरे पुत्र व्यास और सातवाँ ऋष्यश्रृङ्ग—ये सात सावर्णि मन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे । भगवान् श्रीविष्णु की कृपा से पातालवासी निष्पाप विरोचन पुत्र बलि उस मन्वन्तर में इन्द्र होगा ॥ १३-१८ ॥

विरजाश्चार्वरीवांश्च निर्मोहाद्यास्तथापरे ।
सावर्णेस्तु मनोः पुत्रा भविष्यन्ति नरेश्वराः ॥ १९ ॥

और सावर्णिमनुके पुत्र विरजा, ऊर्वरीवान् एवं निर्मोक् आदि तत्कालीन नरेश होंगे ॥ १९ ॥

नवमो दक्षसावर्णो मैत्रेय ! भविता मनुः ।
पारा मरीचिगर्भाश्च सुधर्माणस्तथा त्रिधा ॥ २० ॥

भविष्यन्ति तदा देवा एकैको द्वादशो गणः ।
तेषामिन्द्रो महावीर्यो भविष्यत्यद्भुतो द्विज ॥ २१ ॥

सबलो द्युतिमान् भव्यो वसुमेधा धृतिस्तथा ।
ज्योतिष्मान् सप्तमः सत्यस्तत्रैते च महर्षयः ॥ २२ ॥

धृतकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तो निरामयः ।
पृथुश्रवाद्याश्च तथा दक्षसावर्णिकात्मजाः ॥ २३ ॥

हे मुने ! नवम मनु दक्षसावर्णि नाम के होंगे । और प्रत्येक बारह बारह देवतावाले, पार, मरीचिगर्भ, सुधर्मा—ये तीन प्रकार के उस समय देवगण होंगे । हे द्विज ! उनका प्रधान महापराक्रमी अद्भुत नाम का इन्द्र होगा । सबल, द्युतिमान, भव्य, वसु, मेधातिथि, ज्योतिष्मान् और सातवाँ सत्य—ये दक्षसावर्णिमन्वन्तर में सप्तर्षि होंगे । धृतकेतु, दीप्तिकेतु, पञ्चहस्त, निरामय और पृथुश्रवा आदि दक्षसावर्णि के पुत्र होंगे ॥ २०-२३ ॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिर्भविष्यति मुने ! मनुः ।
सुधामानो विशुद्धाश्च शतसंख्यास्तथा सुराः ॥ २४ ॥

हे मुने ! दशवें मनु ब्रह्मसावर्णि नामक होंगे, तथा सुधामा और विशुद्ध नामके दो देवगण सौ सौ देवतावाले होंगे ॥ २४ ॥

तेषामिन्द्रश्च भविता शान्तिर्नाम महाबलः ।
सप्तर्षयो भविष्यन्ति ये तदा तान् श्रृणुष्व च ॥ २५ ॥

हविष्मान् सुकृतः सत्यो ह्यपांमूर्तिस्तथापरः ।
नाभागोऽप्रतिमौजाश्च सत्यकेतुस्तथैव च ॥ २६ ॥

सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च हरिसेनादयो दश ।
ब्रह्मसार्वणपुत्रास्तु रक्षिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥ २७ ॥

शान्ति नामक महाबलशाली उनलोगों का इन्द्र होगा । और जो सप्तर्षि होंगे उनके नाम भी सुनो । हविष्मान्, सुकृत, सत्य, तपोमूर्ति, नाभाग, अप्रतिमौजा और सत्यकेतु तत्कालीन सप्तर्षियों का नाम है । सुक्षेत्र, उत्तमौजा और भूरिषेण आदि ब्रह्मसावर्णि के दशपुत्र उस समय पृथ्वी की रक्षा करेंगे ॥ २५-२७ ॥

एकादशश्च भविता धर्मसावर्णिको मनुः ।
विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरतयस्तथा ॥ २८ ॥

गणास्त्वेते तदा मुख्या देवानाञ्च भविष्यताम् ।
एकैकस्त्रिंशकस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः ॥ २९ ॥

निश्चरश्चाग्नितेजाश्च वपुष्मान् विष्णुरारुणिः ।
हविष्माननघश्चैते भाव्याः सप्तर्षयस्तथा ॥ ३० ॥

सर्वगः सर्वधर्मा च देवानीकादयस्तथा ।
भविष्यन्ति मनोस्तस्य तनयाः पृथिवीश्वराः ॥ ३१ ॥

ग्यारहवाँ धर्मसावर्णि नामक मनु होगा । उस समय विहंगम, कामगम, निर्माणरति—ये देवगण होंगे । इन तीनों गणों में प्रत्येक में तीस-तीस देवता होंगे और वृष काल में इस नामक इन्द्र होगा । उस समय निःश्चर, अग्नितेजा, वपुष्मान्, घृणि, आरुणि, हविष्मान् एवं अनघ—ये सप्तर्षि होंगे । तथा धर्मसावर्णि के सर्वग, सर्वधर्मा और देवानीक आदि पुत्र तत्कालीन राजा होंगे ॥ २८-३१ ॥

रुद्रपुत्रस्तु सावर्णो भविता द्वादशो मनुः ।
ऋतधामा च तत्रेन्द्रो भविता शृणु मे सुरान् ॥ ३२ ॥

हरिता रोहिता देवास्तथा सुमनसो द्विज !
सुकर्माणश्च ताराश्च दशकः पञ्च वै गणाः ॥ ३३ ॥

रुद्रपुत्र सावर्णि बारहवाँ मनु होगा । उस समय के इन्द्र का नाम ऋतुधामा होगा, और उस समय के देवताओं का नाम सुनो । हे विप्र ! उस समय में हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और तारा नामक पाँच गण होंगे और इन प्रत्येक में दश दश देवता होंगे ॥ ३२-३३ ॥

तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्तिस्तपोरतिः ।
तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तमस्तु तपोधनः ॥ ३४ ॥

देववानुपदेवश्च दैवश्रेष्ठादयस्तथा ।
मनोस्तस्य महावीर्या भविष्यन्ति सुता नृपाः ॥ ३५ ॥

तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, तपोद्युति, तथा तपोधन—ये उस समय में सप्तर्षि होंगे। और उनके पुत्रों का नाम भी सुनो—देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ आदि उस मनु के महापराक्रमी पुत्र तत्कालीन राजा होंगे ॥ ३४-३५ ॥

त्रयोदशो रौच्यनामा भविष्यति मुने ! मनुः ।
सुत्रामाणाः सुधर्माणः सुकर्माणस्तथापराः ॥ ३६ ॥

त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां ये तु वै गणाः ।
दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिन्द्रो भविष्यति ॥ ३७ ॥

निर्मोहस्तत्त्वदर्शी च निष्प्रकम्प्यो निरुत्सुकः ।
धृतिमानव्ययश्चान्यः सप्तमः सुतपा मुनिः ॥ ३८ ॥

सप्तर्षयस्त्विमे तस्य पुत्रानपि निबोध मे ।
चित्रसेनविचित्राद्या भविष्यन्ति महीक्षितः ॥ ३९ ॥

और हे मुने ! तेरहवाँ मनु रौच्य नामक होंगे। इस मन्वन्तर में तैंतीस देवताओं से युक्त सुत्रामा, सुकर्मा और सुधर्मा नामक तीन देवगण होंगे। महापराक्रमी दिवस्पति उनका इन्द्र होगा। और निर्मोह, तत्त्वदर्शी, निष्प्रकम्प्य, निरुत्सुक, धृतिमान्, अव्यय और सुतपा—ये उस समय के सप्तर्षि होंगे। अब मनु के पुत्रों का भी नाम श्रवण करो। चित्रसेन, विचित्र आदि उनके पुत्र उस समय के राजा होंगे ॥ ३६-३९ ॥

भौत्यश्चतुर्दशश्चात्र मैत्रेय ! भविता मनुः ।
शुचिरिन्द्रः सुरगणास्तत्र पञ्च शृणुष्व तान् ॥ ४० ॥

चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजिकास्तथा ।
वचोवृद्धाश्च वै देवाः सप्तर्षीनपि मे शृणु ॥ ४१ ॥

हे मैत्रेय ! चौदहवाँ मनु भौम नामक होगा । उस समय में शुचि इन्द्रपदपर आसीन होगा, और तत्कालीन पाँच देवगणों का नाम सुनो—चक्षुष, पवित्र, कनिष्ठ, भ्राजिक और वाचावृद्ध—ये पाँच उस काल के देवगण होंगे । और सप्तर्षियों का नाम भी सुनो ॥ ४०-४१ ॥

अग्निबाहुः शुचिः शुक्रो मागधोऽग्निध्र एव च ।
युक्तस्तथाऽजितश्चान्यो मनुपुत्रानतः श्रृणु ॥ ४२ ॥

ऊरुर्गभीरव्रध्नाद्या मनोस्तस्य सुता नृपाः ।
कथिता मुनिशार्दूल ! पालयिष्यन्ति ये महीम् ॥ ४३ ॥

अग्निबाहु, शुचि, शुक्र, मागध, अग्निध्र, युक्त एवं जित—ये सात उस समय के सप्तर्षि होंगे । अब मनुपुत्रों का भी नाम श्रवण करो । हे मुनिशार्दूल ! ऊरु एवं गम्भीर बुद्धि आदि मनु पुत्र राजा होकर पृथ्वी का पालन करेंगे ॥ ४२-४३ ॥

चतुर्युगान्ते वेदानां जायते किल विप्लवः ।
प्रवर्तयन्ति तानेत्य भुवि सप्तर्षयो दिवः ॥ ४४ ॥

कृते कृते स्मृतेर्विप्र ! प्रणेता जायते मनुः ।
देवा यज्ञभुजस्ते तु यावन्मन्वन्तरन्तु तत् ॥ ४५ ॥

भवन्ति ये मनोः पुत्रा यावन्मन्वन्तरन्तु तैः ।
तदन्वयोद्भवैश्चैव तावद्भूः परिपाल्यते ॥ ४६ ॥

मनुः सप्तर्षयो देवा भूपालाश्च मनोः सुताः ।
मन्वन्तरे भवन्त्येते शक्रश्चैवाधिकारिणः ॥ ४७ ॥

चारों युगों के अन्त में वेदों का लोप हो जाता है, अतएव सप्तर्षिगण स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर उन लुप्त हुए वेदों का पुनः प्रवर्तन करते हैं । हे विप्र ! प्रत्येक सत्ययुग के आरम्भ में मनु धर्मशास्त्र रचना के लिये अवतीर्ण होते हैं, और मन्वन्तर के समाप्त होने तक तत्कालीन देवगण यज्ञभागों को भोग करते हैं । और उस समय जो मनु के पुत्र होते हैं वे और उनके वंशज मन्वन्तर के अन्ततक पृथ्वी का पालन करते हैं । इस प्रकार से मनु, सप्तर्षि, देवता, इन्द्र और मनु के पुत्र राजालोग—ये सभी प्रत्येक मन्वन्तर में अधिकारी होते हैं ॥ ४४-४७ ॥

चतुर्दशभिरेतैस्तु गतैर्मन्वन्तरैर्द्विज !
सहस्त्रयुगपर्यन्तः कल्पो निःशेष उच्यते ॥ ४८ ॥

तावत्प्रमाणा च निशा ततो भवति सत्तम !
ब्रह्मरूपधरः शेते शेषाहावम्बुसम्प्लवे ॥ ४९ ॥

त्रैलोक्यमखिलं ग्रस्त्वा भगवानादिकृद् विभुः ।
स्वमायासंस्थितो विप्र ! सर्वभूतो जनार्दनः ॥ ५० ॥

ततः प्रबुद्धो भगवान् यथा पूर्वं तथा पुनः ।
सृष्टिं करोत्यव्ययात्मा कल्पे कल्पे रजोगुणः ॥ ५१ ॥

मनवो भूभुजः सेन्द्रा देवाः सप्तर्षयस्तथा ।
सात्त्विकोऽशंः स्थितिकरो जगतो द्विजसत्तम ॥ ५२ ॥

चतुर्युगेऽप्यसौ विष्णुः स्थितिव्यापारलक्षणः ।
युगव्यवस्थां कुरुते यथा मैत्रेय ! तच्छ्रृणु ॥ ५३ ॥

इन चौदहों मन्वन्तरों के बीत जाने पर एक हजार युग पूरे हो जाते हैं, और इतने युग के समय को एक कल्प कहा जाता है । एक संहस्त्र युगवाले एक कल्प के बीत जाने पर इतने ही प्रमाण की एक रात्रि होती है । उस रात्रिकाल में ब्रह्मरूपधारी श्रीविष्णु भगवान् प्रलयकालीन जल में शेष शय्यापर शयन करते हैं । हे विप्र ! आदिकर्ता सर्वव्यापी सर्वभूतमय जनार्दन भगवान् समस्त त्रिलोकी को ग्रसित करके अपनी माया में विराजमान हो जाते हैं । पुनः प्रलयकाल की रात्रि के शेष होने पर सभी कल्पों के आरम्भ में अव्ययात्मा भगवान् जाग्रत होकर रजोगुण के आश्रय से पहले के समान ही सृष्टि का निर्माण करते हैं । हे द्विजसत्तम ! मनुपुत्र राजागण, इन्द्र, देवगण और सप्तर्षि—ये सभी जगत् का पालन करने वाले हैं, अतः इन्हें सात्त्विक अंश कहा गया है । हे मैत्रेय ! स्थितिकारक भगवान् श्रीविष्णु चारों युगों में जिस प्रकार से युग की व्यवस्था करते हैं वह सुनो ॥ ४८-५३ ॥

कृते युगे परं ज्ञानं कपिलादिस्वरूपधृक् ।
ददाति सर्वभूतानां सर्वभूतहिते रतः ॥ ५४ ॥

चक्रवर्तिस्वरूपेण त्रेतायामपि स प्रभुः ।
दुष्टानां निग्रहं कुर्वन् परिपाति जगत्त्रयम् ॥ ५५ ॥

वेदमेकं चतुर्भेदं कृत्वा शाखाशतैर्विभुः ।
करोति बहुलं भूयो वेदव्यासस्वरूपधृक् ॥ ५६ ॥

वेदांस्तु द्वापरे व्यस्य कलेरन्ते पुनर्हरिः ।
कल्किस्वरूपी दुर्वृत्तान् मार्गे स्थापयति प्रभुः ॥ ५७ ॥

एवमेष जगत् सर्वं परिपाति करोति च ।
हन्ति चान्तेष्वनन्तात्मा नास्त्यस्माद् व्यतिरेकि यत् ॥ ५८ ॥

समस्त प्राणियों के कल्याण में तत्पर सर्वप्राणिमय भगवान् सत्ययुग में कपिल आदि के रूप को धारणकर परम ज्ञान का उपदेश देते हैं । त्रेतायुग में वही प्रभु चक्रवर्ती राजा के स्वरूप को धारणकर दुष्टों का संहार करते हुए तीनों लोकों का पालन करते हैं । उसके बाद द्वापर युग में वेदव्यासरूप से एक वेद के चार विभाग करके सैकड़ों शाखाओं में उसका बहुत विस्तार करते हैं । इस प्रकार द्वापर में वेद को विभाग करने के बाद कलियुग के अन्त में वही प्रभु महाविष्णु कल्किस्वरूप धारणकर दुराचारियों का सदाचारी बनाते हैं । इस प्रकार अनन्तात्मा भगवान् सदा इस जगत् को उत्पन्न, पालन एवं संहार करते हैं । तथा इस विश्व में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो उनसे पृथक हो ॥ ५४-५८ ॥

भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वभूतान्महात्मनः ।
तदत्रान्यत्र वा विप्र ! सद्भावः कथितस्तव ॥ ५९ ॥

मन्वन्तराण्यशेषाणि कथितानि मया तव ।
मन्वन्तराधिपाश्चैव किमन्यत् कथयामि ते ॥ ६० ॥

हे ब्राह्मण ! इस लोक में अथवा परलोक में भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान् जितनी भी वस्तुएँ हैं वे सभी सर्वभूतमय महात्मा श्रीविष्णु भगवान् से ही उत्पन्न हैं । इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण विषय तुमसे कह दिया । मैंने तुमसे समस्त मन्वन्तरों के अधिकारियों का भी वर्णन कर दिया, अब और क्या कहूं ? ॥ ५९-६० ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में दूसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - तीसरा अध्याय

(वेदव्यास के अट्ठाईसनामों का कथन)

मैत्रेय उवाच ।

ज्ञातमेतन्मया त्वत्तो यथापूर्वमिदं जगत् ।
विष्णुर्विष्णौ विष्णुतश्च न परं विद्यते ततः ॥ १ ॥

एतत्तु श्रोतुमिच्छामि व्यस्ता वेदा महात्मना ।
वेदव्यासस्य रूपेण यथा तेन युगे युगे ॥ २ ॥

यस्मिन् यस्मिन् युगे व्यासो यो य आसीन्महामुने !
तं तमाचक्ष्व भगवन् ! शाखाभेदांश्च मे वद ॥ ३ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन् ! आपके वचनों से मैं यह समझ गया कि यह समस्त जगत् श्रीविष्णु भगवान् से उत्पन्न हुआ है, विष्णु में ही स्थित है, और विष्णुमय है तथा विष्णु से भिन्न और कुछ नहीं है । किन्तु अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि वेदव्यास स्वरूपधारी उस महात्मा ने किस प्रकार वेदों का विभाग किया । हे महामुने ! हे भगवन् ! जिस जिस युग में जो जो व्यास हुए उनका तथा वेदों के शाखाविभागों का वर्णन मुझसे कहिये ॥ १-३ ॥

पराशर उवाच ।

वेदद्रुमस्य मैत्रेय ! शाखाभेदैः सहस्रशः ।
न शक्यो विस्तरो वक्तुं संक्षेपेण शृणुष्व तत् ॥ ४ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! वेदरूपी वृक्ष की हजारों शाखायें हैं, उसे विस्तार पूर्वक नहीं कर सकता, किन्तु संक्षेप में श्रवण करो ॥ ४ ॥

द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुने !
वेदमेकं स बहुधा कुरुते जगतो हितः ॥ ५ ॥

वीर्यं तेजो बलञ्चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य वै ।
हिताय सर्वभूतानां वेदभेदान् करोति सः ॥ ६ ॥

ययासौ कुरुते तन्वा वेदमेक पृथक् प्रभुः ।
वेदव्यासाभिधाना तु सा मूर्तिर्मधुविद्विषः ॥ ७ ॥

हे महामुने ! प्रत्येक द्वापर में व्यासस्वरूप भगवान् श्रीविष्णु जगत् के कल्याण के निमित्त एक्वेद के अनेक भेद करते हैं। वे भगवान् विष्णु मनुष्यों के वीर्य, तेज और बल को अल्प हुए जानकर समस्त प्राणियों के हित के लिये वेदों का विभाजन करते हैं। जिस शरीर के द्वारा वे प्रभु एक वेद के अनेक विभाग करते हैं वह मधुसूदन भगवान् का शरीर 'वेदव्यास' नाम से विख्यात होता है ॥ ५-७ ॥

यस्मिन् मन्वन्तरे ये ये व्यासा तांस्तान्निबोध मे ।
यथा च भेदः शाखानां व्यासेन क्रियते मुने ॥ ८ ॥

और हे मुने ! जिस जिस मन्वन्तर में जो जो व्यास होते हैं और वे व्यास जिस प्रकार शाखाओं का भेद करते हैं—वह सुनो ॥ ८ ॥

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः ।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिन् द्वापरेषु पुनः पुनः ॥ ९ ॥

वेदव्यासा व्यतीता ये अष्टाविंशति सत्तम !
चतुर्द्धा यैः कृतो वेदो द्वापरेषु पुनः पुनः ॥ १० ॥

द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ॥ ११ ॥

तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे च बृहस्पतिः ।
सविता पञ्चमे व्यासो मृत्युः षष्ठे स्मृतः प्रभुः ॥ १२ ॥

सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे स्मृतः
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे स्मृतः ॥ १३ ॥

एकादशे तु त्रिवृषा भरद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चान्तरीक्षो वणी चापि चतुर्दशे ॥ १४ ॥

इस वैवस्वतमन्वन्तर के काल में पुनः द्वापर युग में महर्षियों ने व्यासों ने अट्ठाईस बार वेदों का विभाग किया है। जिन्होंने पुनः पुनः द्वापरयुग में वेदों के चार विभाग किये हैं, उन बीते हुए अट्ठाईस व्यासों का विवरण सुनो। प्रथम द्वापर में स्वयं ब्रह्मा जी ने वेदों का विभाग किया, दूसरे द्वापर में प्रजापति वेदव्यास हुए। तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य जी, चौथे द्वापर में बृहस्पति व्यास हुये। पाँचवें में सूर्य और छठे में मृत्यु वेदव्यास हुए। सातवें द्वापर में इन्द्र, आठवें में वशिष्ठ, नवम में सारस्वत, दशवें में त्रिधामा नामक व्यास हुए। ग्यारहवें में त्रिशिख, बारहवें में भरद्वाज, तेरहवें में अन्तरिक्ष एवं चौदहवें में वर्णी व्यास हुए ॥ ९-१४ ॥

त्र्यारुणः पञ्चदशे षोड़शे तु धनञ्जयः।
क्रतुञ्जयः सप्तदशे ऋणज्योऽष्टादशे स्मृतः ॥ १५ ॥

ततो व्यासो भरद्वाजो भरद्वाजात् तु गौतमः।
गौतमादुत्तमो व्यासो हर्यात्मा योऽभिधीयते ॥ १६ ॥

अथ हर्यात्मनो वेणः स्मृतो वाजश्रवान्वयः।
सोमशुष्मायनस्तस्मात् तृणबिन्दुरिति स्मृतः ॥ १७ ॥

ऋक्षोऽभूद्भार्गवस्तस्माद् वाल्मीकिर्योऽभिधीयते।
तस्मादस्मात्पिता शक्तिर्व्यासस्तस्मादहं मुने ॥ १८ ॥

जातूकर्णोऽभवन्मत्तः कृष्णद्वैपायनस्ततः।
अष्टाविंशतिरित्येते वेदव्यासाः पुरातनाः ॥ १९ ॥

एको वेदश्चतुर्धा तु यैः कृतो द्वापरादिषु।
भविष्ये द्वापरं चापि द्रौणिर्व्यासो भविष्यति।
व्यतीते मम पुत्रेऽस्मिन् कृष्णद्वैपायने मुनौ ॥ २० ॥

पन्द्रहवें में त्र्यारुण, सोलहवें में धनञ्जय, सत्रहवें में क्रतुञ्जय और अट्ठारहवें में ऋणज्य नामवाले व्यास हुए। इसी प्रकार उन्नीसवें द्वापर में पुनः भरद्वाज ही व्यास हुए, तथा बीसवें में गौतम और उनके बाद हर्यात्मा नामक व्यास हुए। हर्यात्मा के

बाद वाजश्रवा मुनि व्यास हुए, अनन्तर सोमशुष्मवंश के तृणबिन्दु नाम के व्यास हुए। चौबीसवें द्वापर में भृगुवंश में उत्पन्न ऋक्ष नामक व्यास हुए, जिनको लोग बाल्मीकि कहते हैं। उनके बाद मेरे पिताजी शक्ति व्यास हुए, अनन्तर मैं पराशर व्यास हुआ। पुनः मेरे बाद जातुकर्ण नामक व्यास हुए और अट्ठाईसवाँ व्यास कृष्णद्वैपायन हुए। इस प्रकार ये अट्ठाईस प्राचीन व्यास हैं। इन सब ने द्वापर के आदि में एक वेद के चार चार विभाग किये हैं। और हे मुने ! मेरे पुत्र कृष्णद्वैपायन के बाद आगे आने वाले द्वापर में द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा व्यास होंगे ॥ १५-२० ॥

ध्रुवमेकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येवं व्यवस्थितम्।
बृहत्त्वाद् बृंहणत्वाच्च तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥ २१ ॥

ओम्, यह ध्रुव एक अक्षर ही ब्रह्म है। बृहत् और व्यापक होने के कारण यह ब्रह्म कहा जाता है ॥ २१ ॥

प्रणवावस्थितं नित्यं भूर्भुवःस्वरितीर्य्यते।
ऋग्यजुः सामाथर्वाणं यत् तस्मै ब्रह्मणे नमः ॥ २२ ॥

जगतः प्रलयोत्पत्त्योर्यत्तत् कारणसंज्ञितम्।
महतः परमं गुह्यं तस्मै सुब्रह्मणे नमः ॥ २३ ॥

अगाधापारमक्षय्यं जगत् सम्मोहनालयम्।
सम्प्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ २४ ॥

सांख्यज्ञानवतां निष्ठा गतिः शमदमात्मनाम्।
यत्तदव्यक्तममृतं प्रवृत्तं ब्रह्म शाश्वतम् ॥ २५ ॥

प्रधानमात्मयोनिश्च गुहासत्त्वञ्च शस्यते।
अविभागं तथा शुक्लमक्षरं बहुधात्मकम् ॥ २६ ॥

परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः।
यद्रूपं वासुदेवस्य परमात्मस्वरूपिणः ॥ २७ ॥

भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक—ये तीनों लोक प्रणव में ही स्थित कहे जाते हैं तथा प्रणव ही ऋक्, यजुः, साम और अथर्वरूप है, अतः प्रणव (ओंकार)

स्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है । जो जगत् के प्रलय और उत्पत्ति का कारण कहलाता है और महत्तत्व से भी सूक्ष्म है उस ब्रह्म को नमस्कार है । जो अगाध, अपार और अक्षय है तथा जो संसार को मोहित करने वाले तमोगुण का आश्रय है, एवं प्रकाशमय (सत्त्वगुण), प्रवृत्तिरूप (रजोगुण) के द्वारा पुरुषों को भोग और मोक्षरूपी परमपुरुषार्थ का प्रयोजक (हेतु) है । जो सांख्यज्ञानियों की परमनिष्ठा है, शम, दमयुक्त पुरुषों के लिए प्राप्य स्थान और जो अव्यक्त एवं अनिवाशी है तथा कर्मशील ब्रह्म होकर भी सदा स्थिर रहने वाला है । इस प्रकार जो स्वयम्भू, प्रधान और गुहासंस्थ (अन्तर्यामी) कहलाता है, तथा जो विभाग रहित दीप्तिमान्, अक्षय एवं अनेक रूप वाला है और जो परमात्मस्वरूप भगवान् वासुदेव का ही रूप है उस (ओंकारस्वरूप) परमब्रह्म को नित्य नमस्कार है ॥ २२-२७ ॥

एतद् ब्रह्म त्रिधाभेदमभेदमपि स प्रभुः ।
सर्वभूतेष्वभेदोऽसौ भिद्यते भिन्नबुद्धिभिः ॥ २८ ॥

स ऋङ्मयः साममयः स चात्मा स यजुर्मयः ।
ऋग्यजुःसामसारात्मा स एवात्मा शरीरिणाम् ॥ २९ ॥

स भिद्यते वेदमयः स वेदं करोति भेदैर्बहुभिः सशाखम् ।
शाखाप्रणेता स समस्तशाखाज्ञानस्वरूपो भगवाननन्तः ॥ ३० ॥

यह ओंकार ब्रह्म एक होने पर भी (अकार, उकार, मकार रूप से) तीन भेदों वाला है । यह समस्त भेदों में अभेद रूप से स्थित होते हुए भी भेद बुद्धिवालों में भेदरूप से समझा जाता है । वह सर्वात्मा ऋक्, यजुः, साममय है और ऋक्, यजुः, साम का तत्त्वभूत वह ओंकार ही समस्त शरीरधारियों की आत्मा है । वेदमय वह ऋग्वेदादिरूप से भिन्न हो जाता है और वही अपने वेदस्वरूप को अनेक शाखाओं में विभक्त करता है तथा संगरहित वही भगवान् समस्त शाखाओं के निर्माता और उनका ज्ञानरूप भी है ॥ २८-३० ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में तीसरा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - चौथा अध्याय

(ऋग्वेद की शाखाओं का वर्णन)

पराशर उवाच ।

आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः ।
ततो दशगुणः कृत्स्नो यज्ञोऽयं सर्वकामधुक् ॥ १ ॥

आदिकाल में ऋक्, यजुः, साम, अथर्व इन चार पादों से सम्पन्न एक लाख मन्त्रवाला एक ही वेद था । उसी से सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाले दस प्रकार के यज्ञ होते थे ॥ १ ॥

ततोऽत्र मत्सुतो व्यासो ह्यष्टाविंशतिमेऽन्तरे ।
वेदमेकं चातुष्पादं चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः ॥ २ ॥

यथा तु तेन वै व्यस्ता वेदव्यासेन धीमता ।
वेदास्तथा समस्तैस्तैर्व्यस्ता व्यासैस्तथा मया ॥ ३ ॥

तदनेनैव वेदानां शाखाभेदान् द्विजोत्तम !
चतुर्युगेष्वारचितान् समस्तेष्ववधारय ॥ ४ ॥

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
कोऽन्यो हि भुवि मैत्रेय ! महाभारतकृद् भवेत् ॥ ५ ॥

तेन व्यस्ता यथा वेदा मत्पुत्रेण महात्मना ।
द्वापरे ह्यत्र मैत्रेय ! तस्मिन्न शृणु यथार्थतः ॥ ६ ॥

उसके बाद अट्ठाईसवें द्वापर में मेरे पुत्र व्यास ने चार पादवाले एक वेद को चार भागों में विभक्त किया । परमबुद्धिमान् वेदव्यास ने जिस प्रकार एक वेद को चार भागों में विभक्त किया, उसी प्रकार अन्य सभी व्यासों ने तथा मैंने भी वेद विभाग किया था । हे द्विजोत्तम ! सभी चतुर्युगों में इसी प्रकार शाखाभेदपूर्वक वेद

का पाठ होता है यह समझो । किन्तु कृष्णद्वैपायन को तुम प्रत्यक्ष नारायण ही जानो, क्योंकि हे मैत्रेय !नारायण से अन्य कौन पुरुष इस भूतल पर महाभारत की रचना करने वाला हो सकता है । हे मैत्रेय ! द्वापर युग में मेरे पुत्र महात्मा व्यास ने जिस प्रकार वेदों का विभाग किया वह यथावत् श्रवण करो ॥ २-६ ॥

ब्रह्मणा चोदितो व्यासो वेदान् व्यस्तुं प्रचक्रमे ।

अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगन् ॥ ७ ॥

ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह स महामुनिः ।

वैशम्पायननामानं यजुर्वेदस्य चाग्रहीत् ॥ ८ ॥

जैमिनिं सामवेदस्य तथैवाथर्ववेदवित् ।

सुमन्तुस्तस्य शिष्योऽभूद् वेदव्यासस्य धीमतः ॥ ९ ॥

ब्रह्माजी से प्रेरित होकर व्यास ने जब वेदों का विभाग करना आरम्भ किया, तब उन्होंने वेदों के अन्ततक अभ्यास में समर्थ चार शिष्यों को ग्रहण किया । उन महामुनि व्यास ने पैल को ऋग्वेद पढ़ाया और वैशम्पायन को यजुर्वेद, जैमिनी को सामवेद तथा सुमन्तु अथर्ववेद में पारङ्गत हुए । इस प्रकार परम बुद्धिमान् वेदव्यास जी के चारों शिष्य चारों वेदों के ज्ञान से सम्पन्न बने ॥ ७-९ ॥

रोमहर्षणनामानं महाबुद्धिं महामुनिः ।

सूतं जग्राह शिष्यं स इतिहास-पुराणयोः ॥ १० ॥

इनके अतिरिक्त महामुनि व्यास ने महाबुद्धिमान् रोमहर्षण को इतिहास और पुराण इन दो विषयों का शिष्य बनाया ॥ १० ॥

एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत् ।

चातुर्होत्रमभूद् यस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत् ॥ ११ ॥

आध्वर्यवं यजुर्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथा मुनिः ।

औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वं चाप्यथर्वभिः ॥ १२ ॥

प्राचीनकाल में यजुर्वेद एक ही था । उसे उन्होंने चार भागों में विभक्त किये, अत एव उससे चातुर्होत्र हुआ और इस चातुर्होत्र विधान से यज्ञ की व्यवस्था की ।

वेदव्यास जी ने यजुर्वेद से अध्वर्यु के, ऋग्वेद से होता के, सामवेद से उद्गाता के और अथर्ववेद से ब्रह्मा के कर्म की स्थापना की ॥ ११-१२ ॥

ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् मुनिः ।
यजूंषि च यजुर्वेदं सामवेदञ्च सामभिः ॥ १३ ॥

राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माणि च प्रभुः ।
कारयामास मैत्रेय ! ब्रह्मत्वञ्च यथास्थिति ॥ १४ ॥

इसके बाद उन्होंने ऋग्वेद की श्रुतियों को निकालकर ऋग्वेद की और यजुर्वेद की श्रुतियों को निकालकर यजुर्वेद की रचना की, इसी प्रकार सामवेद की श्रुतियों से सामवेद की भी रचना की । और हे मैत्रेय ! वेदव्यास जी ने ही अथर्ववेद द्वारा समस्त राजकर्म एवं ब्रह्मत्व की भी व्यवस्था बनायी ॥ १३-१४ ॥

सोऽयमेको महावेदस्तरुस्तेन पृथक्कृतः ।
चतुर्धा तु ततो जातं वेदपादपकाननम् ॥ १५ ॥

बिभेद प्रथमं विप्र ! पैल ऋग्वेदपादपम् ।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद् बास्कलाय च संहिते ॥ १६ ॥

इस प्रकार उन महात्मा वेदव्यास जी ने एक ही वेदरूपी वृक्ष को चार भागों में विभक्त किया और उन चारों वेदरूपी वृक्षों से वेद वृक्ष का वन हो गया । सर्वप्रथम पैलने ऋग्वेद रूपी वृक्ष के दो भाग किये, इनमें एक भाग इन्द्र प्रमिति को और एक भाग वाष्कल को पढ़ाया ॥ १५-१६ ॥

चतुर्धा स बिभेदाथ बास्कलिर्द्विज ! संहिताम् ।
बौध्यादिभ्यो ददौ तास्तु शिष्येभ्यः स महामुनिः ॥ १७ ॥

बौध्याग्निमाठरौ तद्वद् याज्ञवल्क्यपराशरौ ।
प्रतिशाखास्तु शाखायास्तस्यास्तं जगृहुमुने ॥ १८ ॥

इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां स्वसुतं ततः ।
माण्डूकेयं महात्मानं मैत्रयाध्यापयत् तदा ॥ १९ ॥

तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्यः पुत्रशिष्यान् क्रमाद् ययौ ।
वेदमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान ॥ २० ॥

चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः ।
तस्य शिष्यास्तु ये पञ्च तेषां नामानि मे श्रृण ॥ २१ ॥

मुद्गलो गोमुखश्चैव वात्स्यः शालीय एव च ।
शिशिरः पञ्चमश्चासीन् मैत्रेय ! सुमहामुनिः ॥ २२ ॥

पुनः महामुनि वाष्कल ने भी अपनी संहिता के चार भाग किये और उनको बौध्य आदि अपने शिष्यों को पढ़ाया। हे मुने ! उस वाष्कलीय शाखा की चारों प्रतिशाखाओं को उनके शिष्य, बोध्य, अग्निमाढ्क, याज्ञवक्ल्य एवं पराशर ने ग्रहण किया। हे मैत्रेय ! इन्द्रप्रमिति ने अपनी शाखा को अपने पुत्र महात्मा माण्डुकेयको पढ़ाया। इस क्रम से उनके शिष्य, प्रशिष्यों में और उनके पुत्र एवं शिष्यों उस शाखा का प्रचार हुआ। इस परम्परानुसार वेद मित्र ने भी उस संहिता का अध्ययन किया। तथा उस संहिता को पाँच शाखाओं में विभक्त करके अपने पाँच शिष्यों को पढ़ाया। उनके जो पाँच शिष्य थे उनके नाम सुनो। मुद्गल, गोमुख, वात्स्य, शालीय और पञ्चम महाबुद्धिमान् शिष्य थे ॥ १७-२२ ॥

संहितात्रितयं चक्रे शाकपूर्णिरथतरम् ।
निरुक्तमकरोत् तद्वच्चतुर्थं मुनिसत्तम ॥ २३ ॥

क्रौञ्चो वैतालिकस्तद्वद् बलाकश्च महामतिः ।
निरुक्तकृच्चतुर्थोऽभूद् वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २४ ॥

इत्येताः प्रतिशाखाभ्योऽप्यनुशाखा द्विजोत्तम !
बास्कलिश्चापरास्तिस्त्रः संहिताः कृतवान् द्विज ॥ २५ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! उनके एक शिष्य शाकपूर्ण ने तीन संहिताओं का और चौथे ने एक निरुक्त का निर्माण किया। इन तीनों संहिताओं के अध्ययन करने वाले महामुनि क्रौञ्च, वैतालिक और बलाक—ये तीन शिष्य थे। और वेदवेदाङ्ग में पारङ्गम चौथा निरुक्तकार हुआ। हे विप्रवर ! इस प्रकार वेदवृक्ष की प्रति-

शाखाओं से ही अनुशाखाएँ बनी और बाष्कल ने भी तीन शाखाओं का निर्माण किया ॥ २३-२५ ॥

शिष्यः कालायनिर्गार्ग्यस्तृतीयश्च कथाजवः ।
इत्येते बहुधा प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्त्तिताः ॥ २६ ॥

उन् संहिताओं को अध्ययन करने वाले उनके शिष्य, कालायनि, गार्ग्य और कथाजव—ये तीन हुए । इस प्रकार जिन्होंने इन शाखाओं का प्रवर्तन किया वे बह्वृच कहलाये ॥ २६ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में चौथा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - पाँचवाँ अध्याय

(शुक्लयजुर्वेद एवं तैत्तिरीय यजुः शाखाओं का विवरण)

पराशर उवाच।

यजुर्वेदतरोः शाखाः सप्तविंशन्महामतिः ।
वैशम्पायननामासौ व्यासशिष्यश्चकार वै ॥ १ ॥

शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्तेऽप्यनुक्रमात् ।
याज्ञवल्क्यस्तु तत्राभूद् ब्रह्मरातसुतो द्विजः ॥ २ ॥

शिष्यः परमधर्मज्ञो गुरुवृत्तिपरः सदा ।
ऋषिर्योऽद्य महामेरौः समाजे नागमिष्यति ॥ ३ ॥

तस्य वै सप्तरात्रात्तु ब्रह्महत्या भविष्यति ।
पूर्वमेवं मुनिगणैः समयो ऽभूत् कृतो द्विज ॥ ४ ॥

वैशम्पायन एकस्तु तं व्यतिक्रान्तवांस्तदा
स्वस्रीयं बालकं सोऽथ पदास्पृष्टमघातयत् ॥ ५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे महामुने ! वेदव्यासजी के शिष्य वैशम्पायन ने यजुर्वेदरूपी वृक्ष की सत्ताईस शाखाओं का निर्माण किया । और उन शाखाओं को अपने शिष्यसमुदाय को पढ़ाया, तथा शिष्यों ने भी क्रमशः पढ़ लिया । ब्रह्मरात का पुत्र परम धर्मज्ञ याज्ञवल्क्य नामक ब्राह्मण सदा गुरु की सेवा में परायण रहता था । हे ब्रह्मन् ! प्राचीन काल में समस्त ऋषियों ने एक समय एकत्र होकर नियम बनाया कि जो कोई ऋषि महामेरुपर स्थित हमारे समाज में सम्मिलित नहीं होगा, वह सात रात्रियों के बाद ब्रह्महत्या के पाप से लिप्त होगा । हे विप्र ! समस्त ऋषियों ने इस

नियम का पालन किया किन्तु एक वैशम्पायन ने ही अतिक्रमण किया । इसके बाद उसका चरणस्पर्श हो जाने से ही उसके भानजे की मृत्यु हो गयी ॥ १-५ ॥

शिष्यानाह स भोः शिष्या ! ब्रह्महत्यापहं व्रतम् ।
चरध्वं मत्कृते सर्वे न विचार्यमिदं तथा ॥ ६ ॥

अथाह याज्ञवल्क्यस्तु किमेभिर्भगवन् ! द्विजैः ।
क्लेशितैरल्पतेजोभिश्चरिष्येऽहमिदं व्रतम् ॥ ७ ॥

ततः क्रुद्धो गुरुः प्राह याज्ञवल्क्यं महामतिः ।
मुच्यतां यत् त्वयाधीत मत्तो विप्रावमानक ॥ ८ ॥

निस्तेजसो वदस्येनान् यस्त्वं ब्राह्मणपुङ्गवान् ।
तेन शिष्येण नार्थोऽस्ति ममाज्ञाभङ्गकारिणा ॥ ९ ॥

याज्ञवल्क्यस्ततः प्राह भक्तयैतत्ते मयोदितम् ॥
ममाप्यलं त्वयाधीतं यन्मया तदिदं द्विज ॥ १० ॥

इत्युक्तो रुधिराक्तानि सरूपाणि यजूंषि सः ।
छर्दयित्वा ददौ तस्मै ययौ स स्वेच्छया मुनिः ॥ ११ ॥

यजूंष्यथ विसृष्टानि याज्ञवल्क्येन वै द्विज !
जगृहुस्तित्तिरा भूत्वा तैत्तिरीयास्तु ते ततः ॥ १२ ॥

अनन्तर उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि हे शिष्यगण ! तुमलोग बिना विचार किये मेरी ब्रह्महत्या को दूर करने वाला व्रत करो । तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि हे भगवन् ! स्वल्प तेजस्वी इन ब्राह्मणों को कष्ट देना व्यर्थ है । मैं स्वयं ही यह व्रत करूँगा । इससे क्रोधित होकर गुरु वैशम्पायनजी ने कहा अरे ब्राह्मणों के अपमान करने वाले तुमने मुझसे जो कुछ अध्ययन किया है उसे त्याग दो । तुम उन समस्त ब्राह्मणश्रेष्ठों को तेज हीन बताते हो, अतएव मेरी आज्ञा को भङ्ग करने वाले तुम्हारे समान शिष्य से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है । तब याज्ञवल्क्य बोला कि हे द्विज ! मैंने तो भक्ति से इस प्रकार का वचन कहा, मुझे भी कोई आवश्यकता नहीं है, मैंने जो अध्ययन किया है वह यह है । श्रीपराशरजी बोले—ऐसा कहकर उन्होंने याज्ञवक्ल्य ने रक्त से युक्त मूर्तिमान् यजुर्वेद को उदिरण (वमन) करके अपनी

इच्छा से दे दिया। याज्ञवल्क्यमुनिद्वारा वमनद्वारा परित्यक्त यजुर्वेद को अन्य शिष्यों ने तित्तिरपक्षी होकर ग्रहण कर लिया, अतएव वे तैत्तिरीय नाम से प्रसिद्ध हुए ॥ ६-१२ ॥

ब्रह्महत्याव्रतं चीर्णं गुरुणा चोदितैस्तु यैः ।
चरकाध्वर्यवस्ते तु चरणान्मुनिसत्तम ॥ १३ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिन शिष्यों ने गुरु से प्रेरित होकर ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिए व्रत का आचरण किया, वे सब व्रताचरण के कारण चरकाध्वर्यु नाम से विख्यात हुए ॥ १३ ॥

याज्ञवल्क्योऽपि मैत्रेय ! प्राणायामपरायणः ।
तुष्टाव प्रयतः सूर्यं यजूंष्यभिलषंस्ततः ॥ १४ ॥

नमः सवित्रे द्वाराय विमुक्तेः सिततेजसे ।
ऋग्यजुःसामभूताय त्रयीधामवते नमः ॥ १५ ॥

नमोऽग्नीषोमभूताय जगतः कारणात्मने ।
भास्कराय परं तेजः सौषुम्नमुरु बिभ्रते ॥ १६ ॥

इसके बाद याज्ञवल्क्य ने भी प्राणायाम में संलग्न होकर नियमपूर्वक यजुर्वेद प्राप्ति की इच्छा से सूर्य भगवान् को प्रसन्न किया। याज्ञवल्क्य बोले—मोक्ष के द्वारस्वरूप अतुलित तेजस्वी सूर्य को नमस्कार है। ऋक्, यजुः साम यह तीनों वेद ही जिनका स्वरूप है ऐसे सविता (सूर्य) को नमस्कार है। जगत् के कारण एवं अग्नि तथा चन्द्रस्वरूप, सुषुम्ननामक परमतेज को धारण करने वाले भगवान् भास्कर को नमस्कार है ॥ १४-१६ ॥

कलाकाष्ठानिमेषादिकालज्ञानात्मने नमः ।
ध्येयाय विष्णुरूपाय परमाक्षाररूपिणे ॥ १७ ॥

बिभर्त्ति यः सुरगणानाप्याय्येन्दुं स्वरश्मिभिः ।
सुधामृतेन च पितृंस्तस्मै तृप्तात्मने नमः ॥ १८ ॥

हिमाम्बुधर्मवृष्टीनां कर्ता हर्ता च यः प्रभुः ।
तस्मै त्रिकालरूपाय नमः सूर्य्याय वेधसे ॥ १९ ॥

योो हन्ति तिमिराण्येको जगतोऽस्य जगत्पतिः ।
सत्त्वधामधरो देवो नमस्तस्मै विवस्वते ॥ २० ॥

सत्कर्मयोग्यो न जनो नैवापः शौचकारणम् ।
यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय वेधसे ॥ २१ ॥

स्पृष्टो यदंशुभिर्लोकः क्रियायोग्योऽभिजायते ॥
पवित्रताकारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः ॥ २२ ॥

नमः सवित्रे सूर्याय भास्कराय विवस्वते ।
आदित्यायादिभूताय देवादीनां नमो नमः ॥ २३ ॥

हिरण्मयं रथं यस्य केतवोऽमृतधायिनः ।
वहन्ति भुवनालोकिचक्षुषं तं नमाम्यहम् ॥ २४ ॥

कला, काष्ठा निमेष आदि कालज्ञान के कारणभूत, ध्यान करने योग्य विष्णुस्वरूप एवं परम अक्षयरूप वाले भगवान् श्रीसूर्य को नमस्कार है । जो अपनी किरणों से चन्द्रमा को पोषण करके देवताओं के अचलस्वधारूपी अमृत से पितरों को तृप्त करते हैं, उन तृप्तिस्वरूप श्रीसूर्य को नमस्कार है । और जो शीत, वर्षा और ग्रीष्म के कारण हैं तथा जो (जगत् के) पोषक हैं, उन त्रिकालस्वरूप विधाता सूर्यदेव को नमस्कार है । जो जगत् के पति इस संसार के अन्धकार को दूर करते हैं, उन सात्त्विकतेज को धारण करने वाले विवस्वान् देव को नमस्कार है । जिनके उदय के बिना मनुष्य सत्कर्म करने योग्य नहीं होता, जल शुद्धि का कारण नहीं हो सकता, उस भास्कर भगवान् को नमस्कार है । जिनके किरणों के द्वारा स्पर्श होने से संसार कर्म करने के योग्य होता है, उस पवित्रता के कारण शुद्धस्वरूप सूर्य भगवान् को नमस्कार है । सविता, सूर्य, भास्कर, विवस्वान् एवं समस्त प्राणियों के आदिभूत आदित्यभगवान् को नमस्कार है । जिनका रथ स्वर्णमय (तेजोमय) है, (प्रज्ञारूप) ध्वजाएँ हैं, (छन्दोमय) अमर अश्वगण वहन करने वाले हैं, उन भुवन को प्रकाशित करने के लिए नेत्रस्वरूप भगवान् भास्कर को नमस्कार है ॥ १७-२४ ॥

इत्येवमादिभिस्तेन स्तूयमानः स्तवै रविः ।
वाजिरूपधरः प्राह व्रियतामिति वाञ्छितम् ॥ २५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार उन याज्ञवल्क्य के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् भास्कर अश्वरूप धारण कर प्रकट हुए तथा 'तुम अपनी अभिलाषा बोलो' इस प्रकार बोले ॥ २५ ॥

याज्ञवल्क्यस्तदा प्राह प्रणिपत्य दिवाकरम् ।
यजूंषि तानि मे देहि यानि सन्ति न मे गुरौ ॥ २६ ॥

एवमुक्तो ददौ तस्मै यजूंषि भगवान् रविः ।
अयातयामसंज्ञानि यानि वेत्ति न तद्गुरुः ॥ २७ ॥

यजूंषि यैरधीतानि तानि विप्रैर्द्विजोत्तम !
वाजिनस्ते समाख्याताः सूर्याश्वः सोऽभवद् यतः ॥ २८ ॥

शाखाभेदास्तु तेषां वै दश पञ्च च वाजिनाम् ।
काण्वाद्यास्तु महाभाग ! याज्ञवल्क्या प्रवर्तिताः ॥ २९ ॥

तब याज्ञवल्क्य ने सूर्य को नमस्कार करके कहा हे भगवन् ! मुझे उन यजुःश्रुतियों को प्रदान करें, जो मेरे गुरु जी के समीप भी न हो । याज्ञवल्क्य द्वारा ऐसा कहे जाने पर सूर्यभगवान् ने अयातयामनामक यजुःश्रुतियों का उपदेश दिया, जिसे गुरु भी नहीं जानते थे । हे द्विजोत्तम ! जिन ब्राह्मणों ने श्रुतियों का अध्ययन किया था, वे वाजी नाम से प्रसिद्ध हुए, क्योंकि भगवान् सूर्य उपदेश के समय वाजी (अश्व) का रूप ग्रहण किया था । हे महाभाग ! उन वाजीश्रुतियों के काण्व आदि पन्द्रह भेद हुए,—ये सभी याज्ञवल्क्य द्वारा प्रवृत्त हुई ॥ २६-२९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में पाँचवाँ अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - छठा अध्याय

(सामवेद की शाखा, अठारह पुराण का कथन)

सामवेदतरोः शाखा व्यासशिष्यः स जैमिनिः ।
क्रमेण येन मैत्रेय ! बिभेद शृणु तन्मम ॥ १ ॥

सुमन्तुस्तस्य पुत्रोऽभूत् सुकर्मास्याप्यभूत् सुतः ।
अधीतवन्तावेकैकां संहितां तौ महामुनी ॥ २ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मैत्रेय ! व्यासजी के शिष्य जैमिनि ने जिस क्रम से सामवेद रूपी वृक्ष की शाखाओं का विभाग किया, वह मुझसे श्रवण करो । जैमिनी का पुत्र सुमन्तु और सुमन्तु का पुत्र सुकर्मा था । महाबुद्धिमान् इन दोनों ने सामवेद की एक एक शाखा का अध्ययन किया ॥ १-२ ॥

साहस्रं संहिताभेदं सुकर्मा तत्सुतस्ततः ।
चकार तञ्च तच्छिष्यौ जगृहाते महामती ॥ ३ ॥

हिरण्यनाभः कौशल्यः पौष्पिञ्जिश्च द्विजोत्तम !
उदीच्यसामगाः शिष्यास्तेभ्यः पञ्चदश स्मृताः ॥ ४ ॥

हिरण्यनाभात् तावत्यः संहिता यैर्द्विजोत्तमैः ।
गृहीतास्तेऽपि चोच्यन्ते पण्डितैः प्राच्यसामगाः ॥ ५ ॥

लोकाक्षिः कुथमिश्चैव कुसीदिर्लाङ्गलिस्तथा ।
पौष्पिञ्जिशिष्यास्तद्भेदैः संहिता बहूलीकृता: ॥ ६ ॥

हिरण्यनाभशिष्यश्च चतुर्विशंतिसंहिताः ।
प्रोवाच कृतिनामासौ शिष्येभ्यः स महामतिः ॥ ७ ॥

इसके बाद सुमन्तुपुत्र सुकर्मा ने सामवेद को एक हजार शाखाओं में विभक्त किया। और उनको कौशल्य, हिरण्यनाभ, पौष्पिञ्जि—इन महाव्रती शिष्यों ने ग्रहण किया। हिरण्यनाभ के उदीच्य सामग नाम से विख्यात पाँच सौ शिष्य थे। और जिन ब्राह्मणों ने इतनी ही संहिताएँ हिरण्यनाभ से पढ़ी, उनको पण्डितजन प्राच्य-सामग कहते हैं। पौष्पिञ्जि के शिष्य लोकाक्षि, नौधमि, कक्षिवान् एवं लाङ्गलि थे। उनके शिष्य प्रशिष्यों ने अपनी संहिताओं को विभक्त करके अनेक भेद किये। हिरण्यनाभ के एक और शिष्य महामुनि कृति ने अपने शिष्यों को सामवेद की चौबीस संहिताओं का अध्ययन कराया॥ ३-७॥

तैश्चापि सामवेदोऽसौ शाखाभिर्बहुलीकृतः।
अथर्वणामथो वक्ष्ये संहितानां समुच्चयम्॥ ८॥

शिष्यमध्यापयामास कबन्धं सोऽपि तं द्विधा।
कृत्वा तु देवदर्शाय तथा पथ्याय दत्तवान्॥ ९॥

और उन लोगों ने भी सामवेद का अनेक शाखाओं में विस्तार किया। अब अथर्ववेद के संहिता समूह को कहते है। अतुलित तेजस्वी सुमन्तु मुनि ने सर्वप्रथम अथर्ववेद को अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाया, फिर कबन्ध ने भी उसे दो भागों में विभक्त करके देवदर्श एवं पथ्य को पढ़ाया॥ ८-९॥

अथर्ववेदं स मुनिः सुमन्तुरमितद्युतिः।
देवदर्शस्य शिष्यास्तु मौदगो ब्रह्मबलिस्तथा।
शौक्तायनिः पिप्पलादस्तथान्यो मुनिसत्तम॥ १०॥

पथ्यस्यापि त्रयः शिष्याः कृता यैर्द्विज! संहिताः।
जाजालिः कुमुदादिश्च तृतीयः शौनको द्विज॥ ११॥

शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु बभ्रवे।
द्वितीयां संहितां प्रादात् सैन्धवायनसंज्ञिने॥ १२॥

सैन्धवा मुञ्जिकेशाश्च द्विधा भिन्नास्त्रिधा पुनः।
नक्षत्रकल्पो वेदानां संहितानां तथैव च॥ १३॥

चतुर्थः स्यादाङ्गिरसः शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ।

श्रेष्ठास्त्वथर्वणामेते संहितानां विकल्पकाः ॥ १४ ॥

देवदर्श के मौद्र ब्रह्मबलि शौल्कायनि और पिप्पलाद नाम के शिष्य थे । हे विप्र ! पथ्य के जाबालि, कुमादादि और शौनक ये तीन शिष्य थे, जिन्होंने संहिताओं को विभक्त किया । शौनक ने अपनी संहिता को दो भाग में विभक्त करके एक बभ्रु को दूसरा सैन्धवनामक अपने शिष्य को दिया । सैन्धव से मुञ्जिकेश ने अध्ययनकर पहले दो और पुनः तीन भागों में विभक्त किया । नक्षत्रकल्प, वेदकल्प, संहिताकल्प अङ्गरसकल्प और शान्तिकल्प इस प्रकार उनके निर्माण किये हुए—ये पाँच भाग अथर्ववेद संहिता के श्रेष्ठ माने गये हैं ॥ १०-१४ ॥

आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पसिद्धिभिः ।

पुराणसंहितां चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥ १५ ॥

बाद में पुराणार्थ विशारद व्यासजी ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा और कल्पशुद्धि के सहित पुराणसंहिता का निर्माण किया ॥ १५ ॥

प्रख्यातो व्यासशिष्योऽभूत् सूतो वै रोमहर्षणः ।

पुराणसंहितां तस्मै ददौ व्यासो महामुनिः ॥ १६ ॥

सुमतिश्चाग्निवर्चाश्च मित्रायुः शांशपायनः ।

अकृतव्रणः सावर्णिः षट् शिष्यास्तस्य चाभवन् ॥ १७ ॥

काश्यपः संहिताकर्ता सावर्णिः शांशपायनः ।

रोमहर्षणिका चान्या तिसृणां मूलसंहिताः ॥ १८ ॥

चतुष्टयेनाप्येतेन संहितानामिदं मुने !

आद्यं सर्वपुराणानां पुराणं ब्राह्ममुच्यते ॥ १९ ॥

सूतजातीय रोमर्षण वेदव्यासजी का प्रसिद्ध शिष्य था । जिसको महामति व्यासजी ने पुराणसंहिता पढ़ायी । सुमति, अग्निवर्चा, मित्रायु, शांसपायन, अकृतव्रण, सावर्णि—ये छः सूत जी के शिष्य थे । कश्यपगोत्रीय अकृतव्रण, सावर्णि और शांसपायन—ये तीनों संहिताकर्ता हुए । इन तीनों संहिताओं की मूल रोम हर्षण

की संहिता है । हे मुने ! इन चारों संहिताओं का सारभूत यह विष्णुपुराण ही कहा जाता है ॥ १६-१९ ॥

अष्टादश पुराणानि पुराणज्ञाः प्रचक्षते ।
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा ॥ २० ॥

अथान्यन्नारदीयञ्च मार्कण्डेयञ्च सप्तमम् ।
आग्नेयमष्टमञ्चैव भविष्यं नवमं तथा ॥ २१ ॥

दशमं ब्रह्मवैवर्तं लैङ्गमेकादशं स्मृतम् ।
वाराहं द्वादशञ्चैव स्कान्दञ्चात्र त्रयोदशम् ॥ २२ ॥

चतुर्दशं वामनञ्च कौर्मं पञ्चदशं स्मृतम् ।
मात्स्यञ्च गारुड़ञ्चैव ब्रह्माण्डश्च ततः परम् ॥ २३ ॥

तथा चोपपुराणानि मुनिभिः कथितानि च ।
महापुराणान्येतानि ह्यष्टादश महामुने ॥ २४ ॥

इस प्रकार पुराण के ज्ञातालोग अठारह पुराण कहते हैं । उनमें पहला ब्रह्मपुराण, दूसरा पद्मपुराण, तीसरा विष्णुपुराण, चौथा शिवपुराण, पाँचवा भागवत पुराण, छठा नारदपुराण और सातवाँ मार्कण्डेय पुराण है । आठवाँ अग्निपुराण, नवाँ भविष्य- पुराण, दसवां ब्रह्मवैवर्त पुराण, ग्यारहवाँ लिङ्गपुराण है । बारहवाँ वराह- पुराण, तेरहवाँ स्कन्दपुराण, चौदहवाँ वामन पुराण, पन्द्रहवाँ कूर्मपुराण, अनन्तर मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड पुराण हैं । हे महामुने ! इस प्रकार ये अठारह महापुराण माने गये हैं ॥ २०-२४ ॥

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
सर्वेष्वेतेषु कथ्यन्ते वंशानुचरितञ्च यत् ॥ २५ ॥

यदेतत् तव मैत्रेय ! पुराणं कथ्यते मया ।
एतद् वैष्णवसंज्ञं वै पाद्मस्य समनन्तरम् ॥ २६ ॥

सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु ।
कथ्यते भगवान् विष्णुरशेषेष्वेव सत्तम ॥ २७ ॥

और इनके अतिरिक्त मुनियों ने अनेक उपपुराण भी बतलाये हैं। इन सभी पुराणों में सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय देवता आदि के वंश, मन्वन्तर एवं अनेक राजाओं के वंश चरित्र का वर्णन किया गया है। हे मैत्रेय ! जो पुराण मैं आपको सुना रहा हूँ, यह विष्णुपुराण पद्म-पुराण के अनन्तर है। हे साधुश्रेष्ठ ! इसमें सर्ग प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर आदि के वर्णन माध्यम सर्वत्र श्रीविष्णुभगवान् का ही वर्णन किया गया है॥ २५-२७ ॥

अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥ २८ ॥

आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ।
अर्थशास्त्र चतुर्थन्तु विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥ २९ ॥

छः अङ्गों के साथ चार वेद, मीमांसा, न्याय, पुराण, धर्मशास्त्र—ये चौदह विद्याएँ हैं। इन चौदहों में आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और चौथा अर्थशास्त्र, इन चारों को सम्मिलित कर देने से अठारह विद्याएँ होती हैं॥ २८-२९ ॥

ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वं तेभ्यो देवर्षयः पुनः ।
राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ॥ ३० ॥

सर्वप्रथम ब्रह्मर्षि, पुनः देवर्षि और राजर्षि इस प्रकार ऋषियों के तीन प्रकार उत्पन्न हुए॥ ३० ॥

इति शाखाः प्रसंख्याताः शाखाभेदास्तथैव च ।
कर्तारश्चैव शाखानां भेदहेतुस्तथोदितः ॥ ३१ ॥

सर्वमन्वन्तरेष्वेव शाखाभेदाः समाः स्मृताः ।
प्राजापत्या श्रुतिनित्या तद्विकल्पास्त्विमे द्विज ॥ ३२ ॥

इस प्रकार वेदों की शाखा, शाखा भेद, शाखाओं के रचयिता और शाखाभेद के कारण भी मैंने तुमसे वर्णन किया। सभी मन्वन्तरों में एक ही समान शाखाभेद होते हैं, प्रजापति ब्रह्माजी से प्रकट होने वाली श्रुतियाँ तो नित्य हैं, ये भेद उनके विकल्पमात्र हैं॥ ३१-३२ ॥

एतत् तवोदितं सर्वं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ।
मैत्रेय ! वेदसम्बद्धं किमन्यत् कथयामि ते ॥ ३३ ॥

हे मैत्रेय ! इस प्रकार वेद के सम्बन्ध में तुमने जो मुझसे प्रश्न किया, उन सबका उत्तर मैंने कह दिया अब और क्या बतलाऊँ ॥ २३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में छठा अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - सातवाँ अध्याय

(यमगीता)

मैत्रेय उवाच।

यथावत् कथित सर्वं यत् पृष्टोऽसि मया द्विज !
श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वेकं तद् भवान् प्रब्रवीतु मे ॥ १ ॥

सप्त द्वीपानि पाताल-वीधयश्च सुमहामुने !
सप्त लोका येऽन्तरस्था ब्रह्माण्डस्यास्य सर्वतः ॥ २ ॥

स्थूलैः सूक्ष्मैस्तथा सूक्ष्मात् सूक्ष्मैः सूक्ष्मतरैस्तथा।
स्थूलैः स्थूलतरैश्चैव सर्वप्राणिभिरावृतम् ॥ ३ ॥

अङ्गुलस्याष्टभागोऽपि न सोऽस्ति मुनिसत्तम !
न सन्ति प्राणिनो यत्र कर्मबन्धनिबन्धनाः ॥ ४ ॥

सर्वे चैते वशं यान्ति यमस्य भगवन् ! किल।
आयुषोऽन्ते तथा यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः ॥ ५ ॥

यातनाभ्यः परिभ्रष्टा देवाद्यास्वथ योनिषु।
जन्तवः परिवर्तन्ते शास्त्राणामेष निर्णयः ॥ ६ ॥

सोऽहमिच्छामि तच्छ्रोतुं यमस्य वशवर्त्तिनः।
न भवन्ति नरा येन तत् कर्म कथयामलम् ॥ ७ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे गुरो ! मैंने जो कुछ आपसे पूछा था, उसे आपने भली भाँति वर्णन किया। किन्तु मैं एक विषय और सुनना चाहता हूँ, वह आप मुझसे कहिये। हे महामुने ! सातों द्वीप, सातों पाताल, सातों लोक—ये सभी जो स्थान

ब्राह्मण के भीतर में हैं, इन सबमें स्थूल, सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्म से भी अतिसूक्ष्म और स्थूल एवं स्थूलतर जीव रहते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! एक अङ्गुल का आठवाँ भागमात्र भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ अपने कर्म के बन्धन में पड़े हुए प्राणी न रहते हों। हे भगवन् ! ये समस्त प्राणी अपनी आयु के अन्त में यमराज के वश में जाते हैं और उनके आदेशानुसार यातना भोगते हैं। और अपने पाप के फलस्वरूप यातना भोगने के बाद जीव, देवता आदि की योनियों में भ्रमण करते हैं यही शास्त्रों का निश्चय है। अत एव आपसे मैं वह कर्म सुनना चाहता हूँ जिसे करने से जीव यम के वशीभूत न हो ॥ १-७ ॥

पराशर उवाच।

अयमेव मुने ! प्रश्नो नकुलेन महात्मना।
पृष्टः पितामहः प्राह भीष्मो यत् तच्छ्रणुष्व मे ॥ ८ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने ! यह प्रश्न महात्मा नकुल ने भीष्मपितामह से पूछा था। और उन्होंने जो कुछ उत्तर दिया वह सुनो ॥ ८ ॥

भीष्म उवाच।

पुरा समागतो वत्स ! सखा कालिङ्गको द्विजः।
स मामुवाच पृष्टो वै मया जातिस्मरो मुनिः ॥ ९ ॥
तेनाख्यातमिदञ्चेदमित्थञ्चैतद् भविष्यति।
तथा च तदभूद् वत्स ! यथोक्तं तेन धीमता ॥ १० ॥
स पृष्टश्च मया भूयः श्रद्दधानवता द्विजः।
यद् यदाह न तद् दृष्टमन्यथा हि मया क्वचित् ॥ ११ ॥

भीष्मजी बोले—हे वत्स ! प्राचीन समय में मेरा एक ब्राह्मण मित्र कलिङ्ग निवासी मेरे समीप आया और मुझसे बोला, मेरे पूछने के बाद जातिस्मर ब्राह्मण ने ये सब बात इस प्रकार भविष्य वर्णन पर कही। और जैसे जैसे उसने कही, थी सभी उसी प्रकार से घटित हुई। उसके प्रति श्रद्धालु होकर मैने उससे पुनः पूछा और जो भी उसने कहा उसके विपरीत मैंने कभी कुछ नहीं देखा ॥ ९-११ ॥

एकदा तु मया पृष्टं यदेतद् भवतोदितम्।
प्राह कालिङ्गको विप्रः स्मृत्वा तस्य मुनेर्वचः ॥ १२ ॥

जातिस्मरेण कथितो रहस्यः परमो मम ।
यम-किङ्करस्योर्योऽभूत् संवादस्तं ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥

जो तुमने पूछा है वह एक दिन मैंने उससे भी उस कलिङ्ग निवासी ब्राह्मण से पूछा, तब उसने मुनि के वचन को स्मरण करके कहा कि जातिस्मर ब्राह्मण ने यम के अनुचरों और यम के बीच में जो संवाद हुआ था, वही गूढ़ रहस्य मुझे भी कहा । वही अब मैं तुमसे कहता हूँ ॥ १२-१३ ॥

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ १४ ॥

कालिङ्ग बोला—पाश हाथ में लिये हुए अपने अनुचर को देखकर यम ने उसके कान में कहा—मधुसूदन भगवान् के शरणागत हुए लोगों को छोड़ देना, क्योंकि मैं विष्णुभक्तों के अतिरिक्त पुरुषों का शासक हूँ वैष्णवों का शासक नहीं हूँ ॥ १४ ॥

अहममरगणार्चितेन धात्रा यम इति लोकहिताहिते नियुक्तः ।
हरिगुरुवशगोऽस्मि न स्वतन्त्रः प्रभवति संयमने ममापि विष्णुः ॥ १५ ॥
कटकमुकुटकर्णिकादिभेदैः कनकमभेदमपीष्यते यथैकम् ।
सुरपशुमनुजादिकल्पनाभिर्हरिरखिलाभिरुदीर्य्यते तथैकः ॥ १६ ॥
क्षितिजलपरमाणवोऽनिलान्ते पुनरपि यान्ति यथैकतां धरित्र्याः
सुरपशुमनुजादयस्तथान्ते गुणकलुषेण सनातनेन तेन ॥ १७ ॥
हरिममरगणार्चिताङ्घ्रिपद्मं प्रणमति यः परमार्थतो हि मर्त्त्यः ।
तमपगतसमस्तपापबन्धं व्रज परिहृत्य यथाग्निमाज्यसिक्तम् ॥ १८ ॥

देवताओं से पूजित ब्रह्माजीद्वारा यम इस नाम से विख्यात मैं लोगों के हित, (पुण्य) अहित (पाप) इनको विचार करने के लिए नियुक्त किया गया हूँ, एवं भगवान् श्रीविष्णु मेरा भी नियन्त्रण करने में समर्थ हैं । भेदरहित एक ही सुवर्ण जिस प्रकार कटक, मुकुट, कर्णिकादि अनेक भेदों से नाना रूपों में देखा जाता है, उसी प्रकार एक ही भगवान्, हरि, देव, पशु, मनुष्य आदि काल्पनिक भेदों से अनेक स्वरूपवाले माने जाते हैं । जिस प्रकार वायु के शान्त होने पर पृथ्वीतल के परमाणु (धूलिकण) पृथ्वी से मिलकर एकरूप हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार गुण के क्षोभ से उत्पन्न देव,

पशु और मानव आदि अन्त में उस सनातन से मिलकर एक हो जाते हैं। (उसी में लीन हो जाते है)। जो मानव श्रेष्ठ देवगण से पूजित चरणकमल वाले भगवान् श्रीहरि को एक बार भी परमार्थ बुद्धि से प्रणाम करता है। घृत की आहुति से प्रज्वलित अग्नि के समान समस्त पाप बन्धनों से मुक्त उस मानव को तुम दूर ही से छोड़कर चल देना ॥ १५-१८ ॥

इति यमवचनं निशम्य पाशी कथय मम विभो ! समस्तधातु

यमपुरुषस्तमुवाच धर्मराजम्। भवति हरेः खलु यादृशोऽस्य भक्तः ।१९ ॥

न चलति निजवर्णधर्मतो यः सममतिरात्मसुहृद्विपक्षपक्षे।

न हरति न च हन्ति किञ्चिदुच्चैः सितमनसं तमवैहि विष्णभक्तम् ॥ २० ॥

कलिकलुषमलेन यस्य नात्मा विमलमतेर्मलिनीकृतोऽस्तमोहे।

मनसि कृतजनार्दनं मनुष्यं सततमवैहि हरेरतीव भक्तम् ॥ २१।

इस प्रकार यम के वचन सुनकर पाश हाथ में लिये हुए यमपुरुष ने धर्मराज से कहा। हे विभो ! सभी के विधाता भगवान् श्रीहरि का भक्त कैसा होता है यह मुझे कहिये। यम बोले—यो पुरुष अपने वर्णधर्म से विचलित नहीं होता, अपने मित्र और शत्रुओं के प्रति समान विचार रखता है, बल से किसी का कुछ हरण नहीं करता और किसी जीव की हत्या नहीं करता, उस निर्मल मानसवाले पुरुष को विष्णुभक्त मानो। निर्मलबुद्धिवाले जिस मानव का मन कलियुक के कलुषरूपी मल से मलिन नहीं हुआ है और जिसके मन में सदा जनार्दन भगवान् श्रीविष्णु निवास करते हैं उस पुरुष को विष्णुभक्त जानो ॥ १९-२१ ॥

कनकमपि रहस्यवेक्ष्य बुद्ध्या तृणमिव यः समवैति वै परस्वम्।

भवति च भगवत्यनन्यचेताः पुरुषवरं तमवेहि विष्णुभक्तम् ॥ २२ ॥

स्फटिकगिरिशिलामलः क्व विष्णुर्मनसि नृणां क्व च मत्सरादिदोषः।

न हि तुहिनमयूखरश्मिपुञ्ज भवति हुताशनदीप्तिजः प्रतापः ॥ २३ ॥

विमलमतिविमत्सरः प्रशान्तः शुचिचरितोऽखिलसत्त्वमित्रभूतः।

प्रियहितवचनोऽस्तमानमायो वसति सदा हृदि तस्य वासुदेवः ॥ २४ ॥

वसति हृदि सनातने च तस्मिन् भवति पुमान् जगतोऽस्य सौम्यरूपः।

क्षितिरसमतिरम्यमात्मनोऽन्तः कथयति चारुतयैव शालपोतः ॥ २५ ॥

यमनियमविधूतकल्मषाणा मनुदिनमच्युतसक्तमानसानाम् ।

अपगतमद-मान-मत्सराणां त्यज भट ! दूरतरेण मानवानाम् ॥ २६ ॥

हृदि यदि भगवाननादिरास्ते हरिरसिशङ्खगदाधरोऽव्ययात्मा ।

तदघमघविघातकर्तृभिन्नं भवति कथं सति चान्धकारमर्के ॥ २७ ॥

एकान्त में पड़े हुए दूसरे के सोने को भी अपनी बुद्धि से जो तृण के समान मानता है, और जो भगवान् के अतिरिक्त और कहीं भी अपना मन नहीं लगाता, उस श्रेष्ठपुरुष को विष्णुभक्त जानो । कहाँ स्फटिकगिरि के समान निर्मल श्रीविष्णु भगवान्, कहाँ मनुष्यों के मन में रहने वाले मत्सर आदि दोष (इन दोनों का संयोग कदापि नहीं हो सकता) चन्द्रमा के किरण—पुञ्ज में अग्नितेज की ग्रीष्मता कदापि नहीं रहती । जो पुरुष निर्मलचित्त, ईर्ष्यारहित, शान्त, शुद्धचरित्र, सभी के लिए मित्र स्वरूप, प्रिय एवं हित वचन बोलने वाला और अभिमान तथा माया से विहीन है, उसके हृदय में सदा वासुदेव भगवान् निवास करते हैं । और भक्तपुरुष के हृदय में सनातन भगवान् का निवास होने पर पुरुष इस जगत् के लिये शान्तमूर्ति बन जाता है, जैसे नवीन शालवृक्ष अपनी सुन्दरता ही से अपने भीतर के पार्थिव रस को सूचित करता है । हे दूत ! यमनियमद्वारा जिनका पाप नष्ट हो गया है, जिनका मन प्रतिदिन अच्युत भगवान् में आसक्त है तथा जिनका मद और मात्सर्य समाप्त हो गया है ऐसे मानवों को दूर से ही त्याग हो । खड़ग, शंङ्ख और गदा धारण किये हुए अविनाशी भगवान् यदि हृदय में विराजमान है तो उसका हृदय पाप राशि से रहित हो जाता है, सूर्य के प्रकाशित होने पर अन्धकार कभी नहीं रह सकता है ॥ २२-२७ ॥

हरति परधनं निहन्ति जन्तून वदति तथानृतनिष्ठुराणि यश्च ।

अशुभजनितदुर्मदस्य पुंसः कलुषमतेर्हृदि तस्य नास्त्यनन्तः ॥ २८ ॥

न सहति परसम्पदं विनिन्दां कलुषमतिः कुरुते सतामसाधुः ।

न यजति न ददाति यश्च सन्तं मनसि न तस्य जनार्दनोऽधर्मस्य ॥ २९ ॥

परमसुहृदि बान्धवे कलत्रे सुततनयापितृमातृभृत्यवर्गे ।

शठमतिरुपयाति योऽर्थतृष्णां तमधमचेष्टमवैहि नास्य भक्तम् ॥ ३० ॥

अशुभमतिरसत्प्रवृत्तिसक्तः सततमनार्य्यविशालसङ्गमत्तः ।

अनुदिनकृतपापबन्धयत्नः पुरुषपशुर्नहि वासुदेवभक्तः ॥ ३१ ॥

सकलमिदमहञ्च वासुदेवः परमपुमान् परमेश्वरः स एकः ।

इति मतिरचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रज तान् विहाय दूरात् ॥ ३२ ॥

कमलनयन वासुदेव विष्णो धरणिधराच्युत शङ्खचक्रपाणे !

भव शरणमितीरयन्ति ये वै त्यज भट दूरतरेण तानपापान् ॥ ३३ ॥

वसति मनसि यस्य सोऽव्ययात्मा पुरुषवरस्य न तस्य दृष्टिपाते ।

तव गतिरथवा ममास्ति चक्र प्रतिहतवीर्य्यबलस्य सोऽन्यलोक्यः ॥ ३४ ॥

जो मनुष्य दूसरों का धन हरण करता है, जो असत्य एवं कटु भाषण करता है, उस अशुभ कर्मसम्पन्न दुर्मति के हृदय में अनन्त भगवान् कभी नहीं रहते । जो पुरुष दूसरों की सम्पत्तिको सहन नहीं करता, तथा सदा दूसरों की निन्दा करता है, कुबुद्धि जो साधुजनों का अपकार करता है । और सम्पन्न होकर भी कभी भगवान् की पूजा नहीं करता अथवा भक्तों को कुछ दान नहीं देता, उस अधम पुरुष के हृदय में कभी जनार्दन भगवान् निवास नहीं करते । जो दुष्टमति परम सुहृद, बन्धुबान्धव, स्त्री, पुत्र, कन्या, पिता, माता तथा दासवर्ग के प्रति अर्थलोलुपता प्रकट करता है, उस नीच मनुष्य को भगवान् का भक्त मत समझो । असद्विचारवाला जो सदा असत्कर्मों में लगा रहता है और निरन्तर अनार्यजनों के संगत, अनाचार में उन्मत्त रहता है, प्रतिदिन अपने किये हुए पापबन्धन से ही बाँधा रहता है, वह पुरुष के रूप में पशु है, किन्तु वासुदेव का भक्त नहीं । हे कमलनेत्र ! हे वासुदेव ! हे विष्णो ! हे धरणीधर ! हे अच्युत ! हे शंखचक्रपाणे ! आप मेरा शरण है, इस प्रकार जो सदा उच्चारण करते है, उन निष्पापों को दूर से ही परित्याग दो । जिस पुरुषश्रेष्ठ के मन में वे अव्ययात्मा भगवान् सदा निवास करते हैं, उस पुरुष की जहाँ तक दृष्टि पड़ती है, चक्र के प्रभाव से बलवीर्य समाप्त हो जाने के कारण मेरी अथवा तेरी भी वहाँ तक गति नहीं हो सकती वह पुरुष वैकुण्ठ आदि लोकों में जाने योग्य है ॥ २८-३४ ॥

इति निजभटशासनाय देवो रवितनयः स किलाह धर्मराजः ।

मम कथितमिदञ्च तेन तुभ्यं कुरुवर ! सम्यगिदं मयापि चोक्तम् ॥ ३५ ॥

नकुलैतन्ममाख्यातं पूर्वं तेन द्विजन्मना ।

कलिङ्गदेशादभ्येत्य प्रीयता सुमहात्मना ॥ ३६ ॥

मयाप्येतद् यथान्यायं सम्यग् वत्स ! तवोदितम् ।
यथा विष्णुमृते नान्यत् त्राणं संसारसागरे ॥ ३७ ॥

किङ्करा पाशदण्डाश्च न यमो न च यातनाः ।
समर्थास्तस्य यस्यात्मा केशवालम्बनः सदा ॥ ३८ ॥

कलिङ्ग बोला—हे कुरुवंशियों में श्रेष्ठ ! इस प्रकार सूर्य पुत्र धर्मराज ने अपने दूत को शासन के लिये कहा, और उस जातिस्मर मुनि ने मुझसे कहा, तथा मैंने आपको सुनाया । श्रीभीष्मजी बोले—हे नकुल ! प्राचीनकाल में कलिङ्ग देश से आकर उस महात्मा ब्राह्मण ने प्रसन्नतापूर्वक मुझ से कहा था । और हे वत्स ! वही समस्त वृतान्त, संसार—सागर में भगवान् विष्णु के अतिरिक्त कोई भी रक्षक नहीं है, मैंने यह भलीभाँति तुमसे कह दिया । जिसका मन सदा केशव भगवान् में लगा रहता है, उसके ऊपर यमदूत, यमपाश, यम अथवा यमयातना कोई भी समर्थ नहीं हो सकता ॥ ३५-३८ ॥

पराशर उवाच ।

एतन्मुने तवाख्यातं गीतं वैवस्वतेन यत् ।
तत्प्रश्नानुगतं सम्यक् किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३९ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने ! तुम्हारे प्रश्न के अनुसार यम ने जो कहा था वह सब मैंने सुना दिया । अब क्या सुनना चाहते हो ? ॥ ३९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में सातवाँ अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - आठवाँ अध्याय

(चातुर्वर्ण्यधर्म का कथन)

मैत्रेय उवाच ।

भगवन् भगवान् देवः संसारविजिगीषुभिः ।
मामाख्याहि जगन्नाथो विष्णुराराध्यते यथा. । १ ॥

आराधिताच्च गोविन्दादाराधनपरैर्नरैः ।
यत् प्राप्यते फलं श्रोतुं तवेच्छामि महामुने ॥ २ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—हे भगवन् ! संसार को जीतने की इच्छा वाले पुरुष जिस प्रकार जगन्नाथ भगवान् श्रीविष्णु की आराधना करते हैं, वह मुझे कहिये । और हे महामुने ! आराधना में तत्पर पुरुषों द्वारा आराधित गोविन्द भगवान् से जो फल प्राप्त किया जाता है, वह भी मैं सुनना चाहता हूँ ॥ १-२ ॥

पराशर उवाच ।

यत् पृच्छति भवानेतत् सगरेण महात्मना !
और्वः प्राह यथा पृष्ठस्तन्मे कथयतः श्रृणु ॥ ३ ॥

श्रीपराशरजी बोले—हे मुने ! तुम जो पूछते हो वह एक समय महात्मा सगर ने और्व से पूछा था और और्व ने सगर से जो कहा था वह मैं तुमको कहता हूँ, सुनो ॥ ३ ॥

सगरः प्रणिपत्येदमौर्वं पप्रच्छ भार्गवम् ।
विष्णोराराधनोपायसम्बन्धं मुनिसत्तम ॥ ४ ॥

फलञ्चाराधिते विष्णौ यत् पुंसामभिजायते ।
स चाह पृष्टो यत्तेन तन्मैत्रैयाखिलं श्रृणु ॥ ५ ॥

भौमान् मनोरथान् स्वर्गान् स्वर्गिबन्धं तथास्पदम् ।
प्राप्नोत्याराधिते विष्णौ निर्वाणमपि चोत्तमम् ॥ ६ ॥

यद् यदिच्छति यावच्च फलमाराधितेऽच्युते ।
तत् तदाप्नोति राजेन्द्र ! भूरि स्वल्पमथापि वा ॥ ७ ॥

यत्तु पृच्छसि भूपाल ! कथमाराध्यते हि सः ।
तदहं सकलं तुभ्यं कथयामि निबोध मे ॥ ८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! सगर ने प्रणाम करके भृगुवंशी और्व से श्रीविष्णु भगवान् की आराधना के उपाय और श्रीविष्णु की आराधना करने पर पुरुषों को जो फल प्राप्त होता है वह भी पूछा था । उनके पूछे जाने पर और्व ने यत्नपूर्वक जो कहा था वह समस्त मुझसे सुनो । और्व बोले—श्रीविष्णुभगवान् की आराधना करने पर मनुष्य, पृथ्वीसम्बन्धी समस्त मनोरथ, स्वर्ग, स्वर्गवासियों से वन्दनीय श्रेष्ठ स्थान तथा सर्वोत्तम निर्वाणपद भी प्राप्त करता है । हे राजेन्द्र ! विष्णु की आराधना करने वाला जिस जिस फल की जितनी जितनी इच्छा करता है, वह थोड़ा हो अथवा ज्यादा हो श्रीअच्युतभगवान् की आराधना करने पर अवश्य प्राप्त करता है । हे भूपाल ! भगवान् हरि की आराधना किस प्रकार की जाय, यह जो तुमने पूछा वह सब मैं तुमसे कहता हूँ, श्रवण करो ॥ ४-८ ॥

वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् ।
विष्णुराराध्यते पन्था नान्यत् तत्तोषकारणम् ॥ ९ ॥

यजन् यज्ञान् यजत्येनं जपत्येनं जपन् नृप !
घ्नस्तथान्यां हिनस्त्येनं सर्वभूतो यतो हरिः ॥ १० ॥

तस्मात् सदाचारवता पुरुषेण जनार्दनः ।
आराध्यते-स्ववर्णोक्त-धर्मानुष्ठानकारिणा ॥ ११ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च धरणीपते !
स्वधर्मतत्परो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥ १२ ॥

परापवादं पैशुन्यमनृतञ्च न भाषते ।
अन्योद्वगकरञ्चापि तोष्यते तेन केशवः ॥ १३ ॥

परपत्नी-परद्रव्य-परहिंसासु यो मतिम् ।
न करोति पुमान् भूप ! तोष्यते तेन केशवः ॥ १४ ॥

न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः ।
यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र ! तोष्यते तेन केशवः ॥ १५ ॥

देव-द्विज-गुरूणां यः शुश्रूषासु सदोद्यतः ।
तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण नरेश्वर ॥ १६ ॥

यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा ।
हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम् ॥ १७ ॥

यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप ! मानसम् ।
विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा ॥ १८ ॥

वर्णाश्रमेषु ये धर्माः शास्त्रोक्ता नृपसत्तम !
तेषु तिष्ठन् नरो विष्णुमाराधयति नान्यथा ॥ १९ ॥

वर्ण एवं आश्रमधर्म का पालन करने वाले पुरुष द्वार ही परम-पुरुष भगवान् विष्णु की आराधना की जाती है, उनको सन्तुष्ट करने का और दूसरा कोई मार्ग नहीं है । हे नृप ! यज्ञों का यजन करने वाला पुरुष उन श्रीविष्णुभगवान् ही का यजन करता है, जप करने वाला पुरुष उनका ही जप करता है तथा दूसरों की हिंसा करनेवाला उनकी ही हिंसा भी करता है, क्योंकि भगवान् श्रीहरि सर्वभूतमय हैं । अत एव अपने वर्ण धर्म के अनुसार अनुष्ठान करनेवाला सदाचारी पुरुष सदा जनार्दन भगवान् की आराधना करता है । हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने अपने वर्ण-धर्म और आश्रमधर्मपालने में तत्पर रहते हुए श्रीविष्णुभगवान् की ही आराधना करते हैं । जो मनुष्य दूसरों की निन्दा नहीं करता, चुगली अथवा असत्यभाषण भी नहीं करता और दूसरों को कष्ट पहुंचाने वाला वचन भी नहीं बोलता वही श्रीविष्णुभगवान् को सन्तुष्ट कर सकता है । हे भूप ! जो पुरुष दूसरों की स्त्री, द्रव्य एवं हिंसा में प्रेम नहीं करता वही भगवान् श्रीकेशव को प्रसन्न कर सकता है । हे नरेन्द्र ! जो पुरुष किसी प्राणी को अथवा अन्य देहधारियों को पीड़ित नहीं करता अथवा हिंसा नहीं करता वह भगवान् श्रीकेशव को सन्तुष्ट कर सकता है । हे नरेश्वर ! जो मानव देवता, ब्राह्मण और गुरु की सेवा में सदा तत्पर

रहता है वही भगवान् गोविन्द को सन्तुष्ट कर सकता है । और जो मनुष्य स्वयं अपने एवं अपने पुत्रों के समान समस्त प्राणियों की भलाई की कामना करता है वह सुख-पूर्वक भगवान् श्रीहरि को सन्तुष्ट करता है । हे नृप ! जिसका मन रागादि दोषों से दूषित नहीं हुआ है वह विशुद्धमनवाला पुरुष सदा श्रीविष्णुभगवान् को प्रसन्न कर सकता है । हे राजश्रेष्ठ ! वर्ण एवं आश्रम के लिये शास्त्रों में जो धर्म कहे गये हैं उन धर्मों का आचरण करने वाला पुरुष ही श्रीविष्णुभगवान् की आराधना कर सकता है और किसी-प्रकार आराधना नहीं कर सकता ॥ ९-१९ ॥

तदहं श्रोतुमिच्छामि वर्णधर्मानशेषतः ।
तथैवाश्रमधर्मांश्च द्विजवर्य ! ब्रवीहि तान् ॥ २० ॥

ब्राह्मण-क्षत्रिय-विशां शूद्राणाञ्च यथाक्रमम् ।
त्वमेकाग्रमना भूत्वा शृणु धर्मान् मयोदितान् ॥ २१ ॥

दानं दद्याद् यजेद् देवान् यज्ञैः स्वाध्यायतत्परः ।
नित्योदकी भवेद् विप्रः कुर्याच्चाग्निपरिग्रहम् ॥ २२ ॥

वृत्त्यर्थं याजयेच्चान्यानन्यानध्यापयेत् तथा ।
कुर्यात् प्रतिग्रहादानं गुर्वर्थं न्यायतो द्विजः ॥ २३ ॥

सर्वभूतहितं कुर्यान्नाहितं कस्यचिद् द्विजः ।
मैत्री समस्तभूतेषु ब्राह्मणस्योत्तमं धनम् ॥ २४ ॥

सगर बोले—-हे द्विजश्रेष्ठ ! अधुना मैं समस्त वर्णधर्म एवं आश्रमधर्म का श्रवण करना चाहता हूँ, आप उनका वर्णन कीजिये । और्व बोले—मैं क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के धर्म का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो । ब्राह्मण दान दे, यज्ञ के द्वारा देवताओं का यजन करे, अपने स्वाध्याय में संलग्न रहे, नित्य स्नान एवं तर्पण करे और अग्न्याधान आदि कर्म भी करता रहे । और ब्राह्मण अपनी जीविका के लिए दूसरों के द्वारा यज्ञ कराये, एवं अन्यलोगों को अध्ययन कराये तथा न्यायपूर्वक उपार्जन किये हुए शुद्ध धन में से दान भी ग्रहण करे । ब्राह्मण सबकी भलाई करे, कभी किसी का अहित न करे और समस्त प्राणियों से मैत्री करना ब्राह्मण के लिए उत्तम धन है ॥ २०-२४ ॥

ग्रावे रत्ने च पारक्ये समबुद्धिर्भवेद् द्विजः।
ऋतावभिगमः पत्न्यां शस्यते चास्य पार्थिव ॥ २५ ॥

ब्राह्मण पत्थर तथा दूसरों के रत्न में समान बुद्धि रखे और हे राजन् ! पत्नी के विषय में ब्राह्मण के लिये ऋतुकाल में गमन करना ही श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

दानानि दद्यादिच्छातो द्विजेभ्यः क्षत्रियोऽपि हि।
यजेञ्च विविधैर्यज्ञैरधीयीत च पार्थिव ॥ २६ ॥

शस्त्राजीवो महीरक्षा प्रवरा तस्य जीविका।
तस्यापि प्रथमे कल्पे पृथिवीपरिपालनम् ॥ २७ ॥

धरित्रीपालनेनैव कृतकृत्या नराधिपाः।
भवन्ति नृपतेरंशा यतो यज्ञादिकर्मणाम् ॥ २८ ॥

दुष्टानां त्रासनाद् राजा शिष्टानां परिपालनात्।
प्राप्नोत्यभिमताँल्लोकान् वर्णसंस्थाकरो नृपः ॥ २९ ॥

क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि ब्राह्मणों को यथेच्छ दान दे, विविध यज्ञों का अनुष्ठान करे तथा अध्ययन करे। शस्त्र धारण करना, पृथ्वी की रक्षा करना यही क्षत्रियों की उत्तम जीविका है, उनमें भी पृथ्वी का पालन करना उनकी उत्कृष्ट जीविका मानी गयी है। राजालोग पृथिवीपालन से ही कृतकृत्य होते हैं, क्योंकि भूतलपर होने वाले यज्ञादि कर्मों में राजा का भी भाग होता है। और जो राजा वर्णानुकूल धर्म को स्थिर रखता है वह दुष्टों का दमन और साधुओं के रक्षण से अपने इच्छित लोकों को प्राप्त करता है ॥ २६-२९ ॥

पाशुपाल्यञ्च वाणिज्यं कृषिञ्च मनुजेश्वर !
वैश्याय जीविकां ब्रह्मा ददौ लोकपितामहः ॥ ३० ॥

तस्याप्यध्ययनं यज्ञो दानं धर्मश्च शस्यते।
नित्यनैमित्तिकादीनामनुष्ठानञ्च कर्मणाम् ॥ ३१ ॥

हे मानवेश्वर ! श्रीब्रह्मा जी ने पशुपालन, व्यापार एवं कृषि—ये जीविका वैश्यों को प्रदान की हैं। अध्ययन, यज्ञ, दान एवं नित्य—नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान भी वैश्यों का धर्म कहा गया है ॥ ३०-३१ ॥

द्विजातिसंश्रयं कर्म तादर्थ्यं तेन पोषणम्।
क्रयविक्रयजैर्वापि धनैः कारूद्भवेन वा॥ ३२॥

द्विजातियों के प्रयोजनसिद्धि के लिए कर्म करना शूद्र का कर्तव्य हैं एवं उसी से अपना पालनपोषण, करे, यदि इस प्रकार जीविका निर्वाह न हो सके तब) वस्तुओं के क्रय विक्रय एवं कारीगरी से भी अपनी जीविका चलाये ॥ ३२ ॥

शूद्रस्य सन्नतिः शौचं सेवा स्वामिन्यमायया।
अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्सङ्गो विप्ररक्षणम्॥ ३३॥

दानञ्च दद्याच्छूद्रोऽपि पाकयज्ञैर्यजेत च।
पित्र्यादिकञ्च तत्सर्वं शूद्रः कुर्वीत तेन वै॥ ३४॥

भृत्यादिभरणार्थाय सर्वेषाञ्च परिग्रहः।
ऋतुकालेऽभिगमनं स्वदारेषु महीपते॥ ३५॥

पूर्ण नम्रता, पवित्रता, निष्कपटभाव से स्वामी की सेवा, मन्त्रहीन यज्ञ करना, सत्संग और ब्राह्मणों का रक्षण—ये शूद्रों का कर्म है । और शूद्र भी दान दे, पाकयज्ञ बलिवैश्वदेव आदि यज्ञों का अनुष्ठान करे एवं पितृश्राद्ध आदि कर्म करे । हे राजन् ! भृत्य एवं अपने आश्रित परिवारों की रक्षा के लिये सभी वर्णों से द्रव्य ग्रहण करे, अपनी स्त्री के साथ ऋतुकाल में गमन करे ॥ ३३-३५ ॥

दया समस्तभूतेषु तितिक्षानभिमानिता।
सत्यं शौचमनायासो मङ्गल्यं प्रियवादिता॥ ३६॥

मैत्रस्पृहा तथा तद्वदकार्पण्यं नरेश्वर!
अनसूया च सामान्या वर्णानां कथिता गुणाः॥ ३७॥

हे नरेश्वर ! सभी प्राणियों पर दया, सहनशीलता, अमानिता, सत्यवचन, अधिक परिश्रम न करना, माङ्गलिक आचरण करना, प्रियवादन, मैत्री, निष्कामभावना, कृपणता न करना, किसी के केवल दोष ही न देखना, ये सभी वर्णो के लिये साधारण गुण अर्थात् धर्म कहे गये हैं ॥ ३६-३७ ॥

आश्रमाणाञ्च सर्वेषामेते सामान्यलक्षणाः।
गुणांस्तथापद्धर्माश्च विप्रादीनामिमाञ्छृणु॥ ३८॥

क्षात्रं कर्म द्विजस्योक्तं वैश्यं कर्म तथापदि ।
राजन्यस्य च वैश्योक्तं शूद्रकर्म न वै तयोः ॥ ३९ ॥

सामर्थ्ये सति तत्त्याज्यमुभाभ्यामपि पार्थिव !
तदेवापदि कर्तव्यं न कुर्यात् कर्मसङ्करम् ॥ ४० ॥

इत्येते कथिता राजन् वर्णधर्मा मया तव ।
धर्ममाश्रमिणां सम्यग् सम्यग्ब्रुवतो मे निशामय ॥ ४१ ॥

और सभी वर्णों के भी साधारणतया लक्षण यही है । ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के गुण एवं आपद्धर्म सुनो । आपत्ति के समय ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य के कर्म का भी अवलम्बन करे तो कोई दोष नहीं, इसी प्रकार क्षत्रिय को वैश्यवृत्तिका आश्रय लेने में दोष नहीं है किन्तु इन दोनों ब्राह्मण, क्षत्रिय शूद्र का कर्म सेवावृत्ति कदापि न करे । हे राजन् ! पुनः सामर्थ्य हो जाने पर ब्राह्मण, क्षत्रिय उन वृत्तियों का परित्याग कर दे, क्योंकि वे केवल आपत्काल के ही कर्म बताये गये हैं, कर्मों का साङ्कर्य कदापि न करें । हे राजन् ! इस प्रकार ये सभी वर्ण धर्म मैंने आपसे बतलाये, अब आश्रमधर्म भी मेरे से सुनो ॥ ३९-४१ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में आठवाँ अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - नवाँ अध्याय

(आश्रमधर्म का वर्णन)

और्व उवाच ।

बालः कृतोपनयनो वेदाहरणतत्परः ।
गुरुगेहे वसेद् भूप ब्रह्मचारी समाहितः ॥ १ ॥

शौचाचारवता तत्र कार्यं शुश्रूषणं गुरोः ।
व्रतानि चरता ग्राह्यो वेदश्च कृतबुद्धिना ॥ २ ॥

उभे सन्ध्ये रविं भूप ! तथैवाग्निं समाहितः ।
उपतिष्ठेत्तदा कुर्याद् गुरोरप्यभिवादनम् ॥ ३ ॥

स्थिते तिष्ठेद् व्रजेद् याते नीचैरासीत् तथासति ।
शिष्यो गुरौ नृपश्रेष्ठ ! प्रतिकूलं न सम्भजेत् ॥ ४ ॥

तेनैवोक्तः पठेद् वेदं नान्यचित्तः पुरः स्थितः ।
अनुज्ञातश्च भिक्षान्नमश्नीयाद् गुरुणा ततः ॥ ५ ॥

अवगाहेदपः पूर्वमाचार्येणावगाहिताः ।
समिज्जलादिकञ्चास्य कल्यं कल्यमुपानयेत् ॥ ६ ॥

और्व बोले— हे भूप ! बालक को चाहिये यज्ञोपवीत संस्कार होने के बाद वेद के अध्ययन में तत्पर होकर सावधानी से ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ गुरुगृह में निवास करे । वहाँ शौच एवं आचार व्रत को करते हुए गुरु की सेवा करे और व्रतों के आचरणपूर्वक स्थिरबुद्धि से वेद का पठन करे । प्रातः तथा सायं दोनों सन्ध्याओं में सूर्य और अग्नि की उपासना करके गुरु को नमस्कार करे । गुरु के खड़े होने पर खड़ा हो जाय, चलने पर चले और बैठ जाने पर नीचे बैठ जाय । हे

नृपश्रेष्ठ ! शिष्य कदापि गुरु के प्रतिकूल कार्य न करे। गुरु के कहने पर उनके सामने स्थित होकर एकाग्रचित्त से वेद का अध्ययन करे तथा गुरु की आज्ञा होने पर भिक्षा के अन्न का भोजन करे। आचार्य के स्नान करने के बाद शिष्य स्नान करे। प्रतिदिन प्रातःकाल समिधा, जल आदि गुरु के लिये ले ज्ञाये ॥ १-६ ॥

गृहीतग्राह्यवेदश्च ततोऽनुज्ञामवाप्य च।
गार्हस्थ्यमावसेत्प्राज्ञो निष्पन्नगुरुनिष्कृतिः ॥ ७ ॥

इस प्रकार अपने मनोनुकूल वेद का अध्ययन करने के बाद बुद्धिमान् शिष्य गुरु को दक्षिणा देकर उनकी आज्ञा से गार्हस्थ्य आश्रम में प्रवेश करे ॥ ७ ॥

विधिनावाप्तदारस्तु धनं प्राप्य स्वकर्मणा।
गृहस्थकार्यमखिलं कुर्याद् भूपाल ! शक्तितः ॥ ८ ॥

निवापेन पितृनर्चेद् यज्ञैर्देवांस्तथातिथीन्।
अन्नैर्मुनीश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥ ९ ॥

बलिकर्मणा भूतानि वाक्सत्येनाखिलं जगत्।
प्राप्नोति लोकान् पुरुषो निजकर्मसमर्जितान् ॥ १० ॥

भिक्षाभुजश्च ये केचित् परिव्राड्ब्रह्मचारिणः।
तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठन्ते गार्हस्थ्यं तेन वै परम् ॥ ११ ॥

वेदाहरणकार्याय तीर्थस्नानाय च प्रभो !
अटन्ति वसुधां विप्राः पृथिवीदर्शनाय च ॥ १२ ॥

अनिकेता ह्यनाहारा यत्रसायंगृहाश्च ये।
तेषां गृहस्थः सर्वेषां प्रतिष्ठा योनिरेव च ॥ १३ ॥

तेषां स्वागतदानादि वक्तव्यं मधुरं नृप !
गृहागतानां दद्याच्च शयनासनभोजनम् ॥ १४ ॥

हे भूपाल ! विधिपूर्वक विवाह करके अपनी जाति के अनुकूल कर्म से धन प्राप्त करता हुआ अपनी शक्ति के अनुसार गृहस्थ का समस्त कार्य करे। और पिण्डदान से पितरों की, यज्ञों से देवताओं की अन्नदान से अतिथियों की, अध्ययन

से ऋषियों की, पुत्रोत्पादन द्वारा प्रजापति की, बलियों से (अन्नभाग से) भूतों की और वात्सल्यभाव से समस्त जगत् की पूजा करता हुआ मानव अपने कर्मों द्वारा उपार्जित उत्तमोत्तम लोक को प्राप्त करता है। जो कोई परिव्राजक और ब्रह्मचारी आदि भिक्षा से ही भोजन करने वाले हैं उन सभी का आश्रय गृहस्थ ही होता है, अतएव गृहस्थाश्रम सर्वश्रेष्ठ है। हे प्रभो! ब्राह्मणलोग वेदका अध्ययन, तीर्थस्नान एवं भूमिस्थ देशों के दर्शन के लिये पृथिवीपर भ्रमण करते हैं। जिनका कोई घर नहीं है, जिनका भोजन का प्रबन्ध नहीं है, जहाँ सायंकाल होता है, वहीं ठहर जाते हैं उन सबों की स्थिति एवं मूल गृहस्थ ही है। हे नृप! इस प्रकार विप्रादि के घर आने पर उनका स्वागत करे एवं मधुर वचन बोले और घर में आये हुए व्यक्ति के भोजन, आसन एवं शयन आदि का प्रबन्ध करे ॥ ८-१४ ॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्तते।
स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ॥ १५ ॥

अवज्ञानमहङ्कारो दम्भश्चैव गृहे सतः।
परितापोपघातौ च पारुष्यञ्च न शस्यते ॥ १६ ॥

यस्तु सम्यक् करोत्येवं गृहस्थः परमं विधिम्।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो लोकानाप्नोत्यनुत्तमान् ॥ १७ ॥

वयः परिणतौ राजन्! कृतकृत्यो गृहाश्रमी।
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा १८ ॥

पर्ण-मूल-फलाहारः केशश्मश्रुजटाधरः।
भूमिशायी भवेत्तत्र मुनिः सर्वातिथिर्नृप ॥ १९ ॥

चर्मकाशकुशैः कुर्यात् परिधानोत्तरीयके।
तद्वत् त्रिसवनं स्नानं शस्तमस्य नरेश्वर ॥ २० ॥

देवताभ्यर्चनं होमः सर्वाभ्यागतपूजनम्।
भिक्षा बलिप्रदानञ्च शस्तमस्य नरेश्वर ॥ २१ ॥

वन्यस्नेहेन गात्राणामभ्यङ्गश्चास्य शस्यते।
तपश्च तस्य राजेन्द्र! शीतोष्णादिसहिष्णुता ॥ २२ ॥

जिसके घर से निराश होकर अतिथि लौट जाता है, वह अतिथि उसका गृहस्थ को अपना सभी दुष्कर्म देकर और उनके पुण्य को लेकर चला जाता है। गृहस्थाश्रम में रहने वालों के लिये अतिथिका अपमान, अहंकार, दम्भ, परिताप, आघात (प्रहार), कटुवचन बोलना—ये सब उचित नहीं हैं। जो गृहस्थ इस प्रकार से अपने प्रधान विधि का पालन करता है वह सभी बन्धनों से मुक्त होकर उत्तम लोकों को प्राप्त करता है। हे राजन् ! इस रीति से गृहस्थोचित कर्म को करता हुआ कृतकृत्य गृहस्थाश्रमी अवस्था व्यतीत हो जाने पर अपनी भार्या को पुत्रों के प्रति सौंप कर अथवा साथ में ही लेकर वन में प्रवेश करे। वन में पत्र, मूल, फलका भोजन करता हुआ केश, दाढ़ी जटा धारण कर पृथिवी पर शयन करे तथा मुनिवृत्तिवाला वह सभी अतिथियों का सेवन करे। चर्म, कुशा और काशों से अपना बिछौना एवं उत्तरीय (ओढ़ने का वस्त्र) बनाये और हे नरेश्वर ! उसको तीनों काल स्नान करना चाहिये। और देवताओं की पूजा, हवन और सम्पूर्ण अतिथियों का सत्कार, भिक्षा तथा बलिवैश्वदेव भी उसके लिये उचित कर्म है। हे महाराज ! वन्य वस्तुओं के तेल को अपने शरीर में लगावे और शीत, उष्णता आदि के सहते हुए तप करना ही उसका प्रधान कर्म है ॥ १५-२२ ॥

यस्त्वेतां निहितश्चर्यां वानप्रस्थश्चरेन्मुनिः ।
स दहत्यग्निवद्दोषान् जयेल्लोकांश्च शाश्वतान् ॥ २३ ॥

जो कोई वानप्रस्थी नियत कर्मों का आचरण करता है वह अपने समस्त दोषों को अग्नि के समान भस्म कर देता है और अक्षयलोकों को प्राप्त करता है ॥२३ ॥

चतुर्थश्चाश्रमो भिक्षोः प्रोच्यते यो मनीषिभिः ।
तस्य स्वरूपं गदतो मम श्रोतुं नृपार्हसि ॥ २४ ॥
पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्नेहो नराधिप !
चतुर्थमाश्रमं स्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥ २५ ॥
त्रैवर्गिकांस्त्यजेत् सर्वानारम्भानवनीपते !
मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जन्तुषु ॥ २६ ॥
जरायुजाण्डजादीनां वाङ्मनः-कायकर्मभिः ।
युक्तः कुर्वीत न द्रोह सर्वसङ्गांश्च वर्जयेत् ॥ २७ ॥

एकरात्रस्थितिग्रामे पञ्चरात्रस्थितिः पुरे ।
तथा तिष्ठेद् यथा प्रीतिद्वेषो वा नास्य जायते ॥ २८ ॥

प्राणयात्रानिमित्तञ्च व्यङ्गारे भुक्तवज्जने ।
काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद् गृहान् ॥ २९ ॥

कामः क्रोधस्तथा दर्पमोहलोभादयश्च ये ।
तांस्तु दोषान् परित्यज्य परिव्राड् निर्ममो भवेत् ॥ ३० ॥

हे नृप ! चतुर्थ आश्रम मनीषियों से जो भिक्षुओं का आश्रम कहा गया है उसका स्वरूप कहता हूँ, श्रवण करो । हे राजन् ! पुत्र, स्त्री एवं द्रव्य का स्नेह छोड़कर और मात्सर्य से रहित होकर चौथे आश्रम में व्यक्ति प्रवेश करे । हे पृथिवीपते ! धर्म, अर्थ एवं कामस्वरूप त्रिवर्ग सम्बन्धी सम्पूर्ण कर्मों का परित्याग करके शत्रु तथा मित्र में समान भाव रखते हुए समस्त प्राणियों का मित्र बन जाय । (संन्यासी) समाहित होकर वचन, शरीर एवं कर्म के द्वारा जरायुज, अण्डज आदि किसी के साथ द्रोह न करे और समस्त आसक्ति को छोड़ दे । गाँव में एक रात और नगर में पाँच राततक निवास करे । निवास इस प्रकार करे जिससे किसी से प्रेम अथवा द्वेष न हो । जिस समय रसोई की आग बुझ जाय और लोग भोजन कर ले उस समय भिक्षा के लिये उत्तम जातियों के घरों में जाय । काम, क्रोध, अभिमान, मोह और लोभ आदि जितने दुर्गुण हैं उनको त्याग करके परिव्राजक ममता रहित हो जाय ॥ २४-३० ॥

अभयं सर्वभूतेभ्यो दत्त्वा यश्चरते मुनिः ।
तस्यापि सर्वभूतेभ्यो न भयं विद्यते क्वचित् ॥ ३१ ॥
कृत्वाग्निहोत्रं स्वशरीरसंस्थं शारीरमग्निं स्वमुखे जुहोति ।
विप्रस्तु भैक्ष्योपगतैर्हविर्भिश्चिताग्निना स व्रजति स्म लोकान् ॥ ३२ ॥
मोक्षाश्रमं यश्चरते यथोक्तं शुचिः स्वसङ्कल्पितबुद्धियुक्तः ।
अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तः स ब्रह्मलोकं जयति द्विजातिः ॥ ३३ ।

जो मुनि समस्त प्राणियों को अभयदान देकर विचरण करता है उसको भी सभी प्राणियों से कभी कोई भय नहीं रहता है । जो चतुर्थाश्रमी ब्राह्मण अपने शरीर में स्थित प्राणादि सहित जठराग्नि के निमित्त अपने मुख में भिक्षा से प्राप्त अन्न

रूपी हविका हवन करता है वह अग्निहोत्रियों के लोक में जाता है । ब्रह्म से भिन्न सभी मिथ्या है, और समस्त जगत् भगवान् का ही अंश है इस प्रकार के बुद्धियोग से युक्त जो ब्राह्मण यथावत् आचरणश करता हुआ इस मोक्षाश्रम का आचरण करता है वह इन्धन से रहित अग्नि के समान शान्त होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है ॥ ३१-३३ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में नवाँ अध्याय समाप्त।

तृतीय अंश - दसवाँ अध्याय

(जातकर्म और विवाह-संस्कार आदि का विवेचन)

कथितं चातुराश्रम्यं चातुर्वर्ण्यक्रियास्तथा।
पुंसः क्रियामहं श्रोतुमिच्छामि द्विजसत्तम॥ १॥

नित्यां नैमित्तिकीं काम्यां क्रियां पुंसामशेषतः।
समाख्याहि भृगुश्रेष्ठ सर्वज्ञो ह्यसि मे मतः॥ २॥

सगर बोले—हे विप्रश्रेष्ठ ! आपने चारों आश्रम एवं चारों वर्णों के कर्मों का निरूपण किया। अब मैं मनुष्यों के संस्कार रूप कर्मों को सुनना चाहता हूँ। और हे भृगुश्रेष्ठ आप सर्वज्ञ हैं मनुष्यों की समस्त नित्य, नैमित्तिक और काम्य क्रियाओं का भी वर्णन कीजिये॥ १-२॥

यदेतदुक्तं भवता नित्यनैमित्तिकाश्रितम्।
तदहं कथयिष्यामि श्रृणुष्वैकमना नृप॥ ३॥

और्व बोले—हे राजन् ! जो आपने जो नित्य-नैमित्तिक क्रियाओं के विषय में प्रश्न किया वह मैं आपको कहूँगा, आप सावधान होकर मुझ से श्रवण करें॥ ३॥

जातस्य जातकर्मादिक्रियाकाण्डमशेषतः।
पुत्रस्य कुर्वीत पिता श्राद्धञ्चाभ्युदयात्मकम्॥ ४॥

युग्मांस्तु प्राङ्मुखान् विप्रा भोजयेन्मनुजेश्वर !
यथा वृत्तिस्तथा कुर्याद्दैवं पित्र्यं द्विजन्मनाम्॥ ५॥

दध्ना यवैः सवदरैर्मिश्रान् पिण्डान् मुदा युतः।
नान्दीमुखेभ्यस्तीर्थेन दद्याद् दैवेन पार्थिव॥ ६॥

प्राजापत्येन वा सर्वमुपचारं प्रदक्षिणम् ।
कुर्वीत तत्तथाशेषवृद्धिकालेषु भूपते ॥ ७ ॥

पुत्रजन्म होने पर पिता समस्त जातकर्म आदि क्रियाकर्म और आभ्युदयिक श्राद्ध करे । हे नरेश ! पूर्वाभिमुख विराजमान करके दो ब्राह्मणों को भोजन करावे और द्विजातियों की रीति के अनुसार देव तथा पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्ध करे । हे पार्थिव ! आनन्दपूर्वक बदरीफल से युक्त दही और जौ से पिण्ड बनाकर दैवतीर्थ (अङ्गुलियों के अग्रभाग) से नान्दी मुख पितरों को प्रदान करे । हे भूपते ! प्राजापत्यतीर्थ से कनिष्ठिका के मूलभाग से समस्त उपचारों को प्रदान करे । इसी प्रकार समस्त परिवार के वृद्धिकाल में (कन्या अथवा पुत्र के विवाहादि में) भी वृद्धिश्राद्ध करे ॥ ४-७ ॥

ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।
देवपूर्वं नराख्यं हि शर्मवर्मादिसंयुतम् ॥ ८ ॥

इसके बाद पुत्र जन्म के दशवें दिन पिता पुत्र का नामकरण संस्कार सम्पन्न करे । और शर्मा, वर्मा आदि से युक्त देववाचक पुरुषसंज्ञक नाम रखने चाहिये ॥ ८ ॥

शर्मेति ब्राह्मणस्योक्तं वर्मेति क्षत्रसंश्रयम् ।
गुप्तदासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्य-शूद्रयोः ॥ ९ ॥

नार्थहीनं न चाशस्तं नापशब्दयुतं तथा ।
नामङ्गल्यं जुगुप्स्यं वा नाम कुर्यात् समाक्षरम् ॥ १० ॥

नातिदीर्घं नातिह्रस्वं नातिगुर्वक्षरान्वितम् ।
सुखोच्चार्य्यन्तु तन्नाम कुर्याद् यत् प्रवणाक्षरम् ॥ ११ ॥

ततोऽनन्तरसंस्कारसंस्कृतो गुरुवेश्मनि ।
यथोक्तविधिमाश्रित्य कुर्याद् विद्यापरिग्रहम् ॥ १२ ॥

ब्राह्मण के लिये नाम के अन्त में शर्मा और क्षत्रिय के लिये नामान्त में वर्मा शब्द होना चाहिये । इसी प्रकार वैश्य एवं शूद्र के नामों में गुप्त और दास शब्द लगाना चाहिये । अर्थहीन, अपशब्दयुक्त, अमाङ्गलिक, निन्दनीय एवं अप्रशस्त नाम

नहीं होना चाहिये और नाम के अक्षर समान होने चाहिये । अत्यन्त दीर्घ अत्यन्त लघु अथवा कठिन अक्षरों से युक्त नाम नहीं रखना चाहिये, जिसका उच्चारण सुखपूर्वक और जिसका अन्त का वर्ण लघु हो ऐसा ही नाम रखना चाहिये । इसके बाद उपनयन संस्कार हो जाने पर गुरुगृह में निवास करते हुए करते हुए विधिपूर्वक विद्याध्ययन करे ॥ ९-१२ ॥

गृहीतविद्यो गुरवे दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम् ।
गार्हस्थ्यमिच्छन् भूपाल ! कुर्याद् दारपरिग्रहम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मचर्येण वा कालं कुर्यात् संकल्पपूर्वकम् ।
गुरोः शुश्रूषणं कुर्यात् तत्पुत्रादेरथापि वा ॥ १४ ॥

वैखानसो वापि भवेत् प्रव्रजेद् वा यथेच्छया
पूर्वसङ्कल्पितं यादृक् तादृक् कुर्यान्नराधिप ॥ १५ ॥

हे भूपाल ! विद्याध्ययन करके गुरु को दक्षिणा देने के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की इच्छा हो तो पाणिग्रहण करे । अथवा संकल्पपूर्वक ब्रह्मचर्य नियम का पालन करते हुए गुरु अथवा गुरु के पुत्रादि की सेवा श्रुश्रूषा करे । अथवा इच्छा हो, तो वानप्रस्थ या संन्यास आश्रम स्वीकार करे । हे नरेश ! पूर्व में जैसा संकल्प कर चुका हो वैसा ही करे ॥ १३-१५ ॥

वर्षैरेकगुणां भार्यामुद्वहेत् त्रिगुणः स्वयम् ।
नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां न पिङ्गलाम् ॥ १६ ॥

निसर्गतो विकलाङ्गीमधिकाङ्गींञ्च नोद्वहेत् ।
नाविशुद्धां सरोगां वाऽकुलजा वातिरोगिणीम् ॥ १७ ॥

न दुष्टां दुष्टवाचाटां व्यङ्गिनीं पितृ-मातृतः ।
न श्मश्रुव्यञ्जनवतीं न चैव पुरुषाकृतिम् ॥ १८ ॥

न घर्घरस्वरां क्षाम-वाक्यां काकस्वरां न च ।
नानिबद्धेक्षणां तद्वद् वृत्ताक्षीं नोद्वहेद् बुधः ॥ १९ ॥

यस्याश्च रोमशे जङ्घे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नतौ ।
गण्डयोः कूपकौ यस्या हसन्त्यास्तां न चोद्वहेत् ॥ २० ॥

गृहस्थाश्रम में प्रवेश की इच्छा होने पर अपने से तृतीयअंश अवस्थावाली कन्या से विवाह करे। तथा बहुत केशवाली, कम केशवाली, अत्यन्त काली पाण्डुरंगवाली, न्यून अंगवाली, अपवित्र, अकुलीन, रोगिणी, दुष्टस्वभाव और दुष्टभाषणवाली, मातपिता के प्रतिकूल ही, अंगहीना, मूछों के चिन्हवाली, पुरुष के समान आकारवाली, घर्घर शब्दवाली और कौए के समान स्वरवाली, पक्ष्मशून्या एवं गोल आँखोंवाली कन्या से विद्वान् पुरुष विवाह न करे। जिसकी जंघाएँ रोमयुक्त हो और जिसके गुल्फ ऊंचे हो तथा हँसते समय जिसके गालों में गड्ढे हो जाते हों उस कन्या से भी विवाह न करे ॥ १६-२० ॥

नोद्वहेत् तादृशीं कन्यां प्राज्ञः कार्यविशारदः ।
नातिरूक्षच्छविं पाण्डु करजामरुणेक्षणाम् ॥ २१ ॥

आपीनहस्तपादाञ्च न कन्यामुद्वहेद् बुधः ।
न वामनां नातिदीर्घां नोद्वहेत् संहतभ्रुवम् ॥ २२ ॥

अत्यन्त उदासीन कान्तिवाली, नख पाण्डुवर्णवाली और लाल आँखोंवाली कन्या के साथ बुद्धिमान् पुरुष विवाह न करे। अत्यन्त नाटी, अत्यन्त लम्बी, सटे हुए भौंहोंवाली, दाँतों में छिद्रवाली अर्थात् निकली हुई दाँतवाली कन्या से भी बुद्धिमान मानव विवाह न करे ॥ २१-२२ ॥

न चातिच्छिद्रदशनां न करालमुखीं नरः ।
पञ्चमीं मातृपक्षाच्च पितृपक्षाच्च सप्तमीम् ॥ २३ ॥
गृहस्थश्चोद्वहेत् कन्यां न्यायेन विधिना नृप !
ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः ॥ २४ ॥
गान्धर्वराक्षसौ चान्यौ पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ २५ ॥

हे नृप ! माता के पक्ष से पाँचवी पीढ़ी तक और पिता के साँतवीं पीढ़ी तक जिसका सम्बन्ध नहीं पड़ा हो, गृहस्थ पुरुष को नियम के अनुसार उस कन्या से ही विवाह करना चाहिये। ब्रह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच—ये आठ प्रकार के विवाह हैं ॥ २३-२५ ॥

एतेषां यस्य यो धर्मो वर्णस्योक्तो महर्षिभिः ।
कुर्वीत दाराहरणम् तेनान्त्यं परिवर्जयेत् ॥ २६ ॥

सधर्मचारिणीं प्राप्य गार्हस्थ्यं सहितस्तया

समुद्वहेद् ददात्येषा सम्यगूढा महाफलम् ॥ २७ ॥

इन विवाहों में से जिस जिस विवाह को जिस वर्ण के लिये धर्मानुसार कहा है उसी के अनुकूल विवाह करे, अन्य को छोड़ दे । इस प्रकार सहधर्मिणी को प्राप्त करके उसके साथ गार्हस्थ्यजीवन को धर्मपूर्वक व्यतीत करे, अच्छी प्रकार पालन किया गया गार्हस्थ्यधर्म महाफल को प्रदान करता है ॥ २६-२७ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में दसवाँ अध्याय समाप्त।

तृतीय अंश - ग्यारहवाँ अध्याय

(गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार का विवेचन)

गृहस्थस्य सदाचारं श्रोतुमिच्छाम्यहं मुने !
लोकादस्मात् परस्माच्च यमातिष्ठन्न हीयते ॥ १ ॥

श्रूयतां पृथिवीपाल ! सदाचारस्य लक्षणम् ।
सदाचारवता पुंसा जितौ लोकावुभावपि ॥ २ ॥

साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः ।
तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते ॥ ३ ॥

सप्तर्षयोऽथ मनवः प्रजानां पतयस्तथा ।
सदाचारस्य वक्तारः कर्तारश्च महीपते ॥ ४ ॥

ब्राह्मे मुहूर्ते सुस्थे च मानसे मतिमान् नृप !
विबुद्धश्चिन्तयेद् धर्ममर्थञ्चास्याविरोधिनम् ॥ ५ ॥

अपीडया तयोः काममुभयोरपि चिन्तयेत् ।
दृष्टादृष्टविनाशाय त्रिवर्गे समदर्शिता । ६ ॥

परित्यजेदर्थकामौ धर्मपीडाकरौ नृप !
धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च ॥ ७ ॥

सगर बोले—हे मुने ! अब मैं गृहस्थों का सदाचार श्रवण करना चाहता हूँ, जिसका पालन करने से मनुष्य इस लोक और परलोक से भी च्युत नहीं होता है। और्व बोले—हे भूमिपाल ! आप सदाचार का लक्षण सुनिये ! सदाचारी मानव इस लोक और परलोक दोनों ही पर विजय प्राप्त कर लेता है। 'सत्' शब्द का अर्थ साधु है और दोषरहित पुरुष साधु कहा जाता है, तथा

उनका जो आचरण होता है उसी को सदाचार कहा जाता है। हे महीपाल ! सप्तर्षिगण, मनु एवं प्रजापति—ये ही सदाचार के वक्ता और कर्ता हैं। हे नृप ! बुद्धिमान् पुरुष ब्राह्ममुहूर्त में सुप्रसन्न मनसे उठकर धर्म एवं धर्म के अनुकूल अर्थ का चिन्तन करे। धर्म और अर्थ की क्षति नहीं हो ऐसे कामकी भी चिन्ता करे। दृष्ट तथा अदृष्ट अनिष्ट की निवृत्ति के लिये (विनाश के लिये) धर्म, अर्थ एवं काम इस त्रिवर्ग के प्रति समान भाव रखना चाहिये। हे नृप ! धर्मविरुद्ध अर्थ और काम दोनों का परित्याग कर दे तथा जो आगे सुख देने वाला नहीं हो और जो समाज-विरुद्ध हो ऐसे धर्म को भी त्याग दे ॥ १-७ ॥

ततः कल्यं समुत्थाय कुर्यान्मैत्रं नरेश्वर !
नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः ॥ ८ ॥

दूरादावसथान्मूत्रं पुरीषञ्च विसर्जयेत्।
पादावसेचनोच्छिष्टे प्रक्षिपेन्न गृहाङ्गणे ॥ ९ ॥

आत्मच्छायां तरुच्छायां गोसूर्याग्न्यनिलांस्तथा।
गुरुद्विजातींस्तु बुधो न मेहेत कदाचन ॥ १० ॥

न कृष्टे शस्यमध्ये वा गोव्रजे जनसंसदि।
न वर्त्मनि न नद्यादितीर्थेषु पुरुषर्षभ ॥ ११ ॥

नाप्सु नैवाम्भसस्तीरे श्मशाने न समाचरेत्।
उत्सर्गं वै पुरीषस्य मूत्रस्य च विसर्जनम् ॥ १२ ॥

उदङ्मुखो दिवा मूत्रं विपरीतमुखो निशि।
कुर्वीतानापदि प्राज्ञो मूत्रोत्सर्गञ्च पार्थिव ॥ १३ ॥

तृणैरास्तीर्य वसुधां वस्त्रप्रावृतमस्तकः।
तिष्ठेन्नातिचिरं तत्र नैव किञ्चिदुदीरयेत् ॥ १४ ॥

हे नरेश ! ब्राह्ममुहूर्त में उठकर जितनी दूर बाण जा सकता है उससे अधिक दूर नैऋत्यकोण में जाकर मूत्र का त्याग करे। अपने निवासस्थान से दूर जाकर ही मल-मूत्र का परित्याग करना चाहिये और अपने घर के आँगन में पाँव धोया हुआ जल और जूठा जल भी न गिरावे। अपनी छाया अथवा वृक्ष की छाया में अथवा

गौ, सूर्य, अग्नि, वायु, गुरु और द्विजाति पुरुषों के सामने कभी भी मल-मूत्र त्याग न करे। हे पुरुषश्रेष्ठ ! इसी रीति से जोते हुए खेत में, शस्ययुक्त-भूमि में, गौओं के गोष्ठ में, जनसमूह में, रास्ते में, नदी आदि तीर्थों में, जल में, जलाशय के तट पर, तथा श्मशान में मल-मूत्र का परित्याग न करे। हे राजन् ! कोई आपत्ति न हो तो मनुष्य दिन में उत्तर मुख और रात्रि में दक्षिण मुख होकर मूत्र का परित्याग करे। मनुष्य को चाहिये कि मलत्याग के समय पृथ्वी को घास से और अपने मस्तक को वस्त्र से ढँक ले तथा विशेष देर तक वहाँ न तो बैठा रहे और न कुछ बोले ॥ ८-१४ ॥

वल्मीकमूषिकोत्खातां मृदमन्तर्जलां तथा।
शौचावशिष्टां गेहाच्च नादद्याल्लेपसम्भवाम् ॥ १५ ॥

अन्तः प्राण्यवपन्नां च हलोत्खाताञ्च पार्थिव !
परित्यजेन्मृदो ह्येताः सकलाः शौचकर्मणि ॥ १६ ॥

बल्मीक (बाँबी की) और चूहों द्वारा निकाली हुई, जल के भीतर की, शौचकर्म से बची हुई, घर की लीपनवाली, छोटे छोटे जीवों द्वारा निकाली हुई, हलसे उखाड़ी हुई—इन समस्त मिट्टीओं को शौच कर्म में परित्याग करे ॥ १५-१६ ॥

एका लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश।
हस्तद्वये च सप्त स्युर्मृदः शौचोपपादिकाः ॥ १७ ॥

अच्छेनागन्धफेनेन जलेनाबुद्बुदेन च।
आचामेच्च मृदं भूयस्तथा दद्यात् समाहितः ॥ १८ ॥

निष्पादिताङ्घ्रिशौचस्तु पादावभ्युक्ष्य वै पुनः।
त्रिः पिबेत् सलिलं तेन तथा द्विः परिमार्जयेत् ॥ १९ ॥

शीर्षण्यानि ततः खानि मूर्द्धानञ्च समालभेत्।
बाहु नाभिञ्च तोयेन हृदयञ्चापि संस्पृशेत् ॥ २० ॥

आचान्तस्तु ततः कुर्यात् पुमान् केशप्रसाधनम्।
आदर्शाञ्जनमाङ्गल्यं दूर्वाद्यालम्भनानि च ॥ २१ ॥

ततः स्ववर्णधर्मेण वृत्त्यर्थञ्च धनार्जनम् ।
कुर्वीत श्रद्धासम्पन्नो यजेच्च पृथिवीपते ॥ २२ ॥

सोमसंस्था हविः संस्थाः पाकसंस्थाश्च संस्थिताः ।
धने यतो मनुष्याणां यतेतातो धनार्जने ॥ २३ ॥

हे राजन् ! एक बार लिङ्ग में, तीन बार गुदा में, दश बार बाँये हाथ में और सात बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगाने से शौचक्रिया सम्पन्न होती है । बाद में फेन, बुलबुला, गन्ध आदि से रहित स्वच्छ जल से आचमन करे । पुनः सावधानी से मृत्तिका ग्रहण करे । उस मृत्तिका से पादशौच को सम्पन्न करे, पुनः तीन बार कुल्ला करे और दो बार मुख को जल से धोवे । इसके बाद शिरोदेश में स्थित इन्द्रियों को, मस्तक, हाथ, नाभि और हृदय को जल से स्पर्श करे । पुनः अच्छी तरह से स्नान करने के बाद केश सँवारे और दर्पण, अञ्जन, दूर्वा आदि मांगलिक वस्तुओं का स्पर्श करे । हे पृथिवीनाथ ! अनन्तर जीविका के लिये अपने वर्ण धर्म के अनुसार धनोपार्जन करे और श्रद्धासम्पन्न होकर यज्ञ करे । (गौतम स्मृति के अनुसार औपासन, अष्टका श्राद्ध, पार्वण श्राद्ध, श्रावण, आग्रहायण, चैत्र और आश्विन मास की पूर्णिमाएँ—ये सात पाकयज्ञसंस्था हैं, अग्न्याधेय, अग्निहोत्र, दर्श पूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, यज्ञपशुबन्ध, तथा सौत्रामणि—ये सात हविर्यज्ञसंस्था हैं तथा अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, उक्थ्य, षोड़शी, वाजपेय, अतिरात्र, और आप्तोर्याम—ये सात सोमसंस्था हे) इस प्रकार सोमसंस्था, हविः संस्था एवं पाक संस्था—इन तीनों यज्ञों का मूल धन ही है, अतएव मनुष्य को धनोपार्जन में प्रयत्नशील होना चाहिये ॥ १७-२३ ॥

नदी-नद-तडागेषु देवखातजलेषु च ।
नित्यक्रियार्थं स्नायीत गिरिप्रस्त्रवणेषु च ॥ २४ ॥

कूपेषूद्धृततोयेन स्नानं कुर्वीत वा भुवि ।
गृहेषूद्धृततततोयेन ह्यथवा भुव्यसम्भवे ॥ २५ ॥

शुचिवस्त्रधरः स्नातो देवर्षिपितृतर्पणम् ।
तेषामेव हि तीर्थेन कुर्वीत सुसमाहितः ॥ २६ ॥

त्रिरपः प्रीणनार्थाय देवानामपवर्जयेत्।
ऋषीणाञ्च यथान्यायं सकृच्चापि प्रजापतेः ॥ २७ ॥

पितृणां प्रीणनार्थाय त्रिरपः पृथिवीपते !
पितामहेभ्यश्च तथा प्रीणयेत्प्रपितामहान् ॥ २८ ॥

मातामहाय तत्पित्रे तत्पित्रे च समाहितः ।
दद्यात् पैत्रेण तीर्थेन काम्यञ्चान्यच्छृणुष्व मे ॥ २९ ॥

नदी, नद, तडाग देवताओं के लिये खोदी गयी बावड़ी अथवा पर्वत के झरनों में नित्यकर्मों के सम्पादन के लिये स्नान करे । अथवा कुएँ से जल खींच कर उसके पास की भूमि पर ही स्नान करे या घर में जल लाकर स्नान करे । और स्नान करने के बाद पवित्रवस्त्र धारण कर देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण उन्हीं के तीर्थों से सावधान होकर करे । देवता एवं ऋषियों की तृप्ति के लिये तथा प्रजापति की तृप्ति के लिये एक बार जलप्रदान करे । हे पृथिवीपते ! पितरों की तृप्ति के लिए तथा पितामहों की तृप्ति के लिये और प्रपितामहों की तृप्ति के लिये भी तीन बार जलप्रदान करे, इसी प्रकार सावधान चित्त से मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह इन सभी को पितृतीर्थ से जल दान करे । अब तर्पण के विषय भी सुनो ॥ २४-२९ ॥

मात्रे प्रमात्रे तन्मात्रे गुरुपत्न्ये तथा नृप !
गुरवे मातुलादीनां स्निग्धमित्राय भूभुजे ॥ ३० ॥

इदञ्चापि जपेदम्बु दद्यादात्मेच्छया नृप !
उपकाराय भूतानां कृतदेवादितर्पणः ॥ ३१ ॥

देवासुरास्तथा यक्षा नागगन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कुष्माण्डास्तरवः खगाः ॥ ३२ ॥

जलेचरा भूनिलया वाय्वाहाराश्च जन्तवः ।
तृप्तिमेतेन यान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥ ३३ ॥

नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद्दीयते सलिलं मया ॥ ३४ ॥

येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।

ते सर्वे तृप्तिमयान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥ ३५ ॥

यत्र क्वचन संस्थानां क्षुत्तृष्णोपहतात्मनाम् ।

इदमप्यक्षयञ्चास्तु मया दत्तं तिलोदकम् ॥ ३६ ॥

माता के लिये, प्रमाता के लिए, वृद्धप्रमाता के लिये यह जल है, यह गुरुजी को मिले, यह मामा को, यह प्रिय-मित्र को, यह राजा को इस प्रकार बोलता हुआ मनुष्य अपनी इच्छा से देवता आदि के तर्पण के बाद प्राणियों के उपकार के लिए जल प्रदान करे । देव, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्य, सिद्ध, कूष्माण्ड, पशु, पक्षी, जलचर, स्थलचर और वायु आहारवाले जीव—ये सभी जीव मेरे दिये हुए जल से तृप्त हो जाय (इस प्रकार से देवादि तर्पण के समय बोले) । जो समस्त नरकों में नानाप्रकार की यातनाएँ भोग रहे हैं उन सभी जीवों की तृप्ति के लिये मैं यह जल प्रदान करता हूँ । जो हमारे बन्धु अथवा अबन्धु हैं एवं जो अन्य जन्म में मेरे बन्धु थे और जो मेरे से जल की अभिलाषा रखते हैं उन समस्त प्राणियों की तृप्ति के लिए मैं जल प्रदान करता हूँ, वे तृप्त हो जायें । क्षुधा और तृष्णा से व्याकुल जीव जहाँ कहीं भी हो मेरा दिया हुआ यह तिलोदक उनको तृप्ति प्रदान करे ॥ ३०-३६ ॥

काम्योद्कप्रदानन्ते मयैतत् कथितं नृप !

यद् दत्त्वा प्रीणयत्येतन्मनुष्यः सकलं जगत् ॥ ३७ ॥

जगदाप्यायनोद्भूतं पुण्यमाप्नोति चानघ !

दत्त्वा काम्योदकं सम्यगेतेभ्यः श्रद्धयान्वितः ॥ ३८ ॥

हे नृप ! मैंने यह काम्यतर्पण तुमसे कहा, जिसको करके मनुष्य, समस्त जगत् को तृप्त करता है । और श्रद्धासम्पन्न भलीभाँति इन सभी को जलप्रदान करके जगत् की तृप्ति से उत्पन्न पुण्य को प्राप्त करता है ॥ ३७-३८ ॥

आचम्य च ततो दद्यात् सूर्याय सलिलाञ्जलिम् ।

नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसे ।

जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने ॥ ३९ ॥

ततो गृहार्चनं कुर्यादभीष्टसुरपूजनम्।
जलाभिषेक-पुष्पाणां धूपादेश्च निवेदनैः ॥ ४० ॥

अपूर्वमग्निहोत्रञ्च कुर्यात् प्राग् ब्रह्मणे नृप।
प्रजापतिं समुद्दिश्य दद्यादाहुतिमादरात् ॥ ४१ ॥

गुह्येभ्यः कश्यपायाथ ततोऽनुमतये क्रमात् ॥ ४२ ॥

तच्छेषं मणिकेऽद्भ्योऽथ पर्जन्यायः क्षिपेत्ततः।
द्वारे धातुर्विधातुश्च मध्ये च ब्राह्मणः क्षिपेत्।
गृहस्य पुरुषव्याघ्र ! दिग्देवानपि मे शृणु ॥ ४३ ॥

इसके बाद आचमन करके "नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णुतेजसो जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्मदायिने" भगवान् विवस्वान् को नमस्कार है। जो वेदवेद्य और विष्णु तेजस्वरूप हैं और जो भगवान् सूर्य जगत् को उत्पन्न करने वाले अत्यन्त पवित्र एवं समस्त कर्मों के साक्षी हैं, इस मन्त्र से भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर जल के अभिषेक, पुष्प, धूप आदि से गृह देवता का और अभीष्टदेवता का पूजन करे। हे नृप ! इसके बाद अपूर्व अग्निहोत्र करे, जिसमें सर्वप्रथम ब्रह्मा के उद्देश्य से, अनन्तर क्रम से प्रजापति, गुह्य, और कश्यप, अनुमति को आदरपूर्वक आहुतियाँ दे। पुनः उन आहुतियों से बचे हुए हव्य को पृथिवी और मेघ के उद्देश्य से मणिक (जल के पात्र) में, धाता तथा विधाता के उद्देश्य से द्वार के दोनों तरफ गृह के मध्य में जल प्रदान करे। हे पुरुषव्याघ्र अब दिग्देवताओं के विषय में भी श्रवण करो ॥ ३९-४३ ॥

इन्द्राय धर्मराजाय वरुणाय तथेन्दवे।
प्राच्यादिषु बुधो दद्याद्धुतशेषात्मक बलिम् ॥ ४४ ॥

प्रागुत्तरे च दिग्भागे धन्वन्तरिबलि बुधः।
निर्वपेद् वैश्वदेवञ्च कर्म कुर्यादतः परम् ॥ ४५ ॥

वायव्ये वायवे दिक्षु समस्तासु ततो दिशाम्।
ब्रह्मणे चान्तरिक्षाय भानवे च क्षिपेद् बलिम् ॥ ४६ ॥

विश्वेदेवान् विश्वभूतानथ विश्वपतीन् पितृन् ।

यक्षाणाञ्च समुद्दिश्य बलिं दद्यान्नरेश्वर ॥ ४७ ॥

ततोऽन्यदन्नामादाय भूमिभागे शुचौ बुधः ।

दद्यादशेषभूतेभ्यः स्वेच्छया ततं समाहितः ॥ ४८ ॥

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।

प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥ ४९ ॥

पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।

प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥ ५० ॥

विद्वान् पुरुष पूर्व आदि चारों दिशाओं में, क्रमशः इन्द्र, धर्मराज, वरुण एवं चन्द्रमा के उद्देश्य से बची हुई हवन सामग्री से बलि प्रदान करे । पूर्व तथा उत्तर दिग्भाग में विद्वान् पुरुष धन्वन्तरि के उद्देश्य से बलि दे, इसके बाद बलि-वैश्वदेवकर्म सम्पन्न करे । बलिवैश्वदेवकर्म से वायव्यकोण में वायु को और अन्य समस्त दिशाओं में ब्रह्मा, अन्तरिक्ष एवं सूर्य के उद्देश्य से भी बलि प्रदान करे । हे नरेश ! पुनः विश्वेदेवों, विश्वभूतों, पितरों एवं यक्षों को भी बलि दे । इसके बाद पुरुष सावधानी से दूसरा अन्न लेकर पवित्र भूमिपर अपनी इच्छा से समस्त भूतों के निमित्त भी बलि-प्रदान करे । समस्त भूतों के लिये अन्नप्रदान के समय देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, दैत्य, प्रेत, पिशाच, वृक्ष, तथा अन्य भी चींटी कीट-पतंङ्ग आदि जो अपने कर्म बन्धन से बँधे क्षुधातुर हों वे सभी तृप्तिलाभ करे, मैं उनके लिये अन्न दे रहा हूँ, वे अन्न ग्रहण कर सुखी हों ॥ ४४-५० ॥

येषां न माता न पिता न बन्धु र्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति ।

तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् ते यान्तु तृप्तिं मुदिता भवन्तु ॥ ५१ ॥

भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत दहञ्च विष्णुर्न यतोऽन्यदस्ति ।

तस्मादहं भूतनिकायभूत मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥ ५२ ॥

चतुर्दशो भूतगणो य एष तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।

तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्ट तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥ ५३ ॥

इत्युचर्य नरोच दद्यादन्नं श्रद्धासमन्वितः ।
भुवि सर्वोपकाराय गृही सर्वाश्रयो यतः ॥ ५४ ॥

श्वचाण्डालविहङ्गानां भुवि दद्यान्नरेश्वर !
ये चान्ये पतिताः केचिदपुत्राः सन्ति मानवाः ॥ ५५ ॥

ततो गोदोहमात्रं वे कालं तिष्ठेद् गृहाङ्गणे ।
अतिथिग्रहणार्थाय तदूर्ध्वं वा यथेच्छया ॥ ५६ ॥

अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं पूजयेत् स्वागतादिना ।
तथासनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥ ५७ ॥

श्रद्धया चान्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ।
गच्छतश्चानुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥ ५८ ॥

अज्ञातकुलनामानमन्यदेशादुपागतम् ।
पूजयेदतिथि सम्यङ् नैकग्रामनिवासिनम् ॥ ५९ ॥

अकिञ्चनमसम्बन्द्धमज्ञातकुलशीलिनम् ।
असम्पूज्यातिथि भुञ्जन् भोक्तुकामं व्रजत्यधः ॥ ६० ॥

जिसके माता, पिता अथवा बन्धु नहीं है और न तो अन्न है, न अन्न तैयार करने का साधन है उनके तृप्तिलाभ के लिये मैं पृथ्वी पर अन्न दे रहा हूँ, वे तृप्त होकर आनन्दलाभ करे। ये सभी प्राणी, यह अन्न और मैं भी—सभी विष्णु हैं, क्योंकि उनके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। अतएव मैं समस्त प्राणियों का शरीरस्वरूप यह अन्न उनके पोषण के लिये प्रदान करता हूँ। और यह जो चौदह प्रकार का भूतसमूह है तथा उसमें स्थित जितने भी भूतसमुदाय हैं उन सभी की तृप्ति के लिये मैं यह अन्न दे रहा हूँ, वे सब आनन्दित हों। मनुष्य इस प्रकार उच्चारण करके सभी के कल्याण के लिये अन्नप्रदान करे, उस प्रकार गृहस्थाश्रम सभी का आश्रय कहा गया है। हे नरेश ! इसके बाद कुत्ता, चाण्डाल, पक्षिसमूह और अन्य भी जो कोई पतित अथवा अपुत्र मानव हो उनके लिये पृथ्वी पर अन्न दे। पुनः अपने घर के आङ्गन में गो-दोहनकालपर्यन्त अथवा अपनी इच्छानुसार इससे ज्यादा देर अतिथि की प्रतीक्षा में खड़ा रहे। और यदि वहाँ अतिथि आ जाय तो उसका स्वागत,

आसन एवं पादप्रक्षालन आदि से पूजन करे । गृहस्थ पुरुष भोजन कराकर मधुर वार्तालाप और उसके जाने के समय पीछे चलकर अतिथी को प्रसन्न करे । जिसके कुल, नाम आदि अज्ञात हो और अन्य देश से आया हो ऐसे अतिथि का अच्छी प्रकार पूजन करे, किन्तु अपने ग्रामवासी अतिथि का पूजन न करे । जिसके पास कोई वस्तु न हो, जिससे कोई सम्बन्ध न हो, जिसके कुलशीलका कोई पता न हो और जो भोजन की इच्छावाला हो उस अतिथी की पूजा किये बिना स्वयं भोजन करने से मनुष्य अधोगति को प्राप्त करता है ॥ ५१-६० ॥

पित्रर्थञ्चापरं विप्रमेकमप्याशयेन्नृप ! ॥ ६१ ।

तद्देश्यं विदिताचारसम्भूति पञ्चयज्ञियम् ॥ ६२ ॥

अन्नाग्रञ्च समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पितम् ।
निवापभूतं भूपाल ! श्रोत्रियायोपकल्पयेत् ॥ ६३ ॥

दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड् ब्रह्मचारिणाम् ।
इच्छया च बुधो दद्याद् विभवे सत्यवारितम् ॥ ६४ ॥

इत्येतेऽतिथयः प्रोक्ताः प्रागुक्ता भिक्षवश्च ये ।
चतुरः पूजयन्नेतान् नृयज्ञर्णात् प्रमुच्यते ॥ ६५ ॥

गृहस्थ पुरुष अध्ययन, गोत्र, चरण और कुल आदि के विषय में कुछ न पूछे किन्तु आये हुए अतिथि को हिरण्यगर्भ की बुद्धि से पूजा करे । हे नृप ! पितृगण के लिये एक ऐसे ब्राह्मण को भोजन करावे जो अपने ही देश का हो, जिसके आचार, विचार, कुलका ज्ञान हो और जो पाञ्चयाज्ञिक हो । हे भूपाल ! पहले से ही निकालकर अलग रखे हुए हन्तकारके निमित्त अन्न श्रोत्रिय ब्राह्मण को भोजन करावे । इस प्रकार (देवता, अतिथि और ब्राह्मण को) तीन भिक्षाएँ देने के बाद सामर्थ्य होने पर परिव्राजक तथा ब्रह्मचारियों को भी विद्वान् पुरुष इच्छानुसार भिक्षा प्रदान करे । हे नृप ! इस प्रकार पहले कहे हुए तीन, तथा भिक्षुक—ये चारों अतिथि कहे गये हैं । इन चारों की पूजा करने से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है ॥ ६२-६५ ॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते ।
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति ॥ ६६ ॥

धाता प्रजापतिः शक्रो वह्निर्वसूगणोऽर्यमा ।
प्रविश्यातिथिमेवैते भुञ्जतेऽन्नं नरेश्वर ॥ ६७ ॥

तस्मादतिथिपूजायां यतेत सततं नरः ।
स केवलमघं भुङ्क्ते यो भुङ्क्तेह्यतिथिं विना ॥ ६८ ॥

जिसके घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है वह उस गृहस्वामी के पुण्य लेकर और अपना पाप देकर जाता है । हे नरेश ! धाता, प्रजापति, इन्द्र, अग्नि, वसुगण तथा अर्यमा—ये सभी अतिथी में प्रवेश करके अन्न भोजन करते हैं । अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह अतिथि की पूजा में सदा प्रयत्नशील रहे और जो अतिथि को भोजन कराये बिना भोजन करता है वह केवल पाप ही भोजन करता है ॥ ६६-६८ ॥

ततः सुवासिनीदुःखिगर्भिणीवृद्धबालकान् ।
भोजयेत् संस्कृतान्नेन प्रथमं चरमं गृही ॥ ६९ ॥

अभुक्तवत्सु चैतेषु भुञ्जन् भुङ्क्ते हि दुष्कृतम् ।
मृतश्च नरकं गत्वा शलेष्मभुग् जायते नरः ॥ ७० ॥

अस्नाताशी मलं भुङ्क्ते ह्यजपी पूयशोणितम् ।
असंस्कृतान्नभुङ् मूत्रं बालादिप्रथमं शकृत् ॥ ७१ ॥

इसके बाद गृहस्थ मनुष्य अपने घर (पिता के घर) में रहने वाली दुखिया, गर्भवती, वृद्ध एवं बालकों को अपने यहाँ बने अन्न से पहले भोजन कराकर सबसे अन्त में स्वयं भोजन करे । इन सभी को भोजन कराये बिना स्वयं भोजन करने वाला गृहस्थ पापभोजी कहा जाता है और मरने पर नरक में जाकर कीड़ा बनता है । बिना स्नान किये भोजन करने वाला मलभक्षी कहा जाता है और बिना जप किये भोजन करने वाला रक्त और पूयभक्षी कहलाता है तथा असंस्कृत अन्न खाने वाला मूत्रपान करता है एवं जो बालक और बूढ़ों से पहले भोजन करता है वह विष्ठाभोजी कहलाता है ॥ ७१ ॥

(अहोमी च कृमीन् भुङ्क्ते अदत्त्वा विषमश्नुते ।)

तस्माच्छृणुष्व राजेन्द्र ! यथा भुञ्जीत वै गृही ।
भुञ्जतश्च तथा पुंसः पापबन्धो न जायते ॥ ७२ ॥

इह चारोग्यमतुलं बलवृद्धिस्तथा नृप !
भवत्यनिष्टशान्तिश्च वैरिपक्षाभिचारिका ! ॥ ७३ ॥

स्नातो यथावत् कृत्वा च देवर्षिपितृतर्पणम् ।
प्रशस्तरत्नपाणिस्तु भुञ्जीत प्रयतो गृही ॥ ७४ ॥

कृतजाप्यो हुते वह्नौ शुद्धवस्त्रधरो नृप !
दत्त्वातिथिभ्यो विप्रेभ्यो गुरुभ्यः संश्रिताय च ॥ ७५ ॥

पुण्यगन्धधरः शस्तमाल्यधारी नरेश्वर ।
नैकवस्त्रधरोऽथार्द्रपाणिपादो महीपते ॥ ७६ ॥

विशुद्धवदनः प्रीतो भुञ्जीत न विदिङ्मुखः ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि न चैवान्यमना नृप ॥ ७७ ॥

अन्नं प्रशस्तं पथ्यं च प्रोक्षितं प्रोक्षणोदकैः ।
न कुत्सिताहतं नैव जुगुप्सावदसंस्कृतम् ॥ ७८ ॥

दत्त्वा तु भुक्तं शिष्येभ्यः क्षुधितेभ्यस्तथा गृही ।
प्रशस्तशुद्धपात्रेषु भुञ्जीताकुपितो नृप ॥ ७९ ॥

नासन्दीसंस्थिते पात्रे नादेशे च नरेश्वर !
नाकाले नातिसङ्कीर्णे दत्त्वाग्रञ्च नरोऽग्नये ॥ ८० ॥

बिना होम किये भोजन करने से कीड़ा और बिना दान दिये भोजन करने से विष भोजन करता है । अतएव हे राजेन्द्र ! जिस प्रकार गृहस्थ भोजन करे तथा जिस प्रकार भोजन करने से पुरुष पाप बन्धन में नहीं पड़ता, इस लोक में परम आनन्द, बल-बुद्धि की वृद्धि, अरिष्टकी शान्ति, शत्रुपक्ष की अवनति करने वाला भोजन विधान श्रवण करो । गृहस्थ पुरुष स्नान करके विधि पूर्वक देवता, ऋषि और पितरों को तर्पण करके हाथ में प्रशस्त रत्न धारण करके सावधानी से भोजन करे । हे राजन् ! जप और हवन करने के बाद शुद्धवस्त्र धारण करके अतिथि, ब्राह्मण, गुरु

एवं आश्रित को भोजन देने के उपरान्त उत्तमगन्धयुक्त प्रशस्त माला को धारण करके हाथ, पाँव धोकर शुद्धमुख होकर प्रेम से भोजन करे। और एक वस्त्र पहने हुए भोजन न करे तथा भोजन के समय अन्य दिशा में मुख न करे मनुष्य पूर्व अथवा उत्तर मुख बैठकर प्रशस्त एवं हितकारी जल से प्रोक्षित करके तन्मय होकर भोजन करे। निन्दित पुरुष से लाया गया घृणित, बलिवैश्वदेव आदि संस्कारों से रहित अन्न भोजन न करे। हे नृप! गृहस्थ पुरुष अपने भोज्य अन्न से कुछ शिष्यों को और कुछ भूखों को देकर उत्तम एवं शुद्ध पात्रों में शान्ति से भोजन करे। हे नरेश! बेत आदि आसनपर रखे हुए पात्र में, भोजन के लिये अयोग्य स्थान में, असमय में और अत्यन्त संकीर्ण स्थान में मनुष्य भोजन न करे। और भोजन के पूर्व भोजन का अग्रभाग अग्नि को देकर भोजन करे ॥ ७२-८० ॥

मन्त्राभिमन्त्रितं शस्तं न च पर्युषितं नृप!
अन्यत्र फलमांसेभ्यः शुष्कशाकादिकात्तथा ॥ ८१ ॥

तद्वद्धरीतकेभ्यश्च गुड़पक्वेभ्य एव च।
भुञ्जीतोद्धृतसाराणि च कदापि नरेश्वर ॥ ८२ ॥

नाशेषं पुरुषोऽश्नीयादन्यत्र जगतीपते!
मध्वम्बुदधिसर्पिर्भ्यः सक्तुभ्यश्च विवेकवान् ॥ ८३ ॥

अश्नीयात्तन्मना भूत्वा पूर्वन्तु मधुरं रसम्।
लवणाम्लौ तथा मध्ये कटुतिक्तादिकं ततः ॥ ८४ ॥

प्रागद्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये कठिनभोजनः।
अन्ते पुनर्द्रवाशी तु बलारोग्ये न मुञ्चति ॥ ८५ ॥

अनिन्द्यं भक्षयेदित्थं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्।
पञ्च ग्रासान् महामौनं प्राणाद्याप्यायनाय च ॥ ८६ ॥

हे राजन्! मन्त्र से अभिमन्त्रित और प्रशस्त अन्न भोजन करे। बासी अन्न न खाये। किन्तु फल, मूल, सूखी शाखा आदि के लिये ऐसा नियम नहीं है; तथा बिना पकाये हुए लेह्य आदि के लिये और गुड़ से बने पदार्थों के लिये भी यह नियम नहीं है। और हे नरेश्वर! सारहीन पदार्थ कदापि भोजन न करे। और हे जगत्पते!

विचारवान् पुरुष मधु, जल, दही, घी, सत्तू को छोड़कर अन्य पदार्थों को पूरा न खा जाय । तन्मय होकर सर्वप्रथम मधुर पदार्थ खाय, लवण तथा खट्टे पदार्थों को मध्य में कडुआ एवं तिक्त (तीता) पदार्थ अन्त में भोजन करे । जो पुरुष सर्वप्रथम द्रव पदार्थों को मध्य में कठिन एवं अन्त में पुन: द्रव पदार्थों को भोजन करता है वह सदा बलवान् और निरोग रहता है । इस प्रकार वाणी का संयम करके अन्न की निन्दा न करता हुआ उत्तम भोजन करे और प्रथम पाँच ग्रास पूर्ण मौन होकर ग्रहण करे, उनसे पाँच प्राणों की तृप्ति होती है ॥ ८१-८६ ॥

भुक्त्वा सम्यगथाचम्य प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा ।
यथावत् पुनराचामेत् पाणी प्रक्षाल्य मूलत: ॥ ८७ ॥

स्वस्थ: प्रशान्तचित्तस्तु कृतासनपरिग्रह: ।
अभीष्टदेवतानान्तु कुर्वीत स्मरण नर: ॥ ८८ ।

अग्निराप्याययत्वन्नं पार्थिवं पवनेरित: ।
दत्तावकाशं नभसा जरयत्वस्तु मे सुखम् ॥ ८९ ॥

अन्न बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ।
भवत्वेतत्परिणतौ ममास्त्वव्याहतं सुखम् ॥ ९० ॥

प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ।
अन्नं पुष्टिकरञ्चास्तु ममाप्यव्याहतं सुखम् ॥ ९१ ॥

अगस्तिरग्निर्बडवानलश्च भुक्त मयान्नं जरयत्वशेषम् ।
सूखञ्च मे तत्परिणामसम्भवं यच्छत्वरोगी मम चास्तु देहे ॥९२ ॥

विष्णु: समस्तेन्द्रियदेहदेही प्रधानभूतो भगवान् यथैक: ।
सत्येन तेनान्नमशेषमेतदारोग्यदं मे परिणाममेतु ॥ ९३ ॥

विष्णुरत्ता तथैवान्नं परिणामश्च वै तथा ।
सत्येन तेन वै भुक्तं जीर्यत्वन्नमिदं तथा ॥ ९४ ॥

भोजन करके अच्छी प्रकार आचमन करे, पुन: पूर्व या उत्तर मुख होकर हाथों को मूल देश से धोकर पुन: भली भाँति आचमन कर ले । बाद में स्वस्थ एवं प्रशान्त

चित्तपूर्वक आसनपर बैठकर मनुष्य इष्ट देवताओं का स्मरण करे। प्राणस्वरूप पवन से प्रज्वलित होकर जठराग्नि आकाश के द्वारा अवकाश वाले अन्नका परिपाक करे तथा मेरे शरीर के पार्थिव धातुओं को पुष्ट करे जिससे मैं सुखी रहूं। मेरे द्वारा भोजन किया गया यह अन्न मेरे शरीर में स्थित पृथिवी, जल, अग्नि और वायु का बल देनेवाला हो और परिपक्व हुआ यह अन्न मुझे निरन्तर सुखदायक हो। और यह अन्न मेरे शरीर में स्थित प्राण, अपान, समान उदान एवं व्यान नामक पाँच प्रकार के वायु को पुष्ट करे एवं मुझे सदा सुख की प्राप्ति हो। मेरे द्वारा भोजन किए गये अन्न को अगस्ति एवं वडवानल नामक अग्नि परिपाक करे और उस अन्न के परिणाम से मुझे सुख प्रदान करे तथा मेरा शरीर स्वस्थ रहे। श्रीविष्णु भगवान् समस्त इन्द्रियों के और देह के अधिष्ठाता एकमात्र प्रधान हैं, इस सत्य से मेरे द्वारा खाया गया अन्न परिपक्व होकर मुझको आरोग्य बनावे। भोजन करने वाले भगवान् श्रीविष्णु हैं तथा वही भोज्य अन्न एवं उसका परिणाम भी हैं इस 'सत्य' विचार से मेरा भोजन किया हुआ अन्न परिपक्व हो जाय ॥ ८७-९४ ॥

इत्युच्चार्य स्वहस्तेन परिमृष्य तथोदरम्।
अनायासप्रदायीनि कुर्यात् कर्माण्यतन्द्रितः ॥ ९५ ॥

ऐसा उच्चारण करके अपने पेटपर हाथ फेरे और निरालस्य होकर परिश्रम नहीं देने वाले कार्य करे ॥ ९५ ॥

सच्छास्त्रादिविनोदेन सन्मार्गाद्यविरोधिना।
दिनं नयेत्ततः सन्ध्यामुपतिष्ठेत् समाहितः ॥ ९६ ॥

दिनान्तसन्ध्यां सूर्येण पूर्वामृक्षैर्युतां बुधः।
उपतिष्ठेद् यथान्यायं सम्यगाचम्य पार्थिव ॥ ९७ ॥

सर्वकालमुपस्थानं सन्ध्ययोः पार्थिवेष्यते।
अन्यत्र सूतकाशौचविभ्रमातुरभीतितः ॥ ९८ ॥

सुर्येणाभ्युदितो यश्च त्यक्तः सूर्येण वा स्वपन्।
अन्यत्रातुरभावात्तु प्रायश्चित्ती भवेन्नरः ॥ ९९ ॥

तस्मादनुदिते सूर्य समुत्थाय महीपते।
उपतिष्ठेन्नरः सन्ध्यामस्वपंश्च दिनान्तजाम् ॥ १०० ॥

उपतिष्ठन्ति वै सन्ध्यां ये न पूर्वां न पश्चिमाम् ।
व्रजन्ति ते दुरात्मानस्तामिस्रं नरकं नृप ॥ १०१ ॥

पुनः पाकमुपादाय सायप्यवनीपते ।
वैश्वदेवनिमित्तं वै पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत् ॥ १०२ ॥

प्राग्द्रवं पुरुषोऽश्नीयान्मध्ये कठिनभोजनः ।
अतिथिं चागतं तत्र स्वशक्तया पूजयेद् बुधः ॥ १०३ ॥

अच्छे शास्त्रों का पठन पाठनरूपी विनोद एवं सन्मार्ग के अविरोधि कार्य से दिन बिताकर पुनः सायंकाल में सावधानी से सन्ध्यावन्दन करे । हे राजन् ! बुद्धिमान् पुरुष सायंकालीन सन्ध्या सूर्यास्त के पूर्व, तथा तारें छिपने से पूर्व अच्छी प्रकार आचमन करके सम्पन्न करे । हे पार्थिव ! प्रतिदिन उभयकाल में सन्ध्योपासन करना चाहिये । केवल जन्म के अशौच और मृत्यु के अशौच उन्माद, रोग एवं भय आदि की बाधा होने पर न करे । केवल रुग्णावस्था को छोड़कर जो पुरुष सूर्योदय तथा सूर्यास्त के समय में सोता है वह प्रायश्चित्त का भागी बनता है । अतएव हे राजन् ! सूर्योदय के पूर्व में प्रातःकालीन सन्ध्या और सायंकाल में सूर्यास्त से पूर्व सायंसन्ध्या सम्पन्न करे ॥ जो पुरुष प्रातःकालीन एवं सन्ध्याकालीन सन्ध्योपासन नहीं करता वह तामिस्र नामक नरक में जाता है । अनन्तर हे पृथिवीनाथ ! सायंकाल में सिद्धकिये हुए अन्न से मन्त्र के बिना बलिवैश्वदेव आदि करे । उस समय भी श्वपच आदि के लिये अन्न दे और यदि कोई अतिथि आ जाय तो विद्वान् पुरुष अपनी शक्ति के अनुसार उसका भी पूजन करे ॥ ९६-१०३ ॥

पादशौचासनप्रह्वस्वागतोक्तया च पूजनम् ।
ततश्चान्नप्रदानेन शयनेन च पार्थिव ॥ १०४ ॥

दिवातिथौ तु विमुखे गते यत् पातकं नृप ।
तदेवाष्टगुणं पुंसां सूर्योढे विमुखे गते ॥ १०५ ॥

तस्मात् स्वशक्त्या राजेन्द्र सूर्योढमतिथिं नरः ।
पूजयेत्पूजिते तस्मिन्पूजिताः सर्वदेवताः ॥ १०६ ॥

अन्नशाकाम्बुदानेन स्वशक्त्या प्रीणयेत्पुमान् ।
शयनप्रस्तारमहीप्रदानैरथवापि तम् ॥ १०७ ॥

हे राजन् ! पादप्रक्षालन, आसन, स्वागतयुक्त नम्रवचन इसके बाद अन्न-दान तथा शयन इन सभी से अतिथि का पूजन करे । हे नृप ! दिन में अतिथि के विमुख होने से जितना पाप होता है उससे आठगुना ज्यादा सूर्यास्त के समय आये हुए अतिथि लौटने से होता है । अतः हे राजेन्द्र ! सूर्यास्त के समय आये हुए अतिथि की पूजा सामर्थ्यानुसार अवश्य करे । उसकी पूजा करने से समस्त देवगण पूजित हो जाते हैं । मनुष्य को उचित है कि अपनी शक्ति के अनुसार अन्न, शाक या जल देकर और शयन के लिये शय्या, घास अथवा भूमि देकर उसका सम्मान करे ॥ १०४-१०७ ॥

कृतपादादिशौचस्तु भुक्त्वा साय ततो गृही ।
गच्छेच्छय्यामस्फुटितामपि दारुमयीं नृप ॥ १०८ ॥

नाविशालां न वै भग्नां नासमां मलिनां न च ।
न च जन्तुमयीं शय्यामधितिष्ठेदनास्तृताम् ॥ १०९ ॥

प्राच्यां दिशि शिरः शस्तं याम्यायामथ वा नृप ।
सदैव स्वपतः पुंसो विपरीतान्तु रोगदम् ॥ ११० ॥

ऋतावुपगमः शस्तः स्वपत्न्यामवनीपते !
पुन्नामर्क्षे शुभे काले ज्येष्ठायुग्मासु रात्रिषु ॥ १११ ॥

नास्नातान्तु स्त्रियं गच्छेन्नातुरां न रजस्वलाम् ।
नानिष्टां न प्रकुपितां नाप्रशस्तां न च गर्भिणीम् ॥ ११२ ॥

नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम् ।
क्षुत्क्षामां नातिभुक्तां वा स्वयञ्चैभिर्गुणैर्युतः ॥ ११३ ॥

गृहस्थ पुरुष सायंकालीन भोजन करने के बाद हाथ पाँव धोकर छिद्रहीन काष्ठ की बनी हुई शय्यापर जाय । जो शय्या बहुत बड़ी, टूटी हुई, ऊँची-नीची मलीन न हो तथा जिसमें खटमल आदि जीव न हो और जिस पर बिछावन न हो उस शय्या पर शयन न करे । हे राजन् ! शयन के समय शिर सदा पूर्व अथवा दक्षिण में ही रहना चाहिये इसके विपरीत शयन करने वाले पुरुष को रोग होता है । हे पृथिवीपते ! ऋतुकाल में अपनी पत्नी के साथ ही संगम करना

अच्छा है। पुन्नामक नक्षत्र में युग्म में और उनमें भी रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्त्रीप्रसङ्ग करें। अप्रसन्न, रोगिणी, रजस्वला, अभिलाषाहीन, क्रोधिनी, दुःखिनी अथवा गर्भवती पत्नी के साथ संगम न करें। दुष्टस्वभाववाली, दूसरे पुरुष की इच्छाकरने वाली, कामवासना विहीना अथवा दूसरे की पत्नी, भूखी, अधिक भोजन की हुई—इन स्त्रियों के साथ संगम न करे और अपने में भी ये सब दोष हो तो स्त्रीगमन न करे ॥ १०८-११३ ॥

स्नातः स्त्रग् गन्धधृक् प्रीतो न ध्यातः क्षुधितोऽपि वा।
सकामः सानुराश्च व्यवायं पुरुषो व्रजेत् ॥ ११४ ॥

चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र! रविसंक्रान्तिरेव च ॥ ११५ ॥

तैलस्त्रीमांससम्भोगी पर्वेष्वेतेषु वै पुमान्।
त्रिण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं नृप ॥ ११६ ॥

अशेषपर्वस्वेतेषु तस्मात् संयमिभिर्बुधैः।
भाव्यं सच्छास्त्रदेवेज्याध्यानजप्यपरैर्नरैः ॥ ११७ ॥

नान्ययोनावयोनौ वा नोपयुक्तौषधस्तथा।
देवद्विजगुरूणाञ्च व्यवायी नाश्रमे भवेत् ॥ ११८ ॥

चत्यचत्वरतीर्थेषु नैव गोष्ठे चतुष्पथे।
नैव श्मशानोपवने सलिलेषु महीपते ॥ ११९ ॥

प्रोरोक्तपर्वस्वशेषेषु नैव भूपाल! सन्ध्ययोः।
गच्छेद् व्यवायं मतिमान् न मूत्रोच्चारपीडितः ॥ १२० ॥

पर्वस्वभिगमोऽधन्यो दिवा पापप्रदो नृप!
भुवि रोगावही नृणामप्रशस्तो जलाशये ॥ १२१ ॥

परदारान् न गच्छेच्च मनसापि कदाचन।
किमु वाचास्थिबन्धोऽपि नास्ति तेषु व्यवायिनाम् ॥ १२२ ॥

मृतो नरकमभ्येति हीयतेऽत्रापि चायुषः।
परदारगतिः पुसामुभयत्रापि भीतिदा ॥ १२३ ॥

इति मत्वा स्वदारेषु ऋतुमत्सु बुधो व्रजेत्।
यथोक्तदोषहीनेषु सकामेष्वनृतावपि ॥ १२४ ॥

पुरुष स्नान करके माला और गन्ध धारण कर काम वासना से युक्त हो प्रेमपूर्वक स्त्री के साथ गमन करे। किन्तु अति भोजन एवं भूखे रहने पर स्त्री गमन न करे। हे राजेन्द्र ! चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और सूर्य संक्रान्ति—ये सब पर्वदिन है। इन दिनों में तैल, स्त्री एवं मांसका सेवन करने वाला पुरुष विष्ठा एवं मूत्र से पूर्ण नरक में जाता है। अतएव संयमशील एवं विद्वान् पुरुषों को चाहिये इन समस्त पर्वदिनों में सत् शास्त्र, देव पूजा, ध्यान और जप में तत्पर रह कर समय बितावें। अन्य योनि में, अयोनि में अथवा औषधि प्रयोगयुक्त होकर एवं ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि के आश्रम में भी मैथुन न करे। चैत्यवृक्ष के नीचे, आँगन, जल, उपवन, तीर्थ, पशुशाला, चौरास्ता और श्मशान में भी मैथुन करना मना है। हे भूपाल ! ऊपर कहे हुए समस्त पर्व दिनों में, प्रातः और सायं इन दोनों सन्ध्याओं में बुद्धिमान् पुरुष मैथुन न करे और मूत्र एवं मल के वेग होने पर भी मैथुन में प्रवृत्त न हो। हे राजन् ! पर्वों में गमन करने से धन की हानी, दिन में करने से पाप, पृथ्वी पर स्त्री प्रसङ्ग करने से रोग एवं जलाशय में मैथुन कार्य करने से अमङ्गल होता है। परायी स्त्री के साथ मन से भी कदापि मैथुन न करे क्योंकि उनके साथ प्रसङ्ग करने वाले अस्थि रहित कीट आदि की योनियों में जन्म लेते हैं। परस्त्री के साथ गमन करने वाले पुरुष मरने पर नरक में जाते हैं और संसार में उनकी आयु क्षीण होती है। इस प्रकार परायी स्त्री का प्रेम इसलोक एवं परलोक में भी भय देने वाला है। इन सब विषयों को समझकर बुद्धिमान् पुरुष उपरोक्त दोषों से रहित दिनों में अपनी स्त्री के साथ ही ऋतुकाल में प्रसङ्ग करे और सकाम होने पर बिना ऋतु में भी प्रसङ्ग करे ॥ ११४-१२४ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त।

तृतीय अंश - बारहवाँ अध्याय

(गृहस्थ के सदाचारों का वर्णन)

औौर्व उवाच।

देवगोब्राह्मणान् सिद्धवृद्धाचार्यांस्तथार्चयेत्।
द्विकालञ्च नमेत् सन्ध्यामग्नीनुपचरेत्तथा ॥ १ ॥

सदानुपहते वस्त्रे प्रशस्ताश्च तथौषधीः।
गारुड़ानि न रत्नानि बिभृयात् प्रयतो नरः ॥ २ ॥

प्रस्निग्धामलकेशश्च सुगन्धिश्चारुवेषधृक्।
सिताः सुमनसो हृद्या बिभृयाच्च नरः सदा ॥ ३ ॥

किञ्चित् परस्व न हरेन्नाल्पमाप्यप्रिय वदेत्।
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयान्नान्यदोषानुदीरयेत् ॥ ४ ॥

नान्यश्रियं तथा वैरं रोचयेत् पुरुषर्षभ !
न दुष्टं यानमारोहेत् कूलच्छाया न सश्रयेत् ॥ ५ ॥

विद्विष्टपतितोन्मत्तबहुवैरातिकीटकैः।
बन्धकी-बन्धकीभर्त्तृ-क्षुद्रानृतकथैः सह ॥ ६ ॥

तथातिव्ययशीलैश्च परिवादरतैः शठैः।
बुधो मैत्रीं न कुर्वीत नैकः पन्थानमाश्रयेत् ॥ ७ ॥

और्व बोले—गृहस्थ पुरुष प्रतिदिन देवता, गौ, ब्राह्मण, सिद्धगण, वृद्ध और आचार्य की पूजा करे, तथा दोनों समय में सन्ध्यावन्दन एवं अग्निहोत्र करे। और सदा बिना फटे हुए दो वस्त्र, प्रशस्त औषधियाँ एवं गारुड (मरकत आदि) रत्न धारण

करे। तथा सदा अपने केशों को स्वच्छ और चिकना बनाये रखे और अपने वेषको साफ रखे तथा मनोहर श्वेत पुष्प धारण करे। दूसरे का थोडा धन भी हरण न करे और किञ्चिन्मात्र भी अप्रिय भाषण न करे तथा प्रिय वचन भी यदि असत्य हो तो न बोले एवं दूसरों के दोषों को भी न बोले। हे पुरुषश्रेष्ठ ! दूसरों की स्त्री एवं दूसरों के साथ विरोध में कदापि रुचि न रखे, निन्दित सवारी पर न चढ़े, नदी-तीर के वृक्ष की छाया में आश्रय न ले। विद्वान् पुरुष लोकनिन्दित, पतित उन्मत्त, बहुतों के साथ विरोध करने वाले, परपीडक, कुलटा, कुलटा के पति, क्षुद्र, असत्यभाषी, अत्यन्त व्ययशील, अन्यलोगों के निन्दक, शठ—इन सबों के साथ मित्रता न करे और रास्ता में अकेला न चले ॥ १-७ ॥

नावगाहेज्जलौघस्य वेगमग्ने नरेश्वर !
प्रदीप्तं वेश्म न विशेन्नारोहेच्छिखरं तरोः ॥ ८ ॥

न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं कुष्णीयाच्च न नासिकाम्।
नासंवृतमुखो जृम्भेच्छ्वासकासौ च वर्जयेत् ॥ ९ ॥

नोच्चैर्हसेत् सशब्दञ्च न मुञ्चेत् पवनं बुधः।
नखान्न वादयेच्छिन्द्यान्न तृणं न महीं लिखेत् ॥ १० ॥

न श्मश्रु भक्षयेल्लोष्टं न मृद्नीयाद् विचक्षणः।
ज्यौतींष्यमेध्यशस्तानि नाभिवीक्षेत च प्रभो ॥ ११ ॥

नग्नां परस्त्रियञ्चैव सूर्यं चास्तमयोदये।
न हुङ्कुर्याच्छवञ्चैव शवगन्धो हि सोमजः ॥ १२ ॥

चतुष्पथांश्चैत्यतरून् श्मशानोपवनानि च।
दुष्टस्त्रीसन्निकर्षञ्च वर्जयेन्निशि सर्वदा ॥ १३ ॥

पूज्यदेवध्वजज्योतिश्छायां नातिक्रमेद् बुधः।
नैकः शून्याटवीं गच्छेन्न च शून्यगृहं वसेत् ॥ १४ ॥

केशास्थिकण्टकामेध्यवह्निभस्मतुषांस्तथा।
स्नानार्द्रधरणीञ्चैव दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १५ ॥

हे नरेश ! जलप्रवाह के वेग में स्नान न करे, जलते हुए घर में प्रवेश न करे तथा वृक्ष की चोटी पर न चढ़े । दाँतों का परस्पर संघर्ष न करे, नाक को कुरेदे नहीं तथा बन्दमुख से जमुहाई न ले और बन्दमुख से श्वाँस न ले एवं श्वाँसे नहीं छोड़े । विद्वान् मनुष्य जोरों से नहीं हँसे, शब्द के साथ अधोवायु का परित्याग न करे । नखों को चबाये नहीं, तृण को न तोड़े और पृथ्वी पर नहीं लिखे । हे महाराज ! बुद्धिमान् पुरुष मूंछ, दाँढ़ी के बालों को न चबावे ढेलों को परस्पर नहीं रगड़े, अपवित्र एवं अप्रशस्त नक्षत्रों को न देखे । नग्न परायी स्त्री को एवं उदय तथा अस्त के समय सूर्य को न देखें, शव से घृणा न करे, क्योंकि शव का गन्ध चन्द्रमा का अंश है । चौरास्ता, चैत्यवृक्ष, श्मशान, उपवन और दुष्ट स्त्री का साथ—इन सभी को रात्रि के समय परित्याग कर दे । पूज्य देवता, ब्राह्मण एवं ज्योति की छाया को बुद्धिमान् पुरुष कदापि न लांघे । और शून्य वनप्रान्त में कभी न जाय, तथा शून्य घर में निवास न करे । केश, हड्डी, कण्टक, अपवित्र वस्तु, बलि, भस्म, तुष, तथा स्नान से भीगी हुई पृथ्वी को विद्वान् दूर से ही त्याग दे ॥ ८-१५ ॥

नानार्यानाश्रयेत् कांश्चिन्न जिह्मं रोचयेद् बुधः ।
उपसर्पेत न व्यालं चिरं तिष्ठन्न चोत्थितः ॥ १६ ॥

अतीव जागरस्वप्ने तद्वत्स्नानासने बुधः ।
न सेवेत तथा शय्यां व्यायामञ्च नरेश्वर ॥ १७ ॥

दंष्ट्रिण श्रृङ्गिणश्चैव प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ।
अवश्यायञ्च राजेन्द्र ! पुरोवातातपौ तथा ॥ १८ ॥

न स्नायान्ने स्वपेन्नग्नो न चैवोपस्पृशेद् बुधः ।
मुक्तकच्छश्च नाचामेद् देवाभ्यर्चाञ्च वर्जयेत् ॥ १९ ॥

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा ।
नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे ॥ २० ॥

नासमञ्जसशीलैस्तु सहासीत कदाचन ।
सद्वृत्तसन्निकर्षो हि क्षणार्द्धमपि शस्यते ॥ २१ ॥

विरोधं नोत्तमैर्गच्छेन्नाधमैश्च सदा बुधः ।
विवाहश्च विवादश्च तुल्यशीलैर्नृपेष्यते ॥ २२ ॥

नारभेत कलिं प्राज्ञः शुष्कवैरञ्च वर्जयेत् ।
अप्यल्पहानिः सोढ़व्या वैरेणार्थागमं त्यजेत् ॥ २३ ॥

विज्ञ पुरुष अनार्य जनों का सङ्ग न करे, कुटिल पुरुषों से प्रेम न करे, साँप के समीप न जाय, तथा जागने के बाद अधिक देर तक पड़ा न रहे । हे नरेश ! बुद्धिमान् व्यक्ति जागने, सोने, स्नान करने, बैठने, शय्या सेवन करने, तथा व्यायाम करने में अधिक समय न लगावे । प्राज्ञ जन दाँत तथा सींगवाले पशुओं का दूर से ही परित्याग करे । इसी प्रकार हे राजेन्द्र ! ओस तथा सामने की हवा और धूपका भी परित्याग कर दे । और प्राज्ञ जन नग्न होकर स्नान न करे, शयन न करे तथा आचमन भी न करे तथा खुले केश से आचमन एवं देव पूजा न करे । होम, देवपूजन आदि क्रियाओं में आचमन, पुण्याहवाचन और जप में पुरुष एक वस्त्र धारण करके प्रवृत्त न हो । संशयशील पुरुषों का साथ कदापि न रहे । और सदाचारी पुरुषों का सङ्ग एक क्षण का भी हो तो प्रशंसनीय है । और विद्वान् पुरुष उत्तम और अधम पुरुषों के साथ विरोध न करे । हे नृप ! विवाह और विरोध समान के साथ ही अच्छा होता है । प्राज्ञ मनुष्य कलह न करे, तथा व्यर्थ का वैर त्याग दे, थोड़ी अपनी हानी सह ले किन्तु विरोध करने से कुछ धन की प्राप्ति भी छोड़ दे ॥ १६-२३ ॥

स्नातो नाङ्गानि निर्माजेत् स्नानशाट्या न पाणिना ।
न च निर्धूनयेत् केशान् नाचामेन्नैव चोत्थितः ॥ २४ ॥

पादेन नाक्रमेत् पादं न पूज्याभिमुखं नयेत् ।
वीरासनं गुरोरग्रे त्यजेत विनयान्विताः ॥ २५ ॥

अपसव्यं न गच्छेच्च देवागारचतुष्पथान् ।
मङ्गल्यपूज्यांश्च तथा विपरीतान्न दक्षिणान् ॥ २६ ॥

सोमाग्न्यर्काम्बुवायूनां पूज्यानाञ्च न सम्मुखम् ।
कुर्यात् ष्ठीवनविण्मूत्रसमुत्सर्गञ्च पण्डितः ॥ २७ ॥

तिष्ठन्न मूत्रयेत् तद्वत् पन्थानं नावमूत्रयेत् ।
श्लेष्मविण्मूत्ररक्तानि सर्वदैवन लङ्घयेत् ॥ २८ ॥

श्लेष्मसिंहानकोत्सर्गो नान्नकाले प्रशस्यते ।

बलिमङ्गलजप्यादौ न होमे न महाजने ॥ २९ ॥

स्नान करके भीगी हुई धोती अथवा भीगे हुए हाथों से अपना शरीर न पोछे, खड़े होकर अपना केश न सँवारे और आचमन भी न करे। पाँव के ऊपर पाँव न रखे और पूज्य जनों के संमुख भी पाँव न करे तथा धृष्टतापूर्वक गुरुजनों के समक्ष ऊँचे आसन पर न बैठे। देवमन्दिर, चौरास्ता, माङ्गलिक वस्तु और पूज्य व्यक्ति—इन सबको बायी ओर करके न निकले तथा इनके विपरीत वस्तुओं को दायीं करके न निकले ॥ चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, जल, वायु और पूज्य जनों के समक्ष पण्डित व्यक्ति मल-मूत्र का परित्याग न करे। खड़े खड़े और रास्ते में मूत्र त्याग न करे थूक, विष्ठा, मूत्र रक्त इन सबको नहीं लाँघे। भोजन, माङ्गलिक कार्य, जप आदि कर्म, होम आदि के समय एवं महापुरुषों के सामने थूकना अथवा छीकना उचित नहीं है ॥ २४-२९ ॥

योषितो नावमन्येत न चासां विश्वसेद् बुधः ।

न चैवेर्षुर्भवेत्ताश्च नाधिकुर्यात् कदाचन ॥ ३० ॥

माङ्गल्यपुष्परत्नाज्यपूज्याननभिवाद्य च ।

न निष्क्रामेद् गृहात् प्राज्ञ सदाचारपरो नरः ॥ ३१ ॥

विद्वान् पुरुष स्त्रियों का अपमान न करे और इनका विश्वास भी न करे तथा इनसे ईर्ष्या और इनका तिरस्कार भी न करे। सदाचारी बुद्धिमान् पुरुष माङ्गलिक द्रव्य, पुष्प, रत्न, घी और पूज्य जनों को नमस्कार किये बिना अपने घर से बाहर न निकले ॥ ३०-३१ ॥

चतुष्पथान् नमस्कुर्यात् काले होमपरो भवेत् ।

दीनानभ्युद्धरेत् साधूनुपासित बहुश्रुतान् ॥ ३२ ॥

देवर्षिपूजकः सम्यक् पितृपिण्डोदकप्रदः ।

सत्कर्ता चातिथीनां यः स लोकानुत्तमान् व्रजेत् ॥ ३३ ॥

हितं मितं प्रियं काले वश्यात्मा योऽभिभाषते ।

स याति लोकानाह्लादहेतुभूतान् नृपाक्षयान् ॥ ३४ ॥

धीमान् ह्रीमान् क्षमायुक्त आस्तिको विनयान्वितः ।
विद्याभिजनवृद्धानां याति लोकाननुत्तमान् ॥ ३५ ॥

चौराहों को नमस्कार कर, यथा समय पर हवन करे, दुःखी जनों की सहायता करे और विद्वान् साधु का सत्संग करे । जो पुरुष देवता एवं ऋषियों की पूजा करता है और पितरों को तर्पण एवं पिण्डदान करता है तथा अतिथियों की सेवा करता है वह उत्तम लोक को जाता है । और जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर समय के अनुकूल हितकारक, मित और प्रिय बोलता है । हे नृप ! वह आनन्द के कारणभूत अक्षय लोक को प्राप्त करता है । बुद्धिमान्, लज्जाशील, क्षमावान्, आस्तिक और विनम्र पुरुष विद्या एवं कुल में श्रेष्ठ के उत्तमलोक में जाता है ॥ ३२-३५ ॥

अकालगर्जितादौ च पर्वस्वाशौचकादिषु ।
अनध्यायं बुधः कुर्यादुपरागादिके तथा ॥ ३६ ॥

शमं नयति यः क्रुद्धान् सर्वबन्धुरमत्सरी ।
भीताश्वासनकृत् साधु स्वर्गस्तस्याल्पकं फलम् ॥ ३७ ॥

वर्षातपादिके च्छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च ।
शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत् ॥ ३८ ॥

असमय में मेघगर्जन होने पर पर्व एवं अशौच आदि में तथा सूर्य, चन्द्र के ग्रहण दिन में विद्वान् पुरुष अध्ययन न करे । जो मनुष्य क्रोधित पुरुषों को शान्त करता है और सबको अपना बन्धु मानता है तथा किसी से द्वेष नहीं रखता, भयभीत मनुष्यों को आश्वासन प्रदान करता है, वह साधु पुरुष स्वर्ग प्राप्त करता है । वर्षा और धूप में सदा छत्रधारण करे, रात्रि और वन में लाठी लेकर चले तथा शरीर की रक्षा चाहने वाला पुरुष जूते पहनकर हमेशा चले ॥ ३६-३८ ॥

नोर्द्ध्वं न तिर्यग् दूरं वा निरीक्षन् पर्यटेद् बुधः ।
युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद् बिलोकयन् ॥ ३९ ॥

दोषहेतूनशेषांस्तु वश्यात्मा यो निरस्यति ।
तस्य धर्मार्थकामानां हानिर्नाल्पापि जायते ॥ ४० ॥

(सदाचारतः प्राज्ञो विद्याविनयशिक्षितः ।)

पापेऽप्यपापः परुषेऽप्यभिधत्ते प्रियाणि यः
मैत्रीद्रवान्तःकरणास्तस्य मुक्तिः करे स्थिता ॥ ४१ ॥

ये कामक्रोधलोभानां वीतरागा न गोचरे ।
सदाचारस्थितास्तेषामनुभावैर्धृता मही ॥ ४२ ।

तस्मात्सत्यं वदेत् प्राज्ञो यत् परप्रीतिकारणम् ।
सत्यं यत् परदुःखाय तत्र मौनपरो भवेत् ॥ ४३ ॥

प्रियं युक्तं हितं नैतदिति मत्वा न तद्वदेत् ।
श्रेयस्तत्र हितं वाक्यं यद्यप्यत्यन्तमप्रियम् ॥ ४४ ॥

प्राणिनामुपकाराय यथैवेह परत्र च ।
कर्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत् ॥ ४५ ॥

विद्वान् पुरुष ऊपर में, तिरछे में अथवा इधर-उधर देखता हुआ न चले, किन्तु केवल चार हाथ मात्र आगे की भूमि को देखता हुआ चले । जो जितेन्द्रियपुरुष दोषों के सम्पूर्ण हेतुओं को त्याग देता है उसके धर्म, अर्थ और काम की किञ्चिन्मात्र भी हानि नहीं होती । जो प्राज्ञ पुरुष विद्याविनय से सम्पन्न एवं सदाचारी होकर पापी पुरुषों से पाप का व्यवहार नहीं करता तथा क्रूर पुरुषों के साथ भी प्रिय भाषण करता है और जिसका अन्तःकरण मैत्रीभाव से द्रवित रहता है उसके लिये मुक्ति हाथ में रहती है । काम, क्रोध, लोभ आदि से जो लोग मुक्त हैं एव सदाचारी हैं उन्हीं के प्रभाव से यह पृथ्वी स्थिर है । बुद्धिमान् पुरुष का कर्त्तव्य है कि सदा अन्यलोगों को भी प्रीति करने वाले सत्यवचन बोले और यदि सत्यवचन से किसी को दुःख होता हो तो मौन रहना ही उचित है । और यदि प्रियवचन भी अहितकर हो तो उसे न बोले, उस अवस्था में तो हितकर वाक्य ही बोलना अच्छा है, भले ही वह अत्यन्त अप्रिय क्यों न हो । इस लोक में तथा अन्यलोक में प्राणियों का जो हित करने वाला हो बुद्धिमान् पुरुष वही कार्य करे ॥ ३९-४५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में बारहवाँ अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - तेरहवाँ अध्याय

(श्राद्ध विचार)

और्व उवाच।

सचेलस्य पितुः स्नान जाते पुत्रे विधीयते।
जातकर्म तदा कुर्याच्छ्राद्धमभ्युदये च यत्॥ १॥

युग्मान्-दैवांश्च पित्र्यांश्च सम्यक् सव्यक्रमाद् द्विजान्।
पूजयेद् भोजयेच्चैव तन्मना नान्यमानसः॥ २॥

और्व बोले—पुत्र के जन्म होने पर पिता वस्त्र सहित स्नान करे, उसके बाद जातकर्मसंस्कार एवं आभ्युदयिक श्राद्ध करे। पुनः अनन्यमन से तन्मय होकर देवता और पितरों के लिये क्रमशः दाहिने और बाएँ बैठाकर दो दो ब्राह्मणों का पूजन तथा भोजन करावे॥ १-२॥

दध्यक्षतैः सबदरैः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
देवतीर्थेन वै पिण्डान् दद्यात् कायेन वा नृप॥ ३॥

नान्दीमुखः पितृगणस्तेन श्राद्धेन पार्थिव!
प्रीयते तत्तु कर्त्तव्यं पुरुषैः सर्ववृद्धिषु॥ ४॥

हे राजन्! पूर्व अथवा उत्तरमुख बैठ करके बदरी (बेर) मिले हुए दही और अक्षत से देवतीर्थ अथवा प्रजापतितीर्थ से पिण्डदान करे। हे पार्थिव! इस आभ्युदयिक श्राद्ध से समस्त नान्दी मुख पितृगण तृप्त होते हैं। पुरुषों का कर्त्तव्य है कि समस्त पारिवारिक अभिवृद्धि के समय इस श्राद्ध को करे॥ ३-४॥

कन्यापुत्रविवाहेषु प्रवेशे नववेश्मनः।
नामकर्मणि बालानां चूडाकर्मादिके तथा॥ ५॥

सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने ।
नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही ॥ ६ ॥

पितृपूजाविधिः प्रोक्तो वृद्धावेष समासतः ।
श्रूयतामवनीपाल ! प्रेतकर्मक्रियाविधिः ॥ ७ ॥

कन्या एवं पुत्र के विवाह में, गृहप्रवेश में, बालकों के नामकरण में, चूडाकर्मसंस्कारमें, सीमन्तोन्नयन तथा पुत्रादि के प्रथम मुख दर्शन में गृहस्थ पुरुष सावधानी से नान्दीमुख पितृगण का पूजन करे । हे पृथिवीपालक ! वृद्धिकाल का यह नान्दिमुख नामक सनातन पितृपूजा का क्रम मैंने कहा, अब प्रेतकर्म का विधान श्रवण करो ॥ ५-७ ॥

प्रेतदेहं शुभैः स्नानैः स्नापितं स्रग्विभूषितम् !
दग्ध्वा ग्रामाद् बहिः स्नातवा सचेलाः सलिलाशये ॥ ८ ॥

यत्र यत्र स्थितायैतदमुकायेतिवादिनः ।
दक्षिणाभिमुखा दद्युर्बान्धवाः सलिलाञ्जलिम् ॥ ९ ॥

प्रविष्टाश्च समं गोभिर्ग्रामं नक्षत्रदर्शने ।
कटधर्मांस्ततः कुर्युर्भूमौ प्रस्तरशायिनः ॥ १० ॥

बन्धु-बान्धवों का यह कर्तव्य है कि मृत को भली भाँति स्नान कराकर उसे सुन्दर मालाओं से सुसज्जित करके गाँव के बाहर दाह करने के बाद जलाशय में वस्त्र सहित स्नान करे । अनन्तर (यत्र तत्र स्थिताय एतदमुकाय) ऐसा उच्चारण करते हुए दक्षिण मुख स्थित होकर बन्धु-बान्धव मृत व्यक्ति के नाम से जलाञ्जलि प्रदान करे । बाद में गोधूलि के समय तारामण्डल के उदय होने पर एक साथ सभी बन्धु-बान्धव ग्राम में प्रवेश करें एवं अशौचकृत्य करने के बाद भूमि पर तृणादि की शय्यापर शयन करें ॥ ८-१० ॥

दातव्योऽनुदिनं पिण्डः प्रेताय भुवि पार्थिव ।
दिवा च भक्तं भोक्तव्यममांसं मनुजर्षभ ॥ ११ ॥

दिनादि तावदिच्छातः कर्त्तव्यं विप्रभोजनम् !
प्रेतस्तृप्तिं तथा याति बन्धुवर्गेण भुञ्जता ॥ १२ ॥

प्रथमेऽह्नि तृतीये च सप्तमे नवमे तथा।
वस्त्रत्यागं बहिः स्नानं कृत्वा दद्यात् तिलोदकम्॥ १३॥

ततोऽनु बन्धुवर्गस्तु भुविदद्यात् तिलोदकम्।
चतुर्थेऽह्नि च कर्त्तव्यं भस्मास्थिचयनं नृप।
तदूद्ध्वर्वमङ्गसंस्पर्शश्च सपिण्डानामपीष्यते॥ १४॥

योग्याः सर्वक्रियाणान्तु समानसलिलास्तथा।
अनुलेपनपुष्पादिभोगादन्यत्र पार्थिव॥ १५॥

शय्यासनोपभोगश्च सपिण्डानामपीष्यते।
भस्मास्थिचयनादूद्ध्वर्वं संयोगो न तु योषिता॥ १६॥

हे पार्थिव! प्रेतात्मा के निमित्त प्रतिदिन पृथिवी पर पिण्डदान करे। केवल दिन में ही मांसवर्जित भात का भोजन करे। अशौच के दिनों में यदि ब्राह्मणों की इच्छा हो तो उनको भोजन भी करावे, क्योंकि उन दिनों में ब्राह्मण एवं बन्धुवर्गों के भोजन करने से प्रेतात्मा की तृप्ति होती है। अशौच के प्रथम, तृतीय, सप्तम एवं नवम दिनों में वस्त्र-त्याग कर और बाहर में स्नान करके प्रेतात्मा के निमित्त तिलाञ्जलि प्रदान करे। हे नृप! प्रेत का अस्थिसञ्चय चौथे दिन करे, उसके बाद अपने सपिण्ड जनों का अङ्ग स्पर्श का विधान है। हे राजन्! उस समय समानोदक पुरुष चन्दन एवं पुष्पमाला धारण के अतिरिक्त और सब कर्म कर सकते हैं। सपिण्ड बन्धुगण भस्म एवं अस्थि सञ्चय के बाद शय्या आदि का उपभोग तो कर सकते हैं किन्तु स्त्री प्रसङ्ग का निषेध है॥ ११-१६॥

बाले देशान्तरस्थे च पतिते च मुनौ मृते।
सद्यःशौचं तथेच्छातो जलाग्न्युद्बन्धनादिषु॥ १७॥

मृतबन्धोर्दशाहानि कुलस्यान्नं न भुज्यते।
दानं प्रतिग्रहो यज्ञः स्वाध्यायश्च निवर्तते॥ १८॥

विप्रस्येतद् द्वादशाहं राजन्यस्याप्यशौचकम्।
अर्द्धमासश्च वैश्यस्य मासं शूद्रस्यं शूद्धये॥ १९॥

अयुजो भोजयेत् कामं द्विजानाद्ये ततो दिने।
दद्याद् दर्भेषु पिण्डञ्च प्रेतायोच्छिष्टसन्निधौ ॥ २० ॥

वार्यायुधप्रतोदास्तु दण्डश्च द्विजभोजनात्।
स्प्रष्टव्योऽनन्तरं वर्णैः शुध्येरंस्ते ततः क्रमात् ॥ २१ ॥

ततः स्ववर्णधर्मा ये विप्रादीनामुदाहृताः।
तान कुर्वीत पुमान् जीवेन्निजधर्मार्जनैस्तथा ॥ २२ ॥

बालक, देशान्तर में स्थित व्यक्ति, पतित, तपस्वी एवं जल, अग्नि, तथा फाँसी लगा कर आदि से मृत व्यक्तियों की मृत्यु होने पर अशौच की निवृत्ति सद्यः हो जाती है अथवा इच्छानुसार अशौच निवृत्ति हो जाती है। मृतपुरुष के कुटुम्बों का अन्न दश दिनतक भोजन नही करना चाहिये एवं अशौचकाल में दान देना, दान लेना, होम एवं स्वाध्याय—ये सभी वर्जित हैं। यह अशौच ब्राह्मणों का दश दिन का, क्षत्रियों का बारह दिनका, वैश्यों का पन्द्रह दिन का और शूद्रों का एक मास का होता है। अशौच के अन्त में अपनी इच्छानुसार अयुग्म (एक, तीन, पाँच, सात, नौ) ब्राह्मणो को भोजन करावे और उच्छिष्ट के समीप में कुशापर प्रेतात्मा के निमित्त पिण्डदान करे। अशौचान्त में ब्राह्मण भोजन के पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रमशः जल, शस्त्र, कोड़ा और लाठी का स्पर्श करे। इसके बाद ब्राह्मण आदि जाति के लिये जो जो धर्म बतलाये गये हैं उनका आचरण करे तथा अपने धर्म के अनुसार उपार्जित जीविका से अपना जीवन निर्वाह करे ॥ १७-२२ ॥

मृताहनि च कर्तव्यमेकोद्दिष्टमतः परम्!
आह्वानादिक्रियादैव-नियोगरहितं हि तत् ॥ २३ ॥

एकोऽर्घस्तत्र दातव्यस्तथैवैकपवित्रकम्।
प्रेताय पिण्डो दातव्यो भुक्तवत्सु द्विजातिषु ॥ २४ ॥

प्रश्नश्च तत्राभिरतिर्यजमानैर्द्विजन्मनाम्।
अक्षय्यममुकस्येति वक्तव्यं विरतौ तथा ॥ २५ ॥

पुनः प्रतिमास में मृत्युतिथि पर एकोद्दिष्ट श्राद्ध करे, एकोद्दिष्ट श्राद्ध में आवाहन आदि एवं विश्वेदेवा के निमन्त्रण आदि कार्य नहीं होते। एकोद्दिष्ट श्राद्ध

में एक अर्घ्य, एक पवित्रक और बहुत ब्राह्मणों को भोजन कराने पर भी एक ही पिण्डदान करना चाहिये। अनन्तर यजमानद्वारा 'अभिरम्यताम्' ऐसा करने पर ब्राह्मणगण 'अभिरताःस्म' ऐसा कहे और पिण्डदान समाप्ति के बाद 'अमुकस्य अक्षय्यमुपतिष्ठताम्' ऐसा वाक्य उच्चारण करें ॥ २३-२५ ॥

एकोद्दिष्टमयो धर्म इत्थमा वत्सरात् स्मृतः ।
सपिण्डीकरणं तस्मिन् काले राजेन्द्र ! तच्छृणु ॥ २६ ॥

एकोद्दिष्टविधानेन कार्यं तदपि पार्थिव !
(संवत्सरेऽथ षष्ठे वा मासे वा द्वादशेऽह्नि तत्)
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ॥ २७ ॥

पात्रं प्रेतस्य तत्रैकं पैत्रं पात्रत्रयं तथा ।
सेचयेत् पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं ततस्त्रिषु ॥ २८ ॥

ततः पितृत्वमापन्ने तस्मिन् प्रेते महीपते !
श्राद्धधर्मैरशेषैस्तु तत् पूर्वानर्चयेत् पितॄन् ॥ २९ ॥

इस प्रकार एकोद्दिष्ट-श्राद्ध एक वर्ष तक प्रतिमास करना चाहिये। हे राजेन्द्र ! वर्ष के अन्त में सपिण्डीकरण श्राद्ध करे, उसका विधान सुनो। हे पार्थिव ! वह सपिण्डीकरण श्राद्ध भी एकोद्दिष्ट के विधान से ही करे, यह श्राद्ध एकवर्ष, छः मास अथवा बारह दिनों के बाद ही करना शास्त्र सम्मत है। तिल, गन्ध और जल से युक्त चार पात्र श्राद्ध में रखे, इनमें एक पात्र प्रेत के लिये और तीन पात्र पितरों के निमित्त होते हैं ! पुनः मृत पुरुष के पात्र में स्थित जल आदि के द्वारा पितृगण के तीनों पात्रों का सेचन करे। इस प्रकार मृत पुरुष को पितृत्व प्राप्त हो जाने पर हे राजन् ! समस्त श्राद्धधर्मों का उस मृत पुरुष से ही आरम्भ करके पितृगण का पूजन करे ॥ २६-२९ ॥

पुत्रः पौत्रः प्रपौत्रो वा भ्राता वा भ्रातृसन्ततिः ।
सपिण्डसन्ततिर्वापि क्रियार्हो नृप ! जायते ॥ ३० ॥

तेषामभावे सर्वेषां समानोदकसन्ततिः ।
मातृपक्षसपिण्डेन सम्बद्धा ये जलेन वा ॥ ३१ ॥

कुलद्वयेऽपि चोच्छिन्ने स्त्रीभिः कार्याः क्रिया नृप !
सङ्घातान्तर्गतैर्वापि कार्याः प्रेतस्य च क्रियाः ।
उत्सन्नबन्धुरिक्थानां कारयेदवनीपतिः ॥ ३२ ॥

पुत्र, पौत्र, भाई, भतीजा अथवा सपिण्डसन्तान ही श्राद्ध कर्म के अधिकारी माने गये हैं और इन सभी का अभाव होने पर समानोदक की सन्तान श्राद्धकर्म का अधिकारी होता है । इन सबके अभाव में मातृपक्ष के सपिण्ड अथवा समानोदक श्राद्ध का अधिकारी माना गया है । हे राजन् ! मातृकुल और पितृकुल दोनों के नष्ट हो जाने पर स्त्री ही श्राद्धकर्म को सम्पन्न करे । और यदि स्त्री आदि कोई भी नहीं हो तब साथियों में से कोई बन्धुहीन प्रेत का श्राद्धादि कर्म करे अथवा बान्धवहीन मृत व्यक्ति के धन से राजा ही उसका समस्त प्रेतकर्म सम्पन्न करे ॥ ३०-३२ ॥

पूर्वाः क्रिया मध्यमाश्च तथा चैवोत्तराः क्रियाः ।
त्रिप्रकाराः क्रियाः सर्वास्तासां भेदं श्रृणुष्व मे ॥ ३३ ॥

आदाह-वार्यायुधादिस्पर्शाद्यन्तास्तु याः क्रियाः
ताः पूर्वा मध्यमा मासि मास्येकोद्दिष्टसंज्ञिताः ॥ ३४ ॥

प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु ।
क्रियन्ते याः क्रियाः पित्र्याः प्रोच्यन्ते ता नृपोत्तराः ॥ ३५ ॥

समस्त प्रेतकर्म तीन प्रकार के होते हैं—पूर्वकर्म, मध्यम-कर्म और उत्तर-कर्म । इनके अलग अलग लक्षण सुनो । अग्निदाह संस्कार से आरम्भ कर जल तथा शस्त्र आदि के स्पर्श पर्यन्त समस्त कर्मो को पूर्वकर्म कहते हैं और प्रतिमास जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध होते हैं वह मध्यम कर्म कहा जाता है । और हे नृप ! सपिण्डीकरण के बाद मृत पुरुष को पितर पद प्राप्त हो जाने पर जो कर्म किये जाते हैं वे उत्तरकर्म कहलाते हैं ॥ ३३-३५ ॥

पितृमातृसपिण्डैस्तु समानसलिलैस्तथा ।
तत् सङ्घान्तर्गतैर्वापि राज्ञा तद्धनहारिणा ॥ ३६ ॥

पूर्वाः क्रियाश्च कर्तव्याः पुत्राद्यैरेव चोत्तराः ।
दौहित्रैर्वा नृपश्रेष्ठ ! कार्यास्तत्तनयैस्तथा ॥ ३७ ॥

मृताहनि च कर्तव्याः स्त्रीणामप्युत्तराः क्रियाः ।
प्रतिसंवत्सरं राजन्नेकोद्दिष्टविधानतः ॥ ३८ ॥

तस्मादुत्तरसंज्ञा याः क्रियास्ताः श्रृणु पार्थिव !
यदा यदा च कर्तव्या विधिना येन वानघ ॥ ३९ ॥

पिता, माता, सपिण्ड समानोदक समूह के पुरुष अथवा धन के अधिकारी राजा पूर्वकर्म कर सकते हैं किन्तु उत्तर-कर्म केवल पुत्रादि अधिकारी ही कर सकते हैं। हे राजन् ! प्रतिवर्ष मृत्युतिथिपर स्त्रियों का भी एकोद्दिष्ट विधान से उत्तरकर्म अवश्य करना चाहिये। हे पार्थिव ! अतएव उत्तर क्रियाओं को जिस विधान से करना चाहिये, वह सुनो ॥ ३६-३९ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में तेरहवाँ अध्याय समाप्त।

तृतीय अंश - चौदहवाँ अध्याय

(श्राद्ध में पात्रापात्र का विचार)

और्व उवाच

ब्रह्मेन्द्र-रुद्र-नासत्य-सूर्याग्नि-वसु-मारुतान्।
विश्वेदेवान् पितृगणान् वयांसि मनुजान् पशून्॥ १॥

सरीसृपानृषिगणान् यच्चान्नद्भूतसंज्ञितम्।
श्राद्धं श्रद्धान्वितः कुर्वन् प्रीणयत्यखिलं जगत्॥ २॥

और्व बोले—श्रद्धापूर्वक श्राद्ध करने वाला मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, अश्विनीकुमार, सूर्य, अग्नि वसु मरुत, विश्वेदेवा, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, पशु, सर्प, ऋषिगण, भूतगण इत्यादि समस्त जगत् को प्रसन्न करता है॥ १-२॥

मासि मास्यसिते पक्षे पञ्चदश्यां नरेश्वर।
तथाष्टकासु कुर्वीत काम्यान् कालाञ्छृणुष्व मे॥ ३॥

हे नरेश! प्रतिमास में कृष्णपक्ष की अमावस्या एवं अष्टकाको (हेमन्त और शिशिर ऋतुओं की शुक्लाष्टमी को) श्राद्ध करना चाहिये। ये नित्य श्राद्ध कहे गये हैं। अब काम्य श्राद्ध के विषय में सुनो॥ ३॥

श्राद्धार्हमागतं द्रव्यं विशिष्टमथवा द्विजम्।
श्राद्धं कुर्वीत विज्ञाय व्यतीपातेऽयने तथा॥ ४॥

श्राद्ध के योग्य पदार्थ अथवा किसी विशिष्ट ब्राह्मण के घर में आने पर तथा उत्तरायण और दक्षिणायन सूर्य का आरम्भ होने पर श्राद्ध का अनुष्ठान करे॥ ४॥

विषुवे चापि सम्प्राप्ते ग्रहणे शशि-सूर्ययोः।
समस्तेष्वेव भूपाल! राशिष्वर्के च गच्छति॥ ५॥

नक्षत्रग्रहपीडासु दुष्टस्वप्नावलोकने ।
इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवशस्यागमे तथा ॥ ६ ॥

विषुवसंक्रान्तिपर, सूर्य और चन्द्रमा के ग्रहण पर, सूर्य के प्रत्येक राशि में प्रवेश के समय, नक्षत्र एवं ग्रह की पीड़ा उपस्थित होने पर, दुष्ट स्वप्नदर्शन होने पर एवं नवीन अन्न घर में आने पर मनुष्य को काम्यश्राद्ध करने चाहिये ॥ ५-६ ॥

अमावास्या यदा मंत्रविशाखास्वातियोगिनी ।
श्राद्धैः पितृगणस्तृप्तिं तथाप्नोत्यष्टवार्षिकीम् ॥ ७ ॥

अमावास्या यदा पुष्ये रौद्रे चर्क्षे पुनर्वसौ ।
द्वादशाब्दं तदा तृप्तिं प्रयान्ति पितरोऽर्चिताः ॥ ८ ॥

वासवाजैकपादर्क्षे पितृणां तृप्तिमिच्छताम् ।
वारुणे चाप्यमावास्या देवानामपि दुर्लभा ॥ ९ ॥

नवस्वृक्षेष्वमावास्या यदैतेष्ववनीपते !
तदा तृप्तिप्रदं श्राद्धं पितृणां शृणु चापरम् ॥ १० ॥

गीतं सनत्कुमारेण यथैलाय महात्मने ।
पृच्छते पितृभक्ताय प्रश्रयावनताय च ॥ ११ ॥

अमावस्या तिथि को अनुराधा, विशाखा अथवा स्वाति नक्षत्र से युक्त होने पर श्राद्ध करने से पितृगण आठ वर्ष तक तृप्त रहते हैं । और जो अमावस्या पुष्य, आर्द्रा अथवा पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो उसमें श्राद्धद्वारा पूजित होने से पितृगण बारह वर्ष-तक तृप्त रहते हैं । पितृगण और देवगण को अत्यन्त तृप्ति के इच्छुक मनुष्य के लिये धनिष्ठा, पूर्वभाद्रपदा एवं शतभिषानक्षत्रयुक्त अमावस्या अत्यन्त दुर्लभ होती है । हे पृथिवीपते !नौ नक्षत्रों से युक्त अमावस्या में किया हुआ श्राद्ध पितृगणों को अत्यन्त तृप्तिदायक होता है । इनके बाद पितृभक्त इलापुत्र महात्मा पुरूरवा के विनम्रभाव से पूछने पर सनत्कुमार जी ने जिन अन्य तिथियों का वर्णन किया है उनका नाम भी श्रवण करो ॥ ७-११ ॥

वैशाखमासस्य च या तृतीया नवम्यसौ कात्तिकाशुक्लपक्षे ।
नभस्यामासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥ १२ ॥

एता युगाद्याः कथिताः पुराणै रनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्त्रः ।
उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये च ॥ १३ ॥
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्त्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति ॥ १४ ॥
माघासिते पञ्चदशी कदाचि दुपैति योगं यदि वारुणेन ।
ऋक्षेण कालः स परः पितृणां न ह्यल्पपुण्यैर्नृप ! लभ्यतेऽसौ ॥ १५ ॥
काले धनिष्ठा यदि नाम तस्मिन् भवन्ति भूपाल ! तदा पितृभ्यः ।
दत्तं जलान्नं प्रददाति तृप्तिं वर्षायुतं तत् कुलजैर्मनुष्यैः ॥ १६ ॥
तत्रैव चेद् भाद्रपदास्तु पूर्वाः काले यथावत्क्रियते पितृभ्यः ।
श्राद्धं परां तृप्तिमुपेत्य तेन युगं समग्रं पितरः स्वपन्ति ॥ १७ ॥

श्रीसनत्कुमार जी बोले—वैशाख शुक्ल पक्ष की तृतीया, कार्त्तिक शुक्ला नवमी, भाद्रपदकृष्णा त्रयोदशी एवं माघमास की अमावस्या—इन चार तिथियों को 'युगाद्या' तिथि कहा गया है ॥ और ये चारों तिथियाँ अत्यन्त पुण्यदेने वाली हैं। चन्द्रमा अथवा सूर्य ग्रहण के समय तीन अष्टकाओं में अथवा उत्तरायण तथा दक्षिणायन के आरम्भकाल में जो पुरुष सावधान मन से पितरों के निमित्त तिल सहित जल से तर्पण भी करता है वह एक हजार वर्षों तक पितरों को तृप्त कर देता है—यह अतीव गूढ रहस्य पितृगण स्वयं ही कहते हैं। कदाचित् माघमास की अमावस्या शतमिषा नक्षत्र से युक्त हो जाय तो पितरों की तृप्ति के लिये यह अत्यन्त उत्तमकाल होता है। हे राजन् ! बड़े भाग्यवान् पुरुषों को ही यह उत्तम काल प्राप्त होता है। और यदि माघ अमावस्या को धनिष्ठा नक्षत्र मिल जाय तो उस समय अपने कुल में उत्पन्न सन्तानों द्वारा पितरों को दिया गया अन्न, जल एक सहस्त्र वर्षों तक तृप्त करता है। तथा माघमास की अमावस्या यदि पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रयुक्ता हो तब सन्तानों द्वारा किये गये श्राद्धादिकों से पितृगण एक युग पर्यन्त तृप्त रहते हैं एवं सुख से शयन करते हैं ॥ १२-१७ ॥

गङ्गां शतद्रूं यमुनां विपाशां सरस्वतीं नैमिषगोमतीं वा ।
तत्रावगाह्यार्चनमादरेण कृत्वा पितणां दुरितानि हन्ति ॥ १८ ॥

गङ्गा, शतद्रू, यमुना विपाशा, सरस्वती और नैमिषारण्यस्थित गोमती—इन नदियों में स्नानकर श्रद्धापूर्वक पितृपूजन करने से समस्त पाप विनष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

गायन्ति चैतत् पितरः कदा नु वर्षामघातृप्तिमवाप्य भूयः ।
माघासितान्ते शुभतीर्थतौयें र्यास्यामि तृप्तिं तनयादिदत्तैः ॥ १९ ॥
चित्तञ्च वित्तञ्च नृणां विशुद्ध शस्तश्च कालः कथितो विधिश्च ।
पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि ॥ २० ॥
पितृगीतास्तथैवात्र श्लोकास्तांश्च श्रृणुष्व मे
श्रुत्वा तथैव भवता भाव्यं तत्रादृतात्मना ॥ २१ ॥
अपि धन्यः कुले जायादस्माकं मतिमान्नरः ।
अकुर्वन् वित्तशाठ्यं यः पिण्डान्नो निर्वपिष्यति ॥ २२ ॥
रत्नं वस्त्रं महीयानं सर्वभोगादिकं वसु ।
विभवे सति विप्रेभ्यो योऽस्मानुद्दिश्य दास्यति ॥ २३ ॥
अन्नेन वा यथाशक्तया कालेऽस्मिन् भक्तिनम्रधीः ।
भोजयिष्यति विप्राग्रयांस्तन्मात्रविभवो नरः ॥ २४ ॥
असमर्थोऽन्नदानस्य धान्यामं स्वशक्तितः ।
प्रदास्यति द्विजाग्ग्रेभ्यः स्वल्पाल्पां वापि दक्षिणाम् ॥ २५ ॥
तत्राप्यसामर्थ्ययुतः कराग्राग्रस्थितांस्तिलान् ।
प्रणम्य द्विजमुख्याय कस्मैचिद् भूप ! दास्यति ॥ २६ ॥
तिलैः सप्ताष्टभिर्वापि समवेतं जलाञ्जलिम् ।
भक्तिनम्रः समुद्दिश्य भुव्यस्माकं प्रदास्यति ॥ २७ ॥

पितृगण निरन्तर ऐसा गान करते हैं कि कब हम लोग वर्षाकाल के मघानक्षत्र में तृप्ति प्राप्तकर पुनः माघमास की अमावस्या को अपने पुत्र-पौत्रादि द्वारा प्रदत्त मङ्गलमयतीर्थ जल से परमतृप्ति को लाभ करेंगे । विशुद्ध मन, प्रशस्तकाल, शास्त्रोक्तविधि एवं यथोक्त पात्र तथा परमभक्ति—इन सभी के श्राद्धकाल में एकत्रित होने से मनुष्य को वाञ्छित फल मिलता है । इस प्रसङ्ग में पितृगण के गाये हुए श्लोक आप मेरे से सुनें । और श्रवण करके आप सादर युक्त मन से वैसा ही

आचरण करे। पितृगण कहते हैं कि—हमलोगों के कुल में धनकार्पण्य को परित्याग कर जो हम लोगों को पिण्डदान करेगा वह बुद्धिमान पुरुष धन्य होगा॥ और जो पुरुष सम्पत्ति रहने पर हमलोगों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को रत्न, वस्त्र, भूमि, यान (सवारी), धन और समस्त भोगद्रव्य दान करेगा। यदि उस प्रकार की सम्पत्ति न हो तब भी श्राद्धकाल उपस्थित होने पर भक्ति विनम्र बुद्धि से अपनी शक्ति के अनुसार केवल अन्नद्वारा ही ब्राह्मणों को भोजन करावेगा। यदि अन्नद्वारा भी ब्राह्मणों को तृप्त करने की शक्ति न हो तो अपने सामर्थ्यानुसार आमान्न अथवा यत्किञ्चिन्मात्र दक्षिणा प्रदान कर पितरों को तृप्त करे। हे भूप! यदि इतना भी सामर्थ्य न हो तब हाथ में केवल तिल लेकर कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान करे। अथवा भक्ति से नम्र होकर हमलोगों के उद्देश्य से पृथ्वी पर सात आठ तिल मिला हुआ जलाञ्जलि प्रदान करे॥ १९-२७॥

यतः कुश्चित् सम्प्राप्य गोम्यो वापि गवाह्निकम्।
अभावे प्रीणयन्नास्माञ्छ्रद्धायुक्तः प्रदास्यति॥ २८॥
सर्वाभावे वनं गत्वा कक्षामूलप्रदर्शकः।
सूर्यादिलोकपालानामिदमुच्चैर्वदिष्यति॥ २९॥
न मेऽस्ति वित्तं न धनं न चान्याच्छ्राद्धोपयोग्यं स्वपितृन्नतोऽस्मि।
तृप्यन्तु भक्त्या पितरो मयैतौ कृतौ भुजौ वर्त्मनि मारुतस्य॥ ३०॥
इत्येतत् पितृभिर्गीतं भावाभावप्रयोजनम्।
यः करोति कृतं तेन श्वाद्धं भवति पार्थिव॥ ३१॥

यदि इसमें भी असमर्थ रहने वाला पुरुष कहीं से भी एक दिन के तृप्तियोग्य घास ही लाकर गौ को प्रदान करने से भी हम पितरों को शान्तिलाभ होगा। या इसमें भी असमर्थ होने पर वन में प्रवेश कर सूर्यादि लोकपालों के समक्ष हाथ उठाकर उच्चस्वर से नीचे लिखे वाक्यों का उच्चारण करेगा—मेरे पास वित्त, दही, धन पितृ श्राद्धोपयोगी और कोई वस्तु नहीं अतएव मैं केवल प्रणाम करता हूँ। और्व बोले—हे पार्थिव! धन हो अथवा न हो दोनों ही अवस्थाओं में जिस प्रकार से श्राद्धादि किया जाता है वह पितृगणद्वारा कहा जा चुका है। इस विधि से जो कार्य करता है उनको यथाविहित श्राद्ध करने का फलप्राप्त होता है॥ २८-३१॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में चौदहवाँ अध्याय समाप्त।

तृतीय अंश - पन्द्रहवाँ अध्याय

(श्राद्धभोजी ब्राह्मणों का लक्षण एवं योगिजन की प्रशंसा)

औंर्व उवाच ।

ब्राह्मणान् भोजयेच्छ्राद्धे यद्गुणांस्तान्निबोध मे ।
त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित् ॥ १ ॥

वेदविच्छ्रोत्रियो योगी तथा वै ज्येष्ठसामगः ।
ऋत्विक् स्वस्त्रेय-दौहित्र-जामातृ-श्वशुरास्तथा ॥ २ ॥

मातुलोऽथ तपोनिष्ठः पञ्चाग्न्यभिरतस्तथा ।
शिष्याः सम्बन्धिश्चैव मातापितृरतश्च यः ॥ ३ ॥
एतान् नियोजयेच्छ्राद्धे पूर्वोक्तान् प्रथमं नृप !
ब्राह्मणान् पितृपुष्ट्यर्थमनुकल्पेष्वनन्तरान् ॥ ४ ॥

औंर्व बोले—श्राद्धकाल में जिस प्रकार के ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये वह मुझसे श्रवण करो । त्रिणाचिकेत, १ त्रिमधु, २ त्रिसुपर्ण ३ षडङ्ग, वेदाध्यायी, वेदज्ञ, श्रोत्रिय, योगी और ज्येष्ठ सामगको४ श्राद्ध में भोजन कराना उत्तम होता है । हे राजन् ! ऋत्विग्, भागिनेय, दौहित्र, जमाई, श्वशुर, मामा, तपस्वी, पञ्चाग्निपरायण ५, शिष्य, सम्बन्धी, माता, पिता के सेवा में परायण—इन सभी को भी पितरों की तृप्ति कामना से श्राद्ध में नियुक्त करे । यदि श्राद्ध में पूर्वोक्त ब्राह्मण न मिले तब इनके अतिरिक्त ब्राह्मण को भोजन करावे ॥ १-४ ॥

मित्रध्रुक् कुनखी क्लीबः श्यावदन्तस्तथा द्विजः ।
कन्यादूषयिता वह्निवेदोज्झः सोमविक्रयी ॥ ५ ॥

अभिशस्तस्तथा स्तेनः पिशुनो ग्रामयाजकः ।
भृतकाध्यापकस्तद्वद् भृतकाध्यापितश्च यः ॥ ६ ॥

परपूर्वापतिश्चैव मातापित्रोस्तथोज्झकः
वृषलीसूतिपोष्टा च वृषलीपतिरेव च ॥ ७ ॥

तथा देवलकश्चैव श्राद्धे नार्हन्ति केतनम् ॥ ८ ॥

मित्रद्रोही, कुनखी, नपुंसक, स्वभाव से ही काले दाँत-वाले, कन्यादूषक, अग्नि और वेद का त्याग करने वाले, सोमरस को बेचनेवाले, महापातकी के नाम से जनसमूह में प्रसिद्ध, चोर, दुष्ट, ग्रामपुरोहित, वेतन ग्रहणकर वेद पढ़ानेवाले और इसी प्रकार वेद पढ़नेवाले प्रथम दूसरे को दी गयी कन्या के पुनः अन्य पति होने वाले, माता-पिता का परित्याग करने वाले, शूद्र सन्तान का पालन करने वाले, शूद्रापति और देवल—ये समस्त ब्राह्मण श्राद्ध में स्थान पाने योग्य नहीं हैं ॥ ५-८ ॥

प्रथमेऽह्नि बुधः शस्ताञ्छ्रोत्रियादीन् निमन्त्रयेत् ।
कथयेच्च तथैवैषां नियोगान् पैत्र्यदैविकान् ॥ ९ ॥

ततः क्रोधव्यवायादीनयासं दैर्द्विजैः सह ।
यजमानो न कुर्वीत दोषस्तत्र महानयम् ॥ १० ॥

श्राद्धे नियुक्तो भुक्तवा वा भोजयित्वा नियुज्य च ।
व्यवायी रेतसो गर्त्ते मज्जयत्यात्मनः पितृन् ॥ ११ ॥

तस्मात् प्रथममत्रोक्तं द्विजाग्र्याणां निमन्त्रणम् ।
अनिमन्त्र्य द्विजान् गेहमागतान् भोजयेद् यतीन् ॥ १२ ॥

पादशौचादिना गेहमागतान् पूजयेद् द्विजान् ।
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत् ॥ १३ ॥

पितृणामयुजो युग्मान् देवानामिच्छया द्विजान् ।
देवानामेकमेकं वा पितृणाञ्च नियोजयेत् ॥ १४ ॥

विज्ञ जन को चाहिये कि श्राद्धतिथि के एक दिन पूर्व प्रशस्त श्रोत्रिय ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे एवं निमन्त्रण के समय ही आप देवपक्ष के और आप पितृपक्ष के ब्राह्मण हैं ऐसा कहे । श्राद्धदिन में श्राद्धकर्ता एवं श्राद्धभोजी ब्राह्मण, क्रोध, स्त्रीप्रसङ्ग एवं परिश्रम न करे, इन कार्यों को करने से महादोष होता है । श्राद्ध के पूर्व दिन में निमन्त्रण देकर अथवा निमन्त्रित होकर श्राद्ध के दिन श्राद्ध में भोजन कराकर अथवा

भोजन करके मैथुन करने से मैथुनकर्ता अपने पितरों को रेतकुण्ड में गिराता है। अतएव श्राद्ध के पूर्वदिन ही श्राद्धभोजी ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे। यदि ब्राह्मणों को निमन्त्रित न करे तो घर में आये हुए अनिमन्त्रित संन्यासियों को भोजन करावे। ब्राह्मणों के घर में आने पर उनका पूजन करे। पश्चात् उन ब्राह्मणों के आचमन आदि कर लेने पर पवित्रपाणि होकर उन ब्राह्मणों को निर्दिष्ट आसन पर विराजमान कराये अपनी शक्ति के अनुसार पितृपक्ष में अयुग्म एवं देवपक्ष में युग्म ब्राह्मणों को भोजन करावे। नितान्त असमर्थता की अवस्था पितृपक्ष एवं देवपक्ष में एक एक ब्राह्मण को ही भोजन करावे ॥ ९-१४ ॥

तथा मातामहश्राद्धं वैश्वदेवसमन्वितम्।
कुर्वीत भक्तिसम्पन्नस्तन्त्रं वा वैश्वदैविकम् ॥ १५ ॥

प्राङ्मुखान् भोजयेद् विप्रान् देवानामुभयात्मकान्।
पितृमातामहानाञ्च भोजयेच्चाप्युदङ्मुखान् ॥ १६ ॥

पृथक् तयोः केचिदाहुः श्राद्धस्य करणं नृप!
एकत्रैकेन-पाकेन वदन्त्यन्ये महर्षयः ॥ १७ ॥

विष्टरार्थं कुशान् दत्त्वा सम्पूज्यार्घ्यविधानतः।
कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां तदनुज्ञया ॥ १८ ॥

इसी क्रम से शक्तिसम्पन्न होने पर मातामह श्राद्ध भी वैश्वदेवयुक्त ही करे अथवा पितृपक्ष और मातामहपक्ष मिलाकर एक ही वैश्वदेव नियुक्त करे। देवपक्ष के ब्राह्मणों को पूर्वमुख और पितृपक्ष के तथा मातामहपक्ष के ब्राह्मणों को उत्तरमुख भोजन करावे॥ हे राजन्! कोई कोई महर्षि कहते हैं कि पितामहवर्ग और मातामहवर्ग का पृथक् पृथक् श्राद्ध करना चाहिये। एक बार में ही उभयपक्ष का श्राद्ध करना चाहिये ऐसा भी किसी का मत है। विज्ञ जन को चाहिये के सर्वप्रथम ब्राह्मणगण के बैठने के लिये कुश समूह प्रदान करे और अर्घ्यदान आदि से विधिपूर्वक पूजन करके उनकी आज्ञा लेकर देवगण का आवाहन करे ॥ १५-१८ ॥

यवाम्बुना च देवानां दद्यादर्घ्यं विधानवित्।
स्रग्-गन्ध-धूप-दीपांश्च तेभ्यो दद्याद् यथाविधि ॥ १९ ॥

पितणामपसव्यं तत् सर्वमेवोपकल्पयेत् ।
अनुज्ञाञ्च ततः प्राप्य दत्त्वा दर्भान् द्विधाकृतान् ॥ २० ॥

मन्त्रपूर्वं पितृणान्तु कुर्याच्चावाहनं बुधः ।
तिलाम्बुना चापसव्यं दद्यादर्घ्यादिकं नृप ॥ २१ ॥

काले तत्रातिथिं प्राप्तमन्नकामं नृपाध्वगम् ।
ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञातः कामं तमपि भोजयेत् ॥ २२ ॥

योगिनो विविधै रूपैर्नराणामुपकारिणः ।
भ्रमन्ति पृथिवीमेतामविज्ञातस्वरूपिणः ॥ २३ ॥

तस्मादभ्यर्चयेत् प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथि बुधः ।
श्राद्धक्रियाफलं हन्ति नरेन्द्रापूजितोऽतिथिः ॥ २४ ॥

पश्चात् विधानज्ञ व्यक्ति यवसहित जलद्वारा देवगण को अर्ध्यप्रदान करे एवं विधि पूर्वक माला, गन्ध, धूप, दीप दान करे । अनन्तर वामभाग में पितृगण को भी अर्ध्य आदि प्रदान करके ब्राह्मण की आज्ञा ग्रहण के बाद दोनों भागों में कुशा प्रदान करे । पण्डितव्यक्ति पितृगण का आवाहन करे । हे राजन् ! पश्चात् तिल जल द्वारा वामभाग में अर्ध्यादि प्रदान करे । हे राजन् ! इस समय में यदि कोई भूखा पथिक अतिथिरूप से उपस्थित हो जाय तो ब्राह्मण से आज्ञा लेकर उसको भी भोजन करावे । अज्ञातस्वरूपवाले योगिगण लोकोपकार की भावना से नाना रूप धारण करके इस पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं । हे राजन् ! इसी कारण से ज्ञानीजन श्राद्धकाल में उपस्थित अतिथियों की पूजा करते हैं । यदि अतिथि की पूजा न की जाय तो श्राद्धकाल विनष्ट हो जाता है ॥ १९-२४ ॥

जुहुयाद् व्यञ्जनक्षारवर्जमन्नं ततोऽनले ।
अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिकृत्वः पुरुषर्षभ ॥ २५ ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! ब्राह्मणगण की आज्ञा लेकर लवण वर्जित शाक प्रभृति एवं अन्नद्वारा तीन बार अग्नि में आहुति दे ॥ २५ ॥

अग्नये कव्यवाहाय स्वाहेत्यादौ नृपाहुतिः ।
सोमाय वै पितृमते दातव्या तदनन्तरम् ॥ २६ ॥

वैवस्वताय चैवान्या तृतीया दीयते ततः ।

हुतावशिष्टमल्पाल्पं पितृपात्रेषु निर्वपेत् ॥ २७ ॥

ततोऽत्र मिष्टमत्यर्थमभीष्टमतिसंस्कृतम् ।

दत्त्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम् ॥ २८ ॥

भोक्तव्यं तैश्च तच्चित्तैर्मौनिभिः सुमुखैः सुखम् ।

अक्रुध्यता चात्वरता देयं तेनापि भक्तितः ॥ २९ ॥

हे नृप ! प्रथम आहुति 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' द्वितीय आहुति 'सोमाय पितृमते स्वाहा' तृतीय आहुति 'वैवस्वताय स्वाहा' इन मन्त्रों द्वारा दे । इसके बाद हुतावशेष अन्न लेकर थोड़ा थोड़ा पितृपात्र में परोसे । अनन्तर अत्यन्त अभीष्ट पूर्ण परिपक्व, मीठा अन्न निमन्त्रित ब्राह्मणों को परोसकर अत्यन्त नम्र एवं कोमल स्वर से कहे कि आप लोग यथेच्छ भोजन करें । ब्राह्मणगण को भी तन्मय होकर मौनावलम्बनपूर्वक प्रसन्न भाव से भोजन करना चाहिये ॥ २६-२९ ॥

रक्षोघ्नमन्त्रपठनं भूमेरास्तरणं तिलैः ।

कृत्वा ध्ययाः स्वपितरस्त एव द्विजसत्तमाः ॥ ३० ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

मम तृप्तिं प्रयान्त्वग्निहोमाप्यायितमूर्तयः ॥ ३१ ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

तृप्तिं प्रयान्तु पिण्डेन मया दत्तेन भूतले ॥ ३२ ॥

बाद में रक्षोघ्न मन्त्र का पाठकर भूमि पर तिल छोड़ दे तथा उन सभी ब्राह्मणों को अपने पितृस्वरूप समझे । हमारे पिता, पितामह, प्रपितामह ब्राह्मण शरीर में अवस्थित होकर तृप्तिलाभ करें, श्राद्धकर्ता की ऐसी भावना होनी चाहिये । हमारे पिता, पितामह, प्रपितामह अग्नि में हवनद्वारा आप्यायित मूर्ति होकर पूर्ण तृप्ति लाभ करें । इस प्रकार का भी मनोभाव होना आवश्यक है । हमारे पिता, पितामह, प्रपितामह पृथ्वी पर मेरे द्वारा दिये गये पिण्डद्वारा तृप्तिलाभ करें ॥ ३०-३२ ॥

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ।

तृप्तिं प्रयान्तु मे भक्तया मन्मयैतदिहाकृतम् ॥ ३३ ॥

मातामहस्तृप्तिमुपैतु तस्य तथा पिता तस्य पिता तथान्यः ।

विश्वे च देवाः परमा प्रयान्तु तृप्तिं प्रणश्यन्तु च यातुधानाः ॥ ३४ ॥

यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य भोक्ताव्ययात्मा हरिरीश्वरोऽत्र ।

तत्सन्निधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे ॥ ३५ ॥

इस श्राद्धमें मैं जिस कार्य को करने में असमर्थ हूँ उसे भी हमारे पिता, पितामह, प्रपितामह मेरी भक्तिद्वारा सम्पन्न इस श्राद्ध कर्म से तृप्तिलाभ करें । हमारे मातामह, प्रमातामह, वृद्धमातामह एवं विश्वेदेवगण तृप्त हों और समस्त ब्राह्मणगण भी प्रसन्न हों । तथा राक्षसगण नष्ट हों । समस्त हव्य (देवोद्दिष्ट अन्न) कव्य (पितृगण के उद्देश्य से दिया हुआ अन्न), भोक्ता अव्ययात्मा यज्ञेश्वर हरि इस स्थल में विराजमान है । उनकी सन्निधि से इसी क्षण राक्षस एवं असुर समुदाय यहाँ से पलायन करे ॥ ३३-३५ ॥

तृप्तिष्वेतेषु विकिरेदन्नं विप्रेषु भूतले ।

दद्यादाचमनार्थाय तेभ्यो वारि सकृत् सकृत् ॥ ३६ ॥

सुतृप्तैस्तैरनुज्ञातः सर्वेणान्नेन भूतले ।

सतिलेन ततः पिण्डान् सम्यग् दद्यात् समाहितः ॥ ३७ ॥

पितृतीर्थेन सतिलान् दद्यादथ जलाञ्जलीन् ।

मातामहेभ्यस्तेनैव पिण्डांस्तीर्थेन निर्वपेत् ॥ ३८ ॥

दाक्षिणाप्रवणञ्चैव प्रयत्नेनोपपादयेत् ।

अवकाशेषु चोक्षेषु जलतीरेषु चैव हि ॥ ३९ ॥

दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपादिपूजितम् ।

स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥ ४० ॥

पितामहाय चैवान्यत् तत्पित्रे च तथापरम् ।

दर्भमूले लेपभुजः प्रीणयेल्लेपघर्षणैः ॥ ४१ ॥

इसके बाद आचमन करने के लिये ब्राह्मणों को एक एक चिल्लू जल देना चाहिये । इसके बाद संतुष्ट ब्राह्मणों द्वारा आज्ञा प्राप्त होने पर सावधान मनसे तिल और व्यञ्जन आदि सहित अन्न के पिण्ड बनाकर पृथ्वी पर पिण्डप्रदान करे । अनन्तर

पितृतीर्थद्वारा तिलसहित जलाञ्जलि दे । और मातामह आदि को भी पितृ-तीर्थद्वारा ही भूमिपर पिण्ड प्रदान करे । ये समस्त कर्म सावधानी पूर्वक दक्षिण प्रवण भूमिपर करे । जलाशय के तटपर अथवा अन्य कोई उत्तम परिष्कृत स्थान में किंवा ब्राह्मण के उच्छिष्ट के समीप दक्षिणाग्र कुशा बिछाकर प्रथम पिता के लिये पुष्प, धूप, दीपादि के द्वारा पूजित पिण्डप्रदान करे । इसके बाद पितामह को इसी प्रकार एक पिण्ड और प्रपितामह को भी एक पिण्डप्रदान करे । अनन्तर हाथ मे लगे हुए अन्न को घर्षण पूर्वक 'लेपभागभुजः पितरस्तृप्यन्ताम्' लेपभाग-भोजी पितृगण तृप्त हो ऐसा बोलकर कुशमूल में पोंछ दे ॥ ३६-४१ ॥

पिण्डैर्मातामहांस्तद्वद् गन्धमाल्यादिसंयुतैः ।
पूजयित्वा द्विजाग्रयाणां दद्याच्चाचमनं ततः ॥ ४२ ॥

पितृभ्यः प्रथमं भक्तया तन्मनस्को नरेश्वर !
सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्तया च दक्षिणाम् ॥ ४३ ॥

दत्त्वा च दक्षिणां तेभ्यो वाचयेद्वैश्वदेविकान् ।
प्रीयन्तामिह ये विश्वेदेवास्तेन इतीरयेत् ॥ ४४ ॥

तथेति चोक्ते तैर्विप्रैः प्रार्थनीयास्तथाशिषः ।
पश्चाद्विसर्जयेद् देवान् पूर्व पैत्र्यान्महीपते ॥ ४५ ॥

मातामहानामप्येवं सह देवैः क्रमः स्मृतः ।
भोजने च स्वशक्तया च दाने तद्वद् विसर्जने ॥ ४६ ॥

आपादशौचनात् पूर्वं कुर्याद् देवद्विजन्मसु ।
विसर्जनन्तु प्रथमं पैत्रमातामहेषु वै ॥ ४७ ॥

पश्चात् गन्ध, पुष्पमाला से युक्त पिण्डद्वारा मातामहादि का भी पूजन करके ब्राह्मणगण को आचमन का जल प्रदान करे । हे नरेश्वर ! तन्मय होकर यह 'सुस्वधा' इस प्रकार के आशीर्वचन ग्रहण करने के बाद पितृ सम्बन्धी ब्राह्मणों को सामर्थ्यानुसार दक्षिणा दे । दक्षिणा देने के बाद वैश्वदेविक ब्राह्मणों के समीप इस दक्षिणा दान से विश्वेदेवा सम्बन्धी ब्राह्मण प्रसन्न हो ऐसा बोले । इन ब्राह्मणों से इसका उत्तर भी ग्रहण करे । अर्थात् विश्वेदेवा सम्बन्धी ब्राह्मण 'तथास्तु' ऐसा वचन

बोले इस प्रकार आशीर्वाद ग्रहण के अनन्तर प्रथम पितृसम्बन्धी ब्राह्मणों को पश्चात् देवसम्बन्धी ब्राह्मणों को विदा करे । और देवगण के साथ मातामहादि के श्राद्ध के समय भी इसी प्रकार का विधान अवलम्बन करना चाहिये । भोजन, यथाशक्ति दान और विसर्जन—ये समस्त क्रियाएँ पितृ श्राद्ध के क्रम से ही मातामहादि को भी करनी चाहिये । उभयपक्ष के श्राद्धस्थल में ही पहले देवपक्ष के ब्राह्मणों का ही पादप्रक्षालन करना उचित है । किन्तु पितृपक्ष के और मातामहादि पक्ष के ब्राह्मणों का विसर्जन प्रथम करना चाहिये ॥ ४२-४७ ॥

विसर्जयेत् प्रीतिवचः सम्मानाभ्यर्चितांस्ततः ।
निवर्त्तेताभ्यनुज्ञात आ द्वारान्तादनुव्रजेत् ॥ ४८ ॥

ततस्तु वैश्वदेवाख्यां कुर्यान्नित्यक्रियां बुधः ।
भुञ्जीयाच्च समं पूज्य-भृत्य-बन्धुभिरात्मनः ॥ ४९ ॥

विसर्जन के समय ब्राह्मण के पीछे द्वारपर्यन्त जाकर उनके आदेश प्राप्त करके ही पुनः लौटाना चाहिये । इसके बाद बलिवैश्वदेव आदि नित्य क्रियाएँ करनी चाहिये और मान्य व्यक्ति, बन्धु-बान्धव एवं अनुचर प्रभृति के साथ संयत चित्त से भोजन करे ॥ ४८-४९ ॥

एवं श्राद्धं बुधः कुर्यात् पैत्र्यं मातामहं तथा ।
श्राद्धैराप्यायिता दद्युः सर्वान् कामान् पितामहाः ॥ ५० ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रः कुतपस्तिलाः ।
रजतस्य तथादानं कथासङ्कीर्तनादिकम् ॥ ५१ ॥

विज्ञ जन इसी प्रकार पिताश्राद्ध एवं मातामह श्राद्ध का अनुष्ठान करे । पितामह आदि श्राद्धकर्मों से परितृप्त होकर अपनी सन्तान की समस्त कामनाएँ पूर्ण करते हैं । श्राद्धकाल में दौहित्र, कुतपकाल (दिन के आठवें भाग को 'कुतपकाल' कहा जाता है) । तिलचाँदी का दान अथवा चाँदी का कीर्तन दर्शन—ये सभी अत्यन्त पवित्र माने गये हैं ॥ ५०-५१ ॥

वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं कोपोऽध्वगमनं त्वरा ।
भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र ! त्रयमेतन्न शस्यते ॥ ५२ ॥

विश्वेदेवाः सपितरस्तथा मातामहा नृप !
कुलञ्चाप्यायते पुंसां सर्वं श्राद्धं प्रकुर्वताम् ॥ ५३ ॥

श्राद्धकर्ता को चाहिये कि वह श्राद्ध के दिन क्रोध न करे, रास्ता न चले और किसी कार्य में शीघ्रता भी न करे । हे राजेन्द्र ! जो ब्राह्मण श्राद्ध में भोजन करे उनको भी उपरोक्त कार्य नहीं करना चाहिये । हे राजन् ! श्राद्धकर्ता के ऊपर विश्वेदेवा, पितृगण, मातामहगण और उनके वंश के सभी पितर प्रसन्न होते हैं ॥ ५२-५३ ॥

सोमाधारः पितृगणो यागाधारस्तु चन्द्रमाः ।
श्रेष्ठयोगिनियोगस्तु तस्माद् भूपाल ! शस्यते ॥ ५४ ॥

सहस्रस्यापि विप्राणां यौगी चेत् पुरतः स्थितः ।
सर्वान् भोक्तृंस्तारयति यजमानं तथा नृप ॥ ५५ ॥

हे भूपाल ! अग्निष्वात्तादि पितृगण सोम (चन्द्र) के आधारवाले हैं (अर्थात् सोमोपजीवी है) और चन्द्रमा योग का आधार हैं । (इस प्रकार अग्निष्वात्तादि पितृगण योगबल से चन्द्रमा को आप्यायित करते है) अतएव योगिजन मात्र ही पितृगण को आनन्ददायक माने गये हैं । इसी कारण से श्राद्धकाल में श्रेष्ठ योगी को नियुक्त करना उचित माना गया है । हे राजन् ! एक सहस्र श्राद्धभोजी ब्राह्मणों के आगे यदि एकयोगी भी उपस्थित हो जाय तो वह उन समस्त श्राद्धभोजी ब्राह्मणों का और श्राद्धकर्ता का भी उद्धार करता है ॥ ५४-५५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - सोलहवाँ अध्याय

(श्राद्ध में मधु, मांस आदि देने का फल)

हविष्य-मत्स्य-मांसैस्तु शशस्य शकुनस्य च।
शौकरच्छागलैरैणैरौरवैर्गवयेन च॥ १॥

और‍भ्रगव्यैश्च तथा मासवृद्ध्या पितामहाः।
प्रयान्ति तृप्तिं मांसैस्तु नित्यं वाध्रीणसामिषैः॥ २॥

और्व बोले—श्राद्ध में ब्राह्मणों को हविष्य भोजन कराने से पितृगण एक मास पर्यन्त तृप्त रहते हैं, मत्स्य से दो मास, शशक मांस से तीन मास, पक्षी मांस से चार मांस, शूकर मांस से पाँच मास, छाग मांस से छः मास, एण (मृगविशेष) मांस से सात मासरू मृग के मांस से आठ मास गवय से नव मास मेष मास से दश मास, गव्य से ग्यारह मास पर्यन्त तृप्त रहते हैं। किन्तु यदि बाध्रीणस का मांस प्रदान किया जाय तो पितृगण चिरकाल तक तृप्त रहते हैं॥ १-२॥

खड्गमांसमतीवात्र कालशाकं तथा मधु।
शस्तानि कर्मण्यत्यन्त-तृप्तिदानि नरेश्वर॥ ३॥

गयामुपेत्य यः श्राद्धं करोति पृथिवीपते।
सफलं तस्य तज्जन्म जायते पितृतुष्टिदम्॥ ४॥

प्रशान्तिकाः सनीवाराः श्यामाका द्विविधास्तथा।
वनौधषीप्रधानास्तु श्राद्धार्हाः पुरुषर्षभ॥ ५॥

यवाः प्रियङ्गवो मुद्गा गोधूमा व्रीह्यस्तिलाः।
निष्पावाः कोविदाराश्च सर्षपाश्चात्र शोभनाः॥ ६॥

हे राजन् ! गेण्डा का मांस, कृष्ण शाक और मधु—ये वस्तु समूह श्राद्ध कर्म में अत्यन्त प्रशस्त एवं तृप्तिदायक होते हैं । हे पृथ्वीपते ! जो व्यक्ति गया में जाकर श्राद्ध करता है उसका जन्म सफल माना गया है । और उसके पितृ गण अत्यन्त तृप्त रहते हैं । हे पुरुषश्रेष्ठ ! देवधान्य, नीवार, धान्य, श्वेत और कृष्ण ये दो प्रकार के श्यामाक धान्य, तथा वन्य औषधि—समस्त श्राद्ध कर्म में अत्यन्त उपयुक्त माने गये हैं। जौ, प्रियङ्गु, गेहूँ, शारत्कालीन धान मूँग, तिल, मटर, कचनार और सरसों—इन सभी का श्राद्ध में होना प्रशस्त माना गया है ॥ ३-६ ॥

अकृताग्रयणं यच्च धान्यजातं नरेश्वर !
राजमाषानणूंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

अलाबुं गुञ्जनञ्चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् ।
गान्धारकं करम्भाणि लवणान्यौषराणि च ॥ ८ ॥

आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च ।
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ॥ ९ ॥

नक्ताहृतं न चोत्सृष्टं तृप्यते न च यत्र गौः ।
दुर्गन्धि फेनिलञ्चाम्बु श्राद्धयोग्यं न पार्थिव ॥ १० ॥

क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च ।
मार्गञ्च माहिषञ्चैव वर्जयेच्छ्राद्धकर्म्मणि ॥ ११ ॥

षण्ढापविद्धचाण्डालपाषण्डोन्मत्तरोगिभिः ।
कृकवाकु-श्व-नग्नैश्च वानर-ग्रामशूकरैः ॥ १२ ॥

उदक्यासूतकाशौचिमृतहारैश्च वीक्षिते ।
श्राद्धे सुरा न पितरो भुञ्जते पुरुषर्षभ ॥ १३ ॥

तस्मात् परिश्रिते कुर्याच्छ्राद्धं श्रद्धासमन्वितः ।
उर्व्याञ्च तिलंविक्षेपाद् यातुधानान् निवारयेत् ॥ १४ ॥

न पूति नैवोपपन्नं केशकीटादिभिर्नृप ।
न चैवाभिषवैर्मिश्रमन्नं पर्युषितं तथा ॥ १५ ॥

हे राजेश्वर ! जिस अन्न से नवान्न यज्ञ न किया गया हो बड़े उड़द, छोटे उड़द, मसूर, कद्दू, गाजर, प्याज, शलजम, गान्धारक (शालिविशेष), भूसीवाला आटा, ऊस भूमिका लवण, हींग थोड़े थोड़े लाल रंग की वस्तुएँ केवल नमक और जिन वस्तुओं का शास्त्र में लेख नहीं हैं—वे सभी श्राद्ध में वर्जित हैं । और हे राजन् ! जो वस्तु रात में लायी गयी हो अप्रतिष्ठित जलाशय का तथा गौ तृप्त न हो ऐसे गड्ढे का जल अथवा दुर्गन्ध और फेन युक्त जल श्राद्ध के योग्य नहीं होता । एक खुरवालों का, ऊँटनीका, भेड़ का, मृगी का और भैंस का दूध श्राद्ध कर्म में वर्जित है । हे पुरुषश्रेष्ठ ! नपुंसक, सत्पुरुषों द्वारा बहिष्कृत, चाण्डाल, पापी, पाषण्डी, रोगी, कुक्कुट, कुत्ता, नग्न (वैदिक कर्मों को त्याग करने वाला पुरुष) वानर, ग्राम्य शूकर, रजस्वला स्त्री, जन्म अथवा मरण के अशौच से युक्त पुरुष, शव ले जाने वाले पुरुष इनमें से किसी की भी दृष्टि पड़ जाने से देवता अथवा पितृगण कोई भी श्राद्ध में भाग नहीं लेते । अतएव किसी घिरे हुए स्थान में श्रद्धापूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्न करे तथा पृथ्वीपर तिल छिटकाकर विघ्नकारी राक्षसों को निवृत्त कर दे । हे राजन् ! दुर्गन्ध, केश, नखयुक्त, कीटयुक्त, काञ्ची मिला हुआ एवं बासी अन्न श्राद्ध में देना निषेध है ॥ ७-१५ ॥

श्रद्धासमन्वितैर्दत्तं पितृभ्यो नामगोत्रतः ।
यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत् ॥ १६ ॥

श्रूयन्ते चापि पितृभिर्गीता गाथा महीपते ।
ईक्ष्वाकोर्मनुपुत्रस्य कलापोपवने पुरा ॥ १७ ॥

अपि नस्ते भविष्यन्ति कुले सन्मार्गगामिनः ।
गयामुपेत्य ये पिण्डान् दास्यन्त्यस्माकमादरात् ॥ १८ ॥

अपि नः स्वकुले जायाद् यो नो दद्यात् त्रयोदशीम् ।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां वर्षासु च मघासु च ॥ १९ ॥

गौरीं वाप्युद्वहेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ।
यजेत वाश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥ २० ॥

श्रद्धायुक्त पुरुषों द्वारा नाम, गोत्र उच्चारणपूर्वक पितरों को अन्न दान करने से पितर तृप्त होते हैं । और जैसे आहार के अभ्यासी पितृगण होते हैं वैसा ही आहार

होकर उनको प्राप्त होता है । हे राजन् ! इस सम्बन्ध में एक प्राचीन गाथा सुनी जाती है जो मनुपुत्र महाराज इक्ष्वाकुको पितृगण ने कलाप उपवन में कही थी । क्या हमारे कुल में ऐसे सन्मार्गशील पुरुष होंगे जो गया में जाकर पिण्डप्रदान करेंगे । क्या हमारे वंश में ऐसा कोई पुरुष होगा जो वर्षाकालीन मघानक्षत्र वाली त्रयोदशी को हमारे उद्देश्य से मधु और घृतयुक्त पायस प्रदान करेगा ? अथवा गौरी (दशवर्ष की आयुवाली) कन्या का दान करेगा, नील साँड़ छोड़ेगा अथवा दक्षिणासहित विधि-पूर्वक अश्वमेध यज्ञ करेगा ? ॥ १६-२० ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ।

तृतीय अंश - सत्रहवाँ अध्याय

विष्णुस्तुति एवं मायामोह की उत्पत्ति

इत्याह भगवानौर्वः सगराय महात्मने !
सदाचारान् पुरा सम्यङ् मैत्रेय ! परिपृच्छते ॥ १ ॥

मयाप्येतदशेषेण कथितं भवते द्विज !
समुल्लङ्घ्य सदाचारं कश्चिन्नाप्नोति शोभनम् ॥ २ ॥

पराशर जी बोले—हे मैत्रेय ! प्राचीनकाल में सगर राजा द्वारा सदाचार विषयक प्रश्न करने पर और्व ने समस्त बातें कही थी । मैंने भी तुमको सम्पूर्ण रूप से वही सदाचार विषय का वर्णन किया । सदाचार का परित्याग करके कोई भी कल्याण प्राप्त नहीं कर सकता ॥ १-२ ॥

मैत्रेय उवाच ।

षण्ढापविद्धप्रमुखा विदिता भगवन ! मया ।
उदक्याद्याश्च ये सर्वे नग्नमिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥

को नग्नः किं समाचारो नग्नसंज्ञां नरो लभेत् ।
नग्नस्वरूपमिच्छामि यथावद् गदितं त्वया ।
(श्रोतुं धर्मभृतां श्रेष्ठ ! न ह्यस्त्यविदितं तव) ॥ ४ ॥

मैत्रेय बोले—हे भगवन् ! क्लीव, अपविद्ध और रज स्वलादि जिसको कहते हैं उसको मैं जानता हूँ किन्तु नग्न किसको कहते हैं वह मैं नहीं जानता, अतएव मैं नग्न के विषय में जानना चाहता हूँ । नग्न किसे कहते हैं ? और नग्न मनुष्य कैसे आचरण वाला होता है ? नग्न का स्वरूप क्या है ? हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ ! आप

इन समस्त विषयों को यथावत् कहिये, मैं सुनना चाहता हूँ क्योंकि आपको कोई भी बात अविदित नहीं है ॥ ३-४ ॥

पराशर उवाच ।

ऋग्यजुःसामसंज्ञेयं त्रयी वर्णावृतिर्द्विज !
एतामुज्झति यो मोहात् स नग्नः पातकी स्मृतः ॥ ५ ॥

त्रयी समस्तवर्णानां द्विज ! संवरणं यतः ।
नग्नो भवत्युज्झितायामतस्तस्यां न संशयः ॥ ६ ॥

पराशर जी बोले—हे द्विज ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीनों वणों के आवरणस्वरूप ऋक्, यजुः और साम नामक वेदत्रयी को जो व्यक्ति मोहवश परित्याग करता है उसी पातकी को नग्न कहते हैं । वेदत्रयी समस्त वर्णों का आवरण स्वरूप है, अतएव इस आवरणस्वरूप को परित्याग करनेवाला पुरुष नग्न कहा जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ ५-६ ॥

इदञ्च श्रूयतामन्यद् भीष्माय सुमहात्मने ।
कथयामास धर्मज्ञो वसिष्ठोऽस्मत्पितामहः ॥ ७ ॥

मयापि तस्य गदतः श्रुतमेतन्महात्मनः ।
नग्नसम्बन्धि मैत्रेय ! यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ ८ ॥

देवासुरमभूद् युद्धं दिव्यमब्दं पुरा द्विज !
तस्मिन् पराजिता देवा दैत्यैर्ह्लादपुरोगमैः ॥ ९ ॥

क्षीरोदस्योत्तरं कूलं गत्वातप्यन्त वै तपः ।
विष्णोराराधनार्थाय जगुश्चेमं स्तवं तदा ॥ १० ॥

हमारे पितामह धर्मज्ञ वशिष्ठ ने महात्मा भीष्म को जो कहा था उसे श्रवण करो । हे मैत्रेय ! तुमने जो मुझसे नग्न विषयक प्रश्न किये हैं, इसे महात्मा मेरे पितामह जब भीष्म को कह रहे थे उस समय मैंने श्रवण किया था । हे द्विज ! पूर्वकाल में किसी समय दिव्य एक वर्षपर्यन्त देवगण और असुरगण का परस्पर युद्ध हुआ था । उस युद्ध में ह्राद प्रभृति दैत्यों ने देवगण को पराजित कर दिये थे ।

अनन्तर देवताओं ने क्षीरसमुद्र के उत्तर तीरपर जाकर श्रीविष्णुभगवान् की आराधना के लिये नीचे लिखी स्तुति की थी ॥ ७-१० ॥

आराधनाय लोकानां विष्णोरीशस्य यां गिरम् ।
वक्ष्यामो भगवानाद्यस्तया विष्णुः प्रसीदतु ॥ ११ ॥

यतो भूतान्यशेषाणि प्रसूतानि महात्मनः ।
यस्मिंश्च लयमेष्यन्ति कस्तं स्तोतुमिहेश्वरः ॥ १२ ॥

देवगण बोले—हम लोग लोकप्रभु श्रीविष्णु की आराधना के लिये जो वाक्य उच्चारण करते हैं उससे आदिभूत भगवान् श्रीविष्णु प्रसन्न हों । जिन महात्मा से अनन्त भूतसमुदाय उत्पन्न हुए हैं और जिनमें विलीन हो जायँगे उनकी स्तुति करने के लिए कौन व्यक्ति समर्थ हो सकता है ॥ ११-१२ ॥

तथाप्यरातिविध्वंसध्वस्तवीर्या भवार्थिनः ।
त्वां स्तोष्यामस्तवोक्तीनां याथार्थ्यं नैव गोचरे ॥ १३ ॥

त्वमुर्वी सलिलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ।
समस्तमन्तःकरणं प्रधानं तत्परः पुमान् ॥ १४ ॥

एकं तवैतद् भूतात्मन् ! मूर्त्तामूर्त्तमयं वपुः ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं स्थानकालविभेदवत् ॥ १५ ॥

तत्रेश ! तव यत्पूर्वं त्वन्नाभिकमलोद्भवम् ।
रूपं विश्वोपकाराय तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥ १६ ॥

शक्रार्क-रुद्र-वस्वश्वि-मरुत्सोमादिभेदवत् ।
वयमेयत् स्वरूपं यत् तस्मै देवात्मने नमः ॥ १७ ॥

दम्भप्रायमसम्बोधि तितिक्षा-दमवर्जितम् ।
यद्रूपं तव गोविन्द ! तस्मै दैत्यात्मने नमः ॥ १८ ॥

नातिज्ञानवहा यस्मिन् नाड्यः स्तिमिततेजसि ।
शब्दादिलोभि यत्तस्मै तुभ्यं यक्षात्मने नमः ॥ १९ ॥

क्रौर्यमायामयं घोरं यच्च रूपं तवासितम्।
निशाचरात्मने तस्मै नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ २० ॥

स्वर्गस्थधर्मिसद्धर्म-फलोपकरणं तव।
धर्माख्यञ्च तथा रूपं नामस्तस्मै जनार्दन ॥ २१ ॥

हर्षप्रायसंसर्गि गतिमद् गमनादिषु।
सिद्धाख्यं तव यद्रूपं तस्मै सिद्धात्मने नमः ॥ २२ ॥

हे प्रभो ! आपकी स्तुति के विषय में यद्यपि हम लोगों का वाक्य और मन असमर्थ है तथापि हमलोग शत्रुद्वारा पराजित एवं शक्तिविहीन होकर अपने कल्याण के लिए आपकी स्तुति करने के लिए तत्पर हैं। आप जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, अन्तःकरण तथा आप ही प्रकृति के अंश और प्रकृति से परे स्वतन्त्र पुरुष भी हैं। हे भूतात्मन् ! आपका एक मात्र मूर्त और अमूर्त शरीर ब्रह्म से लेकर स्तम्बपर्यन्त स्थान एवं काल को विभोर करना वाला है। हे ईश्वर ! सृष्टि निर्माण के समय आपके नाभिकमल से उत्पन्न हुआ जो प्रथम रूप है उस ब्रह्मस्वरूपी आपको नमस्कार है। हम लोग इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, रुद्र, वसु, अग्नि, मरुत्स्वरूप आपको नमस्कार करते हैं। हे गोविन्द ! आपका जो स्वरूप दम्भयुक्त, विवेकरहित, क्षमा एवं दमसे विहीन हैं आपके उस दैत्यरूप को हम लोग नमस्कार करते हैं। हृदयस्वरूप समस्त नाड़ी विशेष को ज्ञानाधार मानकर जिसका तेज स्तिमित हो जाता है, शब्दादि विषयों में जिसकी आसक्ति बनी रहती है उस यक्षस्वरूप आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम ! क्रूरता और माया का अद्वितीय आधार जो मूर्ति घोर तमोमय कह कर विख्यात आपका निशाचर स्वरूप है उसको नमस्कार करते हैं। हे जनार्दन ! स्वर्गस्थ धार्मिकगण के उत्तमधर्म के फल स्वरूप अदृष्ट आपका ही रूपविशेष है उस अदृष्टस्वरूप आपको नमस्कार है। जो जल, अग्नि आदि गमनीय स्थानों में जाकर भी सदा निर्लिप्त और प्रसन्न रहता है ऐसे सिद्धस्वरूप आपको नमस्कार है ॥ १३-२२ ॥

अतितिक्षाधनं क्रूरमुपभोगमयं हरे।
द्विजिह्वं तव यद्रूपं तस्मै नागात्मने नमः ॥ २३ ॥

अवबोधि च यच्छान्तमदोषमपकल्मषम्।
ऋषिरूपात्मने तस्मै विष्णो रूपाय ! ते नमः ॥ २४ ॥

भक्षयत्यथ कल्पान्ते भूतानि यदवारितम्।
त्वद्रूपं पुण्डरीकाक्ष ! तस्मै कालात्मने नमः ॥ २५ ॥

सम्भक्ष्य सर्वभूतानि देवादीन्यविशेषतः।
नृत्यत्यन्ते च यद्रूपं तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ २६ ॥

प्रवृत्या रजसो यच्च कर्मणां कारकात्मकम्।
जनार्दन् ! नमस्तस्मै त्वद्रूपाय नरात्मने ॥ २७ ॥

अष्टाविंशद्वधोपेतं यद्रूपं तामसं तव।
उन्मार्गगामि सर्वात्मन् तस्मै ! पश्वात्मने नमः ॥ २८ ॥

यज्ञाङ्गभूतं यद्रूपं जगतः सिद्धिसाधनम्।
वृक्षादिद्भेदि तस्मै मुख्यात्मने नमः ॥ २९ ॥

तिर्यङ्मानुषदेवादि व्योमशब्दादिकञ्च यत्।
रूपं तवादेः सर्वस्य तस्मै सर्वात्मने नमः ॥ ३० ॥

हे हरे ! जो अक्षमा का आश्रय अत्यन्त क्रूर और कामोपभोग में समर्थ आपका दो जीभवाला रूप है उस नागस्वरूप आपको नमस्कार है। हे विष्णो ! जो ज्ञानमय, शान्त, दोषरहित और कल्मषहीन है उस आपके मुनिमयस्वरूप को नमस्कार है। जो कल्प के अन्त में अबाधरूप से समस्त प्राणियों का भक्षण करता है। हे पुण्डरीकाक्ष ! उस कालस्वरूप आपको नमस्कार है। और जो कल्प के अन्त में देवता आदि समस्त प्राणियों को सामान्य भाव से भक्षण करके नृत्य करता है आपके उस रुद्रस्वरूप को नमस्कार है। हे जनार्दन ! रजोगुण की प्रवृत्ति के कारण जो कर्मों का कारणस्वरूप है आपके उस नरात्मकस्वरूप को नमस्कार है। अट्ठाईस प्रकार के वधों से युक्त तमोमय और उन्मार्गगामी जो आपका रूप है। हे सर्वात्मन् ! उस पशु स्वरूप को नमस्कार है। जगत् की स्थिति का साधन तथा यज्ञ का अङ्गभूत है एवं वृक्ष, लता, गुल्म, वीरुध, तृण और गिरि-इन छः भेदों से युक्त हैं उन आपके मुख्यरूप को नमस्कार है। तिर्यक् मनुष्य तथा देवता आदि प्राणी, आकाशादि पञ्चभूत और शब्दादि उनके गुण—ये सब सबके आदिभूत आप ही के रूप हैं, अतः आप सर्वात्मा को नमस्कार है ॥ २३-३० ॥

प्रधानबुद्ध्यादिमयादशेषाद् यदन्यदस्मात् परमं परात्मन् !
रूपं तवाद्यं न यदन्यतुल्यं तस्मै नमः कारणकारणाय ॥ ३१ ॥
शुक्लादिदीर्घादिघनादिहीन मगोचरे यच्च विशेषणानाम् ।
शुद्धातिशुद्धं परमर्षिदृश्यं रूपाय तस्मै भगवन् ! नताः स्मः ॥ ३२ ॥
यन्नः शरीरेषु यदन्यदेहेष्वशेषजन्तुष्वजमव्ययं यत् ।
यस्माच्च नान्यद्व्यतिरिक्तमस्ति ब्रह्मस्वरूपाय नताः स्म तस्मै ॥ ३३ ॥
सकलमिदमजस्य यस्य रूपं परमपदात्मवतः सनातनस्य ।
तमनिधनमशेषबीजभूतं प्रभुममलं प्रणताः स्म वासुदेवम् ॥ ३४ ॥

हे परमात्मन् ! आपकी जो मूर्ति प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार आदि प्रपञ्चमय समस्त जगत् से पृथक् है और उसके समान अन्य कोई रूप नहीं हैं उस कारण के कारण-स्वरूप आपको नमस्कार है । और हे भगवन् ! आपकी जो मूर्ति शुक्ल, कृष्ण आदि रूप से विहीन है और जिस मूर्ति की ह्रस्वता, दीर्घता आदि परिमाण नहीं है, तथा घनत्व आदि गुण से रहित है और जो मूर्ति विशेषण से अगोचर है, जो पवित्र से भी पवित्रतम है, महर्षिगण जिस मूर्ति का दर्शन करते हैं उस मूर्ति को नमस्कार है । जो आपकी मूर्ति हमलोगों के शरीर में और अन्यान्य शरीर समुदाय में एवं पदार्थ समूहों में विराजमान है, तथा जो जन्म-मृत्यु से रहित है, जिससे भिन्न अन्य कोई वस्तु नहीं है, उस ब्रह्मस्वरूप विष्णुमूर्ति को हम लोग नमस्कार करते हैं । जो उत्पत्ति रहित है तथा यह समस्त प्रपञ्च जिनका स्वरूप विशेष हैं, परमपद ब्रह्म ही जिनकी आत्मा है, जो नित्य अक्षय निर्मलस्वरूप प्रभु हैं, जो समस्त जगत् के कारणभूत हैं उन वासुदेव भगवान् को हम नमस्कार करते हैं ॥ ३१-३४ ॥

स्तोत्रस्यावसाने ते ददृशुः परमेश्वरम् ।
शङ्खचक्रगदापाणिं गरुडस्थं सुरा हरिम् । ३५ ॥

तमूचुः सकला देवाः प्रणिपातपुरःसरम् ।
प्रसीद देव ! दैत्येभ्यस्त्राहीति शरणार्थिनः ॥ ३६ ॥

त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च दैत्यैर्ह्रादपुरोगमैः ।
हृतं नो ब्रह्मणोऽप्याज्ञामुल्लङ्घ्य परमेश्वर ॥ ३७ ॥

यद्यप्यशेषभूतस्य वयं ते च तवांशकाः ।
तथाप्यविद्याभेदेन भिन्नं पश्यामहे जगत् ॥ ३८ ॥

पराशर जी बोले—स्तोत्र की समाप्ति होने पर देवगण ने शङ्ख, चक्र, गदाधारी एवं गरुड़पर विराजमान भगवान् श्रीहरि का दर्शन किया । उस समय समस्त देवगण भगवान् को नमस्कार करके बोले—हे नाथ ! आप प्रसन्न होइये हम समस्त देवगण आपके शरणापन्न हैं, हम सबकी दैत्यों से रक्षा करे । हे परमेश्वर ! ह्राद प्रभृति दैत्यगण ब्रह्मा के आदेश का उल्लंघन करके हम लोगों के त्रिलोकी का राज्य एवं समस्त यज्ञों का भाग हरण कर लिये हैं । यद्यपि हम और वे सर्वभूत आपके ही स्वरूप हैं तथापि हम लोग अविद्या के भेद से जगत्समुदाय को आपसे भिन्न देखते हैं ॥ ३५-३८ ॥

स्ववर्णधर्माभिरता वेदमार्गानुसारिणः ।
न शक्यास्तेऽरयो हन्तुमस्माभिस्तपसान्विताः ॥ ३९ ॥

तमुपायममेयात्मन्नस्माकं दातुमर्हसि ।
येन तानसुरान् हन्तुं भवेम भगवन् ! क्षमाः ॥ ४० ॥

हमारे शत्रुगण अपने अपने वर्णधर्म में निरत एवं वेदमार्गानुसारी तपस्या युक्त हैं, अतएव हमलोग उनका वध करने में असमर्थ हो रहे हैं । हे भगवन् ! जिस प्रकार हम सब उन असुर समुदाय का विनाश करने में समर्थ हो सकें ऐसा कोई उपाय कर दीजिये ॥ ३९-४० ॥

इत्युक्तो भगवांस्तेभ्यो मायामोहं शरीरतः ।
तमुत्पाद्य ददौ विष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान् ॥ ४१ ॥

मायामोहोऽयमखिलान् दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति ।
ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्गबहिष्कृताः ॥ ४२ ॥

स्थितौ स्थितस्य मे वध्या यावन्तः परिपन्थिनः ।
ब्रह्मणो येऽधिकारस्य देवदैत्यादिकाः सुराः ॥ ४३ ॥

तद्गच्छत न भीः कार्या मायामोहोऽयमग्रतः ।
गच्छत्वद्योपकाराय भवता भवतां सुराः ॥ ४४ ॥

इत्युक्ताः प्रणिपत्यैनं ययुर्देवा यथागतम् ।
मायामोहोऽपि तैः सार्द्धं ययौ यत्र महासुराः ॥ ४५ ॥

श्रीपराशरजी बोले—देवताओं द्वारा ऐसा कहे जाने पर भगवान् श्रीविष्णु ने मायामोह को अपने शरीर से उत्पन्न करके श्रेष्ठ देवगण को प्रदान किया। श्रीभगवान् बोले—यह मायामोह का समुदाय दैत्यगण को मोहित करेगा, तब उनके वेदमार्ग से भ्रष्ट होने पर तुमलोग बिना परिश्रम के ही उनका विनाश करने में समर्थ हो जाओगे। हे देवगण ! सृष्टि की रक्षा के लिए ब्रह्मा जी नियुक्त हैं। जो कोई भी दैत्य या देव उन ब्रह्मा के अधिकार के विरुद्ध आचरण करेगा वह मेरे द्वारा वध करने योग्य है। हे देवगण ! अब आपलोग इस समय यहाँ से प्रस्थान करें किसी प्रकार का भय नहीं है। यह मायामोह आपलोगों के उपकार के लिए आप सबके आगे आगे जायगा। पराशर जी बोले—भगवान् श्रीवष्णु द्वारा ऐसा कहे जाने पर देवगण ने उनको प्रणाम करके प्रस्थान किया। जहाँ पर असुरगण स्थित थे मायामोह भी देवताओं के साथ वहीं पहुँचा ॥ ४१-४५ ॥

श्रीविष्णुपुराण के तृतीय अंश में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त।

तृतीय अंश - अट्ठारहवाँ अध्याय

बौद्धधर्म की उत्पत्ति, राजा शतधनु की कथा।

पराशर उवाच।

तपस्यभिरतान् सोऽथ मायामोहो महासुरान्।
मैत्रेय ! ददृशे गत्वा नर्मदातीरसंश्रितान्॥ १ ॥

पराशर जी बोले—हे मैत्रेय ! इसके बाद उस स्थान से चलकर मायामोह ने नर्मदा के तट पर तपस्या में निरत असुरों को देखा ॥ १ ॥

ततो दिगम्बरो मुण्डो बर्हिपत्रधरो द्विज !
मायामोहोऽसुरान् श्लक्ष्णमिदं वचनमब्रवीत्॥ २ ॥

हे दैत्यपतयो ! ब्रूत यदर्थं तप्यते तपः।
ऐहिकं वाथ पारत्र्यं तपसः फलमिच्छथ॥ ३ ॥

पारत्र्यफललाभाय तपश्चर्या महामते !
अस्माभिरियमारब्धा किं वा तेऽत्र विवक्षितम्॥ ४ ॥

कुरुध्वं मम वाक्यानि यदि मुक्तिमभीप्सथ।
अर्हध्वमेनं धर्मञ्च मुक्तिद्वारमसंवृतम्॥ ५ ॥

धर्मो विमुक्तेरर्होऽयं नैतदस्मात् परः परः।
अत्रैव संस्थिताः स्वर्गं विमुक्तिं वा गमिष्यथ।
अर्हध्वं धर्ममेतञ्च सर्वे यूयं महाबलाः॥ ६ ॥

हे द्विज ! तब दिगम्बर, मुण्डित शिर, मयूरपिच्छधारी मायामोह ने असु से अत्यन्त, मधुर वचन से कहना आरम्भ किया। मायामोह बोले—हे दैत्यपति-

गण ! आपलोग किस उद्देश्य से तपस्या कर रहे हैं, आपलोगों को ऐहलौकिक अथवा पारलौकिक कामना है ? सो कहिये । असुर बोले—हे महामते ! हमलोगों ने पारलौकिक फल की कामना से तपस्या आरम्भ की है । इस विषय में आप क्या कहना चाहते हैं, सो कहिये । मायामोह बोला—यदि आपलोग मुक्ति की कामना करते हैं तो हमारे कथनानुसार कर्म करें और मुक्ति के द्वारभूत हमारे धर्म का अनुष्ठान भी करें । यह धर्म ही मुक्ति के उपयोगी है । इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भी धर्म नहीं है । इस धर्म के अनुष्ठान से आपलोग स्वर्ग अथवा मुक्ति जिसकी भी इच्छा करेगें उसी को प्राप्त कर लेगें । आप लोग महाबली हैं, अतएव इस धर्म का आदर कीजिये ॥ २-६ ॥

एवं प्रकारैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनवर्द्धितैः ।
मायामोहैन ते देत्या वेदमार्गादपाकृताः ॥ ७ ॥

धर्मायैतदधर्माय सदेतन्न सदित्यपि ।
विमुक्तये त्विदं नैतद् विमुक्ंित सम्प्रयच्छात ॥ ८ ॥

परमार्थोऽयमत्यर्थं परमार्थो न चाप्ययम् ।
कार्यमेतदकार्य्यञ्च नैतदेवं स्फुटं त्विदम् ।
दिग्वाससामयं धर्मो धर्मोऽयं बहुवाससाम् ॥ ९ ॥

इत्यनैकान्तवादञ्च मायामोहेन नैकधा ।
तेन दर्शयता दैत्याः स्वधर्मांस्त्याजिता द्विज ॥ १० ॥

अर्हतेमं महाधर्मं मायामोहेन ते यतः ।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममार्हतास्तेन तेऽभवन् ॥ ११ ॥

पराशरजी बोले—इस प्रकार नाना प्रकार की युक्तियों से युक्त वाक्यों द्वारा मायामोह ने उन दैत्यों को वेदमार्ग से भ्रष्ट कर दिया । यह धर्मयुक्त है, यह धर्मविरुद्ध है, यह सत् है, यह असत् है, वह मुक्तिकारक, यह अमुक्तिकारक है, यह परमार्थ, यह अपरमार्थ है, यह कर्तव्य, यह अकर्तव्य है, यह इस प्रकार का है, यह इस प्रकार का नहीं है, यह दिगम्बरों का, साम्बरों का धर्म है । हे द्विज ! इस प्रकार अनेक वाद विवादों को समझाकर मायामोह ने उन दैत्यों को अपने धर्म से विमुख कर दिया । मायामोह ने उन दैत्यों से कहा कि आपलोग इस श्रेष्ठ धर्म का 'अर्हत'

अर्थात् आदर कीजिये अत एव उस धर्म का अवलम्बन करने से असुरगण 'आर्हत' कहलाये ॥ ७-११ ॥

त्रयीधर्मसमुत्सर्गं मायामोहेन तेऽसुराः ।
कारितास्तन्मया ह्यासंस्ततोऽन्ये तत्प्रबोधिताः ॥ १२ ॥

मायामोह ने असुरों को त्रयी धर्म से विमुख कर दिया और उन्होंने अन्य दैत्यों को भी इसी धर्म में प्रवृत्त कर दिया ॥ १२ ॥

तैरप्यन्ये परे तैश्च तैरप्यन्ये परे च तैः ।
अल्पैरहोभिः सन्त्यक्ता तैर्दैत्यैः प्रायशस्त्रयी ॥ १३ ॥

पुनश्च रक्ताम्बरधृङ् मायामोहोऽजितेक्षिणः ।
अन्यानाहासुरान् गत्वा मृद्वल्पमधुराक्षरम् ॥ १४ ॥

स्वर्गार्थं यदि वो वाञ्छा निर्वाणार्थमथासुराः ।
तदलं पशुघातादिदुष्टधर्मैर्निबोधत ॥ १५ ॥

विज्ञानमयमेवैतदशेषमवगच्छत ।
बुध्यध्वं मे वचः सम्यग् बुधैरेवमुदीरितम् ॥ १६ ॥

जगदेतदनाधारं भ्रान्तिज्ञानार्थतत्परम् ।
रागादिदुष्टमत्यर्थं भ्राम्यते भवसङ्कटे ॥ १७ ॥

एवं बुध्यत बुध्यध्वं बुध्यतैवमितीरयन् ।
मायामोहः स दैतेयान् धर्ममत्याजयन्निजम् ॥ १८ ॥

नानाप्रकारवचनं स तेषां युक्तियोजितम् ।
तथा तथा च तद्धर्मं तत्यजुस्ते यथा यथा ॥ १९ ॥

तेऽप्यन्येषां तथैवोचुरन्यैरन्ये तथोदिताः ।
मैत्रेय ! तत्यजुर्धर्मं वेदस्मृत्युदितं परम् ॥ २० ॥

इस प्रकार एक ने दूसरे को, दूसरे ने तीसरों को, तीसरे ने चौथे को, उसने भी औरों को इसी धर्म में प्रवृत्त किया। इस प्रकार से कुछ ही दिनों में दैत्यों ने प्रायः वेदत्रयी का परित्याग कर दिया। तदनन्तर जितेन्द्रिय मायामोह

ने लालवस्त्र पहनकर अन्य असुरों के समीप भी जाकर अतीव कोमल एवं मधुर स्वर में कहा। हे दैत्यगण! यदि तुम लोगों को स्वर्ग अथवा मोक्ष की अभिलाषा है तो पशुहिंसा आदि निन्दित कर्मों का परित्याग कर बोध प्राप्त करो। हमारे वाक्य को अच्छी प्रकार समझो। इस विषय में पण्डितगण इस प्रकार कहते हैं कि यह जगत् अनाधार है, भ्रान्तज्ञानयुक्त है, अर्थान्वेषण में तत्पर और रागादि दोषों से अत्यन्त दूषित है, अत एव जीव भवसंकट में भ्रमित हो रहा है। पराशरजी बोले—मायामोहने इस प्रकार बुध्य (जानों) आदि शब्दों से बुद्ध धर्म का निर्देश करके दैत्यों को अपने धर्म से विमुख कर दिया। मायामोह ने दैत्यगण के समीप नाना प्रकार की युक्तियों से युक्त वाक्य कहना आरम्भ किया जिससे दैत्यगण ने उसके वाक्य के अनुसार अपने अपने धर्मका परित्याग कर दिया। धर्मत्याग करने वाले दैत्यों ने अन्य दैत्यों के समीप में जाकर कहा! उन्होंने औरों के समीप 'अर्हत' धर्म का प्रचार किया। हे मैत्रेय! इस प्रकार दैत्यों ने वेदस्मृतिप्रतिपादित धर्म का परित्याग किया॥ १३-२०॥

अन्यानप्यन्यपाषण्डप्रकारैर्बहुभिर्द्विज!
दैतेयान् मोहयामास मायामोहोऽतिमोहकृत्॥ २१॥

स्वल्पेनैव हि कालेन मायामोहेन तेऽसुराः।
मोहितास्तत्यजुः सर्वां त्रयीमार्गाश्रितां कथाम्॥ २२॥

केचिद्विनिन्दां वेदानां देवानामपरे द्विज!
यज्ञकर्मकलापस्य तथान्ये च द्विजन्मनाम्॥ २३॥

नैतद्युक्तिसहं वाक्यं हिंसा धर्माय नेष्यते।
हवींष्यनलदग्धानि फलायेत्यर्भकोदितम्॥ २४॥

यज्ञैरनेकैर्देवत्वमवाप्येन्द्रेमण भुज्यते।
शम्यादि यदि चेत्काष्ठं तद्वरं पक्षभुक् पशु॥ २५॥

निहतस्य पशोर्यज्ञे स्वर्गप्राप्तिर्यदीष्यते।
स्वपिता यजमानेन किन्नु तस्मान्न हन्यते॥ २६॥

तृप्तये जायते पुंसो भुक्तमन्येन चेत्ततः ।
कुर्याच्छ्राद्ध श्रद्धायान्नं न वहेयुः प्रवासिनाः ॥ २७ ॥

हे द्विज ! अत्यन्त मोहकारी मायामोह ने और भी अनेक दैत्यों को भिन्न भिन्न प्रकार के विविध पाषण्डों से मोहित कर दिया । इस प्रकार अल्पकाल में ही मायामोह से मोहित होकर दैत्यों ने वैदिक धर्म की बात भी छोड़ दी । हे ब्राह्मण ! उन दैत्यों में कोई वेदों की, कोई देवताओं की, कोई यज्ञकर्मकलापों की और कोई ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे । उनका कहना था हिंसा से भी धर्म होता है—यह बात किसी प्रकार भी युक्तियुक्त नहीं है अग्नि में हवि जलाने से फल मिलेगा यह भी बालकों के समान बात है । अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व प्राप्तकर यदि इन्द्र को भी शमी आदि काष्ठ ही भोजन करना पड़ता है तो इसकी अपेक्षा पत्ते खाने वाला पशु ही अच्छा है । यदि यज्ञ में बलि किया गया पशु स्वर्ग प्राप्त करता है तो यजमान अपने पिता को ही बलि क्यों नहीं देता । यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन करने से अन्य पुरुष की तृप्ति होती है तो विदेशयात्रा के समय खाद्य ले जाने की क्या आवश्यकता है, उसके पुत्रादि घरपर ही श्राद्ध कर दिया करें ॥ २१-२७

जनश्रद्धेयमित्येतदवगम्य ततो वचः ।
उपेक्ष्य श्रेयसे वाक्यं रोचतां यन्मयेरितम् ॥ २८ ॥

न ह्याप्तवादा नभसो निपतन्ति महासुराः ।
युक्तिमद् वचनं ग्राहं मयान्यैश्च भवद्विधैः ॥ २९ ॥

मायामोहेन ते दैत्याः प्रकारैर्बहुभिस्तथा ।
व्युत्थापिता यथा नैषां त्रयीं कश्चिदरोचयत् ॥ ३० ॥

अत एव यह श्राद्धादि कर्म लोगों की अन्ध श्रद्धामात्र ही है, इसकी भी उपेक्षा करनी चाहिये और अपने कल्याण के लिए जैसा मैंने कहा है वैसा ही करना चाहिये । हे असुरगण ! श्रुति आदि आप्त वाक्य भी आकाश से नहीं गिरा है । हमको, तुमलोगों को और दूसरों को भी युक्तियुक्त वचन ही मानना चाहिये । श्रीपराशरजी बोले—इस प्रकार मायामोह ने अनेक युक्तियों से दैत्यों को विचलित कर दिया और उनमें से किसी की भी वेदत्रयी में रुचि न रह गयी ॥ २८-३० ॥

इत्थमुन्मार्गयातेषु तेषु दैत्येषु तेऽमराः ।
उद्योगं परमं कृत्वा युद्धाय समुपस्थिताः ॥ ३१ ॥

ततो देवासुरं युद्धं पुनरेवाभवद् द्विज !
हताश्च तेऽसुरा देवैः सन्मार्गपरिपन्थिनः ॥ ३२ ॥

स्वधर्मकवचस्तेषामभूद् यः प्रथमं द्विज !
तेन रक्षाभवत् पूर्वं नेशुर्नष्टे च तत्र ते ॥ ३३ ॥

इस प्रकार दैत्यों को वेदविरुद्ध मार्ग में प्रवृत्त होने पर देवतालोग पूरी तैयारी करके उनके समीप युद्ध करने के लिए पहुँचे । हे द्विज ! तब देवता और असुरों में पुनः युद्ध हुआ और सन्मार्ग विरोधी दैत्यसमुदाय देवताओं द्वारा मारे गये । हे ब्राह्मण ! पूर्व में दैत्यों के समीप जो स्वधर्म रूपी कवच था उसी से उनकी रक्षा होती थी किन्तु उसके नष्ट होने से वे भी समाप्त हो गये ॥ ३१-३३ ॥

ततो मैत्रेय ! तन्मार्गवर्त्तिनो ययेऽभवञ्जनाः ।
नग्नास्ते तैर्यतस्त्यक्तं त्रयीसंवरणं वृथा ॥ ३४ ॥

हे मैत्रेय ! उसके बाद जिन लोगों ने मायामोह द्वारा चलाये गये मार्ग का अवलम्बन किया वे 'नग्न' कहलाये क्योंकि उन लोगों ने त्रयीरूप अपने आवरण का परित्याग कर दिया था ॥ ३४ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थस्तथाश्रमाः ।
परिव्राड् वा चतुर्थोऽत्र पञ्चमो नोपपद्यते ॥ ३५ ॥

यस्तु सन्त्यज्य गार्हस्थ्यं वानप्रस्थो न जायते ।
परिव्राह वापि मैत्रेय ! स नग्नः पापकृन्नरः ॥ ३६ ॥

नित्यानां कर्मणां विप्र ! तस्य हानिरहर्निशम् ।
अकुर्वन् विहितं कर्म शक्तः पतति तद्दिने ॥ ३७ ॥

प्रायश्चित्तेन महता शुद्धिमाप्नोत्यनापदि ।
पक्षं नित्यक्रियाहानेः कत्ता मैत्रेय ! मानवः ॥ ३८ ॥

संवत्सरं क्रियाहानिर्यस्य पुंसोऽभिजायते ।
तस्यावलोकनात् सूर्यो निरीक्ष्यः साधुभिः सदा ॥ ३९ ॥

स्पृष्टे स्नानं सचेलस्य शुद्धेर्हेतुर्महामते !
पुंसो भवति तस्योक्ता न शुद्धिः पापकर्मणः ॥ ४० ॥

देवर्षिपितृभूतानि यस्य निःश्वस्य वेश्मनि ।
प्रयान्त्यनर्चितान्यत्र लोके तस्मान्न पापकृत् ॥ ४१ ॥

देवादिनिःश्वासहतं शरीरं यस्य वेश्म च ।
न तेन सङ्करं कुर्याद् गृहासनपरिच्छदैः ॥ ४२ ॥

सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्यां चैव कुर्वतः ।
जायते तुल्यता तस्य तेनैव द्विज ! वत्सरम् ॥ ४३ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार ही आश्रमी हैं । इनके अतिरिक्त पाँचवाँ आश्रमीं कोई नहीं है । हे मैत्रेय ! जो व्यक्ति गार्हस्थ्य आश्रम का परित्याग करके वानप्रस्थ अथवा संन्यासी नहीं होता है वह पापात्मा भी नग्न कहा जाता है । हे द्विज ! जो व्यक्ति समर्थ होकर, भी एक दिन मात्र भी अपने विहित कर्म का परित्याग करता है वह उसी दिन पतित हो जाता है और उसका किया हुआ नित्यकर्म समुदाय भी विनष्ट हो जाता है । हे मैत्रेय ! विपत्तिकाल के व्यतीत होने पर जो मनुष्य एक पक्षतक नित्य क्रिया का अनुष्ठान नहीं करता वह महाप्रायश्चित्त करने पर शुद्ध होता है । जिस व्यक्ति ने एक वर्ष तक नित्य क्रिया का परित्याग कर दिया हो उसको देखने के बाद सज्जनों को चाहिये कि सूर्य भगवान् का दर्शन करें । हे महामते ! ऐसे व्यक्ति का स्पर्श होने पर वस्त्रसहित स्नान करने से ही शुद्धि होती है किन्तु उस पातकी की शुद्धि किसी प्रकार नहीं हो सकती है । इस पृथ्वी पर जिसके घर से देवगण, पितृगण और भूतगण बिना पूजित हुए निःश्वास छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, लोक में उससे बढ़कर और कोई पापी नहीं है ऐसे पुरुष के साथ एक घर, एक आसन अथवा एक बिछावन द्वारा भी सम्पर्क नहीं करना चाहिये । और जो व्यक्ति उपरोक्त पातकी के साथ एक वर्ष तक भाषण, कुशल प्रश्न अथवा एक स्थान में बैठता है वह भी उसी के समान पातकी होता है ॥ ३५-४३ ॥

अथ भुङ्क्ते गृहे तस्य करोत्यास्यां तथासने।
शेते चाप्येकशयने स सद्यस्तत्समो भवेत्॥ ४४॥

देवतापितृभूतानि तथानभ्यर्च्य योऽतिथीन्।
भुङ्क्ते स पातकं भुङ्क्ते निष्कृतिस्तस्य कीदृशी॥ ४५॥

ब्राह्मणाद्यास्तु ये वर्णाः स्वधर्मादन्यतोमुखम्।
यान्ति ते नग्नसंज्ञां तु हीनकर्मस्ववस्थिताः॥ ४६॥

चतुर्णां यत्र वर्णानां मैत्रेयात्यन्तसङ्करः।
तत्रास्या साधु वृत्तीनामुपघाताय जायते॥ ४७॥

अनभ्यर्च्य ऋषीन् देवान् पितृन् भूतातिथींस्तथा।
यो भुङ्क्ते तस्य सम्भाषात् पतन्ति नरके नराः॥ ४८॥

तस्मादेतान्नरो नग्नांस्त्रयीसन्त्यागदूषितान्।
सर्वदा वर्जय्त् प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिषु॥ ४९॥

श्रद्धावद्भिः कृतं यत्नाद्देवान् पितृपितामहान्।
न प्रीणयति तच्छ्राद्धं यदेभिरवलोकितम्॥ ५०॥

जो व्यक्ति ऐसे पातकी के घर में भोजन करता है अथवा उसके साथ एक आसनपर बैठता है या एक शय्या पर शयन करता है वह उसी क्षण उसी के समान हो जाता है। जो मनुष्य देवता, पितृगण, भूतवर्ग और अतिथि की पूजा किये बिना स्वयं भोजन करता है वह केवल पापमय ही भोजन करता है। उसका उद्धार नहीं हो सकता है। ब्राह्मण प्रभृति चारों वर्ण यदि अपने अपने धर्म से पराङ्मुख हो जायें अथवा नीचवृत्ति का अवलम्बन करे तो उनको नग्न कहते हैं। हे मैत्रेय ! एक घर में यदि चारों वर्ण अत्यन्त संसर्ग करें तो उस घर में निवास करने में साधुवृत्ति का विनाश होता है। जो व्यक्ति ऋषि, देवता, पितृगण, भूतगण एवं अतिथि की पूजा किये बिना स्वयं भोजन करता है उस पुरुष से भाषण करने से भी मनुष्य नरक में जाता है। इन सभी कारणों से विज्ञ पुरुष वेद परित्याग के कारण दूषित इन समस्त नग्न व्यक्ति के साथ सम्भाषण अथवा संसर्ग नहीं करे। श्रद्धावान् पुरुष श्राद्धकाल

में यदि नग्न व्यक्ति का अवलोकन करता है तो श्राद्धकर्ता के उस श्राद्ध से पितृ-पितामह आदि तृप्त नहीं होते ॥ ४४-५० ॥

श्रूयते च पुरा ख्यातो राजा शतधनुर्भुवि ।
पत्नी च शैव्या तस्याभूदतिधर्मपरायणा ॥ ५१ ॥

सुना जाता है कि प्राचीनकाल में इस भूतलपर शतधनु नाम से विख्यात एक राजा था । और शैव्या नाम की अत्यन्त धर्मशीला उनकी पत्नी थी ॥ ५१ ॥

पतिव्रता महाभागा सत्यशौचदयान्विता ।
सर्वलक्षणसम्पन्ना विनयेन नयेन च ॥ ५२ ॥

स तु राजा तया सार्द्धं देवदेवं जनार्दनम् ।
आराधयामास विभुं परमेण समाधिना ॥ ५३ ॥

होमैर्जपैस्तथा दानैरुपवासैश्च भक्तितः ॥ ५४ ॥

पूजाभिश्चानुदिवसं तन्मना नान्यमानसः ॥ ५५ ॥

एकदा तु समं स्नातौ तौ तु भार्यापती जले ।
भागीरथ्याः समुत्तीर्णो कार्त्तक्यां समुपोषितौ ।
पाषण्डिनमपश्येतामायान्तं सम्मुखं द्विज ॥ ५६ ॥

चापाचार्यस्य तस्यासौ सखा राज्ञो महात्मनः ।
अतस्तद्गौरवात्तेन सहालापमथाकरोत् ॥ ५७ ॥

न तु सा वागयता देवी तस्य पत्नी पतिव्रता ।
उपोषितास्मीति रविं तस्मिन् दृष्टे ददर्श च ॥ ५८ ॥

समागम्य यथान्यायं दम्पती तौ यथाविधि ।
विष्णोः पूजादिकं सर्वं कृतवन्तौ द्विजोत्तम ॥ ५९ ॥

यह शैव्या पतिव्रता महाभागा, सत्य, शौच और दया सम्पन्ना विनय नीतिशालिनी एवं सर्वलक्षणयुक्ता थी । वह राजा शैव्या के साथ परम समाधिद्वारा जनार्दन भगवान् की आराधना में प्रवृत्त हुए । राजा प्रतिदिन तन्मय होकर भक्ति-पूर्वक होम, जप, दान, उपवास, तथा पूजनद्वारा भगवान् की आराधना करते थे ।

उनका मन अन्य किसी विषय में नहीं लगता था। एक दिन वे दोनों स्त्री-पुरुष कार्तिकी पूर्णिमा को गङ्गाजी के जल में एक साथ स्नान करने के लिए पहुँचे। इसी समय सामने आये हुए एक पाषण्डी को देखा। हे द्विज ! वह पाषण्डी महात्मा राजा के चापाचार्य का मित्र था। राजा ने चापाचार्य के गौरव को स्मरण करके उस पाषण्डी के साथ वार्तालाप किया, किन्तु व्रतयुक्ता संयतवचना उसकी पत्नी शैव्या ने उनके साथ कोई बात नहीं की। और मैं उपवास कर रही हूँ ऐसा विचार कर रानी ने उस पाषण्डी को देखने पर भगवान् सूर्य का दर्शन किया हे ब्राह्मणोत्तम इसके बाद उस दम्पति ने घर आकर यथा विधान विष्णु पूजन आदि कर्म सम्पन्न किया। कुछ दिनों के बाद उस शत्रु विजेता राजा की मृत्यु हुई। और रानी शैव्या ने भी अपने पति शतधनु राजा के साथ ही चितारोहण किया ॥ ५१-५९ ॥

कालेन गच्छता राजा ममारासौ सपत्नजित्।
अन्वारुरोह तं देवी चितास्थं भूपति पतिम्॥ ६० ॥

स तु तेनापचारेण श्वा जज्ञे वसुधाधिपः।
उपोषितेन पाषण्डसंलापी यः कृतोऽभवत्॥ ६१ ॥

राजा ने उपवास अवस्था में पाषण्डी के साथ वार्तालाप किया था इसी दोष से दूसरे जन्म में कुक्कुर शरीर पाया। और रानी ने पूर्व जन्म स्मरण पूर्वक समस्त ज्ञानयुक्ता सर्वलक्षणसम्पन्ना शोभना काशीराज की कन्या के रूप में जन्म ग्रहण किया ॥ ६०-६१ ॥

सा तु जातिस्मरा जज्ञे काशीराजसुता शुभा।
सर्वविज्ञानमम्पूर्णा सर्वलक्षणपूजिता॥ ६२ ॥

तां पिता दातुकामोऽभूत् वराय विनिवारितः।
तयैव तन्व्या विरतो विवाहारम्भतो नृपः॥ ६३ ॥

ततः सा दिव्यया दृष्ट्या दृष्ट्वा श्वानं निजं पतिम्।
विदिशाख्यं पुरं गत्वा तदवस्थं ददर्श तम्॥ ६४ ॥

तं दृष्ट्वैव महाभागं श्वभूतन्तु पतिं तथा।
ददौ तस्मै वराहार सत्कारप्रवणं शुभम्॥ ६५ ॥

भुञ्जन् दत्तं तया सोऽन्नमतिमृष्टमभीप्सितम् ।
श्वजातिललितं कुर्वन् बहु चाटु चकार वै ॥ ६६ ॥

अतीव व्रीडिता बाला कुर्वता चाटु तेन सा ।
प्रणामपूर्वमाहेदं दयितं तं कुयोनिजम् ॥ ६७ ॥

स्मर्य्यतां तन्महाराज ! दाक्षिण्यललितं त्वया ।
येन श्वयोनिमापन्नो मम चाटुकरो भवान् ॥ ६८ ।

पाषण्डिनं समाभाष्य तीर्थस्नानादनन्तरम् ।
प्राप्तोऽसि कुत्सितां योनिं किं न स्मरसि तत्प्रभो ॥ ६९ ॥

तयैवं स्मारेते तस्मिन् पूर्वजातिकृते तदा ।
दध्यौ चिरमथावाप निर्वेदमतिदुर्लभम ॥ ७० ॥

अनन्तर काशीराज ने किसी वर के साथ अपनी कन्या का विवाह करने का विचार किया । किन्तु कन्या द्वारा निषेध करने पर राजा विवाह कार्य से विरत हो गये । बाद में काशीराजकन्या (शैव्या) ने दिव्यचक्षु द्वारा देखा कि उसके पति कुक्कुर शरीर प्राप्तकर विदिशा नगरी में निवास करते हैं । तब वह उस नगरी में जाकर उसी अवस्था में पति को देखती है । हे महाभाग ! कुक्कुर शरीरवाले अपने महाभाग पति को देखकर काशीराज कन्या ने उनको उत्तम आहार दिया । उसके पति ने (श्वान) भी उसके द्वारा दिये गये उत्तम मिष्ठान भोजन को पाकर अपनी जाति के अनुसार बहुत चाटुता प्रदर्शन करना आरम्भ किया । अपने स्वामी के चाटुप्रदर्शन से काशीराज कन्या अत्यन्त लज्जित हुई और कुयोनिगत अपने पति को प्रणाम करके बोली । पत्नी बोली—हे महाराज ! आपने अपने गुरु का मित्र समझकर गौरवता से पाषण्डी के साथ जो प्रीतियुक्त मधुर भाषण किया उसी के फलस्वरूप कुक्कुरयोनि में जन्म लेकर इस प्रकार का चाटुता प्रदर्शन करते हैं । हे प्रभो ! आप तीर्थस्नान के बाद पाषण्डी से वार्तालाप करके इस निन्दित योनि में जन्म लिये इसको स्मरण करते हैं क्या ? । पराशरजी बोले—काशीराजपुत्री ने जब इस प्रकार स्मरण कराया तब कुक्कुर ने अपने पूर्व जन्म के विषय में बहुत देरतक विचार किया, बाद में अत्यन्त खेद प्राप्त किया । पश्चात् उस कुक्कुर ने दुखी हृदय

से उस नगरी का त्याग किया और पर्वत की चोटी पर भ्रमण करते हुए मरुभूमि में गिरकर प्राणत्याग करके श्रृगाल योनि में जन्म लिया ॥ ६२-७० ॥

निर्विण्णचित्तः स ततो निर्गम्य नगराद् बहिः ।
मरुप्रपतनं कृत्वा शार्गालीं योनिमागतः ॥ ७१ ॥

सापि द्वितीये सम्प्राप्ते वर्षे दिन्येन चक्षुषा ।
ज्ञात्वा श्रृगालं तं द्रष्टुं ययौ कोलाहलं गिरिम् ॥ ७२ ॥

तत्रापि दृष्ट्वा तं प्राह शार्गालीं योनिमागतम् ।
भर्त्तारमतिचार्वङ्गी तनया पृथितीपतेः ॥ ७३ ॥

अपि स्मरसि राजेन्द्र ! श्वयोनिस्थस्य यन्मया ।
प्रोक्तं ते पूर्वचरितं पाषण्डालपसंश्रयम् ॥ ७४ ॥

पुनस्तयोक्तस्तज्ज्ञात्वा सत्यं सत्यवतां वरः ।
कालेन स निराहारस्तत्याज स्वं कलेवरम् ॥ ७५ ॥

भूयस्ततो वृकं जातं गत्वा तं निर्जने वने ।
स्मारयामास भर्त्तारं पूर्ववृत्तमनिन्दिता ॥ ७६ ॥

न त्वं वृको महाभाग ! राजा शतधनुर्भवान् ।
श्वा भूत्वा त्वं श्रृगालोऽभुर्वृकत्वं साम्प्रतं गतः ॥ ७७ ॥

स्मारितेन यदा त्यक्तस्तेनात्मा गृध्रतां गतः ।
अवाप सा पुनश्चैनं बोधयामास भाविनी ॥ ७८ ॥

पुनः दूसरे वर्ष में शैव्या दिव्य चक्षु से, मेरे पति ने श्रृगाल योनि में जन्म ग्रहण किया हैं ऐसा देखकर उनको देखने के लिए कोलाहल पर्वत पर गयी । अतीव सुन्दर आकृति वाली राजकुमारी वहाँपर श्रृगालयोनि में जन्म लिये हुए अपने पति को देखकर बोली । हे राजेन्द्र ! कुक्कुर योनि में अवस्थिति के समय पहले पाषण्डी के साथ वार्तालाप विषयक मैंने पूर्वजन्म की जो बात कही थी उसे स्मरण करते हैं क्या ? पराशरजी बोले—परमसत्यनिष्ठ राजा शतधनु ने अपनी पत्नी से ऐसी बात सुनकर और उसे समझकर अनशन द्वारा उसी वन में अपने श्रृगाल योनि के शरीर

का परित्याग कर दिया। अनन्तर राजा शतधनु ने वृक योनि में जन्म लिया उस समय भी अनिन्दिता काशीराजपुत्री ने उस निर्जन वन में प्रवेश करके वृकरूपी अपने पति को पूर्वजन्म का वृत्तान्त स्मरण कराया। हे महाभाग ! आप वृक नहीं हैं किन्तु शतधनु नामक राजा हैं। आप ने सर्वप्रथम कुक्कुर पुनः श्रृगाल होकर जन्म ग्रहण किया। अभी वृकयोनि में जन्मग्रहण किया है। काशीराजपुत्री ने यह वृत्तान्त स्मरण करा दिया। पुनः राजा शतधनु ने वृकशरीर को त्यागकर गृध्रशरीर ग्रहण किया। राजकुमारी ने पुनः गृध्र के समीप जाकर समस्त पूर्वजन्म की बातें स्मरण करायी। हे राजन् ! आप गृध्र के समान चेष्टा करते हैं किन्तु आप गृध्र नहीं हैं। आप कौन हैं इसे स्मरण करें। पाषण्डी के साथ वार्तालाप करने के कारण आप गृध्र हो गये हैं ॥ ७२-७८ ॥

नरेन्द्र ! स्मर्यतामात्मा ह्यलं ते गृध्रचेष्टया।
पाषण्डालापजातोऽयं दोषो यद्गृध्रतां गतः ॥ ७९ ॥

ततः काकत्वमापन्नं समनन्तरजन्मनि।
उवाच तन्वी भर्त्तारमुपलभ्यात्मयोगतः ॥ ८० ॥

अशेषा भूभृतः पूर्वं वश्या यस्मै बलिं ददुः।
स त्वं काकत्वमापन्नो जातोऽद्य बलिभुक् प्रभो ॥ ८१ ॥

एवमेव च काकत्वे स्मारितः स पुरातनम्।
तत्याज भूपतिः प्राणान् मयूरत्वमवाप च ॥ ८२ ॥

मयूरत्वं ततः सा वै चकारानुगतिं शुभा।
दत्तैः प्रतिक्षणं हृद्येस्तृप्तं तज्जातिभोजनेः ॥ ८३ ॥

ततस्तु जनको राजा वाजिमेधं महाक्रतुम्!
चकार तस्यावभृथे स्नापयामास तं तदा ॥ ८४ ॥

सस्नौ स्वयं च तन्वङ्गी स्मारयामास चापि तम्।
यथासौ श्वश्रृगालाद्या योनीर्जग्राह पार्थिवः ॥ ८५ ॥

स्मृतजन्मक्रमः सोऽथ तत्याज स्वं कलेवरम्।
जज्ञे स जनकस्यैव पुत्रोऽसौ सुमहात्मनः ॥ ८६ ॥

ततः सा पितरं तन्वी विवहार्थमचोदयत् ।
स चापि कारयामास तस्या राजा स्वयवरम् ॥ ८७ ॥

स्वयंवरे कृते सा तं सम्प्राप्तं पतिमात्मनः ।
वरयामास भूयोऽपि भर्तृभावेन भामिनी ॥ ८८ ॥

बाद में राजा ने गृध्रशरीर का परित्याग करके काकयोनि में जन्म लिया। क्षीणाङ्गी काशीराजपुत्री योगबल से अपने पति को काकशरीर में गये हुए समझकर बोली—हे प्रभो ! पूर्वकाल में वशीभूत होकर समस्त राजसमूह जिसको नाना प्रकार की वस्तुएँ भेंट करते थे वही आप इस समय काक होकर बलिभोजी बन गये। पराशरजी बोले—काकजन्म में भी इस प्रकार स्मरण कराये जाने पर राजा ने प्राण त्याग करके पश्चात् मयूरशरीर धारण किया। तब काशीराजपुत्री अपने पति को मयूरशरीर में जन्म लिये हुए देखकर प्रतिक्षण मयूरजाति के भोजन योग्य अत्यन्त उत्तम द्रव्य प्रदान करके तृप्त करती हुई सेवा में संलग्न हो गयी। इसके बाद, राजा जनक ने जब अश्वमेध यज्ञ किया, उस यज्ञ में अवभृथ स्नान के समय उस मयूर को स्नान कराया। और क्षीणाङ्गी काशीराजकन्या ने भी स्वयं स्नान कर राजा ने किस प्रकार कुक्कुर, श्रृगाल आदि योनियों में जन्म लिया यह समस्त वृत्तान्त उनको स्मरण कराया। मयूररूपी राजा ने भी क्रमशः पूर्वजन्म वृत्तान्त को श्रवण करके शरीर परित्याग किया और उस महात्मा जनक के ही पुत्र रूप में जन्म लिया। अनन्तर कृशाङ्गी काशीराजकुमारी ने अपने पिता से विवाह का आयोजन करने को कहा और पिता ने भी कन्या विवाह के निमित्त स्वयंवर सभा का आयोजन किया। जिस समय राजकुमारी के विवाह निमित्त स्वयंवर सभा हुई उस समय राजकुमारी ने अपने पति को स्वयंवर में आये हुए देखकर उनको अपने पतिरूप में वरण किया। जनक राजा के पुत्र भी काशीराजपुत्री के साथ विविध प्रकार के भोग भोगने लगे। और पिता की मृत्यु के बाद विदेह पर उसने राज्य किया ॥ ७९-८८ ॥

बुभुजे च तया सार्द्धं सम्भोगान्नृपनन्दनः ।
पेतर्य्युपरते राज्यं विदेहेषु चकार सः ॥ ८९ ॥

इयाज यज्ञान् सुबहून् ददौ दानानि चार्थिनाम् ।
पुत्रानुत्पादयामास युयुधे च सहारिभिः ॥ ९० ॥

राज्यं भुक्त्वा यथान्यायं पालयित्वा वसुन्धराम्।
तत्याज स प्रियान् प्राणान् संग्रामे धर्मतो नृपः ॥ ९१ ॥

ततश्चितास्थं तं भूयो भर्त्तारं सा शुभेक्षणा।
अन्वारुरोह विधिवद् यथापूर्वं मुदा सती ॥ ९२ ॥

ततोऽवाप तया सार्द्धं राजपुत्र्या स पार्थिवः।
ऐन्द्रानतीत्य वै लोकान् लोकान् कामदुहोऽक्षयान् ॥ ९३ ॥

स्वर्गाक्षयत्वमतुलं दाम्पत्यमतिदुर्लभम्।
प्राप्त पुण्यफलं प्राप्य संशुद्धिं तां द्विजोत्तम ॥ ९४ ॥

तथा उसने विविध प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान किया, याचकों को बहुत धन दिया, पुत्रों को उत्पन्न किया और शत्रुओं के साथ संग्राम भी किया। और उस राजा ने राज्य का उपभोग तथा पृथ्वीपालन करके धर्मयुद्ध में अपना शरीर परित्याग किया। सुलोचना सती राजकन्या ने आनन्दपूर्वक पूर्वजन्म के समान ही विधिपूर्वक चिताशायिनी होकर अपने मृतपति का अनुगमन किया। अनन्तर राजा ने उस राजकुमारी के साथ इन्द्रलोक को अतिक्रमण करके समस्त कामना को पूर्ण करने वाले अक्षयलोक को प्राप्त किया। हे द्विजोत्तम ! उन्होंने अत्यन्त शुद्ध होकर अतुलनीय अक्षय स्वर्ग, दाम्पत्य सुख एवं पूर्वार्जित पुण्यसमूह का भोग किया। हे ब्राह्मण ! मैंने आपसे यह पाषण्डी के साथ सम्भाषण और अश्वमेध यज्ञ में स्नान का माहात्म्य वर्णन कर दिया ॥ ८९-९४ ॥

एष पाषण्डसम्भाषाद्दोषः प्रोक्तो मया द्विज !
तथाश्वमेधावभृथस्नानमाहात्म्यमेव च ॥ ९५ ॥

तस्मात् पाषण्डिभिः पापैरालापस्पर्शनं त्यजेत्।
विशेषतः क्रियाकाले यज्ञादौ चापि दीक्षितः ॥ ९६ ॥

अतएव पाषण्डी पापाचारी के साथ आलाप और उसका स्पर्श भी वर्जित है, विशेषकरके किसी नित्य नैमित्तिक क्रिया में और यज्ञादि की दीक्षा लेने पर उन पाषण्डियों का संसर्ग परित्याग अत्यन्त आवश्यक है। जिसके घर में एक मासतक नित्यक्रियाओं का परित्याग हो गया हो बुद्धिमान् व्यक्ति

उस नित्यक्रियात्यागी व्यक्ति को देखकर भी अपनी शुद्धि के लिए भगवान् सूर्य का दर्शन करें ॥ ९५-९६ ॥

क्रियाहानिर्गृहे यस्य मासमेकं प्रजायते ।
तस्यावलोकनात् सूर्य पश्येत मतिमान् नरः ॥ ९७ ॥

किं पुनर्यैस्तु सत्यक्ता त्रयी सर्वात्मना द्विज !
परान्नभोजिभिः पापैर्वेदवादविरोधिभिः ॥ ९८ ॥

सहालापस्तु संसर्गः सहास्या चातिपापिनी ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ ९९ ॥

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकाञ्छठान् ।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥ १०० ॥

विशेषतया परान्नभोजी, वेद विरोधी तथा जिन पापियों ने वेद का परित्याग किया है उन सबको देखने पर भगवान् श्रीसूर्य का दर्शन करना अत्यावश्यक है । इन दुराचारी पाषण्डियों के साथ वार्तालाप करने, सम्पर्क रखने और उठने-बैठने में महान् दोष होता है । इसलिए इन सब बातों का परित्याग करे । पाषण्डी, विकर्मी, विडालव्रतवाले, शठ, स्वार्थी, वकवृत्ति इन समस्त मनुष्यों को वंचन मात्र से भी सत्कार न करे । सम्पर्क की बात तो दूर रहे परन्तु इन पापियों के साथ एक स्थान में बैठना भी दोषकारक हैं, अतएव ऐसे व्यक्तियों का दूर से ही परित्याग करना चाहिये ॥ ९५-१०० ॥

दूरादपास्तः सम्पर्कः सहस्यापि च पापिभिः ।
पाषण्डिभिर्दुराचारैस्तस्मात्ताः परिवर्जयेत् ॥ १०१ ॥

एते नग्नास्तवाख्याता दृष्टया श्रापघातकाः ।
येषां सम्भाषणात् पुंसां दिनपुण्यं प्रणश्याति ॥ १०२ ॥

एते पाषण्डिनः पापा न ह्येतानालपेद् बुधः ।
पुण्यं नश्यति सम्भाषादेतेषां तद्दिनोद्भवम् ॥ १०३ ॥

पुंसां जटाधरणमौण्डयवतां वृथैव। मोघाशिनामखिलशौचनिराकृतानाम्।
तोयप्रदानपितृपिण्डबहिष्कृतानां सम्भाषणादपि नरा नरकं प्रयान्ति।१०४।

इस प्रकार मैंने नग्न पुरुष का वर्णन किया। श्राद्ध में इनका दर्शन होने से भी श्राद्ध विनष्ट हो जाता है। तथा इनसे भाषण करने से भी एक दिन का पुण्य समाप्त होता है। इन पापियों का नाम ही पाषण्ड है। पण्डितजन इनके साथ आलाप नहीं करते, इनके साथ सम्भाषणमात्र से ही एक दिन का पुण्य समाप्त होता है। निरर्थक नाना रूपधारी बिना कारण मस्तक मुड़वाने वाले देवता, अतिथि आदि की पूजा के बिना आहार करने वाले, समस्त शौचादि क्रिया विहीन तथा तर्पण एवं पिण्ड दान से पराङ्मुख—इन समस्त व्यक्तियों के साथ भाषण करने से भी मनुष्य नरक में जाता है॥ १०१-१०४॥

श्री विष्णुपुराण के तृतीय अंश में अठारहवाँ अध्याय समाप्त।

